

मार्कण्डेय पुराण

(द्वितीय खंड)

५१—भद्राश्वादिवर्ष वर्णन

एवंतुभारतंवर्षयथावत्कथितंमुने ।
कृतत्रेताद्वापरंचतथातिष्यंचतुष्टयम् ॥१
अत्रैवैतद्युगानान्तुचातुर्वर्ण्यचवैद्विज ।
चत्वारित्रीणिद्वेचैवकथ्यैकैकंशरच्छतम् ॥२
जीवन्त्यन्नराब्रह्मन्कृतत्रेतादिषुक्रमात् ।
देवकूटस्यपूर्वस्यशैलेन्द्रस्यमहात्मनः ॥३
पूर्वैरायत्स्थितं वर्षभद्राश्वं तस्त्रिवोधमे ।
श्वेतपर्णेश्रनीलशैवालश्चाचलोत्तमः ॥४
कौरश्वःपर्णशालाग्रःपंचैतेहिकुलाचलाः ।
तेषांप्रभूतिरन्येयेबहवःक्षुद्रपर्वताः ॥५
तैर्विशिष्टाजनपदानानारूपाःसहस्रशः ।
ततःकुमुदसंकाशाःशुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥६
इत्येवमायोन्येऽपिशतशोऽथसहस्रशः ।
सीतावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७
नद्योऽथक्वचोविस्तीर्णाःशीततोयौघवाहिकाः ।
अत्रवर्षैःशङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—भारतवर्ष का यह वास्तविक वर्णन किया गया, इसी भारतवर्ष में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह चारों युग विद्यमान हैं ॥१॥ इसी स्थान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और कलियुग के भेद से मनुष्यगण क्रमशः चार नौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ की घायु पाते हैं, पूर्व दिशा देवदूत नामक विशाल पर्वत के ॥२-३॥ पूर्व की ओर जो वर्ष अवस्थित हैं, उनमें भद्राश्ववर्ष कहते हैं, सब उसके विषय में रहता है, स्वेतपर्ण, नील सौवाल ॥४ बौरश्च, पर्यन्ताक्षार यह पाँच कुलावन इन वर्षों में स्थित हैं तथा इसी वर्ष में इन सब पर्वतों से उत्पन्न हुए अनेक छोटे पर्वत भी स्थित हैं ॥५॥ कुमुद, संकाश, सुद्धमानु, सुम-हून आदि अम्वान्य सहस्रों जनपद विभिन्न प्रकार में दस वर्षों में ही स्थित हैं, सोता, शम्बावती, मद्रा और सभ्रावर्त आदि ॥६-७॥ यहूतशी शत्यस्त शीतल बल वाली नदियाँ इन में प्रवहमान हैं, दस वर्षों में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य शक तथा स्वच्छ स्वर्ण के समान प्रभा सम्पन्न हैं ॥८॥

दिव्यसगमिन पुष्पादशवर्षंशतायुष ।

अथमोत्तमनतेष्वस्ति सर्वेतेममदर्शना ॥९

तत्राप्यश्वशिरादेवश्रुतुर्वाहृजंनार्दन ॥१०

तिरोहृदयमेडाहृद्विहस्तश्चादिप्रयान्वित ।

तस्याप्यर्थवविषयाविज्ञं याजगत प्रभो ॥११

केतुमालमतोवर्षनिदोधममपश्चिमम् ।

विशाल-कम्यल वृष्णगोजयन्तोहरिपर्वत ॥१२

विशोकोवद्धं मानश्चमर्तेतेकुलपर्वता ।

अन्येमह्यम शौलायेपुलोमगणःस्थित ॥१३

मौलयस्तेमहाकावाःसारुपोत्तरम्भरा ।

अरुवुनप्रमुखाश्चापिवमन्तिजनशोजना ॥१४

वे सत्ता सहित पवित्रता पूर्वक निवास करने हुए सहस्र वर्षों पर्यन्त जीवित रहते हैं, उनमें कोई श्रेष्ठ अपना नहीं है ॥१॥ वहाँ क सब

मनुष्य सभी प्रकार के गुणवान् होते हैं, इस वर्ष में चतुर्भुंजी भगवान् हयग्रीव स्वरूप में। १०। शिर, हृदय, मेढू, चरण हाथ और अक्षित्रयान्वित होकर अवस्थित हैं, उन जगदीश्वर का सम्पूर्ण विषय इसी प्रकार समझो ॥११॥ अब सुमेरु के पश्चिम में स्थित केतुमालवर्ष का वर्णन सुनो—इस वर्ष में जो सात कुलाचल हैं वे विशाल, कम्वल, कृष्ण, जयन्त, हरि पर्वत ॥१२॥ विशोक और बद्धमान नामक हैं, इनके अतिरिक्त और भी हजारों विशाल पर्वत हैं, जिनमें अनेक प्राणी निवास करते हैं ॥१३॥ उनमें शाक, पोत, करम्भक और अच्युलाख्यादि अनेक प्रकार के लोगों का निवास है ॥१४॥

येपिवन्तिमहानद्योर्वक्षुश्यामांस्वकम्बलाम् ।

अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः ॥१५

अत्राप्यायुःसमपूर्वैरत्रापि भगवान्हरिः ।

वराहरूपीपादोस्यहृत्पृष्ठे पार्श्वतस्तथा ॥१६

(मुखेनासादतश्चैव कण्ठतः पुच्छतस्तथा) ।

त्रिनक्षत्रयुतेदेशेनक्षत्राण्युतानि च ।

इत्येतत्केतुमालतेकथितं मुनिसत्तम ॥१७

अतः परं कुरून्वक्ष्ये निबोधेहममोत्तरान् ।

तत्र वृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगाः ॥१८

वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वभरणानि च ।

सर्वकामप्रदास्ते हि सर्वकालफलप्रदाः ॥१९

भूमिभंगिणमयी वायुः सुगन्धः सर्वदा सुखः ।

जायन्ते मानवास्तत्र देवलोकपरिच्युताः ॥२०

मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि च ।

अन्योन्यमनुरक्तानि च क्रवाकोपमानि च ॥२१

जिन महानदियों के जल का यह लोग पान करते हैं, वे वक्षु, श्यामा, कम्वला, अमोघा, कामिनी सुमेधा नाम की महानदी हैं, इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों नदियाँ वहाँ प्रवाहित हैं ॥१५॥ मनुष्यों की आयु वहाँ भी पूर्वोक्त ही है, उस देश में भगवान् श्रीहरि का निवास वाराह रूप से है, उनके चरण,

हृदय, मुख, पृष्ठ देश तथा पाश्व' में मुख, नासिका, कण्ठ, दांत श्री पूँछ सहित
 तीन नक्षत्रों से पूरा हो कर सम्पूर्ण देश अवस्थित है, वहाँ भी नक्षत्र शुभानुभ
 को सूचित करते रहते हैं ॥१६॥ हे मुने ! इस प्रकार वेतुमाल वर्ष का वर्णन
 भी कर दिया गया ॥१७॥ अब उत्तर कुशदेश का वर्णन करता हूँ, उमे मुनी—
 इस देश में सब श्रुतियों के फल, पुण्य आदि से युक्त सर्व वामना एक सर्व फल
 के देने वाले वृक्ष ॥१८॥ वृक्ष उत्पन्न करते हैं तथा उनके सब फलों से आभरण
 उत्पन्न होत है ॥१९॥ वहाँ की भूमि मणिमुक्त, सुन्दर सुगन्धित वायु से सम्पन्न
 तथा सुख के देने वाली है स्वर्गलोक से भ्रष्ट हुए व्यक्ति ही वहाँ मनुष्य रूप में
 जन्म लेते हैं ॥२०॥ उनमें चक्रवाक के समान पारस्परिक प्रेम रहता है तथा
 समकाल में बालकों को उत्पन्न करते हैं ॥२१॥

चतुर्दशसहस्राणितेपासाद्धानिर्वस्थिति ।

चन्द्रकान्तश्चर्गलेन्द्र सूर्यवान्तस्तथापर ॥२२

तस्मिन्कुलाचलेवर्षेत्तन्मध्येचमहानदी ।

भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यापुष्यामलजलीधिनी ॥२३

सहस्रशस्तथै वान्यानद्योवर्षेऽपिचोत्तरे ।

तथान्या क्षीरवाहिन्योऽधृतवाहिन्यएवच ॥२४

दध्नोऽहदास्तथातत्रतथान्येवानुपब्वांता ।

अमृतास्वादकल्पानिफलानिविविधानिच ॥२५

वनेपुतेपुरम्याणिसनशोऽथमह्वश ।

तत्रापिभगवान्विष्णु प्राविद्धरामत्स्यरूपवान् ॥२६

विभक्तोऽनवधाविप्रनक्षत्राणां त्रयत्रयम् ।

देशास्तत्रापिनवधाविभक्तामुनिसत्तम ॥२७

चन्द्रद्वीप समुद्र चभद्रद्वीपतस्यापर ।

तत्रापिपुण्याविरुपात ममुद्रान्तमंहामुने ॥२८

इत्येतत्कर्णितब्रह्मन्कुरुवर्षमयोत्तरम् ।

शृणुकिपुरपादीनिवर्षाणिगदतोमम ॥२९

वह साढ़े चौदह हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं, इस वर्ष में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो कुलाचल स्थित हैं ॥२२॥ उस पर्वत में भद्रसोमा नाम की स्वच्छ जल वाली महानदी प्रवाहित है ॥२३॥ इसके अतिरिक्त अन्य सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ वहाँ हैं, अन्य नदियों में कोई दुग्ध वाहिनी और कोई घृत वाहिनी है ॥२४॥ तथा कोई दही के ताल से युक्त है, सात कुलाचलों के अतिरिक्त अन्य क्षुद्र पर्वत बहुत से हैं, उत्तर कुरु में स्थित शत सहस्र वनों के मध्य स्थित सभी वृक्षों में विभिन्न प्रकार के सुस्वादु फल लगते हैं, इसी स्थान में पूर्व की ओर भस्त्रक करके भस्त्ररूप से श्रीनारायण भगवान् का वास है ॥२५-२६॥ इस उत्तर कुरु में नक्षत्र नौ भागों में बँट कर तीन-तीन के क्रम से रहते हैं, इसी प्रकार सब देश नौ भागों में विभाजित हैं ॥२७॥ इस वर्ष में चन्द्रीप और भद्रद्वीप नामक दो पवित्र द्वीप हैं, जो समुद्र के मध्य में स्थित हैं ॥२८॥ हे ब्रह्मन् यह उत्तर कुरु वर्ष का वर्णन हुआ, अब किम्पुरुषादि के विषय में कहता हूँ ॥२९॥

५२--किम्पुरुषादि वर्णनः

यत्तु किम्पुरुषं वर्षतत्प्रवक्ष्याम्यहं द्विज ।
 तत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् ॥१॥
 अनामयाद्यशोकाश्च नारायत्र तथास्त्रियः ।
 प्लक्षः खण्डश्च यत्रोक्तः सुमहाभन्दनोपमः ॥२॥
 तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा ।
 स्थिरयौवननिष्पलांस्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥३॥
 अतः परं किंपुरुषाद्धरिहर्षप्रचक्षते ।
 महारजतसंकाशाजायते तत्र मानवाः ॥४॥
 देवलोकच्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः ।
 हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसंशुभम् ॥५॥

नजरावाधतेतश्नजीयन्तेऽर्कहिचित् ।
 तावन्तमेवतेकालजीवन्त्ययनिरामया ॥६॥
 मेखवर्षमयाप्रोक्त मध्यमयादनावृतम् ।
 नतत्रमूर्यस्नपतिनतेजीयन्तिमानवाः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विजयश्रेष्ठ ! घब किम्पुण्ड नामक वर्ष का घृत्तान्त कहना है, सुनो—वहाँ देहधारी मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की है ॥१॥ वहाँ के सभी स्त्री पुरुष नीराग तथा भोक रहित होने हैं वहाँ नन्दन वन के समान एक महान् प्लक्ष खरख स्थित है ॥२॥ उन वृक्षों के रस का पान करके ही मनुष्य स्थिर यौवन बान्धे एवं नारिया पद्मगन्धा होती है ॥३॥ इस वर्ष के पृष्ठ भाग में हरि वर्ष नामक एक अन्य वर्ष है ॥४॥ देव लोक से पतित हुए प्राणी हरि वर्ष में मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं तथा वहाँ श्रेष्ठ ईश का रस पान करते हैं ॥५॥ वृद्धावस्था उनको पीड़ित नहीं करती, इसलिये जीर्णता को कोई भी प्राप्त नहीं होता, वे जब तक जीवित रहते हैं तब तक यौवनावस्था स्थित रहती है तथा वे मदा नीरोग रहते हैं ॥६॥ मेखवर्ष नामक मध्यम वर्ष को इनावृत भी कहते हैं, वहाँ का मूर्य ताप रहित है और मनुष्य वहाँ भी वृद्धावस्था से जीर्ण नहीं होते ॥७॥

लभन्तेनात्मलाभचरश्मयश्चन्द्रमूर्ययो ।
 नक्षत्राणाग्रहाणाचमेरोस्नत्रपराद्युति ॥८॥
 पद्मप्रभा पद्मगन्धाजम्बूभलरसाग्नि ।
 पद्मपत्रायताक्षाभ्नुजायन्तेतत्रमानवा ॥९॥
 वर्षाणान्मुहम्नाणितप्राप्पायुस्त्रयोदश ।
 शरावाकारमस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥१०॥
 मेरुस्तत्रमहागोलस्तदास्यातपिलावृतम् ।
 रम्यकवर्षमस्माच्चवयिष्येतित्रोधतम् ॥११॥
 वृक्षस्तत्रापिचोत्प्लोन्यग्रोघोहरितच्छदः ।
 तस्यापितेफलरसपिवन्नोन्नयन्तित्रै ॥१२॥

वर्षायुतायुषस्तत्रनरास्तत्फलभोगिनः ।

रतिप्रधानविमलाजरादौर्गन्ध्यवर्जिताः ॥१३

तस्मादथोत्तरं वर्षनाम्नाख्यातं हिरण्यम् ।

हिरण्वतीनदीयत्रप्रभूतकमलोज्ज्वला ॥१४

महाबलाः सतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः ।

महाकायामहासत्त्वाधनिनः प्रियदर्शनाः ॥१५

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और सब नक्षत्रों की किरणों वहाँ उज्ज्वलता को प्राप्त नहीं हो पातीं, क्यों कि वहाँ सुमेरु का तीव्र प्रकाश रहता है ॥१३॥ जो मनुष्य उस मेरु वर्ष में उत्पन्न होते हैं, वह सभी कमल के समान प्रभात युक्त, पद्मगन्ध और पद्म पत्र के समान विस्तीर्ण नेत्र वाले तथा जामुन के फलों का रस पान करने वाले होते हैं ॥१४॥ वे मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, उस इलायुक्त के बीच में जो मेरु पर्वत स्थित है उसका आकार सकोरे के समान है ॥१५॥ उस वर्ष में वह महापर्वत मेरु ही प्रसिद्ध है, अब तुम्हें रम्यक वर्ष के विषय में सुनाता हूँ, उसे श्रवण करो ॥१६॥ उस रम्यक वर्ष में एक अत्यन्त ऊँचा न्यग्रोध नामक वृक्ष है, उसके समस्त पत्र हरे रंग के हैं, उन वृक्ष के रस पान द्वारा ही वहाँ के मनुष्य जीवन धारण करते हैं ॥१७॥ उसके फलों के रस का पान करने वालों की आयु दश सहस्र वर्ष होती है, वह रति क्रिया में चतुर, मुन्दर तथा दुर्गन्धि और जरावस्था से रहित होते हैं ॥१८॥ उसके उत्तर में हिरण्यमय वर्ष स्थित है इसमें अनेक कमल पुष्पों से श्रुसोभित हिरण्यवती नदी हिरण्ययुक्त जल से परिपूर्ण प्रवाहित है ॥१९॥ वहाँ उत्पन्न होने वाले मनुष्य अत्यन्त बली, तेजस्वी, मत्त्व सम्पन्न, प्रिय दर्शन, विशाल काय तथा धनवान् होते हैं ॥२०॥

५४—स्वारोचिष मन्वन्तरारम्भ (२)

कथितं भवता समग्यत्पृष्ठोऽसिमहामुने ।

भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणात्तथाग्रहाः ॥१

तेषाञ्चैवप्रमाणयन्नक्षत्राणाञ्चसंस्थिति ।
 भूरादयस्तथालोका पातालान्यखिलान्यपि ॥२॥
 स्वायम्भुव तथाख्यातमुनेमन्वन्तरमम ।
 तदन्तराण्यहथोतुमिच्छेमन्वन्तराणिव ॥
 मन्वन्तराधिपान्देवानृषीस्तत्तनयान्नुपान् ॥३॥
 मन्वन्तरमयाख्याततवस्वायम्भुवक्षयत् ।
 स्वरोचिपाख्यमन्यत्तुश्वरुत्तस्मादनन्तरम् ॥४॥
 कश्चिद्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ।
 वरुणायस्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥५॥
 मृदुस्वभाव सद्बृत्तोवेदवेदागपारग ।
 सदातिथिप्रियोरात्रावागतानाममाश्रय ॥६॥
 तस्यबुद्धिरियत्वासीदहपदयेवमुन्धराम् ।
 अतिरम्यवनोद्यानानानानगरशोभिताम् ॥७॥

कौण्डिक बोल—हे महामुने । आपने मेरे समस्त प्रश्न का भले प्रकार समाधान किया पृथिवी और समुद्रादि की स्थिति, विस्तार एवं ग्रह का परिमाण ॥१॥ नक्षत्रादि की स्थिति और परिमाण, भूरादि सप्तलोक, सप्त पाताल ॥२॥ तथा स्वायम्भुव नामक प्रख्यात मन्वन्तर आदि का भी वृत्तान्त कहा है, अब उक्त मन्वन्तर के पश्चान् अन्य सब मन्वन्तर, उनके अधिपति, उनके वशीय राजा गण देवता एवं श्रुतियों की कथा मुनने की मुझे उत्तम इच्छा है ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—जिस स्वायम्भुव मनु का विषय तुम्हारे प्रति कहा है, अब उसके पश्चान् स्वरोचिप मन्वन्तर का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ दोनो अश्विनिकुमारों से भी अधिक रूपवान् दान्त स्वभाव वाला, चरित्रवान्, वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता एक ब्राह्मण वर्णा नदी के तट पर स्थित अरुणास्पद नामक नगर में रहता था, वह अतिथि के आगम पर अत्यन्त प्रमत्त होता था तथा रात्रि के समय आने वाले व्यक्तियों के लिये वह आश्रय स्वरूप था ॥५-६॥ उसके मन में एक इच्छा बलवती थी कि मैं अत्यन्त सुख्य बना और उपवनों से सम्पन्न और अनेक नगरों में सुशोभित इस पृथिवी को सम्पूर्ण रूप से देखूँ ॥७॥

अथागंतोऽतिथिःकश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ।

नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रविद्याविशारदः ॥८

अभ्यर्थितस्तुतेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा ।

तस्याचख्यौसदेशांश्ररम्याग्निनगराग्निच ॥९

नदीवनानिशैलांश्रपुरयान्यायतनानिच ।

सततोविस्मयाविष्टःप्राहतंद्विजसत्तमम् ॥१०

अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ।

त्वंनातिवृद्धोवयसानातिवृत्तश्रयीवनात् ।

कथमल्पेनकालेनपृथिवीमटसिद्विज ॥११

मन्त्रौषधिप्रभावेणविप्राप्रतिहतागतिः ।

योजनानांसहस्रं हिदिनाद्धनत्रजाम्यहम् ॥१२

ततःसविप्रस्तंभूयःप्रत्युवाचेदमादरात् ।

श्रद्धधानोवचस्तस्यन्नाह्मणस्यविपश्चितः ॥१३

ममप्रसादंभगन्कुरुमन्त्रप्रभावजम् ।

द्रष्टुमेतांमममहीमतीवेच्छाप्रवर्तते ॥१४

एक दिन उसके घर में सब औषधियों के प्रभाव का ज्ञाता तथा मन्त्र विद्या में विद्वान् एक अतिथि का आगमन हुआ ॥८॥ ब्राह्मण द्वारा श्रद्धायुक्त मन से प्रश्न करने पर उसके अतिथि ने उसे अनेक देश, रमणीक नगर ॥९॥ वन, नदी, पर्वत और सभी पवित्र स्थानों का वर्णन सुनाया तब उससे वह अरुणास्पद नगर निवासी ब्राह्मण आश्चर्य से कहने लगा ॥१०॥ हे द्विज ! आपने अनेक देशों को देखा है, तो भी आप श्रमाक्रान्त प्रतीत नहीं होते, आप न तो वृद्ध है और न अधिक तरुण ही है, आपकी आयु भी अधिक प्रतीत नहीं होती, तो आपने इस अल्प अवस्था में ही सब पृथिवी में कैसे भ्रमण कर लिया ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा— हे ब्रह्मन् मन्त्रों और औषधियों के प्रभाव से मुझे अप्रतिह्व गति की प्राप्ति हुई है और इन कारण मैं आधे दिन में सहस्र योजन चल सकता हूँ ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण विद्वान् अतिथि के वचन में श्रद्धा युक्त मन हो कर उससे सादर निवेदन किया ॥१३॥ हे

भगवन् ! आप मुझे भी औपधि प्रदान करने की कृपा करिये, वही कि इस पृथिवी को देवने के लिये मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हूँ ॥१४॥

प्रादात्सव्राह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधीः ।
 अभिसन्त्रयामामदिशतेनारयाताचयत्ततः ॥१५॥
 तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विमत्तम ।
 हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नानाप्रथवरणान्वितम् ॥१६॥
 सहस्रं योजनानाहिदिनार्धेन व्रजामियत् ।
 आयास्यामीतिसचिन्त्यतदद्धं तापरेणहि ॥१७॥
 सप्राप्तोहिमवत्पृष्ठं नानिश्चान्ततनुद्विज ।
 विचचारततस्तत्रतुहिनाचलभूतले ॥१८॥
 पादाक्रान्तेनतम्याथतुहिनेनविलीयता ।
 प्रक्षालितपादलेऽपरमौपधिसंभव ॥१९॥
 तनोजडगतिःसोऽथइतदचेतश्चपर्यटन् ।
 ददर्शानिमनोज्ञानिसानूनिहिमभूमृत ॥२०॥
 मिद्वगन्धर्वजुष्टानिकिन्नराभिरतानिच ।
 कीडाविहाररम्यागिदेवादीनामितस्तत ॥२१॥

यह सुन कर उम उदार चेता अतिथि न उम ब्राह्मण के पाँव में औपधि का लेप कर दिया और अभिसन्त्रय पूर्वक उमने दिक्षादि का ज्ञान दिया ॥१५॥ जब अतिथि ने ब्राह्मण के पाँव में लेप लगा दिया तब वह सोचने लगा कि 'अब मैं दिन के पूर्वाह्न में एक हजार योजन गमन करूँगा तथा अपराह्न में वहाँ में लौट आऊँगा, ऐसे विचार कर वह अनेक भरनो बाने हिमालय पर्वत को देवने की इच्छा में चला ॥१६-१७॥ वह सहस्र में ही हिमालय के पृष्ठ रंग पर पहुँच कर उम हिमभूमि में भ्रमण करने लगा ॥१८॥ वहाँ घूमने-घूमने उनके पाँव में अत्यन्त शीतलता के जगने में औपधिपुनः लेप धुल गया ॥१९॥ और उम ब्राह्मण की जड गति हो गई, फिर वह इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ के मनोहर मानुषान्त का भाग देवने लगा ॥२०॥ उमने देखा मिद्व,

गन्धर्व, किलर वहाँ विहार कर रहे हैं तथा पर्वत के किनारे ही देवताओं के क्रीड़ा और विहार करने के लिये अत्यन्त मनोहर स्थान निर्मित हैं ॥२१॥

दिव्याप्सरोभणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ।

नातृप्यतद्विजश्चेष्टःप्रोद्भूतपुलकोमुने ॥२२

क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ।

प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥२३

दास्यूहकोयष्टिकाद्यैःक्वचिच्चातिमनोहरैः ।

पुंस्कोकिलकलापैश्चश्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४

प्रफुल्लतगुरुगन्धेनवासितानिलवीजितम् ।

मुदायुक्तसदृशेहिमवन्तमहागिरिम् ॥२५

दृष्ट्वाचैतद्विजसुतोहिमवन्तमहाचलम् ।

श्वोद्रक्ष्यामीतिसंचिन्त्यमतिचक्रेगृहंप्रति ॥२६

विभ्रष्टपादलेपोऽथचिररोजडितक्रमः ।

चिन्तयामासकिमिदंमयाऽज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७

यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमंवारिणा ।

शैलोऽतिदुर्गमश्चायंदूरंचाहमिहागतः ॥२८

उसने उस स्थान को सैकड़ों अप्सराओं से भरा हुआ देखा, जिससे उसका शरीर-पुलकित हो गया और वह अपने मन की किसी प्रकार भी तृप्ति नहीं कर पाया ॥२२॥ उसने देखा कि यह पर्वत कहीं तो पर्वतों से गिरती हुई जलराशि से सुशोभित है, कहीं नृत्य करते हुए मयूरों के रव से शब्दायमान है तथा कहीं-विभिन्न प्रकार के पक्षी मन को लुभाने वाली बोली बोल रहे हैं ॥२३॥ कहीं पवीहा, कोयष्टि, टिटीहरी आदि से वह पर्वत व्याप्त है और कहीं कोयल के समान मधुर ध्वनि से प्रतिध्वनित है ॥२४॥ कहीं वृक्षों के प्रफुल्लित पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हुई वायु से सुगन्धित है, इस प्रकार वह उस पर्वत की शोभा देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥२५॥ फिर वह हिमाचल को देख कर सोचने लगा कि कल प्रातः काल आकर पुनः देखूँगा और फिर उसने चलने का विचार किया ॥२६॥ परन्तु पाँवों का लेप छूटने से जड़गति हुआ वह

ब्राह्मण सोचने लगा कि मेने अज्ञान के बशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ जब मेरा पद लेप धुल चुका है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्नि सुश्रूषणादिकम् ।

वधमन्नकरिष्यामिसकटमहदागतम् ॥२९

इदम्परमिदरभ्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।

सक्तदृष्टिरहर्तृत्तिनयास्येऽद्भुतैरपि ॥३०

किन्नराणाकलालापा.ममन्ताच्छ्रोत्रहारिणा ।

प्रफुल्लतरुगन्धाश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥३१

सुखस्पर्शस्तथावायुफलानिरसवन्ति च ।

हरन्ति प्रसभचेतो मनोज्ञानिसरासि च ॥३२

एवगते तु पश्येय यदि क्वचित्पोनिधिम् ।

सममोपदिशेन्मार्गं गमनाय गृहप्रति ॥३३

स एव चिन्तयन् विप्रो वभ्राम च हिमाचले ।

भ्रष्टपादोपधिबलावैबलवपरमगत ॥३४

तददर्शं भ्रमन्त च मुनिश्चेष्टवस्थिनी ।

वराप्सारा महाभागामौलियारूपशालिनी ॥३५

अब तो महान् सकट आगया है, यहा अग्नि सेवादि का कार्य कैसे करूँगा ? इस प्रकार तो निश्चय कम भी नष्ट हो गया ॥२९॥ 'यह भी मनोहर है, यह भी' इत्यादि सोचना हुआ पर्वत के देवने की इच्छा को भी वर्ष में भी पूर्ण नहीं कर सकना ॥३०॥ सब ओर से किन्नरो का कर्ण सुखप्रद मधुरालाप सुनाई पड रहा है और पुष्पित वृक्षा से छाती हुई मुग्धि से नामिका भी वृत्त हो गई है ॥३१॥ यहाँ सुख-स्पर्श पवन चल रहा है, सभी प्रकार के फलो मे रस है, और सुरम्य सरोवर म मन विचा जा रहा है ॥३२॥ अब इस प्रकार बुद्ध ममय व्यतीत होने पर यहा किमी तपोधन का दर्शन करूँ तो उनसे घर जाने का उपाय पूछूँ ॥३३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पाव स्वर्गे लेप के धुल जाने से औपधिगति का क्षय हुआ जान कर अत्यन्त दुःखित हुआ ब्राह्मण

चिंता पूर्वक हिमालय में घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहाँ घूमते हुए वरूथिनी नाम की मौलेया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्दृष्टेततःसाभूद्विजवर्येवरूथिनी ।

मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितक्षणात् ॥३६

चिन्तयामासकोन्वेषरमणीयतमाकृतिः ।

सफलमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७

अहोऽस्यरूपमाधुयंमहोस्यललितागतिः ।

अहोगम्भीरतादृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥३८

दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।

कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९

यथाहमस्मिन्मयेषसानुरागस्तथायदि ।

भवेदत्रभयाकार्यस्तत्कृतःपुण्यसंचयः ॥४०

यद्येषमयिसुस्त्रिग्धांदृष्टिमद्यनिपातयेत् ।

कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनिताततः ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुष कौन है ? यदि यह मेरा आदर करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर चाल, इसकी गम्भीर दृष्टि में कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुष कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परंतु उनमें इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनों लोक में मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोषित्स्मरातुरा ।

आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

तानुद्विजसुतश्चास्वपावस्थिनीम् ।
 सोपचारसमागम्यवाक्यमेतदुवाचह ॥४३
 कात्व कमलगर्भाभेकस्यकिवानुतिष्ठसि ।
 ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणाम्पदात् ॥४४
 पादलेपोऽत्रमेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा ।
 यम्यानुभावादनाहमागतोमदिरेक्षणे ॥४५
 मौलेयाहमहाभागानाम्नात्पातावस्थिनी ।
 विचरामिमदं वाअरमणायमहाचले ॥४६
 साहसदर्शनाद्विप्रकामवैकल्यव्यतागता ।
 प्रशावियन्मया सार्थत्वदधीनास्मिमाप्रतम् ॥४७
 येनोपायेनगच्छेयनिजगेहशुचिस्मिते ।
 तन्ममाचक्ष्वकल्याणिहानिनोऽखिलकर्मणाम् ॥४८
 नित्यनैर्मित्तकानातुमहाहानिद्विजन्मनः ।
 भवत्यतस्त्वहेभद्रेमामुद्धरहिमालयात् ॥४९

मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्यबाला वरुथिनी कामातुर हुई इसी प्रकार
 विचार करती करती उम ब्राह्मण का अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग दिग्गम लगी ॥४२॥
 उम रूपवती का उम ब्राह्मण ने जैन ही देखा वैसे ही विधि पूर्वक पादादि
 उपचार के सहित उमके पास जा कर बोला ॥४३॥ हे मुन्दरे ! तुम्हारा वर्ग
 पद्म गभे जन्मा मनोहर है, तुम कौन, किसकी पत्नी हो ? यहाँ क्या कर रही
 हो ? मैं ब्राह्मण हूँ और यहाँ अरण्यारपद नगर से आ पहुँचा हूँ ॥४४॥ मैं जिम
 श्रीपथिमय पद लेप के द्वारा यहाँ आया था, वह शीतलजल में धुल गया है
 और मैं अब इसमें विलीन हो गया हूँ ॥४५॥ वरुथिनी ने कहा—हे महाभाग
 मेरा नाम वरुथिनी है, मैं अत्यन्त हूँ इस सुरम्य पर्वत पर मदा भ्रमण करती
 रहती हूँ ॥४६॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हें देण कर मैं काम के बग में हुई हूँ, मैं आपके
 अर्थात् हूँ, मुझे आज्ञा कीजिय कि पापका का प्रिय कहे ? ॥४७॥ ब्राह्मण
 बोला—हे शुचिस्मिते ! मैं जिम प्रकार अपने घर लौट सकूँ, वह उपाय करो,
 परदेश में रहने से यहाँ मेरे नित्य नैमित्तिक कर्म नष्ट हो रहे हैं ॥४८॥ ब्राह्मण

के लिये इन कर्मों का नष्ट होना अत्यन्त अनिष्ट कारक है, इस लिये हे भद्रे !
मुझे इस हिमालय से निकालो ॥४६॥

प्रशस्यतेन प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन ।
अपराध्यति मे भीरुदेश दर्शनकौतुकम् ॥५०
सतो गृहे द्विजाग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्वकर्मणाम् ।
नित्यनैमित्तिकानां च हानिरेवं प्रवासिनः ॥५१
सा त्वं किं बहु नोक्तं न तथा कुस्यशस्विनि ।
यथानास्तंगते सूर्यपश्यामि निजमालयम् ॥५२
मैवन्न हि महाभाग माभूत्सदिवसो मम ।
मां परित्यज्य यत्र त्वं निजगेहमुपेयसि ॥५३
अहोरम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन ।
अतो वयं परित्यज्यतिष्ठामोऽत्र सुरालयम् ॥५४
स त्वं सह मया भीष्टं कान्तेऽत्र जुहिना चले ।
रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यसि ॥५५
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ।
दास्याम्यत्र तथा हन्ते स्मरेण वशा गृहता ॥५६

ब्राह्मण का परदेश निवास अनुचित ही है, मैं देशों को देखने की इच्छा
से ही यहां आया था, मैंने कभी कोई अपराध नहीं किया है ॥५०॥ घर में
रहते हुए नित्य नैमित्तिक कर्म सहज ही पूर्ण हो जाते हैं, और परदेश में
पहुँचने पर उन कर्मों का क्षय होता है ॥५१॥ हे यशस्विनी ! अधिक क्या कहूँ,
सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर पहुँच सकूँ वंसा करो ॥५२॥ वरुथिबी ने कहा—
हे महाभाग ! आप जिस दिन मुझे त्याग कर अपने घर को लौटें, मेरे लिये
वह दिन ही न आवे ॥५३॥ इस स्थान की अपेक्षा तो स्वर्ग भी रमणीक नहीं
है, इस लिये मैं स्वर्ग का त्याग करके इस स्थान में रहूँगी ॥५४॥ आप इस
सुरम्य हिमालय में मेरे साथ विहार करेंगे तब आपको बाँधवों की याद नहीं
आयेगी ॥५५॥ यहां मैं माला, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य, अनुलेपन आदि

तुम्हारे समक्ष उपस्थित करूँगी, क्यों कि मैं काम में पराजित हो कर तुम्हारे अधीन हो गई हूँ ॥१६॥

वीणावेणुस्वनगीतकिन्नरारामनोरमम् ।
 अङ्गाह्लादकरोवायुरुष्णाद्गमुदकशुचि ॥१७॥
 मनाभिलषिताशय्यामुग्धमनुलेपनम् ।
 इहासतोमहाभागगृहेकितेनिजेऽधिकम् ॥१८॥
 इहासतानेवजराकदाचित्तेभविष्यति ।
 निदशानानियभूमिर्बोवनोपचयप्रदा ॥१९॥

॥६०॥

मामास्प्राक्षीर्वाजान्नात्रदुष्टेयमदृशरतय ।
 मयान्यथायाचितोऽत्रमन्यथेवाभ्युर्पापमाम् ॥६१॥
 सायप्रातर्हृतहृद्यलोकान्यच्छतिशाश्वतान् ।
 त्रैलोक्यमेतदखिलमूढेहृद्येप्रतिऽितम् ॥६२॥
 तमुपायसमाचक्षत्रयनयामिस्त्रमालयम् ।
 नितनाहप्रियाविप्ररमणीयोनकिगिरिः ।
 गन्धर्वाकिन्नरादीश्रत्यक्त्वाभिष्टोहिवस्तव ॥६३॥

उत्त स्वान में रहने में वीणा और वेणु का शब्द, किन्नरो का सुमधुर मंगीत, प्रसन्नता देने वाली समीर, उष्ण भोजन और शीतल जल ॥१७॥ मन-चाही शय्या, मुग्धचित्त अनुलेप तुम्हें उपलब्ध होंगे, इसमें अधिक तुम्हारे गृह में और क्या होगा ? ॥१८॥ यहाँ रहकर तुम कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होगे, क्योंकि यह देवभूमि यौवन के बढ़ाने वाली है ॥१९॥ इतना कहकर पद्मनयना वरुणिनी व्याकुलता पूर्वक 'प्रसन्न होओ' कहती हुई महामा ब्राह्मण में आलिंगित हुई ॥६०॥ तब ब्राह्मण बोला—अरी दुष्टे ! मेरा स्पर्श न कर, तू प्रपने योग्य के ही निश्चय जा, तू मेरी प्रार्थना के कारण ऐसा विपरीत विचार एव चेष्टा कर रही है ॥६१॥ प्रातः सायं होम करने में सभी शाश्वत लोकों की प्राप्ति होती है यह तीनों लोक हमें के प्रभाव से ही प्रतिष्ठित हैं ॥६२॥ इनलिपे उसके

निर्वाहार्थ मैं अपने घर जिस प्रकार पहुँच सकूँ, वही मुझे शीघ्र बता, वरूथिनी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम मुझे देखकर प्रसन्न क्यों नहीं होते ? क्या यह हिमालय मनोहर नहीं है ? गन्धर्व, किन्नर आदि के अतिरिक्त तुम्हें और किसकी इच्छा है ? ॥६३॥

निजमालयमप्यस्माद्भ्रवान्यास्यत्यसंशयम् ।

स्वल्पकालंमयासाद्धंभुङ्क्वभोगान्सुदुर्लभान्

अभीष्टागार्हपत्याद्याःसततेमन्त्रयोऽनयः ।

रम्यंममाग्निशरणां देवीविष्टरिणीप्रिया ॥६४॥

अष्टावात्मगुणायैहितेषामादीदयाद्विज ।

तां करोषि कथं न त्वं मयि सद्धर्मपालकः ॥६६॥

त्वद्विमुक्तानजीवामितथः प्रीतिमतीत्वयि ।

नैतद्वदाम्यहं मिथ्या प्रसीद कुलनन्दन ॥६७॥

यदि प्रीतिमतीसत्यं नोपचाराद्ब्रवीषि माम् ।

तदुपायं समाचक्ष्वयेनयामि स्वमालयम् ॥६८॥

निजमालयमप्यस्माद्भ्रवान्यास्यत्यसंशयम् ।

स्वल्पकालंमयासाद्धंभुङ्क्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥६९॥

नभोगार्थाय विप्राणां शस्यते हि वरूथिनी ।

इह क्लेशाय विप्राणां चेष्टा प्रेत्य फलप्रदा ॥७०॥

तुम अपने घर अवश्य ही जा सकोगे, परन्तु इस समय तो मेरे साथ इस दुर्लभ सुख का भोग करो ॥६४॥ ब्राह्मण बोला—गार्हपत्य, आवहनीय और दक्षिणाग्नि यह तीनों अग्नियों ही मेरी इच्छित हैं, अग्नि गृह ही मेरे लिये सुरम्य स्थान है तथा विष्टरिणी देवी ही मेरी प्रिया है ॥६५॥ वरूथिनी ने कहा—आठ प्रकार के जो अस्त्र गुण कहे गये हैं, उनमें दया ही प्रमुख गुण है, फिर भी तुम मेरे प्रति प्रीति रूपी दया क्यों नहीं करते ? ॥६६॥ तुम्हारे प्रति मैं वैसी प्रीतिमती हुई हूँ उस कारण तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती, मैं असत्य नहीं कहती, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६७॥ ब्राह्मण बोला यदि तू मुझ पर सत्य ही अनुरागमयी हुई है, और मुझसे तुने सत्य बात कही

हे तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ बरुचिनी ने कहा—
तुम श्रवण ही यहाँ से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये
मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६९॥ ब्राह्मण बोला—हे बरुचिनी ? ब्राह्मण
को सुख भोग की आज्ञा शम्भु नहीं देता नयो कि स्त्री की केश से ब्राह्मण
इहलोक में क्लेश और परलोक में भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्त्राणमियमाणायाममकृत्वापरत्रते ।

पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१

एवचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ।

प्रत्यास्पानाद्दहमृत्यु त्वचपापमवाप्स्यसि ॥७२

परस्त्रियनाभिलषेदिन्धुबुर्गुरवोमम ।

तेनत्वानाभिवाञ्छामिकामविशुलप्यवा ॥७३

इत्युक्त्वासमहाभाग स्मृष्ट्वाप प्रयत शुचि ।

प्राहेदप्रणिपत्याग्निगार्हपत्यमुपाशुना ॥७४

भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वसर्वकर्मणाम् ।

त्वत्तग्राहवनीयोऽग्निर्ददिराग्निश्चनान्यत ॥७५

युष्मदाप्यायनाद्वावृष्टिमस्यादिहेतव ।

भवन्तिसम्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६

एवत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत् ।

तथाहमद्यस्वगेहपश्येयमतिभास्करे ॥७७

यथावैदिककर्मस्वकालेनोज्ज्वलतमया ।

तेसत्येनपश्येयगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥७८

यथाचनपरद्वयेपरदारेचमेमति ।

वदान्त्रित्पालिपाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७९

एवतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपावक ।

बरुचिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा
करने के कारण परलोक में तुम्हें उसी के समान पुण्य फल मिलेगा और
अपर जन्म में तुम्हें उसी के अनेक भोगों की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक में

सुख और जन्मान्तर में सुख भोग यह दोनों ही फल लाभदायक हैं, परन्तु, यदि मुझे निराश करोगे तो मेरी मृत्यु के कारण पाप के भागी होंगे ॥७२॥ ब्राह्मण बोला—मेरे गुरु का उपदेश है कि परस्त्री में मन न लगाना, इसलिये तू चाहे रुदव कर या प्राण्य त्याग, मैं तुझे नहीं चाहता ॥७३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वरूथिनी के प्रति ऐसा कह कर ब्राह्मण ने आचमन द्वारा शुद्ध हो कर गार्हपत्य अग्नि को प्रणाम किया और उपांशु जप द्वारा निवेदन करने लगा ॥७४॥ हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम सभी कर्मों के बीज स्वरूप हो, क्योंकि ब्राह्मणीय और दक्षिणाग्नि की उत्पत्ति तुम से ही हुई है ॥७५॥ तुम प्रसन्न होते हो तभी देवता वर्षा द्वारा शस्य प्रदान करते हैं, और उस शस्य से ही जगत् की स्थिति है, वह अन्य प्रकार से स्थित नहीं रह सकता ॥७६॥ जिस सत्य के द्वारा यह विश्व तुम में प्रतिष्ठित है, मैं भी उसी सत्य से सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर को देखूँ ॥७७॥ जिस सत्य के द्वारा सब वैदिक कर्म यथोचित समय में सम्पन्न हो जाते हैं, उसी सत्य से मैं भी घर में निवास करके सूर्य के दर्शन करूँ ॥७८॥ जिस सत्य से नीची मति पर द्रव्य या परनारी से नहीं लगी है, उसी सत्य से मेरी मति इस विषय में भी सिद्धि को प्राप्त हो ॥७९॥

५४—कलिवरूथिनी समागम

गार्हपत्यःशरीरेत्तुसस्त्रिघान्तमथाकरोत् ॥१

तेनचाधिष्ठितःसोऽथप्रभामण्डलमध्यगः ।

व्यदीपयतत्तद्देशंमूर्तिमानिवह्व्यवाट् ॥२

तस्यास्तुसुतरांतत्रतादृग्रूपेद्विजन्मनि ।

अनुरागोऽभवद्विप्रं पश्यन्त्यादेवघोषितः ॥३

तःतःसोऽधिष्ठितस्तेनहव्यावाहेनतत्क्षणात् ।

यथापूर्वतथागन्तुं भ्रवृत्तोद्विजनन्दनः ॥४

जगामचत्वरायुक्तस्तयससन्नं निरीक्षितः ।

आदृष्टिपातात्तन्वद्भ्रुवानिश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ॥५

तत क्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यस ।
 यथाप्रोवतद्विजथ्रे ह्रश्चकारसक्लाःक्रिया ॥६॥
 अथसाचारुसर्वा गीतत्रासक्तात्ममानसा ।
 निश्वासापरमानिन्येदिनशेषतथानिशाम् ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार निवेदन करते हुए ब्राह्मण पुत्र के गार्हपत्याग्नि अधिष्ठित हुई ॥१॥ उमकी प्रभा के मध्य में स्थित हो कर वह ब्राह्मण साक्षात् अग्नि यमान तेजस्वी हो कर उस स्थान को प्रकाशित करने लगा ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! वरुणिनी ने जब उस ब्राह्मण का ऐसा स्वरूप देखा तब वह अत्यन्त अनुराग से और भी मोह युक्त हुई ॥३॥ जब उस ब्राह्मण ने अग्नि में अधिष्ठान किया तब वह पहिले के समान शक्ति युक्त हो कर गमन में प्रवृत्त हुआ ॥४॥ उस समय वरुणिनी खड़ी हुई देव रही थी कि तभी यह ब्राह्मण द्रुतगति से चन दिया, जब वह अदृश्य हो गया, तब वरुणिनी दीर्घ श्वास लेती हुई कापन लगी ॥५॥ यह श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षण भर में ही अपने घर पहुँच गया और वहा अपनी नित्य नैमित्तिक क्रिया के करने में लगा ॥६॥ इधर उस सर्वाङ्ग सुन्दरी वरुणिनी ने उस ब्राह्मण में अनुरागवती रह कर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए उस दिन का शेष भाग एवं रात्रि काल व्यतीत किया ॥७॥

निश्चसन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमृहु ।
 मन्दभाग्येतिचात्माननिनिन्दमदिरेक्षणा ॥८॥
 नविहारेनचाहारेरमणीयेनवावने ।
 नकन्दरेपुरम्येपुसाववधतदारतिम् ॥९॥
 चकाररममाणचचक्रवाक्युगेस्पृहाम् ।
 मुक्तातेनवरारोहानिनिन्दनिजयौवनम् ॥१०॥
 क्वागताहमिमशैलदुष्टदैवबलात्कृता ।
 क्वचप्राप्त समेदृष्टेर्गोचरतादृगोनर ॥११॥
 यदद्यसमहाभागोनमेसगमुपैप्यनि ।
 तत्वामाग्निर्वश्यमाक्षपयिष्यतिदु सह ॥१२॥

रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ।

तेनहीनंतदेवैतद्दहतीवाद्यमामलम् ॥१३

इत्थंसामदानाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् ।

वदृधेचतदारोगस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥१४

वह अक्सरा घोर रुदन करती हुई दीर्घश्वास छोड़ने लगी और अपने को मन्द भाग समझ कर अपनी निन्दा करने लगी ॥१३॥ आहार, विहार, सुरम्य वन, मनोहर गिरि कन्दरा किसी से भी उसकी तृप्ति न हो रही थी ॥१४॥ चक्रवाकों का विहार देख कर रति कर्म में उसे स्पृहा हुई, वह ब्राह्मण द्वारा त्यागी जाने के कारण अपनी युवावस्था को दोसने लगी ॥१०॥ मैं दुष्ट देव के वश से ही इस पर्वत में आई थी अन्यथा वह सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष जो मुझे दिखाई दिया था, उसका देखा जाना क्या कभी संभव था ? मैं उसे क्या जानती थी ? ॥११॥ यदि वह महाभाग इस समय मुझे न मिलेगा, तो दुःसह कामाग्नि में दग्ध होकर मुझे अपने जीवन का परित्याग करना पड़ेगा ॥१२॥ जो कोकिला का शब्द मेरे कानों को मनोरंजक प्रतीत होता था, वह आज अग्नि के समान ही मुझे भस्म कर रहा है ॥१३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार कामासक्त हुई वरुधिनी ने उस मुनि श्रेष्ठ को मन से देखा तो उसका धनुराग क्षण-क्षण में उसके प्रति वृद्धि को प्राप्त होता रहा ॥१४॥

कलिर्नाम्नातुगन्धर्वःसानुरागोनिराकृतः ।

तयापूर्वमभूत्सोऽथतदवस्थां ददर्शिताम् ॥१५

सचिन्तयामासतदाकिन्वेषागजगामिनी ।

निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरुधिनी ॥१६

मुनिसापक्षताकिन्नुकेनचित्किविमानिता ।

बाष्पवारिपरिविलग्नमियंधत्तेयतोमुखम् ॥१७

ततःसदध्यौसुचिरंतमर्थकौतुकान्तकलिः ।

ज्ञातत्रांश्चप्रभावेणसमाधेःसयथातथम् ॥१८

पुनःसचिन्तयामासतद्विज्ञायमुनेःकलिः ।

ममोपदादितंसाधुभाग्यैरतेत्पुराकृतैः ॥१९

मयंपामानुरागेणवहुश प्रायितामनी ।

निराकृतवतीसेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥२०

मानुषेमानुरागेयतत्रतद्रूपधारिणि ।

रम्यतेमध्यमन्दिग्धर्विकाले नकरोमितन् ॥२१

इम अम्बरा के प्रति पहिले एक कवि नामक गन्धर्व आमत था, परन्तु
इमने उमका निरादर किया था, उमने इस अम्बरा को ऐसी दशा में देखा तो
॥१५॥ सोचने लगा कि यह गजगामिनी इस पर्वत में दीपे श्राम छोडती हुई
प्रतिक्षण म्लान होनी जा रही है, क्या यह वरुचिनी ही है ? ॥१६॥ क्या यह
किसी मुनि के शिष्य से प्रप्त हुई है अथवा किसी ने इमका निरादर किया है,
क्यों कि इमके मुम पर अश्रु बिन्दु दिखाई दे रहे हैं ॥१७॥ फिर उम गन्धर्व
ने कुतूहल पूर्वक बहुत समय तक ध्यान किया और उमके द्वारा सब वृत्तान्त
उसे ज्ञान होगया ॥१८॥ वृत्तान्त ज्ञान होने पर उमने सोचा कि मेरे पूर्वकृत
पुण्य के फल स्वरूप मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई है ॥१९॥ जिनने मेरी अनुगम-
नयी विनय को टुकरा दिया था, यह वही वरुचिनी अब मुझे महज में प्राप्त
हो जायगी ॥२०॥ अब यह जिम मनुष्य के प्रति प्रीतिमती हुई है, मैं उसी
मुनि का रूप धारण करूँ तो यह मुम से भी प्रीति करेगी, इमनिसे अब देर
क्यों करूँ ॥२१॥

आन्मप्रभावेणततस्तम्यरूपद्विजन्मन ।

कृत्वावचारयत्रास्तेनिपण्णामावरुचिनी ॥२२

सातहृद्भावरोगोहाकिचिदुत्पुल्ललाचना ।

समेत्यप्राहतन्वगीप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥२३

त्वया यत्कानसन्देह परित्यज्यामिजीविनम् ।

तत्राघमं कष्टतरःक्रियालोपोभविष्यति ॥२४

मयासमेन्धरम्येऽस्मिन्महात्मन्ननन्दरे ।

मत्परित्राणजर्वमंभवश्यप्रतिपत्स्यसे ॥२५

आद्युपःसावरोपमेनूनमस्मिन्महामते ।

निवृत्तस्तेनूनहिहृदयाद्भवादेवारव ॥२६

माकण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् उसने आत्म प्रभाव से उस ब्राह्मण का रूप धारण किया और जहाँ ब्रह्मिणी बैठी थी, वहाँ जाकर घूमने लगा ॥२२॥ ब्रह्मिणी ने जैसे ही उस मुनि वेशधारी कलि को देखा तभी आह्लादयुक्त नेत्रों से उसे देख और निकट पहुँचकर उससे बारम्बार प्रसन्न होओ कहने लगी ॥२३॥ और बोली कि यदि तुम मेरा त्याग करोगे तो मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँगी, जिससे अधर्म होगा और तुम्हारी सम्पूर्ण क्रिया का भी लोप हो जायगा ॥२४॥ यदि इस हिमालय की सुरम्य कन्दरा में मेरे साथ विहार करोगे तो उससे मेरी रक्षा होगी और उसका धर्म फल तुम्हें प्राप्त होगा ॥२५॥ हे महामते ! मेरी आयु अभी तक शेष नहीं हुई है, इसीलिए तुम निवृत्त होकर मेरे हृदय में आनन्द का संचार कर सके हो ॥२६॥

किंकरोमिक्रियाहानिर्भवत्यत्रसतोमम ।

त्वमप्येवंविधंवाक्यं ब्रवीषितनुमद्यमे ॥२७

तदहंसंकटंप्राप्नोयद्ब्रवीमिकरोषितत् ।

यदिस्यात्संगमोमेघभवत्यासहनान्यथा ॥२८

प्रसीदयद्ब्रवीषित्वंतत्करोमिनतेमृषा ।

ब्रवीम्येतदनाशङ्क्यद्यत्कार्यमयाधुना ॥२९

नाद्यसंभोगसमयेद्रष्टव्योहंत्वयावने ।

निमीलिताक्ष्याःसंसर्गस्तवसुभ्रुमयासह ॥३०

एवंभवतुभद्रंतेयथेच्छसितथास्तुतत् ।

मयासर्वप्रकारंहिवशेस्थेयंतवाधुना ॥३१

कलि बोला—हे सुन्दरी ! समझ में नहीं आता कि क्या कहूँ ? यहाँ रहने से मेरे कर्म का लोप हो जायगा, परन्तु तुम भी इस प्रकार से अनुरोध कर रही हो ॥२७॥ ऐमे सङ्कट में पड़कर ही मुझे तुम्हारी बातों से अब सहमत होना पड़ा है, परन्तु मैं जो कहता हूँ, वह बात तुम्हें स्वीकार हो तभी तुम्हारे साथ संयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता ॥२८॥ ब्रह्मिणी ने कहा—आर क्यो, जो कहोगे वही मैं कहूँगी इसमें असत्य

मही है जो कहते हो वह अभी बरूंगी ॥२६॥ कलि बोला—तुम विहार के समय मुझे न देखना, ससर्ग काल में तुम्हें नैष वन्द किये रहना होगा ॥३०॥ वरुथिनी ने कहा—यही होगा, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा, मैं सब प्रकार से तुम्हारे अधीन हूँ, तुम्हारा भगल हो ॥३१॥

५५—स्वरोचि का जन्म और विवाह

ततःसहतयासोथररामगिरिसानुपु ।
 फुल्लकाननहृद्येपुमनोज्ञेपुमरःसुच ॥१॥
 कन्दरेपुत्ररम्येपुनिम्नगापुलिनेपुच ।
 मनोज्ञेपुतथान्येपुदेशेपुमुदितोद्विज ॥२॥
 वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्र पतस्यतेजसा ।
 अचिन्तयद्भोगकालेनिमीलितविलोचना ॥३॥
 तत कालेनसागभंमवापमुनिसत्तम ।
 गन्धभंवीर्य्यंतरूपचिन्तनाच्चद्विजन्मन ॥४॥
 सागभंधारिणीसोऽथसान्त्वयित्वावरुथिनीम् ।
 विप्ररूपधरोयातस्तयाप्रीत्याविसजित ॥५॥
 जज्ञेसबालोद्युत्तिमान्ज्वलन्निवविभावमु ।
 स्वरोचिभिर्यथासूर्य्योभासयन्सकलादिशः ॥६॥
 स्वरोचिभिर्यतोभातिभ्राम्बानिवसवालक ।
 ततःस्वरोचिरित्येवंनाम्नाह्यातोवभूवस ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—पर्वत के कपूरे, सुरम्भ एव पुष्पित वन तथा मनोज्ञ सरोवर ॥१॥ रमणीक कन्दरा, नदी तट तथा अग्यान्य स्थानों में वह प्रमत्त चित्त से वरुथिनी के साथ विहार करने लगा ॥२॥ अग्नि के अधिष्ठान में उम ब्राह्मण का जो तेजोमय रूप हो गया था, उनी रूप का चिन्तन वरुथिनी ममागम काल में करने लगी ॥३॥ फिर उम अप्सरा ने उस गदभ के भीरु से यथा समय गर्भ धारण किया, ममागम काल में ब्राह्मण के

तेजोजमय स्वरूप का चिन्तन करने के कारण, उमी ब्राह्मण के समान उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ ब्राह्मण रूप धारी वह गधर्व बरुधिनी को समझाकर वहाँ से चला गया ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सभी दिशाएँ प्रकाशित होती हैं, वैसे ही शरीर के तेज से चारों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उस बालक ने समय पाकर जन्म लिया ॥६॥ अपने शरीर की प्रभा से भास्कर जैसी दीप्ति प्राप्त करने के कारण उस बालक का नाम स्वरोचि हुआ ॥७॥

ववृधेचमहाभागोवयसानुदिनंतथा ।

गुणौघैश्रयथाबालकलाभिःशशलाञ्छनः ॥८

सजग्राहधनुर्वेद्वेदांश्च वयथाक्रमम् ।

विद्याश्चैवमहाभागस्तदायौवनगोचरः ॥९

मन्दराद्रौकशचित्सविचरंश्चारुचेष्टितः ।

ददर्शकांतदाकन्यांगिरिप्रस्थेभयातुराम् ॥१०

त्रायस्वेतिनिरीक्ष्यनंसातदावाक्यमब्रवीत् ।

माभैषीरितिसप्राह्मभयविप्लुतलोचनाम् ॥११

किमेतदितितेनोक्तवीरवाक्येमहात्मना ।

ततःसाकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२

अहमिन्दीवराख्यस्यसुताविद्याधरस्यवै ।

नाम्नामनोरमाजातासुतायांमरुधन्वनः ॥१३

मन्दारविद्याधरजासखीममविभावरी ।

कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुनेः ॥१४

हे महाभाग ! जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त होती है, वैसे ही उस बालक के गुणों में प्रतिदिन वृद्धि होने लगी ॥८॥ इस स्वरोचि ने चारों वेद, सभी शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके युवावस्था में प्रवेश किया ॥९॥ उस सुन्दर गति वाले स्वरोचि को किसी एक समय मंदराचल पर भ्रमण करते हुए एक भयातुरा कन्या दिखाई दी ॥१०॥ उसने इसे देखकर 'रक्षा करो' कहा और इसने भी कन्या

को भयानुरा देगकर 'भय नहीं' वह कर प्राप्तवस्तु किया ॥११॥ फिर उसने
वीरोचित शब्दों में 'तुम्हें क्या भय हुआ है?' यह पूछा, इस पर स्वाम
छोड़नी हुई उस कन्या ने अफ्रुट शब्दों में उत्तर दिया ॥१२॥ वह बोली—
मैं इन्दीवर नामक विद्याधर की मरगवा मुता के गर्भ में उत्पन्न हुई हूँ, मेरा
नाम मनोरमा है ॥१३॥ मेरी दो मंगी विभावरी और कलावती नाम की हैं,
इनमें प्रथम मन्दार विद्यालय की ओर द्वितीय पार मुनि की कन्या है ॥१४॥

ताम्रप्रासहमपायातकैलासतटमुत्तमम् ।
तत्रदृष्टोमुनि कश्चित्तपसातिकृशाकृति ॥१५॥
श्रुत्वाभवण्ठोनिस्तेजादूरपाताक्षितारक ।
मयावहस्तिन क्रुद्ध सनदामाशनापह ॥१६॥
क्षामक्षामस्वर्गश्चित्करिताघरपत्नव ।
त्वयावहमिनायम्मादनायर्वदुष्टात्तापमि ॥१७॥
तस्मात्त्वामचिरेणैवराक्षसोभिमविष्यति ।
दत्तशपेमत्सग्योम्यामनुनिर्भत्सितामुनिः ॥१८॥
विकतेब्राह्मण्यमक्षान्त्याहृततेनिलिततप ।
अमर्षगौर्यपितोऽमिनपसानातिकर्जित ॥१९॥
क्षान्त्यास्पदवैब्राह्मण्यक्रोधमयमनतप ।
एतच्छुन्नादशेषापतयोरप्यमितद्युति ॥२०॥
एकस्या बुभुक्षुषुभाभ्यन्यस्थास्तथाक्षय ।
तयोस्तयैववज्जातयथोक्ततेनतत्क्षणात् ॥२१॥

एक दिन मैं उनके साथ कैलास के तट पर गई थी और वहाँ हमें एक
मुनि दिखाई दिये थे, उनका अङ्ग तपस्या के बंधों में अत्यन्त कुद हो रहा
था ॥१५॥ उनका पठ भूल के कारण क्षीण हो रहा था, तेज तेज रहित
हो गया था, मैंने उन्हें देखकर उनकी हँसी उड़ाई, इसमें काविल होकर उन्होंने
कुछ नष्टि में होकर मुझे प्राण दे दिया—अरी अनार्य ! दुष्टे ! तुने मुझ
तपस्वी को हँसी उड़ाई है ॥१६-१७॥ इसदिये तू राक्षस से पराभूत होगी
एक पत्नी मुनि द्वारा प्राण दिया हुआ मुनिकर मेरी मविश मे उनकी भर्त्सना

की ॥१८॥ तुम्हारे जैसे क्षमाहीन ब्राह्मण को धिक्कार है श्रीर सम्पूर्ण तप निरर्थक है, तुम्हारा शरीर तप के कारण दुबला हुआ प्रतीत नहीं होता, क्रोध से ही हुआ होगा ॥१९॥ ब्राह्मण तो क्षमा के आश्रय रूप और क्रोध पर नियंत्रण ॥ ही उनका तप है, तुम तप में परिपक्व नहीं हो पाये, क्योंकि क्रोध ने तुम्हें क्षीण कर दिया है, उनकी ऐसी बात सुनकर उस मुनि ने उन्हें भी शाप दे दिया ॥२०॥ एक से कहा 'तू सर्वाङ्ग में कुष्ठ से पीड़ित होगी' दूसरी से कहा—'तू श्रेय रोग से पीड़ित होगी' मुनि द्वारा शाप देते ही उन दोनों के वे रोग तत्काल उत्पन्न हो गये ॥२१॥

ममाप्येवंमहद्रक्षःसमुपैतिपदानुगम् ।

नश्रुत्सोषिमहानादंतस्यादूरेऽपिगर्जतः ॥२२

तृतीयमद्यादिवसंयन्मेपृष्ठंनमुंचति ।

अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयज्ञाहमद्यते ॥२३

तंप्रयच्छानिमांरक्षरक्षसोऽस्मान्महामते ।

प्रादात्स्वायम्भुवस्वयंरुद्रः साक्षात् पिनाकधृक् ॥२४

स्वायम्भुवोवसिञ्चायसिद्धवर्यायदत्तवान् ।

तेनापिदत्तंमन्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥२५

प्रादादौद्वाहिकंसोऽपिमत्पित्रेश्वशुरःस्वयम् ।

मयापिशिक्षितंवीरसकाशाद्बालयापितुः ॥२६

हृदयंसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ।

तदिदंगृह्यतांशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७

ततोजहिदुरात्मानमेनंरक्षसमागतम् ॥२८

तभी एक महाराक्षस प्रकट होकर मेरे पीछे भी दौड़ पड़ा, वह तीन दिन से मेरे पीछे लगा है, देखो समीप में ही गरज रहा है, क्या आप उस शब्द को नहीं सुन रहे हैं ? मैं अब सभी अस्त्रों का सार रूप यह प्रख्यात अस्त्र ॥२२-२३॥ आपको दे रही हूँ, इसी से आप मेरी रक्षा करें, पुराकाल में यह अस्त्र स्वायम्भुव मनु को स्वयं रुद्र ने प्रदान किया था ॥२४॥ यह परमोत्तम सिद्ध अस्त्र स्वायम्भुव ने वसिष्ठ को प्रदान किया और वसिष्ठ से दत्ते मेरे नाना

विश्रायुध ने प्राप्त किया ॥२५॥ और उन्होंने विवाह के दहेज में मेरे पिता को दिया, सब अस्त्रों के मारभूत इस अस्त्र की शिक्षा मैंने वात्पायस्था में अपने पिता से प्राप्त की थी ॥२६॥ यह अस्त्र सभी अस्त्रों का हृदय एवं शत्रु नाशक है, इसे शीघ्र ग्रहण करिये, इसके द्वारा सभी अस्त्रों से होने वाले कार्य मिट्ट हो जाते हैं ॥२७॥ इसके ग्रहण पूर्वक इस राक्षस का वध करिये, जो कि विप्र दाय में मेरा पीछा कर रहा है ॥२८॥

तथेत्युक्तेततस्तेनवाय्युं पस्पृश्यतस्प्रतद ।

अम्भ्राणाहृदयप्रादात्मरहस्यनिवर्तनम् ॥२६

एतस्मिन्तन्तरेरक्षस्तत्तदाभीपणाकृति ।

नर्दमानमहानादभाजगामत्वरान्वितम् ॥२७

मयाभिभूताकिञ्चालमुर्षतिद्रुतमेहिमे ।

भक्षार्पकिञ्चिरेभतिद्रुवाणतद्दर्शस ॥२८

स्वगोचिश्चिन्तयामासदृष्टातसमुपागतम् ।

गृह्णात्येवञ्च सत्यतस्यास्त्वितिमहामुने ॥२९

जग्राहसमुपेत्यनात्वरयासोऽपिराक्षसः ।

नाहिनाहीतिकरुणविषपन्तीसुमध्यमाम् ॥३०

ततस्वरोचि सक्ञ्चश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ।

दृष्ट्वानिवेश्यतद्रक्षाददशानिमिश्रेण ॥३१

तदाभिभूत सतदातामुत्सृज्यनिशाचर ।

प्रसीदशाभ्यतामस्त्रश्रूयताचेत्यभापत ॥३२

मार्कण्डेय जी ने कहा—जब स्वरोचि ने अस्त्र ग्रहण करना स्वीकार किया, तब उन मनोरमा ने वह अस्त्र उन्हें प्राप्त करने में मदद की तथा निवर्तन मन्त्र के सहित प्रदान किया ॥२६॥ उसी समय स्वरोचि ने उस भयङ्कर आकार वाले राक्षस को गर्जन पूर्वक वहाँ आना हुआ देखा ॥२७॥ उसने आते ही कहा—मेरे आक्रमण से कोई रक्षा को प्राप्त नहीं हो सकता, अब दूर मत करो, मैं तुम्हारा शीघ्र ही भोजन करना चाहता हूँ ॥२८॥ उसे वहाँ दायकर स्वरोचि ने विचार किया कि यदि यह राक्षस उन कामों को पकड़ लेगा, तो ही उन महा-

मुनि का शाप सत्य हो सकता है ॥३२॥ स्वरोचि के ऐसा विचार करते ही राक्षस ने तुरन्त उस विद्याधरी को पकड़ लिया, इस पर वह त्राहि-त्राहि करती हुई रोने लगी ॥३३॥ तब स्वरोचि ने क्रोध में भर कर उस प्रचण्डास्र को धनुष पर चढ़ाया और उस राक्षस की ओर देखा ॥३४॥ उन्हें इस प्रकार उद्यत देखकर राक्षस भय-विह्वल हो गया और कन्या को छोड़कर स्वरोचि से बोला— आप अस्र का परित्याग करिये, मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा वृत्तान्त सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ ॥३५॥

मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते ।

प्रदत्तादतितीव्रो णब्रह्मामित्रेण धीमता ॥३६

उपकारो न मे त्वत्तः महाभागाधिको परः ।

येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३७

ब्रह्मामित्रेण मुनिना किन्निमित्तं महात्मना ।

शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापोदत्तोऽभवत्पुरा ॥३८

ब्रह्मामित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ।

त्रयोदशाधिकारं च प्रगृह्णाथर्वणोद्विजः ॥३९

अहं चेन्दीवराक्षेति ख्यातोऽस्या जनकोऽभवम् ।

विद्याधरपतेः पुत्रो न लनाभस्य खाङ्गिनः ॥४०

मया च याचितः पूर्वं ब्रह्मामित्रोऽभवन्मुनिः ।

आयुर्वेदमशेषं मे भगवन्दातुमर्हसि ॥४१

यदा तु बहुशोकीरप्रश्रया वनतस्य मे ।

न प्रादाद्याचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम ॥४२

हे तेजस्विन् ! अत्यन्त तेज सम्पन्न ब्रह्ममिल मुनि ने मुझे एक बार घोर शाप दिया था, आपने मुझे शाप से मुक्त कर दिया है ॥३६॥ हे महाभाग ! मेरा ऐसा उपकार करने वाला कोई उपकारी आपके समान नहीं है, क्योंकि आप ही ने मुझे घोर बलेशप्रद ब्रह्म शाप से मुक्त किया है ॥३७॥ स्वरोचि बोले—मुनिवर ब्रह्मामित्र ने तुम्हें जो शाप दिया था, वह कैसा तथा किसलिये दिया था ? ॥३८॥ राक्षस बोला—उन मुनिवर ब्रह्मामित्र ने अथर्व के तेरह

अधिकार में ज्ञान प्राप्त किया था तथा आठ भाग वाले सम्पूर्ण आयुर्वेद को पढा था ॥३९॥ मेरा नाम इन्दीवर है, मैं खड्गनिज नाम नामन विद्याधर का पुत्र तथा इस रन्या का पिता हूँ ॥४०॥ मैंने उन ब्रह्ममित्र से निवेदन किया था कि मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान दीजिये ॥४१॥ परन्तु बारम्बार विनम्र पूर्वक निवेदन करने पर भी मुझे मुझे आयुर्वेद का ज्ञान नहीं दिया ॥४२॥

शिव्येभ्योददत्तस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ।
 आयुर्वेदात्मिकान्विद्यागृहीताभूत्तदातथ ॥४३॥
 गृहीतायातुविद्यामामासैरष्टाभिरन्तरात् ।
 ममातिहृष्टदिभवद्दामोऽनीवपुनःपुन ॥४४॥
 प्रत्यभिज्ञायमाहासान्मुनिःकापसमन्वितः ।
 विक्म्पिकन्धर प्राहमामिदपरुपाक्षरम् ॥४५॥
 राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽष्टम्येनदुर्मते ।
 हृताविद्यावहामश्रमामवशायवैकृत ॥४६॥
 तस्मात्स्वराक्षस पापमच्छ्रापेननिराकृत ।
 भविव्यसिनसन्देह सप्तरात्रेणदारण ॥४७॥
 इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारै प्रसादिन ।
 समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षरणामृदुमादस ॥४८॥

तब, जब वे अपने शिष्य को आयुर्वेद का ज्ञान दे रहे थे, उस समय छिप कर मैंने उस विद्या को प्राप्त किया ॥४३॥ जब आठ महीने में मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान होगया, तब मुझे अत्यन्त प्रमत्तता हुई और मैं बारम्बार हँसने लगा ॥४४॥ मुनि ने जब मेरा इस प्रकार हँसना जाना तो उन्होंने क्रोध से कम्पित बगैठ होकर यह बठोर वचन कहे ॥४५॥ हे दुर्मते ! तूने राक्षस के समान छिप कर विद्या को चुराया है और अवशा पूर्वक मेरी हँसी उडाई है ॥४६॥ इमतिथे तू मेरे साथ स अधिकार ध्युत होकर मात रात्रि में ही घोर राक्षस हो जायगा ॥४७॥ इस प्रकार का साथ सुनकर मैंने मुनि का विनम्रता युक्त उतरवाणी से प्रसन्न किया ता वह तुम्हें प्रमत्त होगये और बोले ॥४८॥

यन्मयोक्तमवश्यंतः पूजाविगन्धर्वनान्यथा ।
 किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वंप्राप्त्यसेवपुः ॥४९
 नष्टस्मृतिर्यदा क्रुद्धः स्वमपत्यं चिखादिपुः ।
 निशाचरत्वे गन्तासितदस्त्रानलतापितः ॥५०
 पुनः संज्ञामवाप्यस्वामवाप्त्यसिनिजं वपुः ।
 तथैव स्वमधिष्ठानं लोके गन्धर्वसंज्ञिते ॥५१
 सोऽहृत्त्वयामहाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ।
 निशाचरत्वाद्यद्वीरतेन मे प्रार्थनां कुरु ॥५२
 इमां ते तनयां भार्यां प्रियच्छामि प्रतीच्छताम् ।
 आयुर्वेदश्च सकलस्त्वष्टांगो यो मया ततः ।
 मुनेः सकाशात्संप्राप्तस्तं गृह्णीष्वमहामते ॥५३
 इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरो ज्ज्वलः ।
 स्रग्भूषणधरो दिव्यंपौराणं वपुरास्थितः ॥५४
 दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां सदा तु मुपचक्रमे ।
 तमाहसातदा कन्या जनितारस्वरूपिणम् ॥५५

हे गन्धर्व ! मेरा कहा हुआ तो मिथ्या नहीं होगा, परन्तु तू राक्षस होने के पश्चात् पुनः अपने शरीर को प्राप्त होगा ॥४९॥ जब तू राक्षस होकर पुरानी बात भूलता हुआ क्रोधवश अपनी ही पुत्री का भक्षण करने को तत्पर होगा, तभी अस्त्रानल से संतप्त होकर ॥५०॥ पुनः स्मृति लाभ करेगा और अपने उसी शरीर, गन्धर्वलोक और अधिकार को पूर्ववत् प्राप्त करेगा ॥५१॥ हे महाभाग ! आपने मुझे इस घोर राक्षसत्व से मुक्त किया है, इसलिये मुझसे वर मांगो ॥५२॥ हे महामते ! इस कन्या को मैं आपको प्रदान करता हूँ, इसे पत्नी रूप में स्वीकार करो तथा मुनि से मुझे जिस अष्टांग आयुर्वेद की प्राप्ति हुई है, उसे भी मुझसे ग्रहण करो ॥५३॥ मार्करण्डेयजी ने कहा—दिव्य वसन, दिव्य भूषण एवं माला तथा पूर्ववत् दिव्य देह को धारण किये हुए उस गन्धर्व ने ऐसा कहकर स्वरोचि को ॥५४॥ सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्या प्रदान की तथा

उमने जब कन्याशन का उद्यम किया तभी उस कन्या ने अपने स्वरूप को प्राप्त हुए पिता से कहा ॥५५॥

अनुरागाममाऽप्यत्रतातातीवमहात्मनि ।
 दशनादेवसजातोविशेषेणोपकारिणी ॥५६॥
 किन्त्वेषामेसखीसाक्षमत्कृतेदु खपोडिते ।
 अतोनाभिलषेभोगान्भोक्तुमेतेनवैसमम् ॥५७॥
 पुरुर्परपिनोशक्यावक्तुंमिस्थनृशसता ।
 स्वभावरुचिरंमहिक्थयोपित्करिष्यति ॥५८॥
 साह्यथातेदु खार्त्तमत्कृतेकन्यकेपित ।
 तथास्थास्यामिदु खार्त्तातच्छोकानलतापिता ॥५९॥
 आयुर्वेदप्रसादेनलेवरिष्येपुनर्नवे ।
 सख्यौतवमहार्त्ताकसमुत्सृजसुमध्यमे ॥६०॥
 ततःपित्रास्वयदत्ताताकन्यासविधानतः ।
 उपयेमेगिरीतस्मिन्स्वरोचिश्रारत्नाक्षनाम् ॥६१॥

इन महारत्ना को देखते ही मेरा अनुराग इनक प्रति होगया था, और यह इन समय भी विसर्प रूप से उपकारी है ॥५६॥ परन्तु मेरी दो माँसियाँ मेरे ही कारण दुःख का भोग रही है, इसलिए इनके साथ सुख-भोग करना मेरे लिये अनुचित ही है ॥५७॥ जब पुरुष भी ऐसा कठोर व्यवहार नहीं कर सकते, तब मेरे जैसी सरल नारी ही क्या कैसे कर सकती है ? ॥५८॥ जिस अवस्था में पठ कर वह दानो कन्याएँ दुःख भोग रही है, उसी प्रकार मैं भी दुःख में सतस होकर उन्ही के समान दुःख भागूंगी ॥५९॥ स्वरोचि बोले—हे सुमध्यमे ? नोक को छोड़ो, मैं आयुर्वेद के प्रभाव से तुम्हारी रागियों को रोग मुक्त करूँगा ॥६०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पदच्छान् स्वरोचि ने मन्दराक्षत से पिता-प्रदत्त उम सुशोभित नयन वाली कन्या के साथ विवाह किया ॥६१॥

दत्तातृतातदाकन्यामभिसान्त्वयचभाविनीम् ।

जगामदिव्ययागत्यागन्धर्वंस्वपुरतत ॥६२॥

सचापिसहितस्तन्यातदुद्यानंतदाययौ ।
 कन्यकायुगलयत्रतच्छ्रापोत्थगदातुरम् ॥६३
 ततस्तयोःसतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौषधैरसैः ।
 चकारनीरुजेदेहेस्वरोचिरपिराजितः ॥६४
 ततोऽतिशोभनेकन्येविमुक्तेव्याधितःशुभे ।
 स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागंचक्रातेतन्महीधरम् ॥६५

कन्यादान करके गन्धर्व उसे हर प्रकार से समझा कर दिव्य विमान पर चढ़ कर अपने लोक को गया ॥६२॥ इधर स्वरोचि अपनी पत्नी के सहित वहाँ गये, जहाँ मनोरमा की दोनों सखियाँ रोगाक्रान्त हुई उद्यान में रह रही थीं ॥६३॥ और आयुर्वेद के तत्त्वज्ञाता स्वरोचि ने रोग नाशक औषधियों के रसों से उन दोनों के शरीर को रोग रहित किया ॥६४॥ तब उन अत्यन्त रूपवती कन्याओं की देह-कान्ति से पर्वत की सभी दिशाएँ प्रकाशित होने लगीं ॥६५॥

५६.... स्वरोचि के अन्य विवाह

एवविमुक्तरोगातुकन्यकातंमृदान्विता ।
 स्वरोचिषमुवाचेदंश्रृंगुष्ववचनंप्रभो ॥१
 मन्दारविद्याधरजानाम्नाख्याताविभावरी ।
 उपकारिन्स्वभात्मानंप्रयच्छामिप्रतीच्छामाम् ॥२
 विद्यांचतुर्भ्यंदास्यामिसर्वंभूतरुतानिते ।
 ययाभिव्यक्तिमेप्यन्तिप्रसादप्रवणोभव ॥३
 एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ।
 द्वितीयातुतदाकन्याइदंवचनमब्रवीत् ॥४
 कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारोनामपितामम ।
 ब्रह्मर्षिःसुमहाभागोवेदेवेदांगपारगः ॥५

तस्यपु स्कोक्त्रिलापरमणीयेमघीपुरा ।

आजगामाप्सरोभ्याशप्रहयातापुञ्जिक्स्थला ॥६

कामवैक्लव्यतानीत सतदामुनिपुञ्जव ।

तत्सयोमेऽहमुत्पन्नातस्यामनमहाचले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—मनोरमा की दोनों सत्तियो में से एक ने रोग-मुक्ति की प्रसन्नता से स्वरोचि के प्रति कहा कि मेरी बात सुनिये ॥१॥ मैं मन्दार नामक विद्याधर की कन्या विभावरी हूँ, आपने मेरा महान् उपकार किया है, उसके बदले मैं आपको अपना आत्मा ही अर्पित करती हूँ ॥२॥ तथा जित विद्या के द्वारा सब प्राणियों के स्वर का ज्ञान होता है, वह भी आपको देती हूँ, उसे आप ग्रहण करिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—धर्मज्ञाता स्वरोचि ने विभावरी की बात को स्वीकार कर लिया, इनक पश्चात् दूसरी कन्या ने उनसे कहा ॥४॥ मेरे पिता कुमारवस्था से ही ब्रह्मचर्य का आलम्बन करने वाले, वेद वेदांग के ज्ञाता ब्रह्मर्षि पार हैं ॥५॥ एक समय जब वमत् श्रुतु प्राप्त हुई तब कामोजनो के मन को हरण करन वाले पुस्कोक्त्रिक् के मधुर स्वर से तपोवन गूँज रहा था तभी एक पुञ्जिक्स्थला नामक अप्सरा ने उनके निकट आगमन किया ॥६॥ इससे वह मुनिवर काम व वश में होगय और तब उस अप्सरा के गर्भ से मैं इमी महापवन में उत्पन्न हुई ॥७॥

विहायमापतासाचमातास्मिन्निर्जनेवने ।

वालामेकामहीपृष्ठेव्यालश्चापहसकुले ॥८

तत कलाभि मोमस्यवर्द्धन्तीभिरह क्षये ।

आप्यायमानाहरहोवृद्धियातास्मित्तम ॥९

तत जलावतीत्येतन्ममनाममहात्मना ।

गृहीताया कृतपित्रागन्धर्वेणशुभात्मना ॥१०

नदत्ताहतदातेनयाचितेनमहात्मना ।

देवारिणातिगामुमन्ततोमेघातित पिता ॥११

तनोऽहमतिनिर्बेदादात्मव्यापादनोद्यता ।

निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥१२

माशुचःसुभ्रुभर्त्तातिमहाभागोभविष्यति ।

स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति ॥१३

आज्ञांचनिधयःसर्वेकरिष्यंतितवाहताः ।

यथाभिलषितंवित्तंप्रदास्यन्तिचतेशुभे ॥१४

फिर मेरी माता मुझे इस हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण निर्जन वन में एकाकी पड़ी छोड़ कर चली गयी ॥८॥ तब एक महात्मा गन्धर्व ने मेरा पालन किया, वहाँ शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हुई शशिकला से परिपुष्ट होती हुई मैं बढ़ने लगी, परन्तु कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के क्षय होने पर भी मेरा क्षय न होता हुआ देखकर उस गन्धर्व ने मेरा नाम कलावती रखा ॥९-१०॥ कुछ काल के पश्चात् अलि नामक एक साधस मेरे पिता के पास आकर मुझे माँगने लगा और जब मेरे पिता ने उसकी याचना स्वीकार न की तो उसने रात्रि में शयन करते हुए मेरे पिता का वध कर दिया ॥११॥ मैं उस दुःख से संतप्त होकर आत्मघात को उद्यत हुई, तब भगवान् शिव की भार्या सती ने मुझे रोका ॥१२॥ उन्होंने कहा—तुम शोक को छोड़ दो, महाभग स्वरोचि तुम्हारे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा ॥१३॥ सभी निधियाँ तुम्हारी आज्ञा का सदैव पालन करेंगी और तुम्हारे लिये इच्छित वन देंगी ॥१४॥

यस्यावत्सेप्रभावेणविद्यायास्तांगृहाणामे ।

पद्मिनीनामत्रिद्येयमहापद्मामिपूजिता ॥१५

इत्याहमांक्षसुतासतीसत्यपरायणा ।

स्वरोचिस्त्वध्रुवंदेवीनान्यथासावदिष्यति ॥१६

साहंप्राणप्रदायाद्यतांविद्यांस्वंतथावपुः ।

प्रयच्छामिप्रतीच्छत्रंप्रसादसुमुखोभव ॥१७

एवमस्त्वतितामाहसनुकन्यांकलावतीम् ।

विभार्याःकलावत्याःस्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः ॥१८

जग्राहचततःपाणीसतयोरमरद्भुतिः ।

नमत्सुदेवतूर्येषुनृत्यन्तीस्वप्सरःसुच ॥१९

सत्य पराशरणा दक्ष सुता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिये आप अवश्य ही वह स्वरोचि हैं ॥१६॥ मैं आपको अपना शरीर, प्राण और विद्या समर्पित करती हूँ, आप प्रमत्तता पूर्वक ग्रहण करिये ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर स्वरोचि ने 'ऐसा ही हो' कहा और विभावरी एक कलावती दोनों की अनुमति से ॥१८॥ स्वरोचि ने उस कन्या का भी पाणिग्रहण कर लिया, उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे और अप्सराएँ नाचने लगी ॥१९॥

५७ — चक्रवाक और मृग का तिरस्कार

तत मताभि सहितःपत्नीभिरमरद्युति ।
 ररामतस्मिञ्छैलन्द्रैरम्य कानननिर्झरि ॥१
 सर्वोपभोगरत्नानिमधूनिमधुराणिच ।
 निधय समुपाजग्मु पश्चिन्यावशवर्तिन. ॥२
 स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्गधाढ्यमनुलेपनम् ।
 आसनान्यतिशुभ्राणिकाचनानियथेच्छया ॥३
 सौवर्णानिमहाभागकरकान्भाजनानिच ।
 तथाशय्याश्चविविधादिव्यैरास्तरणैर्मुक्ता ॥४
 एवसताभिःमहितोदिव्यगन्धाधिवासिते ।
 ररामस्वशुचिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते ॥५
 ताश्चापिसहतेनेतिलेभिरेमुदमुत्तमाम् ।
 रममाणायथास्वर्गतथातत्रशिलोच्चये ॥६
 यलहसीजगादेकाचक्रवाकीजलेमतीम् ।
 तस्यतामाचललितेसम्यन्धेचस्पृहावती ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर अमर दीप्ति वाले स्वरोचि अपनी तीनों पतिवधों के साथ मलयचल के उस सुरम्य वन एक निर्भर स्थानों में ब्रिहार करने लगे ॥१॥ पचिनी विद्या के बश में हुई तिथियाँ उपभोगार्थ नाना प्रकार

के रत्न एवं मधुर मद्य ॥२॥ माला, वस्त्राभूषण, सुगन्धित लेप, आसन, चाँदी एवं स्वर्ण ॥३॥ तथा स्वर्ण के विभिन्न पात्र, दिव्य विछीनों से युक्त शय्या एवं अन्य द्रव्य उन्हें प्रदान करने लगीं ॥४॥ इस प्रकार वह स्वरोचि दिव्य गंधादि से सुवासित और रत्नादि से सुशोभित पर्वतीय प्रदेश में तीनों पत्नियों के साथ विहार-रत हुए ॥५॥ उस स्वर्ग तुल्य रमणीक श्रेष्ठ पर्वत में विहार करती हुई तीनों भार्या भी अत्यन्त सुखी हुईं ॥६॥ उस समय उनको इस प्रकार प्रणय युक्त विहार करते देखकर एक कलहंसी ने जल में स्थित अन्य चक्रवाकी के प्रति कहा ॥७॥

धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ।

दयिताभिःसहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८॥

सन्तियौवनिनःश्लाघ्यास्तत्पत्न्योनातिशोभनाः ।

जगत्यामल्पकाःपत्न्यःपतयश्चातिशोभनाः ॥९॥

अभीष्टाकस्यचित्कान्ताकान्तःकस्याश्चिदीप्सितः ।

परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०॥

धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्येताश्चास्यातिबल्लभाः ।

परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ॥११॥

एतन्निशम्यवचनं कलहंसी समीरितम् ।

उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा ॥१२॥

नायं धन्यो यतो लज्जानान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।

अन्यांस्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्वास्वस्यमानसम् ॥१३॥

चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठानेयतः सखि ।

ततोतिप्रीतिमानेष भार्यास्तु भविता कथम् ॥१४॥

इन स्त्रियों के साथ समस्त इच्छित भोगों को भोगने वाला यह युवक ही धन्य है ॥८॥ संसार में रूप और यौवन से सम्पन्न ऐसे अनेक पुरुष हैं, जिनकी भार्या असुन्दर हैं, ऐसे दम्पति कोई विरले ही हैं, जो पति-पत्नी दोनों ही सौन्दर्य से शोभायमान हों ॥९॥ कोई पति अपनी पत्नी में और कोई पत्नी अपने पति में अनुक्त हैं, परन्तु समान आसक्ति वाले स्त्री-पुरुष कठिन्ता से ही

मित्रते हैं ॥१०॥ इमलिये अपनी पत्नियों के यह प्रियाम और इनकी प्रियतमा पत्नियों भी धन्य हैं, क्योंकि वृत्तवृत्त्य प्राणिया में ही परस्पर अनु राग की उत्पत्ति होती है ॥११॥ कलहमी की बान से चक्रवाकी अधिक विस्मित नहीं हुई, उसने कहा ॥१२॥ यह स्वरोचि धन्य नहीं हो सकते क्योंकि एक स्त्री के सामने ही दूसरी से विहार करत है, इसलिये इन्हें किंचित् भी लज्जा नहीं आती, मय पत्नियों के प्रति इनकी समान रुचि भी नहीं है ॥१३॥ जब चित्त का अनुराग एक ही में अवस्थान करता है, तब यह स्वरोचि सब पत्नियों में समान अनुराग कैसे रख सकते हैं ॥१४॥

एतानदयिता पत्युर्नैतामादयित पति ।

विनोदमात्रमेवतायथापरिजनोपर ॥१५

एतासाञ्चयदीष्टोऽयत्तत्किंप्राणान्नमुञ्चति ।

आलिङ्गत्यपराकान्ताद्यातोवैकान्तयान्यया । १६

विद्याप्रदानमूल्येनऋणोऽपसुभृत्यवत् ।

प्रवर्तन्तो न हि प्रेमसमवह्नीपुतिष्ठति ॥१७

कलहसिपतिर्धन्यो मयधन्याहमेव च ।

यस्यैकस्याचिरचित्तयस्यादकं कत्रसस्थितम् ॥१८

बहुपत्नीपतिलोक शरणापुण्यपापयोः ।

गृहादानामनार्थं श्रभूपणंश्चसहागमं ॥१९

विपमं त्रियमारोहिषुज्यतेमहदेनसा ।

ज्येष्ठाकनीयभावेनकनिष्ठाज्येष्ठतानयेत् ॥२०

गुरवेतुवरदत्वाहुत्वान्यासमिधयथा ।

ऊढ्यासहकर्त्तव्यानित्यनैमित्तिकी क्रिया ॥२१

इनको यह सब पत्नियों प्रियतमा नहीं है और न उन सबको ही यह समान रूप से प्रिय हैं, जैसे चित्त को विनोद प्राप्त हो सके उसी विनोद की सामग्री यह पत्नियों भी हैं ॥१५॥ यदि यह सब में समान प्रीति वाले होने तो सबको सब समय सन्तुष्ट करने में समर्थ होकर क्या इतने बाल पर्यन्त जीवित रह सकते थे, इनमें परस्पर का अनुराग और समान प्रेम वही से हो सकता

है ? ॥१६॥ यह स्वचोचि विद्या प्राप्ति के मूल्य में विक कर पत्नियों के समक्ष भृत्य के समान ही हैं, सभी पत्नियों में प्रेम का समान भाव से रहना सम्भव नहीं है ॥१७॥ हे सखी ! धन्य तो मैं हूँ और मेरे पति हैं, क्योंकि मैं ही उनकी एकमात्र भार्या हूँ, उनके चित्त का अनुराग मेरे ही प्रति है और मैं भी उन्हीं में अनुरक्त हूँ ॥१८॥ अनेक भार्याओं का पति पुण्य और पाप का कारण है, गृह निवासिनी के शब्दायमान आभूषणों से और विषम शास्त्रों के द्वारा हुए निश्चय से ॥१९॥ युक्त मनुष्य विषमता के कारण महापापी होता है, तथा बड़ी को छोटी और छोटी को बड़ी मानने से ॥२०॥ तथा गुरु को दक्षिणा के रूप में वर देकर समिधाओं के द्वारा हवन करने जैसा है, विवाहिता पत्नी के सहित नित्य नैमित्तिक कर्मों को करे ॥२१॥

जगादाथान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः ।

सर्वसत्वरुतज्ञोऽसौ स्वरोचिरपराजितः ॥२२

निशम्यलज्जितोदब्धौ सत्यमेवहिना नृतम् ।

ततोवर्षशतेयातेरममाणोमहागिरौ ।

एममाणःसमन्ताभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ॥२३

सुस्निग्धपीनावयवमृगीयुथविहारिणम् ।

वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिःपरिवारितम् ॥२४

आकृष्टध्राणपुटकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः ।

उवाचसमृगोऽलंबोलज्जात्याभेनगम्यताम् ॥२५

नाहंस्वरोचिस्तच्छीलोनचैवाहंसुलोचनाः ।

निर्लज्जावह्वःसन्तितादृशास्तत्रगच्छत ॥२६

एकात्वनेकानुगतायथाहासास्पदंजने ।

अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥२७

तस्यधर्मक्रियाहानिरहस्यहनिजायते ।

सक्तोऽन्यभार्याचान्यकामासक्तःसदैवसः ॥२८

यस्तादृशोज्यस्तच्छीलःपरलोकपराङ्मुखः ।

तं कामयतमद्रं बौनाहंतुल्यःस्वरोचिषा ॥२९

अन्य प्रकार में करने वाला पापी कहा जाता है, मार्कण्डेयजी ने कहा—
 मम जीवो जी धार्ता को समझने वाले पराजय-रहित स्वरोचि ॥२२॥ उनकी
 बात सुनकर लज्जित हुए और विचारने लगे कि इसका वचन सत्य है, इसमें
 अनृत कुछ भी नहीं है, फिर भी उस महाबल में पत्नियों के संग विहार करते
 हुए उन्हें सौ वर्ष व्यतीत होगये, तदनन्तर एक दिन जब पत्नियों के साथ
 विहार रत थे तभी उन्होंने सामने स्थित ॥२३॥ एक स्थूलबाय, सर्वाङ्ग पुष्ट
 मृगी-मूष के साथ विहार करने वाले एक मृग को देखा, वह चारों से अपनी
 समान आयु वाली मृगियों से घिरा हुआ था ॥२४॥ तब नासिका निकोड कर
 मृग के शरीर को मूँघती हुई मृगिया को देखकर मृग ने उनसे कहा—अरी
 मृगियों ! तुम लज्जा छोड़ दी है, इसलिये अत्र और कही जाओ ॥२५॥ हे
 मुन्दर नयन बालियो ! मैं स्वरोचि नहीं हूँ और न मेरा स्वभाव ही उनके जैसा
 है, उनके समान अनेक नज्जाहीन पुरुष मिल सकते हैं, तुम उन्हीं के पास जाओ
 जैसा एक स्त्री अनेक पुरुषों की अनुगामिनी होने पर समाज में हैमी के योग्य
 होती है, वैसे ही अनेक स्त्रियों से विहार करने वाला पुरुष भी हास्यास्पद होता
 है ॥२७॥ उसकी नित्यक्रिया नष्ट हो जाती है, वह पत्नी के साथ रहकर भी
 अन्य स्त्रियों की सदा इच्छा करता रहता है ॥२८॥ इसलिये परलोक से विमुख
 स्वभाव वाले स्वरोचि जैसा कोई अन्य पुरुष हो तुम उन्हीं के पास जाओ, मैं
 वैसा नहीं हूँ ॥२९॥

५८-स्वरोचिष मनु की उत्पत्ति

एवनिर्गस्यमानास्ता हरिणो नमृगाङ्गना ।
 श्रुत्वा स्वरोचिरात्मानमेनेमपतितयथा ॥१॥
 त्यागे चकार चमन सतामामुनिसत्तम ।
 चक्रवाको मृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सित ॥२॥
 समेत्यताभिर्भूयश्चवर्द्धमानमनोभव ।
 आक्षिप्तनिर्वेदनयोरेमेवर्षशतानिपट् ॥३॥

किन्तुधर्माविरोधेनकुर्वन्धर्माश्रिताःक्रियाः ।
 भुङ्क्तेस्वरोचिषिषयान्सहताभिरुदारधीः ॥४
 ततश्चजजिरेतस्यत्रयःपुत्राःस्वरोचिषः ।
 विजयो मेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबलः ॥५
 मनोरमाचविजयंप्रासूतेन्दीवरात्मजा ।
 विभावरीमेरुनन्दंप्रभावंचकलावती ॥६
 पद्मिनीनामयाविद्यासर्वभोगोपपादिका ।
 सतेषांतत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार उस मृग के द्वारा वे हरिणियाँ निराश हुईं और इस वार्ता को सुनकर स्वरोचि ने स्वयं को पतित समझा । १। हे मुनिवर ! चक्रवाकी और मृग द्वारा ऐसी निन्दा को पाकर तथा मृग के आचरण को देखकर अपने को निन्दित समझा और पत्नियों को त्यागने का विचार किया ॥२॥ परन्तु पत्नियों से मिलते ही पुनः काम की प्रवृत्ति के सबल होने से उनका विरक्त भाव नष्ट होगया और इसके पश्चात् उन्होंने छः सौ वर्ष तक पत्नियों के साथ विहार किया ॥३॥ परन्तु जब वे विषय-रत होते तब वे अपने धर्म-मार्गानुसार सभी क्रिया यथा विधि सम्पन्न करते थे ॥४॥ फिर उनके विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नाम तीन अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव की उत्पत्ति हुई थी ॥६॥ सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या के प्रभाव से स्वरोचि ने तीन पुरों की रचना की ॥७॥

प्राच्यांतुविजयंतामकामरूपेनगोत्तमे ।
 विजयायसुतायादौसददौपुरमुत्तमम् ॥८
 उदीच्यांमेरुनन्दस्यपुरींनन्दवतीमिति ।
 ख्यातांचकारप्रत्तुङ्गवप्रकारमालिनीम् ॥९
 कलावतीसुतस्यापिप्रभावस्यनिवेशितम् ।
 पुरंतालमितिख्यातंदक्षिणापथमाश्रितम् ॥१०

एवनिवेश्यपुत्रान्सपुरेषुपुरपपंभः ।
 रेमेनाभि समविप्रमनाज्ञास्वद्विभूमिषु ॥११
 एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सधनुर्द्धर ।
 चरपंधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥१२
 अथाहवाचिदम्येत्यततदाहरिणागना ।
 मय्यवपात्यतात्राण प्रसीदेतिपुन पुन ॥१३॥
 किमनेनहतनाद्यमामाशुविनिपातय ।
 त्वयानिपातितोवाणोदु द्यान्मामोक्षयिष्यति ॥१४

पूर्वं दिशा म कामरूप पर्वत पर विजय नामक पुर बनाकर विजय को
 ॥८॥ उत्तर दिशा म अयन्त ऊँची प्राचीगे घाला नन्दवती नामक पुर मेरु-
 नन्द को दिया ॥९॥ शीर दक्षिण म ताल नामक पुर बनाकर प्रभाव को प्रदान
 किया ॥१०॥ इस प्रकार पुत्र्य श्रेष्ठ स्वरोचि ने तीनों पुत्रो उन तीनों पुरो मे
 बना कर पत्निका महित अत्यन्त मुग्ध्य प्रदेश म विहार किया ॥११॥ एक
 दिन धनुष ग्रहण करके विहार करत हुए बहुत दूर पर उन्हाने एक वाराह को
 देखकर शर मग्नान किया ॥१२॥ तभी एक हरिणी वहाँ आई शीर वह बारबार
 प्रार्थना करने लगी—‘मुझ पर प्रसन्न हाकर इस बाल को मुझ पर चलाओ
 ॥१३॥ इस वाराह का वध किया जाना व्यथ होगा, इसलिये आप मुझ पर
 अपना बाण चला कर मुझे दु ख मे छुडाइये ॥१४॥

ननेशरीरमरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
 किन्नुतत्कारणयनत्वप्रागान्हातुमिच्छसि ॥१५
 अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिश्चेत वृतास्पदम् ।
 ममतेनविनामृत्युरोपधकिमिहापरम् ॥१६
 कस्त्वानाभिलपेद्धीरुसानुरागासिकुत्रवा ।
 यदप्राप्तोनिजान्प्राणान्परित्यक्तु व्यवस्यसि ॥१७
 त्वामेवेच्छामिभद्र तेस्त्वयामेऽपहृतमन ।
 वृणोम्यहमतोमृत्यु मयिवाणोनिपात्यताम् ॥१८

त्वंमृगीचंचलापांगीनररूपधरावयम् ।
 कथंत्वयासंमयोमोमद्विधस्यभविष्यति ॥१६
 यदिसापेक्षितंचित्तंमयितेमांपरिष्वज ।
 यदिसासाधुचित्तंतेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥२०
 एतावताहंभवताभविष्याम्यतिमानिता ।
 आर्लिङ्गिततस्तांसस्वरोचिर्हरिणांगनाम् ॥२१

स्वरोचि बोले—तेरा देह किसी प्रकार भी रोग ग्रस्त प्रतीत नहीं होता फिर तू क्यों अपना देह त्यागना चाहती है ? ॥१५॥ मृगी ने कहा—मेरा चित्त उसके प्रति आकर्षित है, जिसका चित्त किसी अन्य नाग में अनुरक्त हुआ है, इस लिये उसे प्राप्त न करने रूप रोग की एक मात्र औषधि आपके वाण से प्राण त्याग करना ही है ॥१६॥ स्वरोचि बोले—तुझे कौन नहीं चाहता ? तू किस के प्रति असक्ति वाली हुई है ? जिसके प्राप्त न होने से तू प्राण त्याग करने को दृढ़ निश्चय है ॥१७॥ मृगी ने कहा—आपने मेरा चित्त धुरा लिया है मैं आपकी ही अभिन्नावा करती हूँ, इसी लिये प्राण त्याग के लिये तत्पर हुई हूँ, आप शीघ्र ही मुझ पर वाण चलाइये ॥१८॥ स्वरोचि बोले—तू चपल अङ्ग वाली मृगी है और मैं मनुष्य शरीर में हूँ, इस लिये मेरा तुम्हारा संग किस प्रकार संभव है ? ॥१९॥ मृगी ने कहा—यदि मेरे प्रति आपके चित्त में भी अनुराग है तो मुझे आर्लिङ्गित प्रदान करिये यदि आप साधु चित्त वाले हैं तो मैं आपके इच्छित कार्य को सम्पादित करूँगी ॥२०॥ इस प्रकार मैं आपके द्वारा अत्यन्त सम्मान को प्राप्त हूँगी, मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सुन कर स्वरोचि ने उस मृगी का आर्लिङ्गित किया ॥२१॥

तेनचार्लिङ्गितासद्यःसाभूद्विव्यवपुर्धरा ।
 ततःसविस्मयाविष्टःकात्वमित्यभ्यभाषत ॥२२
 साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ।
 अहमभ्यर्थितादेवैःकाननस्यास्यदेवता ॥२३
 उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ।
 प्रीतिमत्यांमयिसुतंभूलोकपरिपालकम् ॥२४

तमुत्पादयदेवानात्प्रामहं प्रचनान्द्वे ।
 तत सतस्यातनयसर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५॥
 तेजस्विनमिवात्मानजनयामासतत्क्षणात् ।
 जातमात्रस्यतस्याथदेववाद्यानिसस्वनु ;
 जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥२६॥
 सिपिचु शीकरैर्मघाष्टपयश्चतपोधना ॥२७॥
 देवाश्चपुष्पवर्षचमुमुचश्चसमन्तत ।
 तस्यतेज भमालोकयनामचक्रे पितास्वयम् ॥२८॥
 द्युतिमानितियेनास्यतेजसाभासितादिश ।
 सवालोक्युतिमात्रामहाबलपराक्रम ॥२९॥

उनका आलिंगन प्राप्त करते ही वह मृगी उमी समय दिव्य शरीर धारण करके एक सुन्दर नारी हो गई, इस पर स्वरोचि ने अत्यन्त विस्मय पूर्वक उससे कहा 'तुम कौन हो ?' ॥२२॥ तब उम मृगी ने लज्जा और प्रेम से गद्गद हो कर कहा कि मैं इस वन की अधिष्ठात्री देवी हूँ और देवताओं में प्राणित हो कर तुम्हारे निकट आई हूँ ॥२३॥ हे महामते ? मैं तुम पर अनुरक्त हूँ हूँ मुझ में तो मनु को उत्पन्न करना तुम्हारे लिये कर्त्तव्य है, इस लिये उम भूर्भोक परिषान्त पुत्र को मुझ में उत्पन्न करिये ॥२४॥ यह बात मीने देवताओं के वचन के अनुसार ही कही है, मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर स्वरोचि ने उम वन देवी के गम से अपने ही समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, उसके उत्पन्न होना ही सम्पूर्ण वाद्य बजने लगे, गन्धर्वपति गायन करने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥२५—२६॥ दिशाओं से हावी जल सीचने लगे और तपोधन शृषि ॥२७॥ तथा देवता सब और पुष्प बरसाने लगे, उस बालक के तेज सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी, ऐसी अग वीप्ति देख कर स्वरोचि ने पुत्र का ॥२८॥ नाम द्युतिमान् रखा, यह बालक अत्यन्त बली और दृढा ॥२९॥

स्वरोचिप सुतोयस्मात्तस्मारोचिपोऽभवत् ।

सचापिविचरय्म्येकदात्दिग्गिरिनिर्भरे ॥३०॥

स्वरोचिर्ददृशेहंसनिजपत्नीसमन्वितम् ।
 उवाचसतदाहंसींत्ताभिलाषांपुनःपुनः ॥३१
 उपसह्लियतामात्माचिरंतेक्रीडितंमया ।
 किंसर्वकालंभोगैस्तेआसन्नंचरमंबयः ॥३२
 परित्यागस्यकालोमेतवचापिजलेचरि ।
 अकालःकोहिभोगानांसर्वभोगात्मकजगत् ॥३३
 यज्ञाःक्रियन्तेभोगार्थंन्नाह्यराैःसंयतात्मभिः ।
 दृष्टादृष्टांस्तथाभोगान्वाञ्छमानाविवेकिनः ॥३४
 दानानिचप्रयच्छन्तिपूतान्धर्माश्चकुर्वते ।
 सत्त्वंनेच्छसिंकिंभोगान्भोगश्चोष्टफलनृणाम् ॥३५

स्वरोचि का पुत्र होने के कारण उसे स्वरोचिप भी कहा जाने लगा, फिर किसी एक समय सुरम्य पर्वत और निर्भर में भ्रमण करते हुए ॥३०॥ उन स्वरोचि ने अपनी भार्या के सहित एक हंस को देखा, वह काम्या हँसी से कह रहा था ॥३१॥ हे हंसी ! अपने मन को अब निवृत्त कर, मैंने तेरे साथ बहुत समय तक विहार किया है, अब सदैव ही भोग-रत रहने से क्या लाभ है, क्यों कि वृद्धावस्था आ गई है ॥३२॥ यह हमारे द्वारा विषय भोगों के त्यागे जाने का समय उपस्थित है, इस पर हंसी ने कहा—भोग का समय—असमय क्या है, देखो यह सम्पूर्ण विश्व भोगमय ही है ॥३३॥ क्यों कि संयतात्मा ब्राह्मण भोग की इच्छा से ही यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं तथा ज्ञानीजन भी दृष्ट-अदृष्ट भोगों की अभिलाषा करते हुए ॥३४॥ दान और पुत्र के धर्म में लगे रहते हैं, जब ऐसे व्यक्तियों का भी कर्म फल भोग ही है तो तिर्यक् योनि वालों के विषय में कहा ही क्या जाय ? ॥३५॥

विवेकिनांतिरश्चांचिकिंपुनःसंयतात्मनाम् ।
 भोगेष्वासक्तचित्तानांपरमार्थान्वितामतिः ।
 भविष्यतिकदासंगमुपेतानांचवन्धुषु ॥३६
 पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ताःसीदन्तिजन्तवः ।
 सरःपङ्कगार्णवेमग्नाजीर्णाविनगजाइव ॥३७

त्रिनपश्यमिनाभद्रेजातसङ्गस्वरोचिपम् ।
 आवाल्यात्वाममसक्त मग्नस्ताहाम्बुवर्दमे ॥३८॥
 यौवनऽनात्रभायामुमाम्पतपुत्रनप्तृषु ।
 स्वराचिपोमनोमग्नमुद्धारप्राप्स्यतकुत ॥३९॥
 नाहस्त्रराचिपतुल्य स्त्रीवम्योवाजलेचरि ।
 त्रिवक्त्राश्रभागानानिवृत्तोऽस्मिचयाम्प्रतम् ॥४०॥
 स्त्रराचिरतदाकण्यजाताद्द ग स्वगेरितम् ।
 आदायभार्यास्तपमययावन्यत्तपोवनम् ॥४१॥
 तत्रतप्त्वातपाधारसहताभिरदारधी ।
 जगामत्रावानमत्रानिवृत्ताखिनकल्मष ॥४२॥

इस निय तुम उन भाग को क्या नहीं चाहत ? हम वादा—भोगो म
 जिनका चित्त वृत्ति नहीं उनकी मनि परमात्मा की अनुगामिनी है बांधवा क
 सनग वात मनुष्य की बुद्धि क्या कभी इस प्रकार की हो सकती है ? ॥३६॥
 पुत्र मित्र शीर बलत्र म आसक्ति वादे जीव मरोवर के पर म कम हुए जगती
 हाथा क गमान गता इ गित रहत है ॥३७॥ हे भद्रे ! क्या तुमने वात्स्यायवस्था
 म कामागम एव स्नेह पर म पन हुए स्वराचि को नहीं दया है ? ॥३८॥
 यौवनवना पनिया पुत्रा शीर पीत्रा म दूत्र हुए उन स्वरोचि का मन किम प्रकार
 उद्धार को प्राप्त हो सकगा ? ॥३९॥ उन स्वराचि के समान मैं मिया के
 प्रधान नी है और श्रव भागा का परित्याग करता है ॥४०॥ माकण्डेयजी
 न क्या—हम के यह बचन सुन कर स्वरोचि अपनी तीना पत्निया को साथ
 तत्र तप कर म उद्दय म तपावन का प्राप्त हुए ॥४१॥ वहाँ उहीन पत्निया
 क गहिन धार तप किया शीर सभी पावा स मुक्त हो पर मन रहित त्र
 का गय ॥४२॥

५६—स्वारोचिष मन्वन्तर कथन

ततःस्वारोचिषं नाम्नाद्यु तिमन्तंप्रजापतिम् ।
 मनुं चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥१॥
 तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये ।
 भूपालाः क्रौष्टुके ये तान्गतस्त्वं निशामय ॥२॥
 देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज ।
 स्वारोचिषेऽन्तरे चेन्द्रो विपश्चिदिति विश्रुतः ॥३॥
 ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तो लिङ्ग ऋषभस्तथा ।
 निश्चरश्चाबं वीरांश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥४॥
 चैत्रकिंपुरुषाश्च सुतास्तस्य महात्मनः ।
 सप्तासन्सुमहावीर्याः पृथिवीपरिपालकाः ॥५॥
 तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशविस्तरे ।
 भक्त्येवमवनिःसर्वा द्वितीयं वै तदन्तरम् ॥६॥
 स्वरोचिषस्तु चरितं जन्मस्वारोचिषस्य च ।
 निशम्य मुच्यते पापैः श्रद्धधानो हि मानवः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् ने स्वारोचिष अर्थात्
 द्युतिमार्ग नामक प्रजापति को मनु बनाया अब उनके मन्वन्तर का वर्णन सुनो
 ॥१॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में जो देवता, मुनि, मनु पुत्र राजा
 आदि हुए, उनके विषय में कहता हूँ, उसे सुनो ॥२॥ हे द्विज ! उस स्वारोचिष
 मन्वन्तर में देवताओं को पारावत और तुषित तथा इन्द्र को विपश्चित् कहा
 जाता था ॥३॥ ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्बरी
 नामक यह सप्तर्षि थे ॥४॥ उन स्वारोचिष मनु के चैत्र और किम्पुरुष आदि
 नाम वाले सात पुत्र पराक्रमी एवं पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥५॥ उन
 का मन्वन्तर जितने दिन का था, तब तक उनके वंशधरों ने पृथिवी का भार
 भोगा, मन्वन्तरों में स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय है ॥६॥ स्वरोचि का चरित्र

घोर स्वाराविष मनु की उत्पत्ति की जो कोई थडा पूर्वव श्रवण करता है, वह पापों में मुक्त होता है ॥७॥

६०-निधि-निर्णय

भगवन्प्रथितमंत्रविस्तरेणत्वयामम ।
 स्वराचिपस्तुचरितजन्मस्वारोचिपस्यतु ॥१
 यातुमापदिनीनामविद्याभोगोपपादिका ।
 तन्मश्रयायेनिघयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥२
 अष्टायतिघयस्तेषाम्ब्रह्मव्यसस्थिति ।
 भवनाभिहितमभ्यक्द्रानुमिच्छाम्यहगुरो ॥३
 पदिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्रदेवता ।
 तदाधाराश्रनिघयस्तमेनिगदत शृणु ॥४
 तत्रपद्ममहापद्मीनामकरवच्छपी ।
 मुष्टुन्दोन्न्दकश्चनीलमङ्गोऽष्टमानिधि ॥५
 सत्यामृद्धोभवत्येनमिद्धिस्तपाहिजायते ।
 एतेह्यष्टीममाग्यातानिघयस्तवक्रीष्टुवै ॥६
 देवतानाप्रभादेनमाधुममेवनेनच ।
 एभिरानोविनचित्तमानुपस्वसदागुने ॥७

श्रीऋषि उवाच—१ भगवन् । आपन स्वरोचि का चरित घोर स्वार्गे-
 णिष मनु की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक मुझमें किया है ॥१॥ परन्तु
 मंत्र भोगों का वर्णन करने वाली पदिनी विद्या की प्राप्ति निधियों का
 वर्णन भी विस्तार सहित किया ॥२॥ २ गुरो । अष्ट निधियों का स्वरूप और
 द्रव्य में शक्ति का भी संक्षेप प्रकार में आपने मुझ से सुना ही इच्छा है ॥३॥
 मार्कण्डेय उवाच—पदिनी विद्या की प्राप्ति लक्ष्मी ही है, यह विद्या
 अष्ट निधियों की प्राप्ति स्वरूपी है, इनके विषय में यज्ञ है, तुम श्रवण

करो ॥४॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शङ्ख यह आठों निधि उस विद्या की आश्रिता हैं ॥५॥ समृद्धि होने से ही इन निधियों की सिद्धि प्राप्त होती है, हे क्रौण्डुके ! तुम्हें यह आठ प्रकार की निधियाँ बताई गई हैं ॥६॥ हे मुने ! देव प्रसाद और साधु सेवा के फल से मनुष्य का वित्त इन निधियों के द्वारा सदैव आलोकित होता है ॥७॥

यादृक्स्वरूपं भवति तन्मेनिगदतः शृणु ।

पद्मो नाम निधिः पूर्वसयस्य भवति द्विज ॥८

सतस्य तत्सुतानां च तत्पौत्राणां च नित्यशः ।

दाक्षिण्यसारः पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ॥९

सत्त्वाधारो महाभागो यतोऽसौ सात्त्विको निधिः ।

सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनां च परिग्रहम् ॥१०

करोत्यतितरांसोऽथ तेषां च क्रयविक्रयम् ।

करोति च तथा यज्ञान्दक्षिणां च प्रयच्छति ॥११

(संपादयति कामांश्च सवनिवयथाक्रमम् ॥)

सभादेव निकेतांश्च सकारयति तन्मनाः ।

सत्त्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इति श्रुतः ॥१२

सत्त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः ।

करोति पद्मरागादिरत्नानां च परिग्रहम् ॥१३

मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान् ।

ददाति योगशीलैश्च तेषामावसथांस्तथा ॥१४

सकारयति च्छीलः स्वयमेव च जायते ।

तत्प्रसूतास्तथाशीलाः पुत्रपौत्रक्रमेण च ॥१५

इनका जो स्वरूप है, वह बताया है—पद्म नामक निधि सदा ही मय दानव के पास थी ॥८॥ फिर उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के पास रही, इस निधि के अधिष्ठान से पुरुष चातुर्य एवं ॥९॥ सत्त्वगुण से सम्पन्न और अत्यन्त भोगवान् होता है, क्योंकि यह निधि सतोगुण से युक्त है, इस निधि से सम्पन्न पुरुष सुवर्ण, रजत, ताम्रादि सब धातुओं का परिग्रह ॥१०॥ तथा क्रय-विक्रय

करता है तथा बटून में विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है ॥११॥
 (क्रम पूर्वक गव अभिलाषाम्नों को पूर्ण करन में समर्थ होता है) तथा एकाग्र
 वित्त में गभा भजन घोर देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि
 सत्पापार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उसमें अतिष्ठित मनुष्य भी सतोषुण
 प्रधान होता है तथा पद्मराग आदि रत्नों को सचिन करने वाला होता है
 ॥१३॥ घोर मुक्ता आदि का कय-विद्रव्य करता है एव योगियों को उनका
 स्थान देता ॥१४॥ तथा मापारण व्यक्तियों को योगाभ्यास के लिए उत्साहित
 करता है घोर स्वयं भी योग में तत्पर रहता है, उसके पुत्र, पौत्रादि वंशधर
 भी तमी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वद्विमात्र सप्तासीपुस्पाश्रनमु चति ।
 तामसोमकरोनामनिधिस्तेननावलोकित ॥१६॥
 पुरपोऽयनम प्राय मुशीलोऽपिहिजायते ।
 वाएनङ्गष्टिरनुयाचसंराचपरिश्रहम् ॥१७॥
 दशनानाचपुरनेयोतिर्मयीचराजभिः ।
 ददानिशीयंतीनाभूभुजायेचनत्प्रिया ॥१८॥
 क्रयविप्रयेचशस्त्रागानान्यत्रप्रीतिमेतिच ।
 एवम्येवभवत्येपनरम्यनमुनानुग ॥१९॥
 द्रन्नायंदम्युतानाशमप्राभेवापिमत्रजेत् ।
 वच्छपश्चनिधियोऽमोनरस्ननाभिवीक्षित ॥२०॥
 तमप्रधानाभप्रतियनोऽमीनामसोनिधि ।
 व्यवहारानेपास्तुपुष्यजाते वरोनिच ॥२१॥
 वमंस्थानश्रितास्त्वनप्रिद्वमितिक्स्यचित् ।
 नमस्तानियथाद्धानिसहृत्वेववच्छप. ॥२२॥

यह मन्त्राद्य नामक निधि पूर्व के षषेका उत्तरोत्तर आधी आधी
 तक्ति में घटती हुई गान पंडितों तक रही है तथा जो मन्त्र नाम की तयोमुणी
 तिधि है, उग्न अधिष्ठित पुत्र्य ॥१६॥ तमागुण प्रपात घोर क्षीयमान होता है,
 वह धनु-बाण, मृग, बाण तथा आमुषा के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने में समर्थ होता है, राजाओं के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले वीरों को दान देकर संतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रों का क्रय-विक्रय किये बिना तुष्ट नहीं होता परन्तु धनके लोभ से तस्करों द्वारा अथवा रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है, यह निधि एक पीढ़ी तक ही रहती है, फिर नहीं रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुरयमय एवं आचार व्यवहार तथा कर्म के दश में होकर सब भोगों को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नहीं करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गों को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तथाविष्टभ्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानसः ।

नददातिनवाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३

निधानमुर्व्याकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुषः ।

रजोगुणमयश्चान्योमुकुन्दोनामयोनिधिः ॥२४

नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।

वीणावेरुमृदङ्गानामातोच्चस्यपरिग्रहम् ॥२५

करोतिगायतां वित्तं नृत्यतां च प्रयच्छति ।

वन्दिमागधसूतानां विटानां लास्यपाठिनाम् ॥२६

ददात्यहनिशं भोगान्भुङ्क्ते तैश्च समं द्विज ।

कुलटासुरतिश्चास्य भवत्यन्यैश्च तद्विधैः ॥२७

प्रयाति संगने कंचयं निधिर्भजते नरम् ।

रजस्तमोमयश्चान्यो नन्दो नाम महानिधिः ॥२८

वैसे ही अपने अभिप्राय को गुप्त रखता और चित्त को संयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वयं नहीं करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी में एक पीढ़ी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ती है, वह रजोगुणी होता है तथा उससे अवलंबित मनुष्य वीणा, वेरु मृदङ्ग आदि आतोच्च वाद्यों का संग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

और नर्तको को बहुत धन देने वाला, बन्दी, मूत, भाग्य, विट और लास्यपाठी
 नृत्य-गान की विशेषता वालो को ॥२६॥ दिन रात्रि इच्छित भोग देता है
 तथा उनके साथ भोगन करता है, इसकी प्रीति अपने समान एव बुसदी
 मनुष्यो में रहती है ॥२७॥ यह नित्य जिने चाहती है, उसी की अनुयायिनी
 रहती है, उसके वसपरो के पास नहीं रहती, नन्द नाम की निधि रजोगुण
 और तमोगुण दोनों में युक्त है ॥२८॥

उपेतिस्तम्ममधिकनरस्नेनावलोकित ।

समस्तधातुरत्नानापुण्यधान्यादिकस्यच ॥२९

परिग्रहकरोत्येपतथैवत्रयविक्रयम् ।

आधार स्वजनानावभ्रागताभ्यागतस्यच ॥३०

सहतेनापमानोक्तिस्वल्पाभिप्रहामुने ।

स्तूयमानश्चमहतीप्रीतिवघ्नातियच्छति ॥३१

ययमिच्छतिदेवाममृदुत्वमुपयातिच ।

वह्योभाष्याभवन्त्यस्यसूतिमत्योऽतिशोभना ॥३२

भजतेसप्तवनराग्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते ।

प्रवर्द्धमानोऽथनरमष्टभागेनसत्तम ॥३३

दोर्घायुष्ट्वमवेषापारुपाणाप्रयच्छति ।

यन्धूनामेवभरणयेवदूरादुपागता ॥३४

तेपाकरोतिर्वनन्द परलोकेनवाहते ।

भवत्यस्मन्नचस्नेह महवामिपुजायते ॥३५

इसकी दृष्टि त्रिम पर पड़ती है, प्रत्यन्त रतभित रहता है, इससे
 घपिष्टिन मनुष्य सब धातु, रत्न, धान्य आदि पुण्य द्रव्यो का ॥२९॥ मग्नह
 और क्रम-विश्रम करना है तथा वह स्वजनो, प्रनिययो और अभ्यागतो को
 प्रायय रुच देना है ॥३०॥ यह निरादर सहन नहीं करता और प्रसता
 मुनवर प्रसन्न होता है ॥३१॥ यावको को प्रमित्यादा के धनुमार वस्तुएँ
 प्रदान करना है तथा मृदु स्वभाव का होना है, उससे प्रत्यन्त मुन्दरी
 पुत्रवनी अनेक परिजया प्रेम करती हैं ॥३२॥ यह निधि प्रमग अष्टमाश हीती

हुई सात पीढ़ी तक रहती है ॥३३॥ और जिसमें अधिष्ठित होती है, उसकी दीर्घ आयु करती है, वह मनुष्य बांधवों और आगत मनुष्यों का परिपालक होता है ॥३४॥ परन्तु यह परलोक के लिए कोई यत्न नहीं करता और न नगर निवासियों से ही प्रीति रखता है ॥३५॥

पूर्वमित्रेषुशैथिल्यंप्रीतिमन्यैः करोतिच ।

तथैवसत्त्वरजसीयोविभतिमहानिधिः ॥३६

सनीलसंज्ञस्तत्संगीनरस्तच्छीलवान्भवेत् ।

वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७

मुक्ताविद्रुमशङ्खानांशुक्त्यादीनांतथामुने ।

काष्ठादीनांकरोत्येषयच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥३८

क्रयविक्रयमन्येषानान्यत्ररभिजायते ।

तडागान्पुष्करिण्याऽथतथारामान्करोतिच ॥३९

बन्धंचसरितांवृक्षांस्पथारोपयतेनरः ।

अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०

त्रिपौरुषश्चापिनिधिर्नीलोनामैषजायते ।

रजस्तमोमयश्चान्यःशङ्खसंज्ञोहियोनिधिः ॥४१

तेनापिनीयतेविप्रतद्गुणित्वंनिधीश्वरः ।

एकस्यैवभवत्येषनरनान्यमुपैतिच ॥४२

पहिले मित्र से मैत्रि भाव में शिथिलता और नयों से प्रीति स्थापित करता है, इसी प्रकार जो सत्व और रजोगुण से युक्त महानिधि है ॥३६॥ वह नीलनिधि नाम धाली अपने अधिष्ठान रूप पुरुष को सतोगुण और रजोगुण से युक्त करती है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है, वह वस्त्र, कपास, धान्यादि अन्न, फल एवं पुष्प ॥३६॥ तथा मोती, मूँगा, शंख, सीपादि तथा जल में उत्पन्न अन्य वस्तुओं और काष्ठादि का संचय करता है ॥३८॥ और इन पदार्थों का स्वयं उपभोग करता हुआ, क्रय-विक्रय भी करता है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय में वह प्रीतिमान् नहीं होता ॥३९॥ वह मनुष्य तडाग, पोखर, उपवन, बनवाता, नदी पर पुल बँधवाता तथा वृक्षारोपण

करता है और अनुलेप और पुष्पादि का अनुलेप करता हुआ प्रमिद्धि को प्राप्त होता है ॥४०॥ यह नील निधि तीन पीढ़ी तक स्थिति रखती है तथा शङ्ख नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण के मिश्रण से युक्त है ॥४१॥ इसके अधिष्ठान से पुंस्य उक्त दोनों गुणों में युक्त होता है, यह एक ही पुंस्य की अनुगामिनी होती है, किसी अन्य पुरुष तथा अन्य पीढ़ी में स्थिति नहीं रहती ॥४२॥

यस्यशङ्खोनिधिस्तस्यस्वप्नः शक्रोऽप्युक्तेऽश्रुणु ।
 एतवात्मनासृष्टमत्र भुङ्क्ते तथा म्वरम् ॥४३॥
 वदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधक् ।
 न वदति सुहृद्भ्रातृभ्यां भ्रातृपुत्रस्नुपादिषु ॥४४॥
 स्वपोषणपर शङ्खीनरो भवति सर्वदा ।
 इत्येते निधय ह्यात्मानराणामथं देवता ॥४५॥
 मिश्रावलोकनान्मिश्रा म्बभावफलदायिन ।
 यथाख्यातस्त्वभावस्तु भवत्येव विचोचनात् ।
 सर्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेपाद्विजपदिनी ॥४६॥

हे शक्रो ! जो पुरुष शत्रुनिधि को अपने वश में कर लेता है, उसका रूप सुनो, वह स्वोपा जन श्रेष्ठ धन का भोजन करता और सर्वोत्कृष्ट वस्त्र पहनता है ॥४३॥ परन्तु उसके बुटुम्बियों को निष्कृष्ट भोजन वस्त्र उपलब्ध होते और जिनका जीवन कष्ट से व्यतीत होता है और शङ्ख निधि युक्त पुरुष अपने गृह, भ्राता, पत्नी, पुत्र आदि व भरण पोषण को भी कुछ नहीं देता ॥४४॥ केवल अपना ही भरण-पोषण करने में लगा रहता है, मनुष्य के वित्त की देवता कहकर यह निधि विख्यात है ॥४५॥ इसके देगने से मनुष्य उपयुक्त स्वभाव वाला होता है, परन्तु यह निधियाँ मिलकर देह में गपुत्रा फल के देने वाली हैं तथा स्वतंत्र रूप से देगें तो स्वस्व फलप्रद हैं । यह श्री स्वर्पिणी पदिनी विद्या उक्त षट् निधियों के आश्रय में अधिष्ठित हैं ॥४६॥

६१—श्रीत्तर मन्वन्तर आरम्भ (३)

विस्तरात्कथितं ब्रह्मन्ममस्वारोचिषंस्त्वया ।
 मन्वन्तरं तथैवाष्टीयेषु पृष्ठानि धधोमया ॥१॥
 स्वायम्भुवं पूर्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम् ।
 मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयौत्तमसंज्ञितम् ॥२॥
 उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नाम नामतः ।
 सुरुच्यास्तनयः ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥३॥
 धर्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः ।
 अतीत्य सर्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ॥४॥
 समः शत्रौ च मित्रे च परेषु त्रे च धर्मवित् ।
 दुष्टेषु च यमवत्साधौ सोमवत्समहामुने ॥५॥
 बाभ्रव्यां बहुलां नाम उपये मे स धर्मवित् ।
 उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्रइवोत्तमः ॥६॥
 तस्यामतीव तस्यासीद्दिजवर्यमनःसदा ।
 स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ॥७॥

कौण्डिक बोले—हे ब्रह्मा ! स्वारोचिष मन्वन्तर का विषय आपने विस्तार पूर्वक बर्णन किया है, अब आठ मन्वन्तर और मेरे द्वारा पूछी गई निधि के विषय में कहिये ॥१॥ आप स्वायम्भुव मन्वन्तर का पहिले बर्णन कर चुके हैं, अब अतीतम नामक तृतीय मन्वन्तर का बर्णन करिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उत्तानपाद के एक अत्यन्त पराक्रमी उत्तम नामक पुत्र रानी सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न हुआ ॥३॥ वह धर्मवान् और पराक्रमी उत्तम राज्य को प्राप्त होकर अपने पराक्रम से अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥४॥ वह धर्मज्ञ राजा शत्रु, मित्र तथा प्रजा और पुत्र में समान दृष्टि रखने वाले थे, वह दुष्टों के लिए सदा यम तुल्य और शिष्ट व्यक्तियों के लिए चन्द्रमा के समान शीतल थे ॥५॥ जिस प्रकार इन्द्र ने सभी लोकों में प्रसिद्ध शची का पाणिग्रहण किया, उसी प्रकार उत्तम ने बभ्रु-सुता बहुला नाम की विख्यात कन्या का

पाणिग्रहण क्रिया था ॥६॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस प्रकार चन्द्रमा का चित्त रोहिणी में प्रनुरक्त है, वैसे ही उत्तम का चित्त बहुला में आसक्त था ॥७॥

अन्यप्रयोजनासक्तिमुर्पतिनहितन्मन ।
 स्वप्ने चैवतदालम्बिमनोऽभूत्तस्य भूभृतः ॥८
 सचतस्या सुचावंङ्गचादर्शनादेवपाथिव ।
 वदाह्लोचनैर्गात्रेगानस्पशंश्चतन्मय ॥९
 श्रोतोद्वेगकरवाक्यप्रियमप्यवनीपते ।
 तस्यापिभूरिसन्मानमेनेपरिभवतत ॥१०
 भवमेनेस्त्रजदत्ताशुभान्याभरणानिच ।
 उत्तस्यावर्धपोतेवपिवतोऽप्यवरासवम् ॥११
 भुञ्जताचनरेन्द्रेणक्षणमात्रकरेघृता ।
 दुभुजेस्वल्पकमक्षयद्विजनातिमुदावती ॥१२
 एवतस्यानृक्कलस्यनानुक्कलामहात्मन ।
 प्रभूततरमत्यर्थचक्रे रागमहीपति ॥१३
 अथपानगतोभूप वदाचित्तामनस्विनीम् ।
 सुराभृतपानपात्रग्राहयामाससादर ॥१४
 पश्यताभूमिपालानावाग्मुख्यासमन्वित ।
 प्रगीयमानोमधुरैर्गोपगायनतत्परै ॥१५

राजा का चित्त बहुला के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं था और वह स्वप्न में भी अन्य नारा का चिन्तन नहीं करते थे ॥८॥ वह राजा अपनी रूप यनी भार्या को जैसे ही देखते, वैसे ही उत्तम तन्मय हो जाते थे ॥९॥ परन्तु रानी बहुला को उनके मधुर वचन भी बहुत प्रीति करते और वह उनका सम्मान करने में भी अपनी प्रपत्ता प्रपमान समझती थी ॥१०॥ उनके द्वारा प्रपित माना और मनोहर आभूषणों के प्रति रानी प्रवृत्ता व्यक्त करती और आसक्तान के समय दुःख अनुभव करती हुई उनके पास से उठ जाती थी ॥११॥ हे द्विज ! जब राजा भोजन के समय भोजन प्रकार के आग्रह करते तब वह प्रथम मन से भलाहार करती ॥१२॥ इस प्रकार रानी के अधिक अनुकूल न होने पर भी

राजा अपनी प्रिया के प्रति अत्यधिक अनुराग प्रकट करते थे ॥१३॥ एक समय जब श्रेष्ठ बारांगनाएँ मधुर स्वर से राजा के निकट गा रही थीं तभी राजा ने सुर पान की इच्छा करके अपने सभासदों के समक्ष ही निकट बैठी बहूला को मद्य से परिपूर्ण पात्र दिया ॥१४-१५॥

सातुनेच्छतितत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी ।
 समक्षमवनीशानांततःक्रुद्धःसपार्थिवः ॥१६
 उवाचद्वाःस्थमाह्वयनिःश्वसन्नुरगोयथा ।
 निराकृतस्तयादेव्याप्रिययापतिरप्रियः ॥१७
 द्वाःस्थैनांदुष्टहृदयामादायविजनेवने ।
 परित्यज्याशुनैतत्ते विचार्यवचनमम ॥१८
 ततो नृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्यसः ।
 द्वाःस्थस्तत्याजतांसुभ्रूमारोप्यस्यन्दनेवने ॥१९
 साचंतंविपिनेत्यागं नीतातेनमहीभृता ।
 अपश्यमानातंमेनेपरंकृतमनुग्रहम् ॥२०
 सोऽपितत्रानुरागातिदह्यमानात्ममानसः ।
 औत्तानपादिभूंपालोनान्याभार्यामिबिन्दत ॥२१

परन्तु रानी ने उनसे विमुख होकर मद्य पान को ग्रहण नहीं किया, तो राजा को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१६॥ और सर्प के समान निःश्वास को त्यागते हुए उन्होंने द्वारपाल को बुलाया और उससे बोले कि इस मेरी प्रियतमा बहूला ने मुझे अप्रिय मान कर मेरा निरादर किया है ॥१७॥ इस लिये इस दुष्ट हृदय वाली को शीघ्र ही यहाँ से ले जाकर वन में छोड़ आओ मेरी इस आज्ञा का तुरन्त पालन करो ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—द्वारपाल ने राजा की आज्ञा को प्राप्त कर रानी को रथ में चढ़ाया और उसे वन में छोड़ आया ॥१९॥ राजा द्वारा रानी को वन में छोड़े जाने पर, अब राजा को न देखना होगा, ऐसा सोच कर रानी ने राजा का अनुग्रह ही माना ॥२०॥ इधर राजा उत्तम ने रानी के प्रति अत्यन्त अनुराग होने के कारण दुःखित हृदय होते हुए अन्य पत्नी को ग्रहण नहीं किया ॥२१॥

मस्मारतामुचात्रेगीमहनिशमनिवृत्त ।
 चकारचनिजराज्यप्रजाधर्मोपापालयन् ॥२२
 प्रजा पालयन्स्तस्यपितु पुत्रानिवोरसान् ।
 प्रागत्यब्राह्मण कश्चिदिदमाहात्तमानस ॥२३
 महाराजभृशान्तोऽस्मिश्च यतागदतोमम ।
 नृणामातिपरित्राणमभ्यतोन्नराधिपात् ॥२४
 ममभार्याप्रसुप्तस्यवेनाप्यपहतानिधि ।
 गृहद्वारमनुद्धाट्यनासमानेतुमर्हसि ॥२५
 नवत्सिकेनापहृताक्ववानीतातुसाद्विज ।
 यतामिविग्रहेकस्यवुतोवाप्यानयामिताम् ॥२६
 तर्धैवम्बगिनेद्वारिप्रसुप्तस्यगृहेमम ।
 हृताहिभार्याकिंकेनेत्येतद्विज्ञायतेभवान् ॥२७
 त्वग्निनानानृपतेपडभागादानवेत्तन ।
 धर्मस्यतस्तानिश्चिन्तास्वपत्तितमनुजानिधि ॥२८

वह दु गिन बित्त म उमी जोभनाद्वी का स्मरण करने लगा और इस
 अवस्था में भी धर्म-पूवक प्रजा पालन करते हुए राज्य-कार्य में लगे रहे ॥२२
 यह राजा अपनी प्रजा का पालन औरस पूत्र व समान करते थे, एक दिन एक
 ब्राह्मण उदने निरुद्ध घामा और दु गिन हृदय में बोला ॥२३॥ हे राजन् ?
 मैं अत्यन्त शर्म में हूँ मरी बात सुनो, क्या कि मनुष्यों के केशी को राजा
 ही दूर कर सकता है ॥२४॥ मैं रात्रि व समय जब शयन कर रहा था,
 तभी पर व द्वार खोल बिना ही किसी ने मेरी पत्नी का हरण कर लिया है,
 अब आप मेरी उक्त पत्नी को लाकर मुझे दीजिये ॥२५॥ राजा ने कहा—हे
 ब्रह्मन् ! आपकी पत्नी का हरण किसने किया है और कहाँ रखा है ? जब
 तक मैं यह न जानूँ, तब तक उसे वहाँ से प्राप्त करूँ ॥२६॥ ब्राह्मण बोला
 हे राजन् ! मेरे शयन करने में घर का द्वार खोल बिना ही मेरी पत्नी का
 हरण किस प्रकार हुआ, यह तो आप ही जान सकते हैं ॥२७॥ तथा कि आप

राजा है, धर्म का षष्ठांश वेतन स्वरूप लेकर रक्षा के लिये नियुक्त हैं, इसी लिये मनुष्य रात्रि काल में निश्चित शयन करते हैं ॥२८॥

नतेदृष्टामयाभार्यायाद्ब्रह्मरूपाचदेहतः ।
 वयश्चो वक्षमाख्यार्हिकिंशीलाद्ब्राह्मणीचते ॥२९
 कठोरनेत्रासात्युच्चाह्लस्वबाहुःकृशानना ।
 (लंबोदरीह्लस्वस्फिजंतथाह्लस्वस्तनीनृप) ।
 विरूपरूपाभूपालननिन्दामितथैवताम् ॥३०
 वाचिभूपातिपरुषानसौम्यासाचशीलतः ।
 इत्याख्यातामयाभार्यासकरालनिरीक्षणा ॥३१
 मनागतीतंभूपालतस्थाश्चप्रथमं वयः ।
 तादृगरूपाहिमेभार्यासत्यमेतन्मयोदितम् ॥३२
 अलंतेत्राह्मणतयाभार्यामिन्यांददामिते ।
 सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हितादृशी ॥३३
 अल्पाकुरूपताविप्रकारांशीलमुत्तमम् ।
 रूपशीलविहीनायात्याज्यातेन्येनसाहृता ॥३४

राजा बोले—आपकी पत्नी को मैंने कभी भी नहीं देखा, इस लिये आप उसकी आकृति, आयु और स्वभाव का भले प्रकार वर्णन करिये ॥२९॥
 ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! मेरी पत्नी कठोर नयन, दीर्घ आकार, छोटी भुजा, कृश मुख (लम्बा उदर और सूक्ष्म हाथ) वाली अत्यन्त कुरूप है, फिर भो मैं उसे निन्दनीय नहीं मानता ॥३०॥ वह वाणी और स्वभाव से अत्यन्त कर्कश है उसकी प्रथमावस्था कुछ-कुछ डल चुकी है, इस प्रकार उसका सभी वर्णन सत्य-सत्य आपसे किया है ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—हे विप्र ! ऐसी कुलक्षणा पत्नी का आप क्या करेंगे ? मैं आपको एक अन्य पत्नी प्रदान कर सकता हूँ, क्यों कि सुलक्षणा पत्नी से सुख और कुलक्षणा से दुःख ही प्राप्त होता है ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! सौन्दर्य और शील स्वभाव से ही मंगल होता है, इस लिये कुरूप तथा शील रहित पत्नी का तो परित्याग ही ठीक है ॥३४॥

रक्ष्याभार्यामहीपालइतिचश्रुतिरत्तमा ।
 भार्यायारक्ष्यमाणायाप्रजाभवतिरक्षिता ॥३५
 आत्माहिजायतेतस्यसारदयातोतरेश्वर ।
 प्रजायारक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षितः ॥३६
 तस्यामरक्ष्यमाणायामभवितावर्णसङ्कुर ।
 सपातयेन्महीपालपूर्वास्वर्गादिषु पितृन् ॥३७
 (अनुज्ञायगुरुं राजन्दत्त्वान्याजातवेदसे ॥३८
 समिधं तुमयाभार्यामृतैयवर्कंशायत ।
 कथमेताविहायान्यभार्ययामहसचरे ॥३९
 गृह्यधर्मोयतोद्गृह्यप्राप्यतेशाश्वतनरं ।
 पूर्वोदयानुधर्मणगृहीकुर्वन्नसीदति ॥४०
 त्यक्त्वाताचक्रियाकुर्वन्नेवकर्मफललभेत् ।
 अग्निनासहयानूनसा जगामगृहशुभा ॥४१
 धर्मस्यग्रहणेसातुपूर्वोद्वेगप्रशम्यते ।

शठयाचारणात्तस्याजायतेवर्णसङ्कुर ॥४२

ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! पत्नी सदैव रक्षा के योग्य होती है, मुझे यह श्रुति विदित है कि पत्नी की सम्यक् रक्षा में ही सन्तान की रक्षा हो सकती है ॥३५॥ हे राजन् ! पत्नी के गर्भ में अपने आत्मा की ही उत्पत्ति होती है, दमी विधे सन्तान की रक्षा करने में अपने आत्मा की ही रक्षा होना माना गया है ॥३६॥ इसविध पत्नी की भले प्रकार रक्षा करे, उसकी रक्षा न करने में वर्णमत्तर की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण पूर्व पितरों का स्वर्ग में पतन होना है ॥३७॥ (हे राजन् ! गुरुजनों की अनुमति से अग्नि को साशी करके) ॥३८॥ इस वर्णश पत्नी का मेरे साथ करण हुआ है, इस विधे इसका त्याग करके अन्य नारी के साथ जिस प्रकार यह आन्तरण करूँ ॥३९॥ अब ऐसे आचरण में गृह्यधर्म के साथ ही अनृत्य को दाश्वन ब्रह्म की उक्ति होती है धीर त्रिम स्त्री व साथ धर्म कार्य करना हुआ गृही दुःख को प्राप्त नहीं जाना ॥४०॥ उग स्त्री को त्याग कर जो क्रिया कर करना है वह

क्रिया फल रहित होती है, जो शुभ अग्नि की साक्षी में अपने गृह पर लायी गयी है ॥४१॥ वह प्रथम ही धर्म के ग्रहण में प्रसंसनीय है तथा उस द्रुष्टा के त्याग से वर्णसंकर की उत्पत्ति संभव है ॥४२॥

धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्यभवेन्मम ।

नित्यक्रियाणांविभ्रंशात्सचापिपतनायमे ॥४३॥

तस्यांचपृथिवीपालभवित्रीममसन्ततिः ।

तवषड्भागदात्रीसाभवित्रीधर्महेतुको ॥४४॥

तदेतत्तेमयाख्यातापत्नीयामेहृताप्रभो ।

तांसमानयरक्षायांभवानधिकृतोयतः ॥४५॥

सतस्यैवंवचःश्रुत्वाविमृष्यचनरेश्वरः ।

सर्वोपकरस्यैमुक्तमारुरोहमहारथम् ॥४६॥

इतश्चेतश्चतेनासौपरिवभ्राममेदिनीम् ।

ददर्शचमहारथेतापसाश्रममुत्तमम् ॥४७॥

अवतीर्यचतत्रासौप्रविश्यददृशेमुनिम् ।

कौश्यांवृष्ट्यांसमासीनंज्वलन्तमिवतेजसा ॥४८॥

सदृष्ट्वानृपतिप्राप्तं समुत्थायत्वरान्वितः ।

संभान्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्ष्यगानय ॥४९॥

पत्नी के न होने से धर्म की दिन-दिन हानि होती है तथा इस प्रकार नित्य क्रिया के नष्ट होने पर तुझे भी पतित भाव की प्राप्ति होगी ॥४३॥ हे राजन् ! मेरी उस पत्नी के गर्भ से जो सन्तान होगी, वह आपको धर्म पूर्वक अपनी आय का छठवां भाग देगी ॥४४॥ इन्हीं कारणों से मैं निवेदन कर रहा हूँ कि आप मेरी उसी पत्नी को लाकर दीजिये, क्योंकि हमारी रक्षा के निमित्त आप ही नियुक्त हैं ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण के ऐसे वचन सुन कर महाराज उत्तम कुल समय तक सोच विचार करके सर्व सामग्री सम्पन्न रथ पर चढ़े ॥४६॥ और रथ के द्वारा विचरण करते हुए एक महावन में श्रेष्ठ तपस्या मय आश्रम देखा ॥४७॥ तब रथ से उतर कर उन्होंने आश्रम में प्रवेश किया जहाँ कुशा के आसन पर अपने तेज से प्रकाशित एक श्रेष्ठ मुनि

की बंठे दृशा देता ॥४८॥ राजा का आगमन देख कर शीघ्रता पूर्वक उठते हुए मुनि ने उसका स्वागत-मन्तार किया और अपने निष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥४९॥

तमाहनिष्य शनवैदातव्योऽर्घ्योऽस्मिन्मुने ।

तदाज्ञापयसचिन्त्य । वाज्ञाहिन रोम्यहम् ॥

ततोऽव्रगतवृत्तान्तोभूपतेस्तस्यसद्विज ।

सम्भाषासनदानेनचक्रे सम्मानमात्मवान् ॥५०॥

विनिमित्तमिहायातोभवान्कितेचिकीपितम् ।

उत्तानपादननयवेष्टित्वामुत्तमनृप ॥५१॥

ब्राह्मणस्यगृहाङ्गाय्यकिनाप्यनहृतामुने ।

अविज्ञातस्वस्तेषातामन्वेत्तुमिहागत ॥५२॥

पृच्छामिद्यत्ते तन्मेत्वप्रणतस्यानुकम्पया ।

अभ्यागतम्याथगृहभगवन्वत्सुमहंसि ॥५३॥

पृच्छमाभवनीपालयत्प्रष्टव्यमसद्भितः ।

वत्सव्यचेत्तवभयाकथयिष्यामिन्तत्त्वत ॥५४॥

गृहागतायथामह्य प्रथमेदशनेमुने ।

त्वयाममुञ्चनादानु कथमोऽर्घ्योनिवर्तित ॥५५॥

इस पर निष्य ने कहा—मैं इन महाराज का अर्घ्यदान उचित होगा या नहीं, इसका निवार करके ही आज्ञा दीजिये, मैं आपकी आज्ञा का तत्काल पालन करूँगा, तब आत्मवान् मुनि ने सब वृत्तान्त जान लिया और धामन दे कर सम्भाषण द्वारा ही उत्तान राजा का सम्मान किया ॥५०॥ श्लेषि बोले—हे राजन् ! धार उत्तानपादननय उत्तम है, यह मुझे विदित है, परन्तु धार यहाँ क्यों आये है ? धारका इच्छित विषय क्या है, यह बताइय ॥५१॥ राजा ने कहा—हे मुने ! एत ब्राह्मण के घर से कोई अज्ञात व्यक्ति उसकी पत्नी को हर ले गया है, मैं उसी ब्राह्मणों की खोज व लिये यहा आया हूँ ॥५२॥ हे भगवन् ! मैं आपसे जा शिवस्र निवदन करता हूँ और धार भी अनुग्रह पूर्वक मुझे दृशा के योग्य समन कर उस कहन की आज्ञा दीजिये ॥५३॥ श्लेषि बोले—

हे राजन् ! आप जो पूछना चाहें, शंका रहित हो कर पूछें, कथन योग्य बात को मैं यथार्थ रूप में ही कहूँगा ॥५४॥ राजा ने कहा—मैं जब यहाँ आया था तब पहिले आप मुझे अर्घ्य देने की इच्छा करते थे, फिर आप उससे निवृत्त क्यों हो गये ? ॥५५॥

त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञोऽयंमयानृप ।

यदातदाहमेतेनशिष्येणप्रतिबोधितः ॥५६

एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ।

यथाहंसमंतीतंचवर्त्तमानंचसर्वतः ॥५७

आलोच्याज्ञापयेत्युक्तततोज्ञातंमयापितत् ।

ततो नदत्तवानर्घ्यमहतुभ्यंत्रिधानतः ॥५८

सत्यंराजंस्त्वमर्घ्यहिःकुलेस्वयम्भुवस्यच ।

तथापिनार्घ्ययोग्यत्वांमन्यामोवयमुत्तमम् ॥५९

किंकृतंहिमयाब्रह्माञ्जानादज्ञानतोऽपिवा ।

येनत्वत्तोऽर्घ्यमर्हामिनाहमभ्यागतश्चिरात् ॥६०

किंविस्मृतंतेयत्पत्नीत्वयात्यक्ताचकानने ।

परित्यक्तस्तयासाढ्वंत्वयाधर्मोत्तृपाखिलः ॥६१

पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतांनरः ।

किमत्रवार्पिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मणः ॥६२

पत्न्यानुकूलयाभाव्यंयथाशीलेऽपिभर्त्तरि ।

दुःशीलापितथाभार्यापोषणीयानरेश्वर ॥६३

ऋषि बोले—हे राजन् ! आपको देखते ही, जैसे ही मैंने अर्घ्य लाने की आज्ञा दी, वैसे ही इस शिष्य ने शंका व्यक्त की ॥५६॥ जैसे मैं अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के सभी गुप्त या प्रकट वृत्तान्त को भले प्रकार जानता हूँ, वैसे ही मेरा यह शिष्य भी मेरे प्रसाद से भूत, भविष्य, वर्त्तमान का ज्ञाता है ॥५७॥ इस शिष्य ने विचार कर आज्ञा देने का अनुरोध किया, तब मैंने सब बात जान कर आपको विधिवत् अर्घ्य नहीं दिया ॥५८॥ हे राजन् ! आप स्वायम्भुव मनु के वंशोत्पन्न हैं, इस लिये अर्घ्य के योग्य हो कर भी मेरे विचार

मे अर्घ्य के योग्य नहीं हैं ॥५६॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैंने जाने अर-
जाने में ऐसा कौन सा कार्य किया है, जिससे प्रथम बार आकर भी मैं अर्घ्य
के योग्य नहीं रहा ? ॥६०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! आपने अपनी पत्नी को
त्याग कर वन में भेज दिया है, क्या यह स्मरण नहीं रहा ? उस पत्नी के
त्याग के साथ ही आपने धर्म का भी त्याग कर दिया रागभी ॥३१॥ धर्म-
धर्म की हानि के एक पक्ष तक होने से मनुष्य स्पर्श के योग्य भी नहीं रहता,
तुम्हारी तो बर्षों ही कर्म-हानि हुई है, इसलिये अपनी अर्घ्य विषयक योग्यता
पर पर आप स्वयं ही विचार कीजिये ॥६२॥ हे राजन् ! जैसे पति के विप-
रीत चरित्र वाला होने पर भी पत्नी को पति की अनुगामिनी होना कर्त्तव्य
है, वैसे ही पत्नी के शील-रहित होने पर भी उसका भरण-पोषण पति का
कर्त्तव्य है ॥६३॥

प्रतिब्रूलाहि सापत्नी तस्य विप्रस्य याहता ।

तथापि धर्मनामोऽनीत्वामुद्घोषितवान् नृप ॥६४॥

चलत स्थापयस्य न्यास्वधर्मं पुमहोपते ।

त्वास्वधर्माद्विचलितमोऽप्यस्यापयिष्यति ॥६५॥

(द्वोपेवड गरीयेवाराजिचान्यायवर्तिनि ।

पापवृत्सुचविद्वत्सुनियताजतुरत्रक ॥

विलक्ष्य समहीपाल इत्युल्मतेन धीमता ।

तथेत्युक्त्वा वपप्रच्छहतापत्नीद्विजन्मन ॥६६॥

भगवन्वेन नीतासापत्नीविप्रस्य कुत्रवा ।

अतीतानागतवेत्तिजगत्यवितथ भवान् ॥६७॥

ताजहाराद्वितनमोबलाकोनामराक्षस ।

द्रश्यते चाद्यताभूपदपलावतकेवने ॥६८॥

गच्छमपोजयाशुत्रभार्ययाहिद्विजोत्तमम् ।

मापापास्पदनायातुत्वमिवासीदिनेदिन ॥६९॥

हे राजन् ! उस ब्राह्मण की हरण की गई पत्नी उसके प्रतिब्रूला है
तै भी वह उसकी इतनी इतनी खोज कर रहा है ॥६४॥ हे राजन् ! धर्म धर्म

को धर्म में स्थापित करने वाले आप ही हैं, परन्तु जब आप स्वयं ही धर्म को छोड़ेंगे तब आपको उसमें कौन प्रवृत्त करेगा ? ॥६५॥ (वन का गेंडा खेत के धान्य का भक्षण करके अपना निर्वाह करे, राजा अन्यायी हो या विद्वान् पुरुष पाप कर्म करे तो फिर शिक्षा देने वाला कौन होगा ?) मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के ऐसे वचन सुन कर राजा लज्जित हो गये और सब दोष स्वीकार कर, विप्र पत्नी का वृत्तान्त उन्होंने पूछा ॥६६॥ हे भगवन् ! आप विश्व के सभी भूत, भविष्य, वर्त्तमान के ज्ञाता हैं, अतः उस विप्र पत्नी को किसने हरण किया और कहाँ रखा है, यह बताने की कृपा करिये ॥६७॥ ऋषि बोले—हे राजन् उस ब्राह्मणी का हरण अग्नि के पुत्र बलाक नामक राक्षस ने किया है, उसे आप इस समय उत्पलावत नाम के वन में देखेंगे ॥६८॥ अब आप जाइये और ब्राह्मण को उसकी पत्नी को मिलाइये, जिससे उस ब्राह्मण को आपके समान पाप भागी न होना पड़े ॥६९॥

६२—द्विजभार्या को पति के घर भेजना

अथारुरोहस्वरथंप्रणिपत्यमहामुनिम् ।
 तेनाख्यातंवनंतच्चप्रययावुत्पलावतम् ॥१॥
 यथाख्यातस्वरूपांश्चभार्य्याभर्त्राद्विजस्यताम् ।
 भक्षयन्तींददशथिश्चीफलानिनरेश्वरः ॥२॥
 पप्रच्छचकथंभद्रे त्वमेतद्वनमागता ।
 स्फुटं ब्रवीहि वेशालेरपि भार्य्यासुशर्मणाः ३॥
 सुताहमतिरात्रस्यद्विजस्यवनवासिनः ।
 पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम् ॥४॥
 साहहृताबलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ।
 प्रसुप्ताभवनस्थान्तभ्रतृमातृवियोजिता ॥५॥
 भस्मीभवतुतद्रक्षोयेनास्म्येवंवियोजिता ।
 मरत्राभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिता ॥६॥

अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्झिता ।
नवेधिकारणवितत्रोपभुङ्क्तेनखादति ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उन महर्षि को प्रणाम करके स्वयं चढ़े और महर्षि द्वारा बताये हुए उत्पत्तावत वन में पहुँचे ॥१॥ वहाँ देखा कि पति के वतापे हुए रूप वाली वह ब्राह्मणी शीपल या रही है ॥२॥ उसे देखकर उन्होंने पूछा—हे भद्रे ! तुम वन में किस प्रकार आगयी ? तुम विशाल पुत्र सुशर्मा नामक ब्राह्मण की ही पत्नी हो न ? यह स्पष्ट बताओ ॥३॥ ब्राह्मणी बोली— मैं अतिरात्र नामक वनवासी ब्राह्मण की पुत्री और जिन विशाल पुत्र का आपने नाम दिया है, उनकी ही भार्या हूँ ॥४॥ मैं घर में अन्न करती थी, तभी पापी राक्षस मुझे भाई और माता से वियोग करके यहाँ ले आया है ॥५॥ अब मैं सब आत्मोपजनो से पृथक् होकर अत्यन्त दुःख पूर्वक यहाँ रह रही हूँ, जिस राक्षस ने मेरी यह दशा की है, वह भस्म होजाय ॥६॥ उन राक्षस ने इस निर्जन वन में मुझे खा रखा है, मुझे शान्त नहीं कि वह मेरा भक्षण या उपभोग क्यों नहीं करता है ? ॥७॥

अपितज्जापतेरक्षस्त्वामुत्भृज्यववर्षगतम् ।
अहभर्मानर्वापप्रेषितोद्विजनन्दिनि ॥८
अभ्यंभवाननस्यान्त उतिष्ठतिनिशाचर ।
प्रविश्यपश्यनुभवात्प्रविभेक्षितलोपदि ॥९
प्रविवेशतल सोयतयावर्त्मनिदक्षित ।
दहसोपरिवारणसमवेतचराक्षमम् ॥१०
दृष्टमात्रेनस्तस्मिस्त्वरमाण मराक्षसः ।
दूरादेश्वमहीमूर्ध्नास्पृशन्पादान्निःशययो ॥११
ममाश्रागच्छतामेहप्रसादस्तेमहान्वृतः ।
प्रनार्थिः करीभ्येषवमाभिपियेतय ॥१२
अप्यंचेमप्रनीक्ष्य वरथीयतापेदमामनम् ।
दयभृत्याभवान्त्वामीदृढमाज्ञापयस्त्वनाम् ॥१३

कृतमेवत्वयासर्वसवभिपचितिःकृताः ।

किमर्थब्राह्मणवधूस्त्वयानीतानिशाचर ॥१४

राजा ने कहा—तुम्हारे पति ने ही मुझे यहाँ भेजा है, क्या तुम्हें विदित है कि वह राक्षस इस समय कहाँ गया होगा ? ॥८॥ ब्राह्मणी बोली—इसी वन—प्रान्त में कहीं होगा, यदि उससे डर न हो तो, वन में प्रवेश करो तो वह दिखाई पड़ जायगा ॥९॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा मार्ग प्रदर्शित करने पर राजा ने वन में घुस कर अपने परिवारी जनों से घिरे हुए उस राक्षस को देखा ॥१०॥ वह राजा को देखते ही तुरन्त उठा और मस्तक से पृथिवी को स्पर्श करता हुआ राजा के चरणों के समीप आकर बोला ॥११॥ राक्षस ने कहा—महाराज की मुझे क्या आज्ञा है, जिस लिए मेरे घर पर पधारे हैं, मैं आपके राज्य में निवास करता हूँ, आप मुझे आज्ञा करिये ॥१२॥ यह अर्घ्य ग्रहण करिये, इस आसन पर विराजमान होइये, आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ, आप मुझे निःसंकोच आज्ञा दीजिये ॥१३॥ राजा ने कहा—तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन और अतिथि सत्कार भी उचित रीति से किया है, परन्तु यह बताओ कि तुम उस विप्रपत्नी को किसलिये हरण कर लाये हो ? ॥१४॥

नेयंसुरूपसन्त्यन्याभार्यार्थचेद्दधृतात्वया ।

भक्ष्यार्थचेत्कर्थनात्तात्वर्यैतत्कथ्यतांमम ॥१५

नवयमानुषाहाराग्रन्येतनृपराक्षसाः ।

सुकृतस्यफलंयत्तुतदर्शनीमोवयंनृपः ॥१६

(सुकृतस्यफलंयत्तुतत्तवध्याम्यहंनृप ।

राक्षसीयोनिमापन्नःक्रूरांलोकभयंकरीम् ।)

स्वभावंचमनुष्याणांयोषितांचविमानिताः ।

नामिषचसमश्नीमोनवयंजन्तुखादकाः ॥१७

यदस्माभिर्नृणांक्षान्तिर्भुक्ताक्रुध्यन्तितेतदा ।

भुक्तेदुष्टेस्वभावेचगुरावन्तोभवन्तिच ॥१८

सन्तिनःप्रभदाभूपरूपेणाप्सरसांसनाः ।

राक्षस्यंस्तासुतिष्ठत्सुमानुषीषुरतिःकथम् ॥१९

यद्येवानोपभोगायनाहारायनिशाचर ।

गृहप्रविश्यविप्रस्यतत्किमेपाहृतात्वया ॥२०॥

पत्नी बनाने को लाय है, यह भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कुरूप है, यदि भक्षणाय लाये हैं तो भक्षण क्यों नहीं करते ? यह सब मुझे यगार्थ रूप से बताओ ॥१५॥ राक्षस बोला—हे राजन् ! मनुष्य का भक्षण करने वाला नहीं है, मनुष्य भक्षी राक्षस अग्न्य होते हैं, मैं तो पुण्यफल का ही भोजन करता हूँ ॥१६॥ (हे नृप ! अन्न में पुण्य का फल बताया है, क्रूर और भय-दायक राक्षस योनि को प्राप्त हुआ मैं) सम्मान युक्त अथवा असम्मानित स्त्री-पुरुषों के स्वभाव का ही उदा भोजन करता हूँ, मैं जंतुभोजी राक्षस नहीं हूँ ॥१७॥ इस प्रकार क्षमागुण वाले स्वभाव का भोजन करने से क्रोध उत्पन्न होता है और दुष्ट स्वभाव का भोजन करने पर वह गुण युक्त होते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! मेरे पास अप्सराओं के समान रूपवती अनेक राक्षसी पत्नियाँ हैं, उनके होते हुए मैं मनुष्य स्त्री की वामना क्यों करता ? ॥१९॥ राजा ने कहा—यदि यह ब्राह्मणी तुम्हारे लिये भोग्य अथवा भक्ष्य नहीं थी तो तुमने इसका ब्राह्मण के घर से हरण क्यों किया ? ॥२०॥

मन्त्रवित्सद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेगतस्यमे ।

रक्षाघ्नमन्त्रपठनात्करात्युच्चाटननृप ॥२१॥

वयवुभुक्षितास्तस्यमन्त्राच्चाटनवर्मणा ।

वययाम सर्वयज्ञेषुसृष्टिविग्भवतिद्विज ॥२२॥

ततोऽम्माभिरिदतस्यवैकल्यगुपपादितम् ।

पत्न्याविनापुमानिज्यावमयोग्यानजामते ॥२३॥

वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामते ।

तन सराजातिभृशविपण्णःसमजायत ॥२४॥

वैकल्यमपविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ।

अनहंमर्धस्यचगामोऽप्याहमुनिसत्तम ॥२५॥

वैकल्यतस्यविप्रस्यराक्षसांऽप्याहमेयया ।

अपत्नीनतयासोऽहमद्वृटमहदास्थित ॥२६॥

एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरप्याहराक्षसः ।

प्रणामंनमोराजानंबद्धांजलिपुटोमुने ॥२७

नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादः क्रियतांमम ।

भृत्यस्थप्रणतस्येत्युष्मद्विषयवासिनः ॥२८

राक्षस बोला—हे राजन् ! वह ब्राह्मण मन्त्रवेत्ता हैं और सभी यज्ञों में जाकर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके मेरा उच्चाटन करते हैं ॥२१॥ जब वह मन्त्र पाठ द्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं क्षुधा से पीड़ित होकर कहाँ जाऊँ ? क्योंकि वह सभी यज्ञों में ऋत्विक् बनते हैं ॥२२॥ इसीलिये मैंने उनके चित्त को उद्विग्न किया है, क्योंकि भार्या के बिना पति कभी किसी यज्ञ-कर्म में समर्थ नहीं होना ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस द्वारा ब्राह्मण के चित्त का उद्विग्न किया जाना सुनकर राजा अत्यन्त क्षुभित हुए ॥२४॥ और उन्होंने सोचा कि ब्राह्मण को उद्विग्न किया कह कर यह राक्षस मेरी ही निन्दा करता है, इसी कारण उन ऋषिधर ने मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥२५॥ और अब यह राक्षस भी मुझ पत्नी-विहीन के समान ही ब्राह्मण की पत्नी का हरण करके उसको उद्विग्न किया कइता है, इसलिये मैं भी पत्नी-हीन होने से सङ्कट प्रस्त हो रहा हूँ ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा विचार कर ही रहे थे, तभी उस राक्षस ने पुनः विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, करबद्ध निवेदन किया ॥२७॥ हे राजन् ! मैं भी आपके राज्य का ही एक प्रजाजन हूँ, इस कारण इस सेवक को आज्ञा देकर कृतार्थ करिये ॥२८॥

स्वभावंदयमशनीमस्त्वयोक्तंयन्निशाचर ।

तदर्थिनोवयंयेनकार्येणशृणुतान्मम ॥२९

अस्यास्त्वयाद्यब्राह्मणादौःशील्यमुपभुज्यताम् ।

येनत्वयात्तदौःशील्यात्तद्विनीताभवेदियम् ॥३०

नीयतांयस्यभार्येयंतस्यवेश्मनिशाचर ।

अस्मिन्कृतेकृतंसर्वगृहमभ्यागतस्यमे ॥३१

ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ।

भक्षयामासदौःशील्यंनिजशक्तचानृपाज्ञया ॥३२

दो शील्येनातिर्गद्रेणपत्नीतस्यद्विजन्मन ।

तेनसासम्परित्यक्तातमाहजगतीपतिम् ॥३३

स्वकर्मफलपापेनभर्तुंस्तस्यमहात्मन ।

वियोजिताहृतद्वेतुरयमामोन्निशाचर ॥३४

नास्यदोषोनवातस्यममभर्तुंमहात्मन ।

ममंवदोषोनान्यस्यस्ववृत्तह्यपभुञ्जते ॥३५

राजा बोले—हे निशाचर ! तुमने स्वभाव भक्षण करने की बात कही है, अब मैं जिस कार्य के लिये आया हूँ, उसे सुनो ॥३३॥ तुम इस ब्राह्मणी के छोटे स्वभाव का भक्षण करो, क्योंकि ऐसा होने से इनके स्वभाव में विनम्रता आ जायगी ॥३०॥ ऐसा करने के पदवात् तुम इसे उन्नी के घर में पहुँचा दो, जिसकी यह पत्नी है, ऐसा करने से तुम्हारे द्वारा मेरे आनिष्य मत्वार की भी पूर्ति होगी ॥३१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अपनी माता के प्रभाव से उस राजा ने ब्राह्मणी के हृदय में प्रवेष्ट किया और उसका दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया ॥३२॥ तदन्तर अपने अत्यन्त दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई यह ब्राह्मणी राजा से बोली ॥३३॥ मैं अपने कर्म से ही अपने महात्मा स्वामी के वियोग को प्राप्त हुई हूँ, यह राजा उसका एकमात्र कारण है ॥३४॥ परन्तु इस राजा से या मेरे उस महात्मा पति का इतना बुद्ध भी दोष नहीं है, दोष तो मेरा ही है, क्योंकि स्ववृत्त कर्म का फल अथवा भोगना पड़ता है ॥३५॥

अग्यजन्मनिक्म्यापिविप्रयोगवृत्तोमया ।

सौम्यमयाप्युपगतवोदोषोऽभ्यमहात्मन ॥३६

प्रापयामितवादेनादिमाभर्तुं गृहप्रभो ।

यदन्यस्वरणीयतेतदाज्ञापयपायिव ॥३७

अस्मिन्वृत्तेनमयेत्वयामेरजनीवर ।

आगन्तव्यचतैरीरवाय्यंवालिस्मृतेनमे ॥३८

तथेत्युत्रानुतद्रथस्तामाशयद्विजाह्वनाम् ।

निन्येभर्तुं गृहमुदादौ शीन्यापगमात्तदा ॥३९

प्रतीत होता है कि पूर्ण किसी जन्म में मैंने किसी का वियोग कराया था, इसी से मेरा भी अपने पति से वियोग हुआ, इसमें इस राक्षस का क्या दोष है ? ॥३६॥ राक्षस ने कहा—हे महाराज ! आपकी आज्ञा से मैं इसे अभी इसके पति-गृह में पहुँचाता हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपका श्रीर क्या कार्य मैं करूँ ? ॥३७॥ राजा बोले—हे राक्षस ! इस कार्य को करके तुमने मेरे सभी कार्य कर दिये हैं, फिर भी हे वीर ! मेरे द्वारा स्मरण करने पर तुम मेरे पास उपस्थित होओ, यह स्वीकार करो ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस ने राजा की बात स्वीकार करके दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई उस ब्राह्मणी को उसके पति-गृह में जा पहुँचाया ॥३९॥

६३—ऋषि से उत्तम का कथोपकथन

तांप्रेषयित्वाराजापिस्वभर्तृ गृहमंगनाम् ।
 चिन्तयामासनिःश्वसन्किमत्रसुकृतंभवेत् ॥१
 अनर्घयोग्यताकष्टंसमामाहमहामनाः ।
 वैकल्यंविप्रमुद्दिश्यतथाहार्यनिशाचरः ॥२
 सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिंसा ।
 अथवाज्ञानदृष्टितपृच्छामिमुनिसत्तमम् ॥३
 संचिन्त्येत्यंसभूपालःसमारुह्यचतंरथम् ।
 ययौयत्रसधर्मात्मात्रिकालज्ञोमहामुनिः ॥४
 अवरुह्य रथात्सोऽथतंसमेत्यप्रणम्यच ।
 यथावृत्तंसमाचख्यौराक्षसेनसमागमम् ॥५
 ब्राह्मण्यादर्शनंचैवदौःशील्यापगमंतथा ।
 प्रेषणंभर्तृगेहेचकार्यमागमनेचयत ॥६
 ज्ञातमेतन्मयापूर्वयत्कृतंतेनराधिप ।
 कार्यमागमनेचैवमत्समीपेतवाखिलम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उम ब्राह्मणी को उमके पति के घर भेजकर राजा शीपं स्वाम लेते हुए सोचने लगे कि अब किंग बर्म के द्वारा मेरी भलाई हो ॥१॥ उन महर्षि ने मुझे पत्नी स्थाण के कारण अर्घ्य के अयोग्य बताया और इन राक्षस ने भी ब्राह्मण के प्रति पत्नी-वियोग से उत्पन्न बर्म हाति का विषय कहा ॥२॥ मैं अरुनी पत्नी का परित्याग किया है, अब मुझे क्या करना चाहिये, इन विषय में उन्ही ज्ञान दृष्टि वाले महर्षि से प्रश्न करूँ ॥३॥ ऐसा विचार करके राजा व्याख्य हुए और उन विवातज्ञ मुनि के आश्रम में पहुँचे ॥४॥ यथ से उत्तर कर उनके निकट उपस्थित हुए और प्रणाम करके ब्राह्मणी से मिलना, राक्षस से ममागम होना, ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का नष्ट होना और उमे उसके पति-गृह भेजकर पुन उनके पास आने का उद्देश्य भी प्रादि से श्रुत कर कहा ॥५-६॥ ऋषि से कहा—हे राजर्षि ! आपके द्वारा किया गया कार्य और प्राणके पुनरागमन का उद्देश्य यह सब मैं पहिले ही जान चुका हूँ ॥७॥

प्रष्टुमामिहृनिवार्यमयेत्युद्विग्नमानसः ।
 त्वभागतोमहीपालगुरुवार्यंचयत्त्वया ॥८
 पत्नीयमार्थकामानाकारणप्रवलनृणाम् ।
 विदीपतश्चघमंस्यसक्तम्यजताहिताम् ॥९
 अपत्नीवनरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम् ।
 ब्राह्मणदात्रियोवापिवेदयधृद्रोऽपिवानृष ॥१०
 त्यजताभवतापत्नीनशोभनमनुजितम् ।
 प्रत्याज्योहिषयाभर्तास्त्रीणाभार्यानयानृणाम् ॥११
 भगवन्निषरोम्येपविपाकोममवर्मणाम् ।
 नानुक्तानानुक्तस्ययस्मात्प्रकृततोमता ॥१२
 यच्चरुणोतितक्षान्तदह्यमानेनचेतसा ।
 भगवस्तद्वियोगार्तिविभीतेनान्तरारमना ॥१३
 साम्प्रततुवनेत्यक्तानवेधिषवनुमागता ।
 नक्षितायापिषिपिनेसिद्ध्यन्प्रनिष्ठाकर ॥१४

फिर भी आप स्वयं ही मुझसे प्रश्न करें, इसी की प्रतीक्षा में था. हे राजन् ! अब आप अपने कर्त्तव्य के विषय में सुनिये ॥८॥ मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम के साधन का प्रबल कारण भार्या ही है, जो भार्या का त्याग कर देते हैं, वह धर्म का भी त्याग करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही क्यों न हो, पत्नी को त्याग करके अपने कर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं होते ॥१०॥ हे राजन् ! आपने पत्नी का त्याग करके उचित कार्य नहीं किया है, जैसे स्त्री के लिये पति का त्याग अनुचित है, वैसे ही पति के लिये पत्नी का त्याग भी उचित नहीं है ॥११॥ राजा बोले—हे भगवन् ! मैं तो पत्नी का त्याग कर ही बैठा, अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥१२॥ उसके वियोग के कारण मेरा अन्तरात्मा क्षोभ से भरा हुआ है और चित्त दग्ध हो रहा है, इसीलिये उस पत्नी द्वारा किये सब अप्रिय आचरण भूल गया हूँ ॥१३॥ परन्तु, वन में त्यागी हुई मेरी पत्नी न जाने कहाँ चली गई होगी ? अथवा उसे सिंह, व्याघ्र या राक्षसों ने भक्षण कर लिया होगा, यह मुझे ज्ञात नहीं है ॥१४॥

नभक्षितासाभूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ।

सात्वविप्लुतचरित्रासाम्प्रतंतुरसातले ॥१५॥

सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूषिताकथम् ।

अत्युद्भुतमिदं ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६॥

पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चक्रपोतकः ।

तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥१७॥

सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ।

वेदितार्थेनपातालनीतासायुवतीतदा ॥१८॥

ततस्तस्यसुतासुभ्रूनन्दानाममहीपते ।

भार्यामनोरमाचास्यनागराजस्यधीमतः ॥१९॥

तथामातुःसपत्नीयंसाभवित्रीतिशोभना ।

दृष्टास्वगेहंसानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा ॥२०॥

यदातुयाचितानन्दानददातिनृपोत्तरम् ।

मूकाभविष्यसीत्याहतदातांतनयांपिता ॥२१॥

श्रुति ने कहा—हे राजन् ! निह, व्याघ्र अथवा राक्षस किसी ने भी उसका भक्षण नहीं किया है, वह इस समय विभुद्ध चरित्र युक्त होकर रसातल में रह रही है ॥११॥ राजा धौलि—हे ब्रह्मन् ! मेरी पत्नी रसातल में किसके द्वारा गई और किस प्रकार विभुद्ध होकर रहती है, यह प्रदभुत बात मुझे यथा-थत् बताने की कृपा करिये ॥१६॥ श्रुति ने कहा—हे राजन् ! कपोतक नाम के एक नागराज रसातल में रहते हैं, उन्होंने आपने द्वारा परित्यक्त उम रूपवती नारी को महावन में भ्रमण करते हुए देखा तो वह उस पर घनुरक्त होगये और अपना प्रयोजन बता कर वह उमे रसातल में ले गये ॥१७-१८॥ उन नागराज की पत्नी का नाम मनोरमा तथा बन्धा का नाम मन्दा है ॥१९॥ उस बन्धा ने इस सुन्दरी की अपनी माता की होने वाली सपत्नी जानकर उसे शत पुर में छिपा लिया ॥२०॥ जब नागराज इस सुन्दरी के विषय में अपनी पुत्री से कहते तब वह उन्हें कुछ उत्तर न देती थी, इस पर नागराज ने अपनी पुत्री मन्दा को सूँगी होने का पाप दे दिया ॥२१॥

एवशाप्तामुनातेनमाचास्येतन्नभूपते ।
 नीतातेनोरगेन्द्रेणमृतातस्मुतयासती ॥२२
 ततोराजापरहृपंमवाप्यतमपृच्छत ।
 द्विजवर्यस्वदीर्गम्यवारणद्विजाप्रति २३
 भगवन्मर्वलोबम्यमयिप्रीतिरनुना ।
 विन्नुतत्वारणयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥२४
 मनचासाप्रतीपेष्टाप्रारोभ्यांऽपिमहामुने ।
 साचमाप्रतिदुशीनाथूहितत्कारणद्विज ॥२५
 पाणिग्रहणकालेऽनूयमीमर्शनश्चरः ।
 मुक्त्वाचस्पतिभ्यावतत्रभार्माचलोकिता ॥२६
 तन्मृतेऽभवच्छन्द्रस्तस्यासोममुतस्तथा ।
 पत्स्परविपश्चातीननःसायिवलेभृगम् ॥२७
 तद्गच्छत्स्वधर्मेणपरिपालयमेदिनीम् ।
 पत्नीमहाभागवाञ्छत्रुधर्मवतीकिया ॥२८

इत्युवतेप्रसिपत्यैनमारुह्यस्थन्दनंततः ।

उत्तमःपृथिवीपालभ्राजगामनिजंपुरम् ॥२६

हे राजन् ! वह नागकन्या इस प्रकार अपने पिता के द्वारा शापित हुई है, फिर भी उसने इस सुन्दरी को पकड़ रखा है ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— इस पर राजा अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने अपनी पत्नी के अपने प्रति अभ्रिय भाव का कारण ऋषि से पूछा ॥२३॥ राजा बोले—हे भगवन् ! सभी मनुष्य मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, परन्तु मेरी अपनी ही पत्नी मुझ में अनुरागिणी नहीं है, इसका कारण क्या है ? ॥२४॥ हे महामुने ! मेरे प्राणों से अधिक प्रिय होने पर भी वह पत्नी मेरे प्रति कुव्यवहार करती है, उसका कारण मुझे बताइये ॥२५॥ ऋषि ने कहा—जिस समय आपका विवाह हुआ था, उस समय आप पर सूर्य, मंगल और शनिश्चर की तथा आपकी पत्नी पर बुध और बृहस्पति की दृष्टि थी ॥२६॥ उसी मुहूर्त्त में आपके बुध और आपकी पत्नी के चन्द्रमा परस्पर में घोर विपक्षी थे ॥२७॥ अब जाकर अपनी पत्नी से मिलो और सब प्रकार धर्म-कार्यों का अनुष्ठान और पृथिवी का पालन करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मर्हपि के ऐसा कहने पर महाराज उत्तम ने उन्हें प्रणाम किया और रथारूढ़ होकर अपने नगर में आये ॥२९॥

६४—गौतम मनु की उत्पत्ति

ततःस्वनगरंप्राप्यतंददर्शद्विजंनृपः ।

समेतंभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥१

राजवर्यंकृतार्थोऽस्मियतोधर्मोऽहिरक्षितः ।

धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयतामम ॥२

कृतार्थस्त्वंद्विजश्रेष्ठनिजधर्मन्निपालनात् ।

वयंसङ्घटिनोविप्रयेषांपत्नीनवेशमनि ॥३

नरेन्द्रसाहिविपिनेभक्षिताश्चापदर्यदि ।

क्रोधस्यवशमागम्यधर्मोऽनावेक्षितस्त्वया ।

अलतया किमन्यस्यानपाणिगृह्यते त्वया ।
 सति राजा गृहे कन्या शोभनानृपनन्दन ॥४
 न भक्षिता मेदयिताश्चापदे, माहि जीवति ।
 अविद्रूपितचारिश्चाकथमेतत्करोम्यहम् ॥५
 यदि जीवति तभायानिचैव धर्मिचारिणी ।
 अपत्नी कत्वतो जन्म किपाप क्रियते त्वया ॥६
 घानोतापि हि सा विप्रप्रतिकूलाम देवमे ।
 दुसायनसुग्रीया लतस्था भेदो न वै मयि ।
 यथा ते ब्राह्मणी विप्रवशात् तव सुदरी ।
 तथा त्वकुस्यत्नमेयथामावशगामिनी ॥७

मावण्डेयजी ने कहा—महाराज उत्तम ने अपने नगर में पहुँचकर उस
 ब्राह्मण को अपनी शीलवती पत्नी के साथ हृष सहित स्थित देखा ॥१॥ ब्राह्मण
 ने राजा से कहा—ए नृपश्रेष्ठ ! आपने धर्म क्या जाना होने के कारण मेरी
 पत्नी को साबर धर्म की रक्षा की है इसमें मैं धन्य हुआ हूँ ॥२॥ राजा
 ने कहा—हृ द्विजवर ! आप अपने धर्म पालन के कारण श्रुतवृत्त्य हुए हैं,
 परन्तु मेरे घर में धर्म नहीं है इसलिए मैं घोर विपत्ति में पड़ा हूँ ॥३॥
 ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! आपने क्रोधवश उम समय धर्म को नहीं देखा,
 अब उसे वही हिमक जीवो ने भक्षण कर लिया हो या किसी घोर प्रकार
 में मर चुके हों उसे उमने मारने की आज्ञा न करके किसी अन्य कन्या से
 विवाह क्यों नहीं कर लें ह राजन् ! राजाका के घर अपने कन्याएँ होगी
 ॥४॥ राजा ने कहा—मेरी पत्नी का किसी ने भक्षण नहीं किया, वह अभी
 भी विद्रुप चरित्र से जीवितारम्भा में है फिर मैं अन्य स्त्री का ग्रहण क्यों ?
 ॥५॥ ब्राह्मण बोला—यदि आपकी पत्नी अभी तक श्रेष्ठ चरित्र वाली होकर
 जीवित है तो उम छोड़कर पाप क्यों करते हैं ? राजा ने कहा—हे ब्रह्मर्ष !
 मैं उनसे भी आज्ञा तो वह मेरे अनुग्रह नहीं हागी, क्योंकि उसकी प्रीति
 मुझमें नहीं है इसमें मुझे दुःख ही होगा, अब आप वह तपाय करिये जिससे वह
 मेरे घर में आ सके ॥६॥

त्वयिसंप्रीतयेतस्यावरेष्टिरूपकारिणी ।
 क्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दां करोमिताम् ॥८
 अप्रीतयोःप्रीतिकरीसाहिसंजननीपरम् ।
 भार्यापत्योमनुष्येन्द्रतांतवेष्टिकरोम्यहम् ॥९
 यत्रतिष्ठतिसासुभ्रूस्तवभार्यामहीपते ।
 तस्मादानीयतांसात्तेपरांप्रीतिमुपैष्यति ॥१०
 (तस्यास्तवहितार्थायधर्मोयत्रनसीदति)
 इत्युक्तःसतुनिखिलसम्भारानननीपतिः ।
 आनिनायचकारेष्टिसन्त्रतांद्विचसत्तमः ॥११
 सप्तकृत्वःसतुतदाचकारोष्टिपुनःपुनः ।
 तस्यराज्ञोद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥१२
 यदारोपितमंत्रांताममन्यतमहामुनिः ।
 स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥१३
 आनीयतांनरश्रेष्ठयातवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ।
 भुंक्ष्वभोगांस्तयासाद्धयजयज्ञांस्तथादृतः ॥१४

ब्राह्मण बोला—मित्रता की कामना वाले उपकारी पुरुष जिस यज्ञ को करते हैं, उसी मित्रविन्दा नामक यज्ञ को मैं तुम्हारी पत्नी के लिए करूंगा ॥८॥ हे राजन् ! वह यज्ञ असन्तुष्ट स्त्री-पुरुष में प्रीति कराने वाला और शक्ति का देने वाला है, मैं उसी का आपके निमित्त अनुष्ठान करूंगा ॥९॥ आपकी वह पत्नी जहाँ रहती है, वहाँ से उसे ले आइये, वह अवश्य ही आपके प्रति परम कर्तव्य करने वाली हो जायगी ॥१०॥ (तुम्हारे हित के लिए ऐसे अवसर में धर्म की हानि नहीं होती) मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण का वचन सुनकर महाराज उत्तम ने सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री उपस्थित की और उस ब्राह्मण ने भी यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥१२॥ जब उसने उस राजमहिषी को अपने स्वामी के प्रति अनुरक्त समझा तब वह राजा से बोला ॥१३॥ हे राजन्, अब अपनी उस पत्नी को लाकर सांसारिक सुखों को भोगिये, और यत्न पूर्वक यज्ञ कार्यों को सम्पन्न करिये ॥१४॥

इत्युत्तमस्तेनविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ।
 सस्मारतमहावीर्यसत्यसन्धनिशाचरम् ॥१५॥
 स्मृतस्तेनतदासद्य समुपेत्यनराधिपम् ।
 विकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥१६॥
 ततस्तननरेन्द्रेणविस्तरेणनिर्वादते ।
 गत्वापातातमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥१७॥
 धानीताचातिहादेनसाददशतदापतिम् ।
 उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥१८॥
 सतनसगजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ।
 प्रियेप्रमत्तएवाहभूयाऽप्येवत्रवीपिकिम् ॥१९॥
 यदिप्रसादप्रवणनरन्द्रमयिते मन ।
 तदेतदभियाचेत्वातत्कुरुष्वममाहणम् ॥२०॥
 निशक्त्रूहिमत्तायद्भवत्याकिचिदोप्सितम् ।
 तदलभ्यनतभीस्तवायत्तोऽस्मिनान्यथा । ८

मार्कण्डेयजी न कहा—ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा अत्यन्त
 विस्मय को प्राप्त हुए और उ होने उमी समय उम महान् पराक्रमी राक्षस का
 स्मरण किया ॥१५॥ स्मरण करत ही व राक्षस उमी समय उपस्थित हुआ
 और उसी प्रणाम करता हुआ बोला—मुझे क्या आज्ञा है ? ॥१६॥ तब
 राजा न सब बात उम विस्तारपूर्वक बताया और तब वह पताल में जाकर
 रानी को भीष्ट ही लहर या गया ॥१७॥ रानी ने वहाँ आकर हासिक प्रीति
 सतिन अपने पति को दक्षा और प्रसन्न होयो इस प्रकार बारम्बार विनय
 करने लगी ॥१८॥ फिर राजा ने उत्कृतापूर्वक उमे हृदय से लगा लिया
 और बोले—हे प्रिये ! मैं तो तुम पर प्रसन्न ही हूँ । फिर तुम बारम्बार इस
 प्रकार क्यों कहती हो ? ॥१९॥ रानी न कहा—हे महाराज ! आप यदि मुझ
 पर प्रसन्न हैं तो मेरे पास सम्मान को प्राप्त रक्षा करें ॥२०॥ राजा बोले—
 अपनी विद्वान् बान गद्गा रहित मन में कहो, मेरे पास तुम्हारे लिए अप्राप्त
 बल ही नहीं है, मैं तुम्हारे ही बल में हूँ ॥२१॥

मदर्थतेननागेनसुताशप्तासखीमम ।
 मूकाभविध्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥२२
 तस्याःप्रतिक्रियांप्रीत्याममशक्रोतिचेद्भुवान् ।
 वाग्विघातप्रशान्त्यर्थततःकिंकृतंमम ॥२३
 ततःसराजातंविप्रमाहास्मिन्कीदृशीक्रिया ।
 तन्मूकतापनोदायसचतंप्राहृपार्थिवम् ॥२४
 भूपसारस्वतीमिष्टिकरोमिवचनात्तव ।
 पत्नीतवेयमानृष्यंयातुतद्वाक्प्रवर्तनात् ॥२५
 इष्टिसारस्वतींचक्रेतदर्थसद्विजोत्तमः ।
 सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहितः ॥२६
 ततःप्रवृत्तवाक्यांतांगर्गःप्राहरसातले ।
 उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्करः ॥२७
 इत्थंज्ञानंसमासाद्यनन्दाशीघ्रगतिःपुरम् ।
 ततोराज्ञींवरिष्वज्यस्वसखोमुरगात्मजा ॥२८
 तंचसंस्तूयभूपालंकल्याणोक्त्यापुनःपुनः ।
 उवाचमधुरंनागीकृतासनपरिग्रहा ॥२९

रानी ने कहा—नागराज की कन्या मेरी सखी है और वह नागराज के शापवश भूँगी हो गई है ॥२२॥ यदि आप मुझ पर प्रीति करते हैं और उसके भूँगेपन को दूर करने में समर्थ हैं, तो आपने अवश्य ही मेरा सब कुछ कार्य किया समझो ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब राजा ने उस ब्राह्मण से नागकन्या के भूँगेपन को दूर करने का उपाय पूछा ॥२४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! आपके वचन मानकर मैं सरस्वती की इष्टि करूँगा, क्योंकि आपकी यह पत्नी उसकी मूकता दूर होने पर ही ऋण से छूटेगी ॥२५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण ने सरस्वती की इष्टि का प्रारम्भ किया और यत्न पूर्वक सारस्वत सूक्त को अपने लगा ॥२६॥ तदनन्तर गर्ग ऋषि ने पाताल में वाक्शक्ति को प्राप्त हुई उस नागकन्या से कहा कि तुम्हारी सखी ने तुम्हारा

यह अत्यन्त बहिन उपकार किया है ॥२७॥ तब वह नागकन्या नन्दा अपनी
सखी के लिए उम नगर में आई और उाने रात्री को आलिंगन किया ॥२८॥
और वह रात्रा के भी गुण गाती हुई आसन पर बैठकर मगलमय वचनो
द्वारा कहन लगी ॥२९॥

उपकार कृतीवीरभवतायोममाधुना ।

॥३०॥

तस्याप्रतिहृतचक्रमस्याभुविभविष्यति ॥३१॥

सर्वार्यंशाम्बतत्रज्ञोघर्मानुष्ठानतत्पर ।

मन्वन्तरेऽङ्गरोषीमान्भविष्यतिसर्वमनुः ॥३२॥

इतिदत्त्वावरतस्मिन्नागराजसुतातत ।

सखीतासपरिष्वज्यपातालमगमन्मुने ॥३३॥

तत्रतस्यतयासाद्धैरमत पृथिवीपते ।

जगामकाल मुमहान्प्रजा पालयतस्तथा ॥३४॥

तत सत्तरमात्तनयः जज्ञे राजीमहात्मन ।

पौर्णमास्याययाकांतञ्चन्द्र सपूज्य ॥३५॥

हे वीर ! आपन जा मरा जो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय
अत्यन्त आर्तित हुआ है । अब मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे श्रवण करने ॥३०॥
हे रात्रन् ! आपकी अत्यन्त पगङ्गी पुत्र की प्राप्ति होगी और इस भूमण्डल
पर उमना अपण्ड राजा होगा ॥३१॥ आपका स्वार्थ साधक, शासन में
सत्प्रज्ञानी, धर्मानुष्ठान में सर्वत्र तत्पर वह मेरा ही पुत्र मन्वन्तर का स्वामी
मनु होगा ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा की वारम्भार कर
देनी हुई नागकन्या अपनी सखी का प्रणाम आलिंगन करके अपने हीर की
पई ॥३३॥ इस रात्री के माय विहार करते हुए और प्रजा का पालन करते
हुए राजा की बहुत समय व्यतीत हो गया ॥३४॥ फिर रात्री के गर्भ में
पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के मन्वान श्रेष्ठ कान्ति वाले पुत्र की उनसे उत्पत्ति
हुई ॥३५॥

तस्मिंश्चातेमुदंप्रापुःप्रजाःसर्वाःसहामरा ।
 देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपातच ॥३६॥
 तस्यदृष्ट्वावपुःकान्तंभविष्यंशीलमेवच ।
 श्रीत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रुःसमागताः ॥३७॥
 जातोऽयमुत्तमेवंशेवाल कालेतथोत्तमे ।
 उत्तमावयवस्तेनश्रीत्तमोऽयंभविष्यति ॥३८॥
 उत्तमस्यसुतःसोऽथनाम्नाख्यातस्तथोत्तमः ।
 मानुरासी तत्प्रभावोभागुरेश्रूयतांमम ॥३९॥
 उत्तमाख्यानमखिलंजन्मचैवोत्तमस्ययः ।
 नित्यंशृणोतिविद्वेषंसकदाचिन्नगच्छति ॥४०॥
 इष्टंदांरंस्तथापुत्रैर्बन्धुभिर्वाकदाचन ।
 वियोगोनास्यभविताश्रुवतःपठतोऽपिवा ॥४१॥
 तस्यमन्वन्तरंब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ।
 श्रूयतांतत्रयश्चन्द्रोयेचदेवास्तथर्षयः ॥४२॥

उनके जन्म लेने पर समस्त प्रजा आनन्द में मग्न होगई, देवताओं द्वारा वाद्य वादन और पुष्प वृष्टि की गई ॥३६॥ आगत मुनियों ने उसके स्वभावादि को देखकर उसका 'श्रीत्तम' नाम रखा ॥३७॥ मुनिगण बोले कि इसने उत्तम कुल, उत्तम काल और उत्तम अङ्ग सहित जन्म ग्रहण किया है, इसलिये यह 'श्रीत्तम' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥३८॥ मार्करण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! उत्तम के पुत्र होने से वह 'श्रीत्तम' नाम से प्रसिद्ध होकर मनु होगये, अब उनका प्रभाव कहता हूँ उसे सुनो ॥३९॥ जो मनुष्य राजा उत्तम के आख्यान और श्रीत्तम मनु के जन्म का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं होते ॥४०॥ तथा इसके सुनने या पढ़ने वालों को कभी इष्ट, मित्र, पुत्र, स्त्री और बन्धुओं का वियोग सहन नहीं करना पड़ता ॥४१॥ अब उनके मन्वन्तर के वृत्तान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो, हे ब्रह्मन् ! उस समय के देवताओं और ऋषियों के विषय में भी कहता हूँ ॥४२॥

६५—श्रीत्तम मन्वन्तर कथन

मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नोत्तमस्यप्रजापते ।
 देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम ॥१॥
 स्वधामानस्तथादेवामथानामानुवारिण ।
 मत्थारयश्चद्वितीयाऽन्यस्त्रिदशानातथामण ॥२॥
 तृतीयेतुगगदवा शिवान्यामुनिसत्तम ।

शिवास्वस्वपतस्नेतुश्रुता पापप्रणाशना ॥३॥
 प्रतर्दनाख्यश्चगगोदेवानामुनिसत्तम ।
 चतुर्थं स्तत्रस्थितश्रीत्तमस्यान्तरेमनो ॥४॥
 वशावतिन पचमेऽपिदेवास्तनगणद्विज ।

यथास्यातस्वरूपास्तुसर्वेऽवमहामुने ॥५॥
 एतेदेवगणा पचमृनायशभुजस्तथा ।
 मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठे सर्वेद्वादशकागणा ॥६॥
 तेषामिन्द्रामहाभागस्येनाक्यस्यश्चराऽनवन् ।

गतनगूनामाहृत्यमुजान्निर्नामनामत ॥७॥
 यस्यापमगनाप्रायनामाक्षरविभूयिता ।
 यथापिमानयेर्गायागीयतेतुमहोतले ॥८॥
 मानन्देवजो न वहा—ह मुन ।

के देवता, इन्द्र और शृषिणा के विषय में कहना है तृतीय मन्वन्तर
 'श्वधामा' नामक "उ स्वतामो व नाम के धनुरूप ही स्वज्योति से प्रकाशित
 है और द्वितीय गण का नाम 'सत्य है ॥२॥ तृतीय गण 'शिव' नाम से प्रसिद्ध
 है तथा इसने नाम का स्मरण करते ही बड़े पाप को नष्ट करके 'शिव' नाम
 को सार्यक करता है ॥३॥ ह मुन । शीत्तम मन्वन्तर के देवताओं का अनुसंगण
 'प्रतर्दन' नाम वाला है ॥४॥ पचम गण में 'वशावती' नामक देवता स्थित है,
 वे सब नाम के ही अतुल्य कार्य करन वाले हैं, है द्विजवर । इस मन्वन्तर में
 यज्ञ भोगी देवताओं के पाँच प्रकार के गण तथा प्रत्येक गण में द्वादश देवता

हैं ॥५-६॥ उन देवताओं के इन्द्र 'सुशान्ति' नामक हैं, जो सी अश्वमेध यज्ञ करके तीनों लोक के गुरु होते हैं ॥७॥ उन देवेन्द्र सुशान्ति का यह नाम और अक्षर से विभूषित वृत्तान्त भूतल में अब भी कहा जाता है ॥८॥

सुशान्तिर्देवराट्कान्तःसुशान्तिसंप्रयच्छति ।

सहितःशिवसत्याद्यैस्तथैववशवर्तिभिः ॥९

अजः परशुचिदिव्योमहाबलपराक्रमः ।

पुत्रास्तस्यमनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः ॥१०

तत्सूतिसम्भवैर्भूतिःपालिताभून्नरेश्वरैः ।

यावन्मन्वन्तरंतस्यमनोरुत्तमतेजसः ॥११

चतुर्युगानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ।

कृतत्रेतादिसंज्ञानियान्युक्तानिपुरामया ॥१२

स्वतेजसाहितपसोवरिष्ठस्यमहात्मनः ।

तनयाश्चान्तरेतस्मिन्सप्तसप्तर्षयोभवन् ॥१३

तृतीयमेतत्कथितंतवमन्वन्तरमया ।

तामसस्यचतुर्थंतुमनोरन्तरमुच्यते ॥१४

वियोनिजन्मनोयस्ययज्ञसाद्यांतितंजगत् ।

जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मञ्छूयतांगदतोमम ॥१५

अतीन्द्रियमशेषाणांमनूनांचरितंतथा ।

तथाजन्मापिविज्ञेयंप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥१६

वह तेजस्वी देवेन्द्र सुशान्ति शिवादि देवताओं के सहित सुख शान्ति के ने वाले हैं तथा उनके वंश में रहने वाले देवता भी इसी प्रकार के स्वभाव ले हैं ॥९॥ इन श्रीत्तम मनु के तीन पुत्र देवताओं के समान अत्यन्त पराक्रमी थे, जिनके नाम अज; परशुचि और दिव्य थे ॥१०॥ उनका मन्वन्तर जितने इतों तक रहा, उतने काल तक उनके वंशधर इस पृथिवी पर राज्य करते थे ॥११॥ इस मन्वन्तर में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि यह चारों युग हुए, उक्त प्रकार की कुछ अधिक चतुर्युगियों का मन्वन्तर कहा गया है ॥१२॥ इस मन्वन्तर में महातपा नामक महात्मा के सात पुत्र ही सप्तवि हुए थे ॥१३॥

यह तृतीय मन्वन्तर का वृत्तान्त हुआ, भव चतुर्थ मन्वन्तर के विषय में कहता है ॥१५॥ विभिन्न योनि जन्मा जिन मनु के मुयस से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हुआ उन मनु की उत्पत्ति कहता है, उसे तुम धरण करो ॥१५॥ इन सभी महात्मा मनुष्यो का चरित्र और उनके जन्म के प्रभाव को भवदय जानना चाहिए ॥१६॥

६६—तामम मन्वन्तर

राजामूदमुविचिन्त्यात स्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ।
 अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञ मयामेष्वपराजित ॥१॥
 तस्यायु मुमहृत्तमूर्धोणमुमहाघू ते ।
 (पुराभगवताविप्रमग्निगाराधितेनवं ।)
 पत्नीनाञ्चशततस्थ घन्यानामभवद्विद्वज् ॥२॥
 तस्यदोर्धायुषःपत्न्योनातिदीर्घायुषोमुने ।
 बालेनजग्मुर्निघनभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥३॥
 समार्थाभिस्तयामुक्तोभृत्यंश्चमहजन्मभि ।
 उद्विग्नचेता मप्रापवीयहानिमहनिदाम् ॥४॥
 तवीर्यहीननिभृतंभृत्यंस्त्यक्त मुदु पितम् ।
 प्रनन्तगोविमर्दाह्योराज्याच्च्यावितवास्तदा ॥५॥
 राज्याच्च्युत सोऽपिवनगत्वानिविष्ण्यमानस ।
 तपस्तेपेमहाभागोवितस्तापुलिनेस्थित ॥६॥
 प्रीप्सेपचतपाभूत्वावर्षास्त्वश्रावकानक ।
 जनसायोषधिदिरेनिराहारोपतत्रत ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—स्वराष्ट्र नामक एक राजा अनेक यज्ञों का करने वाला, मुट में सदा जीतने वाले, अत्यन्त पराक्रमी और शहीद थे ॥१॥ हे द्विज ! इनके मन्त्रियों की बारायता से प्रसन्न हुए भगवान् भास्कर ने उनको दोर्धा-

दुष्य वनप्रया था, उन राजा की 'धन्या' नाम की एक अत्यन्त सुन्दर भार्या थी ॥२॥ परन्तु, उन राजा की भार्याएँ दीषायु वाली नहीं थीं, इसलिये वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुईं और मन्त्रिगण तथा भृत्यगण भी काल के बशी-भूत होगये ॥३॥ राजा अपने सुहृदों, भृत्यों और भार्याओं के वियोग में उद्विग्न रहते हुए दिनोंदिन पराक्रम-हीन होने लगे ॥४॥ अक्सर प्राप्त कर एक निकटस्थ विमर्द नाम के राजा ने इस वीर्यहीन और विद्वामो भृत्यों से रहित दुःखित हृदय राजा को राज्य से अग्रह कर डाला ॥५॥ वह राजा अपने राज्य से हटने के कारण दुःख पूर्ण हृदय से वितस्तानदी के तट पर वन में रहते हुए तप करने लगे ॥६॥ वह शीघ्र काल में पञ्चाग्नि से तपते, वर्षा के समय खुले में बैठ कर भीगते और शीतकाल में जल में शयन करते आहार त्याग कर संयम पूर्वक तप करते थे ॥७॥

ततस्तापस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहान्प्लवः ।

बभूवानुदिनमेवैवर्षद्विरनुसन्ततम् ॥८

नदिभिविज्ञायतेपूर्वादक्षिणावानपश्चिमा ।

नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९

ततोऽतिपूरेणनृपःसनद्याप्रैरितस्तटम् ।

प्रार्थयन्नपिनावापह्नियमाणोऽतिवेगिना ॥१०

अथदूरेजलीधेनह्नियमाणोमहीपतिः ।

आससादजलेरौहीसपुच्छेजगृहेचताम् ॥११

तेनप्लवेनसययाब्रूह्यामनोमहीतले ।

इतश्चेतश्चान्धकारेआससादतटंततः ॥१२

विस्तारिपङ्कमत्त्यर्थदुस्तरंसनृपस्तरम् ।

तथैवकृप्यमाणोऽन्यद्रम्यंवनमन्वापसः ॥१३

तत्रान्धकारेसारौहीचकर्षवसुधाधिपम् ।

पुच्छेलग्नमहाभागंकृशंधमनिसन्ततम् ॥१४

फिर एक दिन, जब राजा तपस्या में रत थे, सब धीर वृष्टि होने से पृथिवी सर्वत्र जलमयी होगई थी ॥८॥ दिशाएँ अन्धकार से ढक गईं थीं, इस-

लिए दगिजादि जिमी भी दिया का जान नहीं हो रहा था ॥६॥ तब वह राजा
 बन का बेग से नदी तट में प्रवाहित होत हुए उन नदी क तट को नहीं पा
 सके ॥१०॥ फिर वह जल प्रवाह में बहने लगे, तभी उन्हें एक रोही दिखाई
 दी, ता उ होने उसकी पूँछ पकड़ ली ॥११॥ फिर उन विशाल जल समूह के
 खिंचे हुए पृथिवी के तल में पहुँचे और अँधरे में इधर-उधर टटोल कर किनारे
 को प्राप्त हुए ॥१२॥ मृगी के द्वारा लिखते हुए राजा उस विस्तृत और नठिनता
 से पार की जाने वाली कीचड़ से पार होकर एक सुरम्य वन में पहुँच गये ॥१३॥
 वह मृगी पूँछ का पकड़े हुए उन महाभाग राजा को अंधकार में खींचने
 लगी ॥१४॥

तस्याश्चस्पृशसभूतामवापमुदमुत्तमाम् ।

मोऽन्यकारेभ्रमन्भूपोमदनाकुटमानस ॥१४

विजायमानुरागतपृष्ठस्पृशानतत्परम् ।

नरेन्द्र तवृपस्यतमामृगीतमुवाचह ॥१५

विपृष्ठ वेपथुमतावरणस्पृशसेमम् ।

अन्यथैवान्यकायस्यसञ्ज्ञानानृपतेगति ॥१७

नास्थानेवामनायातनागम्याहनवश्चर ।

वितुल्यत्मज्ञमविघ्नमपलाले करोतिमे ॥१८

इतिश्रुत्वावचसन्स्यामृष्याश्चजगतापति ।

जातकौतूहलारोहीमिदवचनमब्रवीत् ॥१९

कात्वन्न हिमृगीवाक्यकथमानुपबद्धदेत् ।

कश्च वनालोपाविघ्नत्वत्सङ्गं कुरतेमम ॥२०

प्रहृत्तेदपिताभूपप्रागाममुत्पलावती ।

माय्यादाताग्रनहिपोदुहितादृढधन्यन ॥२१

ब* महाराज अचरित अचरे में विचरणा करते हुए मृगी के स्पर्श से

बामागत विल वान हाहर अत्यन्त धानन्दित हुए ॥१५॥ जब उन्होंने हम
 मृगी के पृष्ठ भाग का उस वन प्रवेश में जाकर स्पर्श किया, तब उन्हें अनुरक्त
 आनन्द वह मृगी बानी ॥१६॥ हे राजन् ! अपने कर्मिण हाथों से मेरी पीठ

का इस प्रकार स्पर्श क्यों कर रहे हो ? इस स्पर्श का अन्य भाव प्रतीत हो रहा है ॥१७॥ हे राजन् ! आपकी इच्छा अयोग्य के प्रति नहीं, गमन योग्य के प्रति ही हुई है परन्तु यह लोल आपके संसर्ग में बाधक हैं ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मृगी की यह बात सुनकर राजा ने विस्मय पूर्वक उससे कहा ॥१९॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर भी मानवी के समान किस प्रकार बोल रही हो तथा तुम्हारे संसर्ग में बाधा देने वाले कौन हैं, यह सब मुझे बताओ ॥२०॥ मृगी बोली—हे राजन् ! मैं आपकी प्रियतमा राजमहिषी तथा सती रानिषों में श्रेष्ठ एव दृढ़धन्वा की पुत्री उत्पलावती हूँ ॥२१॥

किन्नुयावत्कृतकर्मयेनेमांयोनिमागता ।

पतिव्रताधर्मपरासाचेत्थंकथमीदृशी ॥२२

अहंपितृगृहेवालासखीभिःसहितावनम् ।

रन्तुंगताददर्शकंमृगंमृग्यासमागतम् ॥२३

ततःसमीपवर्तिन्यामयासाताडितामृगी ।

मयाव्रस्तागतान्यत्रक्रुद्धःप्राहृततोमृगः ॥२४

मूढेकिमेवमत्तासिधिवतेदोःशील्यमीदृशम् ।

आधानकालोयेनायंत्वयामेविफलीकृतः ॥२५

चान्चश्रुत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषतः ।

भीतालमब्रुवंकोऽसीत्येतंयोनिमुपागतः ॥२६

ततःसप्राहपुत्रोऽहमृषेर्निवृत्तिचक्षुषः ।

सुतपानाममृग्यान्तुसाभिलाषोमृगीऽभदम् ॥२७

इमांचानुगतःप्रोम्णावाच्छ्रितश्चानयादने ।

त्वयावियोजितादुष्टे तस्मान्छ्वापंददामिते ॥२८

राजा ने कहा—तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिसके कारण तुम्हें इस योनि को प्राप्त होना पड़ा है ? मेरी वह भार्या तो पतिव्रता और धर्म-परायण थी फिर उसकी ऐसी दशा क्यों हुई ? ॥२२॥ मृगी ने कहा— मैं अपने पितृगृह में, बाल्यकाल में अपनी सखियों के साथ क्रीडा के लिये बन में गई थी, वहाँ एक मृग से युक्त मृगी को मैंने देखा ॥२३॥ फिर उसके पास

जाकर मैंने उस पर प्रहार किया तो वह मृगी मय के कारण वहाँ से चली गई, तब प्रीति होकर वह मृग मुझमें बोला ॥२५॥ हे सूर्य ! तेरी इतत तु धीलता का दिनकार है, तू ऐसी मत्त क्यों हो रही है ? तूने मेरे गर्भाधान काल को विपन्न कर दिया है ॥२५॥ उस मृग को मनुष्य के समान बोलते देखकर मुझे धरपन्त मय हुआ घोर मैंने उसमें पूछा—आपको इस मृगयोनि की प्राप्ति क्यों हुई है ? ॥२६॥ मृग ने कहा—मैं निवृत्तिवशु मुनि का पुत्र सुतपा हूँ, मैंने मृगी की इच्छा से मृग रूप धारण किया है ॥२७॥ इस मृगी की धमिलापा से, इसकी प्रीतिवश ही मैं इसका अनुगामी हुआ हूँ, परन्तु तूने उससे मेरा विधो करा दिया, इसलिय तूके क्षाप हूँगा ॥२८॥

मयाचाक्त तवाज्ञानादपराध वृत्तोमुने ।
 प्रसादकुर्यापमेतन्मवान्दातुमर्हति ॥२९
 इत्युक्त प्राहमानोऽपिमुनिरित्थमहीपते ।
 नप्रयच्छामिशापतेयद्यात्मानददासिते ॥३०
 मयाचोक्त मृगोनाहमृगरूपपरवाने ।
 लप्स्यसेऽयामृगीतावन्मयिभावानिवर्त्यनाम् ॥३१
 इत्युक्त सोपरस्ताश्च सप्राहस्फुरिताघर ।
 नाहमृगीत्वयेत्युक्त मृगीमूढभविष्यमि ॥३२
 ततोभृशप्रथयिनाप्रणाम्यमुनिमब्रुवम् ।
 स्वल्पस्यमतिक्रुद्ध प्रसीदेतिपुन पुन ॥३३
 बालानमिशावाक्यानातत प्रोक्तमिदमया ।
 पितर्यसतिनागीभिर्द्रियतेहिपति स्वयम् ॥३४
 सपिनातेनयचाहमृगोमिमुनिमत्तम ।
 मापराधापवापादोप्रसीदेयानमाम्यहम् ॥३५
 मैंने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! मुझमें वह अपराध पज्ञान के कारण है, तूपा है, क्षाप मुझ पर प्रयत्न होकर मुझे क्षापित न करे ॥२९॥ हे महाराज ! मेरी बात सुनकर वे मुझमें बोले—यदि मैं तुझमें क्षामदान कर सकूँ तो तुझे क्षापित नहीं करूँगा ॥३०॥ मैं मृगी नहीं हूँ, यन ने क्षापवाँ इसकी मृगी प्राप्ति

हो जायगी, इसलिये मेरे प्रति अपनी इस इच्छा को शान्त कीजिये ॥३१॥
 ऐसा सुनते ही उनके नेत्र क्रोध से लाल होगये और उन्होंने कम्पित होठों से
 कहा—तूने 'मैं मृगी नहीं हूँ' यह कहा है, इसलिये तू मृगी होगी ॥३२॥ तब
 मैंने व्यथित चित्त से मृग रूप धारी उन मुनि को प्रणाम पूर्वक कहा—मैं बाला
 हूँ, बात कहना भी नहीं जानती, इसीसे ऐसा कह बैठो, आप मेरे प्रति प्रसन्न
 हों, यदि पिता न हो तो कन्या अपने पति का वरण स्वयं करती है ॥३३-३४॥
 परन्तु, मैं अपने पिता के होते हुए आपका वरण कैसे कर सकती हूँ ? हे प्रभो !
 मेरे अपराध को क्षमा करिये, मैं आपके चरणों में वन्दन करती हूँ, आप
 प्रसन्न हों ॥३५॥

प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायांमहामते ।

इत्थंलालप्यमानायाःसप्राहमुनिपुङ्गवः ॥३६

नभवत्यन्यथाप्रोक्तंममवाक्यकदाचन ।

मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्नेवजन्मनि ॥३७

मृगत्वेचमहाबाहुस्तवगर्भमूषेयति ।

लोलोनाममुनेःपुत्रःसिद्धवायस्यभाविनि ॥३८

जातिस्मराभवित्रीत्वंतस्मिन्गर्भमुपागते ।

स्मृतिप्राप्यतथावाचंमानुषीमीरयिष्यसि ॥३९

तस्मिञ्जातेमृगत्वात्त्वंविभुक्तापतिनार्थिता ।

लोकानवाप्स्यसिप्राप्यायेनदुष्कृतकर्मभिः ॥४०

सोऽपिलोलोमहावीर्यःपितृशत्रून्निपात्यर्व ।

जित्वावसुन्धरांकृत्स्नांभविष्यतिततोमनुः ॥४१

एवंशापमहंलब्धावामृतातिर्य्यक्त्वमागता ।

त्वत्संस्पर्शश्चिगर्भोऽसौसंभूतोऽजठरेमम ॥४२

मुझे बारम्बार 'प्रसन्न हों, प्रसन्न हों' कहते देखकर उन मुनिश्रेष्ठ ने
 कहा ॥३६॥ मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता तो मरने के बाद पर जन्म
 में इसी वन में मृगी बनोगी ॥३७॥ जब तुम मृगी होजाओगी तब किसी सिद्ध
 वीर्यं मुनि का पुत्र 'लोल' तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा ॥३८॥ जब वह लोल

कुम्हार गर्भ में स्थित होगा, नर तुम पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली और
 मनुष्यो जैसी वाली बालक वाली होगी ॥३६॥ उस महाबाहु तेल के उत्पन्न
 होने पर तुम शाय मुक्त होकर पति व द्वारा सम्मानित होगी और जिन लालक
 का पापी मनुष्य प्रातः नहीं कर पात, उसी लालक का तुम प्रातः होगी ॥४०॥
 फिर वह मत्स्य-त पद्माम्नी लोल ही पिता के मनुष्यो का सहार करेगा तथा
 गमस्त पृथिवी का विजना मनु हाहा ॥४१॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्राप्त
 होकर मैं नियम् योनि को प्राप्त हूँ, कुम्हारों स्पर्श न मेरे जठर में वह गर्भ
 उत्पन्न हुआ है ॥४२॥

अतोऽब्रवीमिनास्याननवयातमनोमयि ।
 नचाप्यगम्यागभस्यानालाविघ्नकरात्यसौ ॥४३॥
 त्वमुक्तान्त माऽपिराजाप्राप्यपरामुदम् ।
 पुत्रोममानीक्षित्वतिपृथिव्याभवितामनु ॥४४॥
 ततस्तमुपुरपुत्रमामृषीन्क्षमात्स्वितम् ।
 तस्मिञ्ज्ञानचभूतानिन्ध्वाणिप्रयष्टुमुदम् ॥४५॥
 विशेषतश्चराजासौपुत्रजात महावन ।
 माविनुक्तामृषीसापात्प्रवनाकाननुत्तमान् ॥४६॥
 ततस्तस्यपय सर्वेनमभ्यमुनिमतम् ।
 अवश्यभाविनीमृदिनामचक्रुःसंहात्मन ॥४७॥
 तामसीभजमानायायानिमातयंजापत ।
 ततमाचातृन्लाकेताममाश्रयभविष्यति ॥४८॥
 ततःसनाममस्तनपिथात्तवद्वितावन ।
 जातनुद्विरवाचेदपिनरमुनिसत्तम ॥४९॥

इसीलिए मैंने कहा था कि आपकी मर प्रति अभिनाया गम्य के प्रति है,
 किन्तु पर गर्भ में स्थित लालक इन लालक से बाधक है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने
 कहा—मैंने तुम मनुष्य पर विजय प्राप्त करके मनुष्यो होगी, यह बात मुनिकर
 राजा मत्स्य-त दृष्टि हुए ॥४४॥ फिर उम मृषी व धीष्ट लक्षण वाल पुत्र की
 उत्पत्ति हुई उन समय सभी जीव आनन्द में मग्न हो गये ॥४५॥ इन महा-

पराक्रमी पुत्र के उत्पन्न होने से राजा को परम हर्ष हुआ और मृगी भी श्राप से मुक्त होकर अत्युत्कृष्ट लोक में गई ॥४६॥ हे मुनिवर ! फिर ऋषियों ने वहाँ आकर उसका भविष्य देखते हुए नामकरण किया ॥४७॥ वे बोले— विश्व के अन्धकार द्वारा ढके जाने पर तामसी योनि को प्राप्त हुई माता के गर्भ से इस बालक ने जन्म लिया, इसलिये इसका नाम 'तामस' हुआ ॥४८॥ हे मुने ! वह 'तामस' पिता के द्वारा उसी वन में वृद्धि को प्राप्त हुआ और समय पाकर बुद्धि के उदित होने पर वह पिता से बोला ॥४९॥

कस्त्वंतातकथंवाहंपुत्रोमाताचकामम ।

किमर्थमागतश्चत्वमेतत्सत्यं ब्रवीहिमे ॥५०

ततःपितायथावृत्तंस्वराज्यन्धावनादिकम् ।

तस्याचष्टे-महाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः ॥५१

श्रुत्वातत्सकलंशोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ।

अवापदिव्यान्यस्त्राणिससहाराण्यशेषतः ॥५२

कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वापितुरानीयचान्तिकम् ।

अनुजातान्मुंमोचाथसचस्बंधर्ममास्थितः ॥५३

पितापितस्यस्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञममाजितान् ।

विसृष्टदेहःसंप्राप्तोदृष्ट्वापुत्रमुखंसुखम् ॥५४

जित्वासमस्तांपृथिवींतामसाख्यः सपार्थिवः ।

तामसाख्योमनुरभूत्तस्यमन्वन्तरंशृणु ॥५५

हे तात ! आप कौन हैं ? मैं आपका पुत्र कैसे हुआ ? मेरी माता कौन हैं ? आप यहाँ किस लिये आये हैं, यह सब मेरे प्रति यथार्थ रूप से कहिये ॥५०॥ तब उन महाबाहु राजा ने अपने पुत्र को अपने राज्य से च्युत होने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥५१॥ उस तामस ने यह बात सुनकर भगवान् भास्कर की उपासना की और निर्वन्तन मन्त्र के सहित विभिन्न प्रकार के सब दिव्यास्त्र मन्त्र पूर्वक प्राप्त किये ॥५२॥ वे अस्त्र प्रयोग में निपुण होकर शत्रुजेता हुए और शत्रुओं को अपने पिता के पास लाकर उनकी आज्ञा से मुक्त कर दिया, इस प्रकार वे अपने धर्म की रक्षा में तत्पर हुए ॥५३॥ फिर उनके पिता ने

भी अपन पुत्र वा सुम देवका मुखपूर्वक देह-रथाग किया और यज्ञादि द्वारा सविन पुण्य के प्रभाव से उच्च लोको को प्राप्त हुए ॥५४॥ सम्पूर्ण पृथिवी के विवेका होकर तामस अपने नामानुसार मनु हुए, अब उनके मन्वन्तर के विषय में धरणा करो ॥५५॥

येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षय ।
 येपुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालका ॥५६॥
 मत्यास्तयान्यैमुषिय मुरूपाहरयस्तथा ।
 एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ॥५७॥
 महाबलमहावीर्यं शतयज्ञोपलक्षित ।
 शितिरिन्द्रस्तघातेपादेवानामभवद्विभु ॥५८॥
 ज्योतिर्षर्मापृथु काव्यश्चत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ।
 पीवरश्चतयात्रहान्सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥५९॥
 नर क्षान्ति शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्यथा ।
 पुत्रान्पुतामगम्यासनाजान सुमहाबला ॥६०॥
 इत्येतत्ताममविप्रमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
 य पठेच्छ्रापुयाद्वापितमसातवाध्यते ॥६१॥

उम मन्वन्तर के देवता, इन्द्र ऋषि और मनु के जिन पुत्रों ने पृथिवी की रक्षा की उनका वृत्तान्त सुनो ॥५६॥ हे मुने ! इस मन्वन्तर में सत्य, सुधी, मुरूप और हरि यह चार प्रकार के देवता गण हुए और प्रत्येक गण में सत्ता-ईस देवता हुए ॥५७॥ महाबली और पराक्रमी 'शिंगरी' नामक इन्द्र हुए, जो भी यज्ञ करके सप्त देवताओं के स्वामी बन ॥५८॥ उम मन्वन्तर में षो सप्तविंशति नामक ज्योतिर्षमा, पृथु काव्य, चंद्र, धनिः, वलर और पीवर हुए ॥५९॥ उन मनु के नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु, जघा इत्यादि महायुती एवं पराक्रमी पुत्र हुए ॥६०॥ इस प्रकार तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त यथाथं रूप में प्रोक्त प्रति बहो है, इनका पढ़ने या सुनने वाली वा यज्ञानाभकार बाधा नहीं रहती ॥६१॥

६७-रैवत मन्वन्तर

पंचमोपिमनुर्ब्रह्मैवतोनामविश्रुतः ।
 तस्योत्पत्तिविस्तरश्चःश्रृणुष्वकथयामिते ॥१॥
 रासीन्महाभागऋतवागिति विश्रुतः ।
 तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रोवत्यन्तेमहात्मनः ॥२॥
 सतस्यविधिवच्चक्रजातकर्मादिकाःक्रियाः ।
 तथोपनयनादींश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३॥
 यतःप्रभृतिजातोऽसीततःप्रभृतिसोप्यृषिः ।
 दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गवः ॥४॥
 मातातस्थपरामार्तिकुष्ठरोगादिपीडिता ॥३॥
 जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदुःखितः ॥५॥
 किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ।
 जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसंमुखीम् ॥६॥
 ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
 अपुत्रतामनुष्याणांश्रेयसेनकुपुत्रता ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मान् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पाँचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रेवती नक्षत्र के शेष में उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥२॥ उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि संस्कार किया, परंतु वह पुत्र शीलवान् नहीं था ॥३॥ हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय से ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दुःखित चित्त से विचार किया ॥५॥ 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इससे ऋतवाक्

शुद्धि को पत्थन दुग्ध हुआ और वे कुपुत्र से तो पुषहीन रसना ही ठोक है,
ऐसा सोचने लगे ॥७॥

कुपुत्रो हृदयायाससर्वंदाकुरुतेपितु ।
मातुश्च स्वर्गसस्थाश्च स्वपितृन्पातयत्यघः ॥८॥
मूहदानोपकारायपितृणां च न कृतये ।
पित्रोर्दुःखायधिगन्मतस्यदुष्कृतकर्मण ॥९॥
धन्यामृततनयायेपासर्वलोकाभिसमता ।
परोपवारिणो दान्ता साधुवर्मण्यनुव्रता ॥१०॥
अनिवृत्ततथामन्दपरलाकपराडमुत्तम् ।
नरकायनमद्गत्येकुपुत्रालम्बिजन्मन ॥११॥
वरोनिमूहदादेन्यमहिनागातथामुदम् ।
अबालेचजरापित्रो वृसुत कुरुतेध्रुवम् ॥१२॥
एवमत्यन्तदृष्टम्यपुत्रस्य चरितैर्मनि ।
दह्यमानमनावृत्तिवृत्तगर्गमपृच्छत ॥१३॥
गुणनेनपुरावेदागृहीताविधिवन्मया ।
समाप्यवेदान्विधिवत्कृतादारपरिग्रह ॥१४॥
सदारैर्णाक्रयाः कार्यी श्रीनाः स्मार्त्तावपट्क्रिया ।
नमन्युता वृता काश्चिदावदद्यमहामुने ॥१५॥

क्योंकि कुपुत्र मदा ही माता पिता व हृदय को पीड़ित करता रहता है और स्वर्गवासी पितरों का भी वहाँ से पतित करता है ॥८॥ उसके द्वारा गुह्रहो का भी कोई उपकार नहीं हो पाता और न पितरों की ही तृप्ति होनी है, माता पिता के नियम दुग्ध के कारण रूप ऐसे पुत्र को धिक्कार है ॥९॥ पितरों मन्ति मत्र व द्वारा सहायित, परापकार रत, मन्यकर्म वाली और पान्न प्रश्रुति की है, वही वृद्धत्व हैं ॥१०॥ हमारा जन्म परलोक में विमुख, कुपुत्र का आश्रयी और नरक क निर्मित ही हुआ है, श्रेष्ठ गति के लिये नहीं हुआ ॥११॥ कुपुत्र मदा मुह्रहो को दीन, धरकार करने वालों को प्रसन्न और माता पिता को वृद्धावस्था प्राप्त करने वाला है ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

इस प्रकार दुश्चरित्र पुत्र के विपरीत आचरण से मन में दग्ध होते हुए उन ऋषि ने गर्ग ऋषि से सम्भूरां वृत्तान्त कह कर उनसे पूछा ॥१३॥ ऋतवाक् बोले—मैंने श्रेष्ठ व्रतों का अनुष्ठान करते हुए विधि सहित वेदों का अध्ययन किया है और इसके पश्चात् विधि पूर्वक स्त्री का पाणिग्रहण किया है ॥१४॥ श्रौत, स्मार्त और वपट्कार रूप जो कर्म पत्नी के सहित करने का निर्देश है, यह सब मैंने किये हैं और उन व्रतों के अनुष्ठान में झुटि नहीं होने दी है ॥१५॥

गर्भाधानविधानेननकाममनुरुध्यता ।

पुत्रार्थजनितश्चायंपुत्राम्नोबिभ्यतामुने ॥१६

सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ।

अस्मद्दुःखावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥१७

रेवत्यन्तेमुनिश्चेष्टजातोऽयंतनयस्तव ।

तेनदुःखायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥१८॥

नतेऽपचारोर्नवास्यमातुर्नायंकुलस्यते ।

तस्यदौःशील्यहेतुत्वरेवत्यन्तमुपागतम् ॥१९

यस्मान्मभैकपुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ।

दौःशील्यमेतत्सातस्मात्पततामाशुरेवती ॥२०

तेनैवंव्याहृतेशापेरेवत्यृक्षंपपातह ।

पश्यतःसर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतसः ॥२१

पुत्राम नरक से डर कर और उससे मुक्त होने के निमित्त मैंने विधिवत् गर्भाधान द्वारा इस पुत्र को जन्म दिया है, कामासक्त होकर इस पुत्र की उत्पत्ति नहीं की है ॥१६॥ हे मुने ! फिर भी यह बालक हमारे लिये दुःखदायी, बन्धुओं को शोक प्रदान करने वाला तथा शुरे स्वभाव का उत्पन्न हुआ है, ऐसा आत्मदोष से या मेरे दोष से हुआ है ? ॥१७॥ गर्गजी ने कहा—हे मुनिवर ! तुम्हारा पुत्र रेवती के अन्त में उत्पन्न हुआ है, उस दुष्ट काल में जन्म लेने के कारण ही, यह तुम्हारे लिये दुःखदायी हुआ है ॥१८॥ यह तुम्हारे, तुम्हारी पत्नी के या तुम्हारे वंश के धर्म के व्यतिक्रम से इस प्रकार का नहीं हुआ, इसके दुष्ट स्वभाव का कारण रेवती का अंतिम काल ही है ॥१९॥ ऋतवाक्

बोले—जित रेवती के अन्न में उत्पन्न होने के कारण मेरा एकमात्र पुत्र ऐसे धुंरे स्वभाव का हुआ है, उस रेवती का यौघ ही यवन हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋतवाक् ऋषि ने जब ऐसा शपथ दिया, तब सबके सामने उस रेवती नक्षत्र की गिरता हुआ देखकर सभी आश्चर्यचकित होगय ॥२१॥

रेवत्यक्ष चपतितकुमुदाद्रीसमन्तत ।

भातयामासमहमावनकन्दरनिर्करान् ॥२२॥

कुमुनाद्रिश्रतत्पानात्प्यातोरैवतकोऽभवत् ।

अनोवगम्य सर्वम्यापृथिव्यापृथिवीधरः ॥२३॥

तम्यर्थास्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीमर ।

तनोजज्ञे तदाकन्यारूपेणातीवशोभता ॥२४॥

रेवतीकान्तिमन्भूतानादृष्ट्वाप्रमुचोमुनि ।

तस्यानामनकारेत्यरेवतीनामभागुरे ॥२५॥

पोपयामामचंवंताम्वाश्रमाभ्यासम्भवाम् ।

प्रमुच गमहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले ॥२६॥

तानुयोवनिनीदृष्ट्वावन्यकान्पशालिनीम् ।

समुनिश्चिन्तयामामकोऽस्याभर्ताभवेदिति ॥२७॥

एवचिन्तयतस्तस्ययौवालोमहान्मुने ।

नयाममाद्रमदृशवरतस्यामहामुनिः ॥२८॥

कुमुदं यवन में महता गिरकर उस रेवती नक्षत्र ने उसकी सभी दिशाएँ, धन, धनदा आदि को प्रदानित कर दिया ॥२२॥ पृथिवी भर में अत्यन्त रमणीय वह कुमुदं पर्वत भी रेवती के गिरत से रैवतक के नाम से हुआ ॥२३॥ उमकी कान्ति में कमल पुष्प सरौंर दृष्ट्वा घोर उम टरोवर में एक अत्यन्त रूप बनी कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥ उम कन्या को रेवती से उत्पन्न हुई देखकर प्रमुचमुनि ने उमका नाम 'रेवती' रखा ॥२५॥ वह महाभाग ऋषि रैवतक पर्वत में घटने आश्रम के निकट उत्पन्न हुई कन्या का पालन करने लगे ॥२६॥ उस रूपवती कन्या को पुशागस्या में सम्पन्न देखकर मुनि सोचने लगे कि इसका

पति कौन होगा ॥२७॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु उसके योग्य कोई भी वर दिखाई न दिया ॥२८॥

ततस्तस्यावरंद्रष्टुमग्निसप्रमुचोमुनिः ।

विवेशवह्निशालां वैपृष्टस्तंप्राहृहृव्यभुक् ॥२९

महाबलो महावीर्यः प्रियवाग्धर्मवत्सलः ।

दुर्गमो नाम भविता भर्त्ता ह्यस्यामहीपतिः ॥३०

अनन्तरश्च मृगया प्रसङ्गे नागतो मुने ।

तस्याश्रमपदं धीमान्दुर्गमः स न राधिपः ॥३१

प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः ।

पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२

सप्रविश्याश्रमपदं तां तन्वीजगतीपतिः ।

अपश्यमानस्तमृषिप्रियेत्यामन्व्यपृष्टवान् ॥३३

ववगतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः ।

तंप्ररोतुमिहेच्छामितत्त्वं प्रब्रूहि शोभने ॥३४

अग्निशालांगतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्यै भाषितम् ।

प्रियेत्यामन्त्राणां चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥३५

सददर्शमहात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः ।

नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥३६॥

तब अग्नि से पूछने के लिये अग्निशाला में गये, इस पर अग्नि ने उनसे कहा ॥२९॥ इस कन्या के पति महाबली, पराक्रमी, प्रियवक्ता, धर्मवत्सलं दुर्गम नामक महीपाल होंगे ॥३०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! इसके पश्चात् स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वश में उत्पन्न हुए विक्रमशील नरेश की कालिन्दी नाम की रानी से उत्पन्न हुए अत्यन्त पराक्रमी वह राजेन्द्र दुर्गम मृगया के पीछे मुनि के उस आश्रम में पहुंचे ॥३१-३२॥ उन्होंने आश्रम में ऋषि को न देखकर उस कृशांगी कन्या से ही उनके विषय में 'प्रिये' कहकर पूछा ॥३३॥ हे सुन्दरी ! वह मुनिवर कहाँ गये हैं मुझे यह बताओ, क्योंकि उन्हें प्रणाम करने की इच्छा से उपस्थित हुआ हूँ ॥३४॥ श्री मार्कण्डेयजी ने

कहा—यद् विश्वभृशु अग्निनाला मे गये हुए थे, वह राजा का बचन और 'प्रिय' मन्वोधन मुनिकर अग्निनाला मे बाहर निकले ॥३१॥ और उन्होंने राज-नक्षत्र मे विभूषित और विनयनत महाराज दुर्गम की देखा ॥३६॥

तस्मिन्हृष्टेतत निप्यमुवाचमनुगोतमम् ।

गोनमानीयताशीघ्रमर्घोऽभ्यजगतीपते ॥३७

एवम्नावदयभूपश्चिरकालादुपागत ।

जामाताश्चविशेषेणयोग्योऽवस्थमतोमम ॥३८

तत सचिन्तयामामराजाजामातृकारणम् ।

विवेदचननन्मानीजगृहेऽर्घ्यचतन्नृप ॥३९

तमामनगतविप्रोऽगृहीताघमहामुनि ।

भ्यागतप्राहरजेन्द्रमपितेकृशमगृहे ॥४०

कोशेवनेऽर्थमिधेपुभृन्व्यामात्यनरेभ्यर ।

तथात्मनिमज्ञावाहोपप्रसर्वप्रतिष्ठितम् ॥४१

पन्नीचनेकुनतिनीयतावानुतिप्रति ।

पृच्छाम्यम्यास्ततीना हकुः शिन्योऽपरास्तत्र ॥४२

उन्हें इमकर ऋषि न अपन गौतम नामक शिष्य की अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥३७॥ उन्होंने कहा कि एक तो बहुत समय के पदधातु यहाँ इनकी प्राणमन हुआ है, दूसरे यह जामाता भी हैं, इसलिए यह अर्घ्यदान के अति प्राण है ॥३८॥ माकण्डेयजी ने कहा—ऋषि द्वारा जामाता बड़े जाने पर राजा सोचन लगे कि कभी यह शब्द कहा, परन्तु वह कुछ समझ न पाये और मीन रह कर अर्घ्य ग्रहण किया ॥३९॥ अर्घ्य ग्रहण के पश्चात् वे अर्घ्य प्राप्त कर बैठे तब उनका महामुनि ने कहा—हे राजन् ! आप यहाँ सुख पूर्वक तो आ गये ? आपका कोशाल तो ठीक है ? आपकी सेवा, मित्र, शिष्य और मन्त्रिण तो कुशल पूर्वक हैं ? आप सबके आश्रय स्थान भी सकुशल तो हैं ? ॥४०-४१॥ आपकी पत्नी यहाँ कुशल पूर्वक रह रही है, इसीलिये मैंने उस विषयक कुशल प्रश्न नहीं किया, इसके अनिश्चित, आपके पुत्र की अर्घ्य लाना तो कुशल से है ? ॥४२॥

त्वत्प्रसादादकुशलं न ववचिन्मम सुव्रत ।
जातकौतूहलश्चास्मिमम भाय्यात्रिकामुने ॥४३॥
रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ।
तव भाय्याविरारोहातां त्वं राजघ्नवेत्सिकिम् ॥४४॥
सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभाम् ।
सुराष्ट्रजां सुजातां च कदम्बां च वरूथजाम् ॥४५॥
विपाठां नन्दिनीं चैव वेद्मि भाय्यागृहे द्विज ।
तिष्ठन्तमेव भगवन् रेवतीवेद्मि कान्वियम् ॥४६॥
प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी ।
किं विस्मृतं ते भूपालश्लाघ्येयं गृहिणी तव ॥४७॥
सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टो न मे मुने ।
नात्र कोपं भवान् कर्तुं महंत्यस्मात्सुयाचितः ॥४८॥
यत्त्वं ब्रवीषि भूपालनभावस्तव दूषितः ।
व्याजहार भवानेन तद्वह्निना नृपचोदितः ॥४९॥

राजा ने कहा—हे सुव्रत ! महामुने ! आपकी कृपा से मेरी सब प्रकार

से कुशल है, परन्तु, यह मेरी पत्नी कौन-सी है, इसे जानने के लिये मुझे कुतू-
हल हुआ है ॥४३॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! रेवती नाम की तीनों लोकों में
अद्वितीय सुन्दरी आपकी पत्नी है, क्या आप उसे नहीं जानते ? ॥४४॥ राजा
ने कहा—हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता,
कदम्बा, वरूथजा ॥४५॥ विपाठा और नन्दिनी यह मेरी पत्नियाँ हैं, इन्हें मैं
भले प्रकार जानता हूँ, क्योंकि वह मेरे ही घर में रहती हैं, परन्तु मैं अपनी
रेवती नाम की पत्नी को नहीं जानता कि वह कौन-सी है ? ॥४६॥ ऋषि ने
कहा—वर को वरण करने के लिये तत्पर जिस कन्या को आपने 'प्रिये' कहा,
वही आपकी प्लावनीय पत्नी है, हे राजन् ! क्या तुम उसे भूल गये हो ? ॥४७॥
राजा ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! आपका कथन सय है, परन्तु मेरे द्वारा किये
गये 'प्रिये' सम्बोधन में मेरा कोई दुष्ट भाव नहीं था, इसलिये आप मुझ पर
क्रोध न करें ॥४८॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! आपका दुष्ट भाव नहीं था,

यह सत्य ही है, परन्तु आपके द्वारा यह सम्बोधन अग्नि की ही प्रेरणा से हुआ है ॥८९॥

मयापृष्टादृतवह कोऽन्याभर्त्तेतिपाधिष्व ।
 भवितातनचाप्युक्ताभवानवाद्यव्वर ॥ ५०
 तद्गृह्यतामयादत्तानुभ्यवन्यानराधिष ।
 प्रियत्यामन्त्रिताचयविचारकुरूपकथम् ॥५१
 ततासावभवन्मैनीतेनोक्त पृथिवीपति ।
 ऋपिभ्तयाद्यत वतु तस्यावैवाहिकविधिम् ॥५२
 तमुद्यतसापित्तरेविवाहायमहामुन ।
 उवाचव्यायार्त्तिकचित्प्रश्रयावनतानना ॥५३
 यदिमप्रीतिमास्तातप्रसादकतु महसि ।
 ग्वत्पृष्टेविवाहमेतत्स्वर्गोनुप्रमादित ॥५४
 रवत्यक्षनवभद्र चन्द्रयागिव्यवस्थितम् ।
 ग्रन्यानिमत्तिसृक्षाणिमुभ्रुवैवाहिकानित ॥५५
 ताततनविनावाताविपन प्रतिभातम ।
 विवाहोविफलानमद्विधाया वयभवेत् ॥५६

ह भूने ! मैंने अग्नि से आपके प्रति ये विषय में पूछा था तब अग्नि ने आपका हा इमत्र प्रति होन की बात कही थी ॥५०॥ इमलिय हे राजन् ! आपने त्रिपक्ष प्रति प्रिय कहा है वह क्या मैं आपको प्रदान करता हूँ आप इमत्र विचार क्या करत हैं इसे प्रहृष्ट करिय ॥५१॥ माण्डव्येयजी ने कहा—ऋषि व वचन सुनकर राजा मोन हो गय और ऋषि भी गस्कार व काय सम्पादन में तत्पर हुए ॥५२॥ जब क्या न मुनि को करने में तन्त्र तथा तत्र उमन विनय पूर्वक विवन्त्र किया ॥५३॥ हे तात ! आपकी मुक्त में प्रीति है और यदि आप मुक्त पर प्रमत्त हैं तो मरा गस्कार केवर्ती नश्यत में सम्पन्न करें ॥५४॥ ऋषि ने कहा—देवती नक्षत्र याग में अवस्थित नहीं है परन्तु, विवाह-आप में श्रेष्ठ प्राय मभी नक्षत्र विद्यमान हैं ॥५५॥ क्या ने कहा—हे तात ! देवती नक्षत्र में यजित समय

विषय में विकल जान पड़ता है, मेरे जैसी कन्या का विवाह विकल समय में कैसे होगा ? ॥५६॥

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वीरेवतींप्रति ।

चकारकोपंक्रुद्धे नतेत्क्षीविनिपातितम् ॥५७

मयाचास्मैप्रतिज्ञाताभार्येतिमदिरेक्षणा ।

नचेच्छसिविवाहंत्वंसंकटनःसमागतम् ॥५८

ऋतवाकसमुनिस्तातकिमेवंतप्तवांस्तपः ।

नत्वयाममतातेनब्रह्मबन्धोःसुतास्मिकम् ॥५९

ब्रह्मबन्धोःसुतानत्वंवालेनैवतपस्विनः ।

सुतात्वंममयोदेवान्कर्तुंमन्यान्समुत्सहे ॥६०

तपस्वीयदिमेतातस्तत्किमृक्षमिदंदिवि ।

समारोप्यविवाहोमेतदृक्षेक्रियतेनतु ॥६१

एवंभवतुभद्रन्तेभद्रेप्रीतिमतीभव ।

आरोपयामीन्दुमार्गेरेवत्यृक्षकृतेतत्र ॥६२

ततस्तपःप्रभावेणरेवत्यृक्षमहामुनिः ।

ऋषि बोले—पहिले ऋतवाक् नामक प्रख्यात तपस्वी ने रेवती नक्षत्र को क्रोध पूर्वक आकाश से पतित कर दिया है ॥५७॥ मैं राजा को वचन दे चुका हूँ कि इस कन्या को मैं तुम्हें पत्नी रूप में दूँगा, इसलिये इस समय विवाह के लिये तुम्हारा सहमत न होना मुझे सङ्कट में डाल रहा है ॥५८॥ कन्या ने कहा—हे तात ! उन ऋतवाक् मुनि ने ऐसा कौन-सा तप किया है, जो आप जैसे मेरे पिता द्वारा साबित नहीं हो सका, तो क्या मैं किसी ब्रह्मबन्धु को कन्या हूँ ? ॥५९॥ ऋषि बोले—तुम ब्राह्मण बन्धु की नहीं हो और न किसी साधारण तपस्वी की ही पुत्री हो जो, जो ऋषि देवताओं को जन्म देने में समर्थ हो, उसी मुझ ऋषि की तुम पुत्री हो ॥६०॥ कन्या ने कहा—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी है तो वे उस नक्षत्र को आकाश में स्थित करके, उसी नक्षत्र में मेरा विवाह-संस्कार क्यों नहीं कर सकते ? ॥६१॥ ऋषि बोले—ऐसा ही होगा, तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रीतिमती होओ, तुम्हारे हित के लिये रेवती

नदान को मैं चन्द्रमार्ग में स्थित करि देना हूँ ॥६२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—
हृदितप्रोष्ठ । नदनर सन मर्हपि न अपने नप के बल से रेवती नक्षत्र को पहिले
के ही गमान चन्द्रमा मे स्थित कर दिया ॥६३॥

यथापूर्वन्तथाचक्रमोमयोरिद्विजोस्तम् ॥६३
विवाहचैवदुहितुविधिवन्मन्त्रयोगिनम् ।
निष्पाद्यप्रोतिमान्भूयोजामातरमभाद्रवोत् ॥६४
श्रोत्राह्निकतेभूपालवश्यताकिददाम्यहम् ।
दुर्लभ्यमपिदाम्यामिमभाप्रतिहततप ॥६५
मनोस्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नमन्ततोमुने ।
मन्वन्तराधिपतुयस्वत्प्रसादाद्गृगोम्यहम् ॥६६
भविष्यत्येपनेवामामनुस्त्वत्तनयामहीम् ।
मबलाभोक्ष्यतभूपधर्मविद्वभविष्येति ॥६७
तामादायतनाभूपस्वमवनगरययो ।
तस्मादजायतमुतारवताारैवतामनु ॥६८
ममेतस्वर्लंघ्यमैतवेरपरिजित ।
विजातास्त्रिशास्त्रार्योवदविद्यायशास्त्रवित् ॥६९
तरयमन्त्रन्तरदेवान्मुतिदयेन्द्रपाधियान् ।
वश्यमानान्मयाश्रित्याधमुममाहित ॥७०

और बैशाह मासा मे अपनी पुत्री का विवाह मन्वार मन्त्र करके
अत्यन्त प्रमत्त मन से अपने जामाता के प्रति व्रता ॥६४॥ ऋषि बोले—हे
राजन् ! विवाह मदान स्वयं तुम्हें क्या प्रदान करूँ, यह मुझे बतानाओ, तुम
मदि कोई दुर्लभ वस्तु भी मागते तो मैं अपनी तपस्या के प्रभाव मे उसे दूँगा
॥६५॥ राजा ने कहा—हे मुने ! मैं स्वायम्भुवमनु के वश मे उत्पन्न हुआ हूँ,
मैं अपनी कृपा मे मन्वन्तराधिपति पुत्र का प्राप्त करूँ, यही चाहता हूँ ॥६६॥
ऋषि ने कहा—हे राजन् तुम्हारी अभितापा पूर्ण होगी, तुम्हारा पुत्र धर्मज्ञ
तथा शत्रु शोककर सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करने वाला होगा ॥६७॥ मार्कण्डेयजी
ने कहा—नदनर वरु राजा अपनी पत्नी का साथ लेकर अपने नगर को गये

और समय पाकर उस रैवती के गर्भ से रैवत मनु उत्पन्न हुए ॥६८॥ यह धर्मज्ञाता, अज्ञेय, शास्त्रों में पारगामी तथा वेद विद्या और अर्थ शास्त्र में भी पारंगत हुए ॥६९॥ हे ब्रह्मन् ! अब उनके मन्वन्तर के देवता, ऋषि, इन्द्र और राजाओं का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥७०॥

सुमेधसस्तत्रदेवास्तथाभूतनयाद्विज ।

वैकुण्ठश्चामिताभाश्चतुर्दशचतुर्दश ॥७१

तेषादेवगणानांतुचतुर्णामपिचेश्वरः ।

नाम्नाविभुरभूदिन्द्रःसतयज्ञोपलधकः ॥७२

हिरण्यलोमावेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ।

वेदबाहुःसुधामाचपर्जन्यश्चमहामुनिः ॥७३

वसिष्ठश्चमहाभागोवेदवेदांगपारगः ।

एतेसप्तर्षयश्चासन्नवतस्यान्तरेमनोः ॥७४

बलबन्धुर्महावीर्यःसुयष्टव्यस्तेषापरः ।

सत्यकाद्यास्तथैवासन्नवतस्यमनोःसुताः ॥७५

रैवतान्तास्तुमनवःकथितायेमयातव ।

स्वायम्भुवाश्रयाह्येतेस्वारोचिषमृतेमनुम् ॥७६

(येषांशृणुयान्नित्यंपठेदाख्यानमुत्तमम् ।

विमुक्तःसर्वपापेभ्योलोकंप्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥७७

हे द्विज ! देवगण, सुमेध, वैकुण्ठ और अमिताभ यह चार गण हैं तथा प्रत्येक गण में चौदह देवता हैं ॥७१॥ उन चार गणों के अधिपति सौ यज्ञ करने वाले 'विभु' नामक इन्द्र हैं ॥७२॥ हिरण्यलोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि पर्जन्य ॥७३॥ तथा वेदवेदांग-पारंगत वसिष्ठ यह सप्तर्षि उस रैवत मन्वन्तर में हुए ॥७४॥ रैवत मनु के बल-बन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य, सत्यक आदि पुत्र हुए थे ॥७५॥ रैवत मनु तक जिनका विषय तुम से कहा गया है, वह सभी स्वायम्भुव मनु के वंश में हुए थे, परन्तु स्वारोचिष मनु उस वंश के नहीं थे ॥७६॥ जो इस श्रेष्ठ आख्यान को नित्य सुनते या पढ़ते हैं, वह सब पापों से मुक्त होकर अपने इच्छित लोक को प्राप्त होते हैं ॥७७॥

६८—चाक्षुष मन्वन्तेर

इत्येतन्नयिततुम्यपञ्चममन्वन्तरमया ।
चाक्षुषम्यमनोपसृथूमताभिदमन्तरम् ॥१॥

अन्यजन्मनिजातोऽमीचक्षुष परमष्टिन ।
चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मस्मिन्नपिद्विज ॥२॥

(अनमित्रस्यराजर्षेभद्राभार्यामहात्मन ।
जज्ञे सुतमुविद्वामसुचिजातिस्मर विभुम् ॥३॥)

जातमातानिजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्यतपुन ।
परिप्वजतिहादेनपुनरुल्लापयत्यथ ॥४॥

जातिस्मर मजानावंमानुस्मद्गमास्थित ।
जहामतनदामातासमृद्धावाक्यमन्नवीत् ॥५॥

भीतास्मिन्मिद वत्सहासायद्वदनेतव ।
अकाववाध सञ्ज्ञान कश्चित्पद्मसिशाभनम् ॥६॥

(तन्मानुर्वचनश्रुत्वा प्रहस्यदमयानवीत्) ।
मामत्तनिच्छ्रुतिपुरामाजारीकितपद्मसि ।

अन्यदर्शनगनाचेयद्वितीयाजानहारिणी ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—ह द्विज श्रेष्ठ । मैंने तुम्हारे प्रति इन पाँच मन्वन्-
तरो का वगल किया, अब छहवें चाक्षुष मनु के मन्वन्तर के विषय में कहता
हूँ, शक्य करो ॥१॥ अन्य जन्म में परमेशी ब्रह्माजी के चक्षु से उत्पन्न होने के
कारण इनका नाम इस जन्म में भी चाक्षुष हुआ था ॥२॥ महात्मा अनमित्र
की भद्रा नामक पत्नी के गर्भ में विद्वान् पवित्र, जानिस्मर और विभु गुण से
सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई) ॥३॥ माता ने आनन्द में भर कर उस
उत्पन्न हुए पुत्र का साठ पूजन किया और फिर वह उसका आदर
करने लगी ॥४॥ इस पर माता की गोदी में स्थित हुए वह जानिस्मर पुत्र
हैंस पहा ली माता ने उससे कौन पूर्वक कहा ॥५॥ ह वत्स । तुम्हारे गुण की
इस हँसी को देखकर मैं डर गई हूँ तुम्हें इस निगुणत्व के ज्ञान को प्राप्त होकर

क्या कुछ शुभ दिखाई देता है ? ॥६॥ (माता की बात सुन कर पुत्र हँस कर बोला) पुत्र ने कहा—यह जो मार्जारी मुझे भक्षण करने की इच्छा से सामने खड़ी है, उसे क्या तुम नहीं देख सकतीं ? गुप्त रूप से यह जात हारिणी यहाँ स्थित है, उसे क्या तुम नहीं जान सकतीं ? ॥७॥

पुत्रप्रीत्याचभवतीसहार्दामामवेक्षती ॥

उत्लाप्योल्लाप्यबहुशःपरिष्वजतिमांयतः ॥८

उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्त्राविलेक्षणा ।

ततोममागतोहासःशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥९

स्वार्थप्रसक्तामाज्जारीप्रसक्तंमामवेक्षते ।

तथान्तर्द्वानिगाच्चैवद्वितीयाजातहारिणी ॥१०

स्वार्थायस्निग्धहृदयेयथैवैतेममोपरि ।

प्रवृत्तेस्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभासिमे ॥११

किन्तुमदुपभोगायमाज्जारीजातहारिणी ।

त्वन्तुक्रमेणोपभोग्यंमत्तःफलमभीप्ससि ॥१२

नमांजानासिकोप्येषनचैवोपकृतंमया ।

सङ्गतंनातिकालीनंपंचसप्तदिनात्मकम् ॥१३

तथापिस्निह्यसेसास्त्रापरिष्वजसिचाप्यति ।

तातेतिवत्सभद्रेतिनिर्व्यलीकन्नवीषिमाम् ॥१४

जब तुमने पुत्र के बातसत्य से स्नेहमयी होकर आवर पूर्वक मेरा द्वार-
म्बार आलिंगन किया तो मुझे हँसी आ गई, अब मैं उसका कारण बताता हूँ,
श्रवण करो ॥८॥-॥९॥ वह मार्जारी और जात हारिणी अपने प्रयोजन में
आसक्त हुई अपनी अर्थपूर्ण दृष्टि से मुझे देख रही हैं ॥१०॥ यह स्वार्थवश
मेरे प्रति जैसी नम्र हृदया हुई है, वैसे ही स्वार्थवश तुम भी मेरे प्रति स्नेहमयी
हुई हो, मैं यही समझता हूँ ॥११॥ यह मार्जारी और जातहारिणी मेरा भक्षण
करने की इच्छा करती है और तुम मुझे इच्छित उपभोग प्राप्त करने की अभि-
लाषा रखती हो ॥१२॥ क्योंकि तुम मुझे नहीं जानतीं कि मैं कौन हूँ, बहुत
दिनों का मिलना भी नहीं है और न मैंने कोई उपकार ही किया है, केवल

पाँच या मान दिन माना-पुत्र रूप में ही मिनन हुआ है ॥१३॥ फिर भी तुम
अश्रुपूर्ण नेत्रों में मेरे प्रति स्नेह प्रकट करती हो, आनिगत करती हो श्री
कपट-रहित हृदय से तात, बत्त, भद्र आदि कह कर पुचकारती हो ॥१५॥

नत्याहमुपवाराद्यवस्मप्रीत्यापरिव्रजे ।

नचेदेनद्रुवत्प्रोत्यैपरित्यक्तास्म्यहत्वया ॥१५॥

स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ।

इत्युवत्वासातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तामृतिकागृहात् ॥१६॥

जडाङ्गवाह्यरराणुद्धान्त कग्गात्मकम् ।

जहारतपत्यक्त मातदाजानहारिणी ॥१७॥

माद्रित्वात्तदावालविक्रान्तस्यमहीभृत ।

प्रमूतपत्नीशयनेन्यस्यस्यतस्याददेमुतम् ॥१८॥

तमप्यन्यग्रहेनीत्वागृहीत्वातस्यचात्मजम् ।

तृतीयभक्षयामाममाक्रमाज्जानहारिणी ॥१९॥

हत्वाहत्वातृतीयतुभक्षयत्यतिनिर्घृणा ।

करोत्यनुदिनमातुनरिवर्ततयान्यया ॥२०॥

विक्रान्तोऽपिततस्तस्यमुतस्यैवमर्हापति ।

कान्यामामस्याराम्राज्यस्यभवन्तिथे ॥२१॥

माता ने कहा—हे बत्त ! निगी उपकार की आशा से मैं तुम्हारा
आतिङ्गन नहीं करती यदि तुम मेरे आतिङ्गन करन आदि से प्रमत्तता को प्राप्त
नहीं होते तो मुझे छोड़ दो ॥१५॥ तुमसे त्रिस्र स्वार्थ मिटि की आशा है, मैंने
उमें छोड़ा, ऐसा बहकर प्रमूति गृह में माता उस जहवत् पुत्र का परित्याग कर
बाहर निकली, तब माता द्वारा परित्यक्त उस पुत्र का जानहारिणी ने हरण कर
लिया ॥१६-१७॥ इसका हरण करके उसने विश्रान्त नामक राजा की प्रमूता
पत्नी की शय्या में रख कर उसके नवोत्पन्न शिशु का हरण किया ॥१८॥ और
उस भी त्रिस्र दूधरे के धर में रख कर उससे पुत्र को चुग कर घन में उस
तृतीय शिशु का ग्रहण कर लिया ॥१९॥ वह अत्यन्त निर्दय जानहारिणी
नव प्रमूति शिशुओं का निरस्य प्रति इसी प्रकार हरण करती और पहिले दो का

परिवर्तन करके तीसरे का आहार कर लेती थी ॥२०॥ इसके अनन्तर राजा विक्रान्त ने अपने उस परिवर्तित पुत्र के क्षत्रियोचित सभी संस्कार कराये ॥२१॥

आनन्देतिचनामास्यपिताचक्रे विधानतः ।

मुदापरमयायुक्तोविक्रान्तःसनराधिपः ॥२२

कृतोपनयनंतंतुगुरुराहकुमारकम् ।

जनन्याःप्रागुपस्थानंक्रियतांचाभिवादनम् ॥२३

सगुरोस्तद्वचःश्रुत्वाविहस्यैवमथाब्रवीत् ।

बंधामेकतमाभाताजननीपालनीनुकिम् ॥२४

नन्वियंतेमहाभागजनित्रीजारुजात्मजा ।

विक्रान्तस्याग्रमहिषीहैमिनीनामनामतः ॥२५

इयंजनित्रीचैत्रस्यविशालग्रामवासिनः ।

विप्राग्रयबोधपुत्रस्ययोस्यांजातोऽन्यतोऽगमम् ॥२६

कुतस्त्वंकथयानन्दचैत्रःकोवात्वयोच्यते ।

संकटमहदाभातिक्वजातोऽथब्रवीषिकिम् ॥२७

उस पुत्र को पाकर राजा अत्यन्त आनन्दित हुए, इसलिये उनके उस पुत्र का नाम आनन्द रखा गया ॥२२॥ तदनन्तर उम यज्ञोपवीत संस्कार किये गये कुमार को गुरुजी ने माता निकट जाकर प्रणाम करने को कहा ॥२३॥ गुरुजी के वचन सुनकर आनन्द ने हँस कर कहा—मैं किस माता को प्रणाम करूँ ? जन्म देने वाली को अथवा पालने वाली को ? ॥२४॥ गुरुजी ने कहा—हे महाभाग ! महाराज विक्रान्त की राजमहिषी हैमिनी क्या तुम्हारी जन्मदात्री नहीं है ? ॥२५॥ आनन्द बोला—इनके गर्भ से उस चैत्र की उत्पत्ति हुई थी जो विशाल नाम ग्राम निवासी बोध नामक ब्राह्मण का पुत्र है, मेरा जन्म अन्यत्र हुआ था ॥२६॥ गुरुजी ने कहा—हे आनन्द ! तुम कहाँ से आये ? तुमने जिस चैत्र का नाम लिया, वह चैत्र कौन है ? तुम कहाँ उत्पन्न हुए और यहाँ किस प्रकार आये ? जो चैत्र यहाँ उत्पन्न हुआ वह कहाँ गया ? यह तुम क्या कह रहे हो ? ॥२७॥

जातोऽहमनमित्रस्यक्षत्रियस्यगृहेद्विज ।
 तत्पत्न्यागिरिभद्रायामाददेजातहारिणी ॥२८
 तयात्रमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतचसा ।
 बोधस्यद्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुन ॥२९
 भक्षयामासचसुततस्यवाधद्विजन्मन ।
 मतत्रद्विजसंस्कारं सस्वृत्तोहैमिनीसुत ॥३०
 वयमत्रमहाभागसंस्कृतागुरुरगात्वया ।
 मयातववच काव्यंमुपैमिषतमागुरो ॥३१
 अनीवगहनवत्नसकटमहदागतम् ।
 नवेक्षिकिञ्चिन्मोहेनभ्रमन्तीवहिवुद्धय ॥३२
 माहम्यावमर कोऽत्रजगत्पेवव्यवस्थिते ।
 कस्यपुत्रोविप्रर्षेकावाकस्यनवान्धव ॥३३
 आरभ्यजन्मनोनृणासस्वन्धित्वमुपैतियः ।
 अन्यसवधिनाविप्रमृत्युनासन्निवर्तिता ॥३४
 अत्रापिजातस्यसुतसम्बन्धायोऽभ्यवान्ववै ।
 गोप्यस्तमन्तेद्रहस्यप्रयात्यपोऽखिलक्रम ॥३५

घानन्द बोला—राजा अनमित्र की पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से मे उत्पन्न
 हुए और जातागिणी मेरा हरण करके यहाँ रक्व गई ॥२८॥ और हैमिनी के
 पुत्र का हरण करके उसे ब्राह्मण वर वाध के यहाँ ले जाकर ॥२९॥ उस
 बोध के पुत्र को खा गई, हैमिनी के उस पुत्र का विशाल घाम मे द्विज सस्कार ।
 किया गया है ॥३०॥ और मरा संस्कार यहाँ पापके डारा हुआ है, हे महा-
 भाग ! घाग मेरे गुरु हैं, मुझे पापकी घाजा पूर्ण स्पेण स्वीकार है, अत घाजा
 कीजिये कि मैं किस माता को प्रणाम करूँ ॥३१॥ गुरुजी ने कहा—हैं वरम ।
 यह तो अत्यन्त घोर मझूट घा गया है, मैं कुछ भी नहीं समझ पाता जेमे मेरी
 बुद्धि मोह ने भ्रमिन हो गई है ॥३२॥ घानन्द बोला—ह प्रह्वर्ये ! इस प्रकार
 से अत्यन्त डग गगार मे मोह का विराय क्या है ? इसजिये कौन किसका
 पुत्र है ? जन्म लेने के पदवान् जीव विभिन्न जीवों मे सम्बन्ध मुक्त होता है, सब

कोई किसी का बन्धु नहीं हो सकता, जिस प्रकार सम्बन्ध वाले मनुष्य मृत्यु के द्वारा धराशायी होते हैं ॥३३-३४॥ तथा बाँधवों के सहित जन्म लेने वाले मनुष्यों का जो सर्वानुगामी सम्बन्ध है, वह भी शरीर के मष्ट होने पर टूट जाता है ॥३५॥

अतोब्रवीमिसंसारेवसतःकोनवान्धवः ।
 कोवापिसततंबन्धुःकिवोविभ्राम्यतेमतिः ॥३६
 पितृद्वयंमयाप्राप्तमस्मिन्नोवहिजन्मनि ।
 मानृद्वयंचकिंचित्रयदन्यद्देहसम्भवे ॥३७
 सोऽहंतपःकरिष्यामित्वयायोह्यस्यभूपतेः ।
 विशालग्रामतःपुत्रश्चैत्रअनीयतामिह ॥३८
 ततःसविस्मितोराजासभार्यःसहबन्धुभिः ।
 तस्मान्निवर्त्यममतामनुमेनेवनायतम् ॥३९
 चैत्रमानीयतनयंराज्ययोग्यंचकारसः ।
 समान्यब्राह्मण्येनपुत्रबुद्ध्यासपालितः ॥४०
 सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेबालएवमहावने ।
 कर्मणांक्षपणार्थायिविमुक्तेःपरिपन्थिनाम् ॥४१

इसीलिये कहता हूँ कि संसारी जीवों का कोई बन्धु नहीं, इसलिये आपकी बुद्धि किस कारण से भ्रान्त हो रही है ॥३६॥ इसी जन्म में मेरे दो पिता और दो माता हो चुकी हैं फिर यदि दूसरा देह धारण करके ऐसा सम्बन्ध हो जाय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥३७॥ अब मैं तप करूँगा, आप इन राजा के पुत्र चैत्र को विशाल ग्राम से यहाँ ले आइये ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— तब राजा ने पत्नी और बन्धुओं से आश्चर्याम्बित होकर उस पुत्र के प्रति मोह का परित्याग कर उसे बन जाने की आज्ञा दी ॥३९॥ और जिस ब्राह्मण ने चैत्र का पालन किया था, उसे सम्मानित कर, उससे अपना पुत्र लेकर उसका राज्याभिषेक किया ॥४०॥ उधर आनन्द मुक्ति में बाधक होने वाले सब कर्मों के परित्याग पूर्वक बाल्यावस्था से ही तप करने लगा ॥४१॥

तपस्यन्ततस्तच्चप्राहदेव प्रजापति ।
 किमर्थं नप्यसेवसतपस्तीव्र वदस्वतत् ॥४२॥
 आत्मन शुद्धिनामाऽहं करोमि भगवस्तप ।
 बन्धायममकर्माणि यानितत्क्षपणोन्मखः ॥४३॥
 क्षीणाधिकारा भवति मुक्तिया ग्यानकर्मवान् ।
 नत्वाधिकारवान् मुक्तिमवाप्स्यति तताभवान् ॥४४॥
 भवतामनुनाभाव्यपष्टे नद्रजतत्कुरु ।
 अततेत एसानस्मि कृतमुक्तिमवाप्स्यसि ॥४५॥
 इत्युक्त्वा प्रह्लादासाऽपितथेत्युक्त्वा महामति ।
 तत्कर्माभिमुखायस्तु तपसो विररामह ॥४६॥
 चाक्षुषेत्याहन प्रह्लातपसो विनिवर्तयन् ।
 पूर्वनाम्नावभूवाद्यप्रख्यातश्चाक्षुषामनु ॥४७॥
 उपयेमेविदभान्मुतामुपस्यभूभृत ।
 तस्याचत्पादयामासपुनान्प्रख्यातविक्रमान् ॥४८॥
 तस्यमन्वन्तरे शस्ययन्तरे प्रिदशाद्विज ।
 येचर्पयस्तथैवन्द्रायमुताश्चास्यताञ्छणु ॥४९॥

जब वह इस प्रकार तप म प्रवृत्त हुआ, तब प्रजापति ब्रह्माजी ने उसमें कहा—हे वत्स ! ऐसा घोर तप किमलिय कर रह हा ? ॥४२॥ आनन्द बाबा—हे भगवन् ! ममार क बन्धन रूप कर्मों को नष्ट करने की अभिलाषा से ही मैं यह तप कर रहा हूँ ॥४३॥ ब्रह्माजी ने कहा—क्षीणाधिकार वाल मनुष्य ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं क्योंकि व कर्मवान् नहीं होते, तुम जीवा पर आधिपत्य करन बाल हाकर माक्ष को कैसे प्राप्त हो सकेगे ? ॥४४॥ जाया, तुम छटके मनु होग उमी प्रकार के कार्य स मोक्ष को प्राप्त हा जाओग, प्रय तुम्हें तप करना आवश्यक नहीं है ॥४५॥ माकण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर 'ऐसा ही हो' कहते हुए आनन्द ने तपस्या का परित्याग किया ॥४६॥ और ब्रह्माजी ने उन्हें तप म निवृत्त करके पूर्ववत् 'चाक्षुष' नाम दिया, फिर वही चाक्षुष मनु के नाम स प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ फिर उन्होंने राजा उग्र

की पुत्री विदग्धा से विवाह किया और उसके गर्भ से उन्होंने विक्रम युक्त अनेक पुत्र प्राप्त किये ॥४८॥ उस मन्वन्तर पति के मन्वन्तर में जो ऋषि, इन्द्र और जो-जो सन्तान हुई, उसका वर्णन सुनो ॥४९॥

आप्यानामसुरास्तत्रतेषामेकोऽष्टकोगराः ।
 प्रख्यातकर्मणां विवयज्ञेहव्यभुजामयम् ॥५०
 प्रख्यातबलवीर्याणां प्रभामण्डलदुर्दशाम् ।
 द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टकोगराः ॥५१
 तथैवाष्टकएवान्यो भव्याख्यो देवतागराः ।
 चतुर्थश्च गरास्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ॥५२
 लेखसंज्ञास्तथैवान्येतत्र मन्वन्तरे द्विज ।
 पंचमेच गरो देवास्तत्संगृह्यमृताशिवः ॥५३
 शतं क्रतूनामाहृत्य यस्तेषामधिपो भवत् ।
 मनोजस्वस्तृथैवैन्द्रसंख्यातो यज्ञभागभुक् ॥५४
 समेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः ।
 अतिनामासहिष्णुश्च सप्तसन्निति चर्षयः ॥५५
 ऊरुपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः ।
 चाक्षुषस्यमतोः पुत्राः पृथिवीहतायो भवन् ॥५६

हे ब्रह्मन् ! इस मन्वन्तर में देवताओं का 'आर्य' नामक प्रथम गण हुआ, उस गण में कर्म और यज्ञ में हव्यभोजी आठ प्रसिद्ध देवता थे ॥५०॥ बल वीर्य में विख्यात और प्रभा मण्डल के मध्यवर्ती होने के कारण दुर्दशा अन्य देवताओं का 'प्रसूत' नामक द्वितीय गण हुआ, इसके भी आठ देवता हुए ॥५१॥ मन्ताख्य नामक तृतीय देवगण में आठ और यूथग नामक चतुर्थगण में भी आठ ही देवता हुए ॥५२॥ पाँचवें गण में अमृताशी नामक विष्णुदेवता हैं । उस मन्वन्तर में अन्य देवता 'लेख' नाम वाले हैं, इस पाँचवें गण में पूर्ववत् अमृतभोजी देवता आठ हैं ॥५३॥ सौ यज्ञ करके 'मनोजव' नामक इन्द्र उन देवताओं के अधिपति हुए ॥५४॥ इसमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत,

मधु, प्रति भीरु मरिच्यु मह सप्तवि हुण तथा ऊरु, पुत्र, शतदूमन इत्यादि राजा
 लन चाक्षुष मनु के अन्यन्त बलवान् पुत्र हुए ॥५५-५६॥

एतत्तेकथितपद्य मयामन्वन्तर द्विज ।
 चाक्षुषम्यतायाजन्मचरितचमहात्मिनः ॥५७
 माम्प्रतवत्तंतयोऽयनाम्नावंश्वतोमनुः ।
 मममोयेन्तरेतास्त्रदेवाद्यास्ताऽश्रुणुष्वमे ॥५८
 (यद्द क्रीतंयद्दोमाश्चाक्षुषम्यातारभुवि ।
 शृणुतेचलभेत्पुनानारोग्यमुपसपदम्) ॥५९

यह हम पद्य मन्वन्तर भीरु महात्मा चाक्षुष मनु का जीवन चरित्र मैंने
 तुममें कह दिया ॥५७॥ अब जो वैवस्वत नामक सातवें मनु वर्तमान है, उनके
 मन्वन्तर में देवतादि का बरण श्रवण करो ॥५८॥ जो मनुष्य इस चाक्षुष
 मन्वन्तर को कहे या श्रवण करेगा उन्हें पुत्र आरोग्यता, सुख, सम्पत्ति की
 प्राप्ति होगी ॥५९॥

६८- वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ

मार्तण्डस्यरवेर्भार्यानिनयाविश्वकर्मण ।
 सज्जानाममहाभागतस्याभानुरजीजनत् ॥१
 मनु प्रत्यातयगममनेवज्ञानपात्र्यम् ।
 त्रिवम्बत मुनोयम्मात्तम्माडं वस्वतस्तुस ॥२
 सजाचरविद्यादृष्टानिमोलयतित्वाचने ।
 यत्तस्तम मरोपोऽर्कं गज्ञानिष्टुरमन्नवीत् ॥३
 मयिदृष्टेमदायम्मात्पुरवेनेत्रनयमम् ।
 तस्माज्जनिष्यसेमूढेप्रजासयमनयमम् ॥४
 ततःसाचपनादृष्टिदेवीचक्रभयाकुला ।
 विनोमितदृशदृष्टापुनरादृचतारविः ॥५

यस्माद्विलोलितादृष्टिर्मयिदृष्टे त्वथाधुना ।
 तस्माद्विलोलांतनयांनदींत्वप्रसविष्यसि ॥६
 तःसंज्ञातुसंज्ञज्ञेभर्तृशापेनतेनवै ।
 यमश्चयमुनाचेयप्रख्यातासुमहानदी ॥७

मार्करण्डेयजी ने कहा—हे महाभाग ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मार्ति-
 रण्डदेव की भार्या थी, उसके गर्भ से ॥१॥ यश में विख्यात एवं अत्यन्त ज्ञानवान्
 मनु उत्पन्न हुए, वह विवस्वान् के पुत्र होने से 'वैवस्वत' नाम से प्रसिद्ध हुए
 ॥२॥ रूप को देखते ही वह संज्ञा अपने नेत्र बन्द कर लेती थी, इसलिए एक
 दिन सूर्य ने उसके प्रति यह कठोर वचन कहा ॥३॥ तू मुझे देख कर सदैव
 नेत्रों का संयम कर लेती है, इसलिये तेरे प्रजा का संयम करने वाले यम की
 उत्पत्ति होगी ॥४॥ मार्करण्डेयजी ने कहा—तभी से संज्ञा से भय से व्याकुल
 होकर सूर्य को चञ्चल दृष्टि से देखने लगी, तब उसे चञ्चल नेत्र वाली देख कर
 सूर्य ने उससे कहा ॥५॥ तू मुझे देखकर चञ्चल दृष्टि कर लेती है, इसलिये
 अब तू चञ्चल नदी रूप वाली कन्या को उत्पन्न करेगी ॥६॥ मार्करण्डेयजी ने
 कहा—पति के द्वारा इस प्रकार शापित हुई संज्ञा के गर्भ से यम उत्पन्न हुआ
 और फिर यमुना नाम की विख्यात नदी भी उत्पन्न हुई ॥७॥

सापिसंज्ञारवेस्तेजःसेहेदुःखेनभाविनी ।
 असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥८
 किंकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिवृत्तिः ।
 भवेन्ममकथंभर्ताकोपमर्कश्चनैष्यति ॥९
 इतिसंचिन्त्यबहुधाप्रजापतिसुतातदा ।
 बहुमेनेमहाभागापितृसंश्रयमेवसा ॥१०
 ततःपितृगृहेगन्तुकृतबुद्धिर्यशस्विनी ।
 छायामयीमात्मतनुंनिर्ममेदयितारवेः ॥ ११
 तांचोवाचत्वयावेदमन्यत्रभानोर्यथामया ।
 तथासम्यगपत्येषुवर्तितव्यंयथारवौ ॥१२

पृष्ट्यापिनवाच्यतेतद्भर्तागमनमम ।

संवास्मिनामसजेतिवाच्यमेतत्सदावचः ॥१३

आकेशग्रहणाद्देविग्राशापाञ्चवचस्तव ।

करिष्येकथयिष्यामिदृत्तनुशापवपंग्नात् ॥१४

उम मन्ना ने उतन समय तक अत्यन्त कष्ट पूर्वक सूर्य के तेज को सहन किया था, परन्तु अब अधिक सहन न करने के कारण वह विचार करने लगी ॥८॥ क्या करूँ ? विधर जाऊँ ? किस प्रकार भय से बचूँ ? किस उपाय अपने पति को क्रोध से निवृत्त करूँ ? ॥९॥ तब उस प्रजापति मुता सज्ञा ने पितृ गृह के आश्रय में जाने का ही विचार स्थिर किया ॥१०॥ ऐसा निश्चय करके उसने अपनी छाया स्वरूप एक देह बनाकर ॥११॥ उम छाया से कहा— त्रिम प्रकार मैं इन सूर्य देव के गृह में निवास करती हूँ, उसी भाव से यहाँ रहनी हुई मेरे पुत्र और पति के प्रति मेरे ही लगान आचरण करना ॥१२॥ सूर्य पूर्ये तो भी मेरे चले जाने की वार्ता उन्हें मत बताना, 'मैं ही सजा हूँ' उन्हें ऐसे ही समझाये रहना ॥१३॥ छाया ने कहा—ठे देवि ! जब तक वे मेरे वेश नहीं पहनते और शाप नहीं देते, तब तक मैं तुम्हारे वचनों के अनुगार नार्थ करूँगी और क्षय परडन या शाप देने पर सब वृत्तान्त बता दूँगी ॥१४॥

इत्युक्त्वासातदादेवीजगामभवनपितुः ।

ददर्शनप्रत्वष्टारतपसाधूतकल्मषम् ॥१५

बहुमानाच्चतेनापिपूजिताविश्वकर्मणा ।

तस्थीपितृगृहेसातुकचित्कालमनिन्दिता ॥१६

ततस्ताप्राहचार्वन्तीपिनानातिचिरोपिताम् ।

स्तुत्वाचतनयाप्रेमबहुमानपुरसरम् ॥१७

त्वानुमेपदयतोवत्सेदिनानिमुबहून्यपि ।

मुहूर्ताद्दिसमानिस्तु विन्मृधर्मोविलुप्यते ॥१८

वान्यवेपुचिरवासीनारीशानयसस्वर ।

मनोऽर्थावान्धवानानानार्याभर्तृगृहेस्थितिः ॥१९

सात्वंत्रैलोक्यनाथेनभत्रिसूय्यणसंज्ञता ।

पितृगेहेचिरकालं वस्तुनार्हसिपुत्रिके ॥२०

सात्वंभर्तृगृहंगच्छतुष्टोऽहंपूजितासिमे ।

पुनरागमनंकार्यदर्शनायशुभेमम ॥२१

यह वात सुनकर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और वहाँ उसने तप के द्वारा पाप रहित हुए विश्वकर्मा के दर्शन किये ॥१५॥ विश्वकर्मा ने संज्ञा का स्वागत सत्कार किया और फिर आनन्द युक्त हुई संज्ञा ने कुछ काल तक अपने पिता के गृह में निवास किया ॥१६॥ फिर कुछ कालोपरान्त उसके पिता ने अत्यन्त मान के सहित उससे कहा ॥१७॥ हे वत्से ! तुमको देखते हुए बहुत समय व्यतीत होने पर भी वह मुझे आशे गृहर्त्त के समान ही समय व्यतीत हुआ प्रतीत होता है, परन्तु इससे धर्म का लोप हो जाता है ॥१८॥ स्त्रियों के लिये बांधवों के साथ सदा निवास करना यश देने वाला कार्य नहीं है, उनका निवास तो पतिगृह में ही उचित है ॥१९॥ तीनों लोकों के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं, तुम उनके साथ विशाह सूत्र में बँधी हो, तुम्हारा पितृगृह में रहना उचित नहीं हो सकता ॥२०॥ इसलिए अब तुम अपने पति के घर चली जाओ, तुम्हारे आगमन से मैं सन्तुष्ट हुआ और तुम भी मेरे द्वारा सत्कारित हुईं, अब फिर देखने के लिये यहाँ आजाना ॥२१॥

इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्ताचसामुने ।

सपूजयित्वापितरंजगामाथोत्तरान्कुरुन् ॥२२

सूयतांपमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यविभ्यती ।

तपश्चचारतत्रापिवडवारूपधारिणी ॥२३

सज्जेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पतिः ।

जनयामासतनयीकन्यांचैकामनोरमाम् ॥२४

छायासंज्ञात्वपत्येषुयथास्वेष्वतिवत्सला ।

तथानसंज्ञाकन्यायांपुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥२५

लालनाच्चूपभोगेषुविक्षेपमनुवासरम् ।

मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानक्षमे ॥२६

ताडनायचर्बकोपात्पापस्तेनसमुत्त त ।
 तस्या पुन क्षातिमतानतुदेहेनिपातित ॥२७
 तत शशापतयोपाच्छायामशायमद्विज ।
 विचितप्रस्फुरमाणौष्ठीविचलत्पारिणपल्लवा ॥२८
 पितृ पत्नीममय्यादयन्मातज्जयसेपदा ।
 भुवितस्मादयपादस्तवाशं वपतिव्यति ॥२९

माकण्डेयजी न कहा—अपन पिता विश्वकर्मा क एसा बहने पर सजा
 उनकी आज्ञा मान कर और उनका पूजन कर उत्तरकुक्षेश भे गई ॥२२॥ सूर्य
 के तेज से भयभीत राजा सूर्य के तेज को न चाहने की इच्छा से वहाँ छोड़ी
 का रूप रम्य कर तप करने लगी ॥२३॥ उधर सूर्य न उस छाया को ही सजा
 मानते हुए उसका गम मे दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया ॥२४॥ परन्तु
 वह छाया जिनको प्रीतिवती अपनी मन्तान क प्रति थी, उनको सजा की सन्तान
 के प्रति स्नेहवती नहीं थी ॥२५॥ बड़ लानन पानन क समय सन्तानो के भेद
 भाव दिखाती थी, इसक नियम मनु ने तो उमरो कुछ नहीं कहा, परन्तु यम ने
 उसे क्षमा नहीं किया ॥२६॥ उन्होने क्रोधवश प्रहार करने की अपना चरण
 उठाया, परन्तु प्रोध को राक कर चरण प्रहार नहीं किया ॥२७॥ परन्तु उस
 छाया सजा न क्रोध के बशीभूत होकर हीठ कम्पिन करते हुए हाथ उठा कर
 शाप दिया ॥२८॥ मैं तर पिता की पत्नी हू फिर भी तू मरी मर्यादा न रखा
 कर चरण दिखाकर डराना है, इसलिये तरा यह चरण तक्षाल पृथिवी मे
 गिर जाय ॥२९॥

इत्याह एवमयम शापमात्रादत्त भयानुर ।
 अन्धेत्यपितर प्राहप्रशिपातपुर सरम् ॥३०
 तातेतन्महदाश्रय्येनदृष्टमिति केनचित् ।
 मातावात्सल्यमुत्सृज्यशापपुत्रेप्रमद्वति ॥३१
 ययामनुमंभाचष्टे नयमात्तानवामम ।
 विगुं शोषपिपुत्रेपुनमाताविगुणामवेत् ॥३२

यमस्यैतद्वचःश्रुत्वामगवांस्तिमिरापहः ।

छायासंज्ञांसमाहूयपप्रच्छक्वगतेतिसा ॥३३

साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ।

पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे ॥३४

इत्थंविवस्वतःसातुदहृशःपृच्छतोयदा ।

नाचक्षेत्ततःक्रुद्धोभास्वांस्तांशप्तुमुद्यतः ॥३५

मार्कण्डेयजी ने कहा—माता द्वारा ऐसा शाप सुनकर भय से आतुर हुए यम ने अपने पिता सूर्य के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बोले ॥३०॥

यम ने कहा—माता अपने ही पुत्र को शाप दे, यह अत्यन्त विस्मयजनक है, ऐसी बात तो कभी कहीं नहीं देखी गई ॥३१॥ मनु ने मुझसे जैसा कहा था,

वैसी यह माता नहीं है, पुत्र के असद्गुणी होने पर भी माता उसके अमंगल की बात नहीं कहती ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यम का वचन सुनकर

भगवान् सूर्य ने छाया को अपने पास आदर सहित बुला कर पूछा—संज्ञा कहाँ गई ? ॥३३॥ छाया ने कहा—हे भगवन् ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मैं ही हूँ,

मैं ही तुम्हारी भार्या हूँ, मेरे ही गर्भ से इस सन्तान की उत्पत्ति हुई है ॥३४॥ सूर्य के धारम्बार प्रश्न करने पर भी उसने वही उत्तर दिया तब सूर्य क्रोधित

होगये और शाप देने के लिये तत्पर हुए ॥३५॥

ततःसाकथयामासयथावृत्तंविवस्वतः ।

विदितार्थंश्रुभगवाञ्जगामत्वष्टुरालयम् ॥३६

ततःसपूजयामासतदात्रैलोक्यपूजितम् ।

भास्वन्तंपरयाभक्त्यानिजगेहमुपागतम् ॥३७

संज्ञापृष्ठस्तदातस्मैकथयामासविश्वकृत् ।

आगतंवेहमेवेश्मभवतःप्रेषितेतिवै ॥३८

दिवाकरःसमाधिस्थोवडवारूपधारिणोम् ।

तपश्चरन्तीदृशेउत्तरेषुकुसुण्वथ ॥३९

सौम्यमूर्तिःशुभाकारोममभर्ताभवेदिति ।

अभिसन्धिश्चतपसोबुबुधेऽस्यादिवाकरः ॥४०

शातनतेजसोमेऽद्य क्रियतामितिभास्कर ।
 सत्त्वाहविश्वकर्माणुमज्ञायाः पितरद्विज ॥४१
 सवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्मारवेस्तत ।
 तेजसः शातनचक्रेस्तूयमानभ्रदंबतं ॥४२

तब जो वृत्तान्त था वह सभी उसने सूर्य से कह दिया, जिसे जानकर वह विश्वकर्मा के घर पहुँचे ॥३६॥ अपने घर पर आगत भगवान् सूर्य का विश्वकर्मा ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥३७॥ इसके पश्चात् जब सूर्य ने सजा का वृत्तान्त पूछा, तो उन्होंने बताया कि मना यहाँ आई थी और फिर मैंने उसे भापके ही यहाँ भेज दिया था ॥३८॥ तब सूर्य ने ध्यान में अवस्थित होकर सजा को धोटी का रूप धारण किये उत्तर कुरुक्षेत्र में तप करते हुए देखा ॥३९॥ उन्होंने जान लिया कि उसके तप का उद्देश्य मेरी मुन्दरावृत्ति और मोक्ष्य मूर्ति होन की कामना ही है ॥४०॥ तब भगवान् सूर्य ने सजा के पिता विश्वकर्मा से कहा कि मेरे नेत्र को क्षीण कर दीजिए ॥४१॥ देवताओं व द्वारा शर्यना करने पर उन विश्वकर्मा ने सूर्य के नेत्र को क्षीण कर दिया ॥४२॥

७०-सूर्य-मन्त्र एवं अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति

सतस्तुष्टुनुद्वान्तपादेवपयोरविम् ।
 वाग्भरोद्व्यमदोपरयत्नं लोकवस्यमागता ॥१॥
 नमस्तेऽश्वस्वरूपायसामन्पायतेनमः ।
 यजुस्वरूपायसाम्नामधामवतेनमः ॥२॥
 ज्ञानंरूपायभूवायनिधूततमसेनमः ।
 शुद्धज्योतिस्वरूपायविशुद्धायामत्तात्मने ॥३॥
 (अग्निगुणैर्वाग्भरोद्व्यमदोपरयत्नं)
 सरिहायशरेण्यायपरस्मैपरमात्मने ।
 नमोऽग्निजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥४॥

सर्वकारणभूतायनिष्ठार्यज्ञानचेतसाम् ॥५॥

नमःसूर्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ।

भास्करायनमस्तुभ्यंतथादिनकृतेनमः॥६॥

शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनमः ।

त्वंसर्वमेतद्भूगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तब देवता और ऋषि वहाँ आकर त्रैलोक्य पूज्य भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवताओं ने कहा—हे देव ! आप ऋक् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, आप साम स्वरूप को नमस्कार हैं, आप ही यजुःस्वरूप एवं साम के छुतिमान् हैं, आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ आप ही ज्ञान के एकमात्र आश्रय स्वरूप, अन्धकार के नाशक, ज्योति स्वरूप विशुद्ध एवं विमलात्मा है, आपको नमस्कार हैं, ॥ ३ ॥ आप शङ्ख, चक्र; पद्म और शार्ङ्ग धारण करने वाले को नमस्कार, आप वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, आत्म स्वरूप एवं जगद्व्यापी स्वरूप को नमस्कार है ॥ ४ ॥ आप ही ज्ञान चित्त वाले पुरुषों के निये निष्ठा स्वरूप तथा सर्वभूतों के कारण रूप हैं ॥ ५ ॥ आप ही सूर्यरूपी प्रकाश और आत्मरूपी भास्कर हैं, आप दिनकर को नमस्कार है ॥६॥ रात्रि के कारण, संध्या एवं ज्योत्स्ना को प्रकट करने वाले आप भगवान् के लिये नमस्कार है, आपके ही द्वारा यह विश्व जाग्रति और सुषुप्ति में पड़ता है ॥७॥

भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं स चराचरम् ।

त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वसंजायते शुचिः ॥८

क्रियते त्वत्करं स्पृशं ज्जलादीनां पवित्रता ।

होमदानादिकोधर्मो तोपकाराय जायते ॥९

तावद्यावन्नसंयोगिजगदेवत्त्वदं शुभिः ।

ऋचस्ते सकलां ह्येता यजूंष्ये तानि चान्यतः ॥१०

सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः ।

ऋद्ध मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः ॥११

यत् साममयश्चैततोनायत्रयीमयः ।
 स्वमेवब्रह्मणास्पपरचापरमेवच ॥११॥
 मूर्त्तामूर्त्तं स्तथासूक्ष्म स्थूलरूपरतथास्थितः ।
 निमेषकाष्ठादिमयः कालरूप क्षयात्मकः ।
 प्रसीदस्वेच्छयारूपस्वतेज शमनकुरु ॥१३॥
 इदं स्तोत्रवररम्यश्रोतव्यश्रद्धयानरे ।
 निष्योभूत्वानमाधिस्थोदस्वादेयगुरोरपि ॥१४॥

आपके द्वारा ही यह सबरावर ब्रह्माण्ड गति करता है और सभी स्पर्शनीय द्रव्य आपकी रश्मियों का स्पर्श प्राप्त करके ही पवित्र होते हैं ॥८॥ आपकी रश्मियों से ही जनादि पवित्र होते हैं तथा जब उपकारार्थं होम, दान आदि कर्म नहीं होते ॥ ९ ॥ तब तक यह विश्व आपकी रश्मियों के सयोग को प्राप्त नहीं होता, आपके धर्म से उद्भूत रश्मियाँ शुक, यजु, और साम ही हैं, इनलिये आप ही शुक्मय, यजुर्मय ॥ १०-११ ॥ और साममय हैं, आप ही त्रयीमय ब्रह्मन्वरूप तथा प्रधान और अधिपति भी हो ॥ १२ ॥ आप मूर्तिधारी हो, तथा आप ही भावृत्ति हीन हो, स्थूल एवं सूक्ष्मरूप से आप ही निमेष काष्ठा आदि एक क्षयात्मक काल हो, आप प्रसन्न हो और स्वेच्छापूर्वक ही रूप और तेज को क्षीण करें ॥१३॥ (इस सुरम्य स्तोत्र को श्रद्धापूर्वक सुनें और गुरु भी ध्यान निष्य को समाधि में स्थित होकर प्रदान करें ॥

एवमस्तूयमानस्तुदेवैर्देविभिस्तथा ।
 मुमोचस्वतदातेजस्तेजसाराशिरुच्ययः ॥१५॥
 यत्तस्यसृष्ट्मयतेजांभवितास्तेतमेदिनी ।
 यजुर्मयेनापिदिवस्वर्ग साममपरवेः ॥१६॥
 सात्तिनास्तेजसोभागायेत्वष्ट्रादशपत्रच ।
 त्रष्ट्रैवतेनशर्वंस्पष्टतमूलमहात्मना ॥१७॥
 चक्र विष्टोर्वंमूर्त्तौवक्त्रवोयमुदाहृणाः ।
 पात्रवत्स्वतयासक्ति निविधाधनदम्यच ॥१८॥

अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ।
 यक्षविद्याधराणाञ्चतानिचक्रेसविश्वकृत् ॥१९॥
 ततश्चषोडशंभागंविभतिभगवान्विभुः ।
 तत्तेजःपंचदशधाशतितंविश्वकर्मणा ॥२०॥
 ततोऽस्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरुन् ।
 ददृशेतत्रसंज्ञांभवडवारूपधारिणीम् ॥२१॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—देवताओं और ऋषियों द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर तेजोराशि भगवान् सूर्य ने अपने तेज को क्षीण किया ॥१५॥ उनके ऋक्मय तेज से पृथिवी हुई, यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग हुआ ॥१६॥ त्वष्टा ने सूर्य-तेज के जिस पंचदश भाग को छोड़ दिया था, उसी भाग से शिवजी का जूल ॥१७॥ विष्णु चक्र तथा वसुगण, शंकर और अग्नि की दारुण शक्ति का निर्माण किया तथा उसी से कुवेर की पालकी ॥१८॥ तथा अन्यान्य देवता, यक्ष, विद्याधर आदि के जो तीक्ष्ण अस्त्र हैं वह सब बनाये ॥१९॥ फिर भगवान् सूर्य ने अपने तेज का षोडशांश मात्र धारण किया, उसे भी विश्वकर्मा ने पन्द्रह बार छीला ॥२०॥ तदनन्तर सूर्य ने अश्व का रूप धारण किया और उत्तर कुशवर्ष में पहुँच कर अश्वी रूप में अवस्थित संज्ञा को देखा ॥२१॥

साच्चदृष्ट्वातमायान्तपरपुंसोविशङ्कया ॥
 जगामसंमुखंतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥२२॥
 ततश्चनासिकायोगंतयोस्तत्रसमेतयोः ।
 नासत्यस्त्रौतनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३॥
 रेतसोऽन्तेचरेवन्तःझीखीचर्मैतनुत्रधृक् ।
 अश्वारूढ समुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः ॥२४॥
 ततःस्वरूपमतुलदर्शयामासभानुमान् ।
 तस्यैषाचसमालोक्यस्वरूपमुद्दमाददे ॥२५॥
 स्वरूपधारिणींचेमामानिनायनिजाश्रमम् ।
 संज्ञांभार्याप्रीतिमतीभास्क्रोवारितस्करः ॥२६॥

तत्र पूर्वसुतोयोऽस्या सोऽभूद्रै वस्वतोमनु ।
 द्वितीयद्वयम.शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्मुत ॥२७॥
 कृमयोमासमादायपादतोऽभ्यमहीतले ।
 पतिप्रन्तीतिनापान्तनस्यचक्रे पितास्वयम् ॥२८॥
 धर्मदृष्टिर्यतश्चासौममोभिन्नेतथाऽहिते ।
 ततोऽनियोगतयाम्येचकारतिमिरापह ॥२९॥

उन्हें घाता देख कर पर-गुरुप की आशुका से सजा अपनी पीठ की रक्षा करती हुई उनके सामने पहुँची ॥२२॥ फिर उन दोनों की नासिका मिलने के कारण भस्वी के मुख से नासत्य और दस नामक दो पुत्र तत्काल धाहर निकले ॥२३॥ तथा वीथ के रोप भाग से डाल, कवच, खड्ग, बाण, तूण धारी अश्वामुद के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रेवत हुआ ॥२४॥ फिर सूर्य ने उस घोड़ी को अपनी प्रतुलित स्वरूप दिखाया, उस स्वरूप को देख कर बडशा रूपिणी सजा न प्रसन्न हो कर अपना मद्यार्थ रूप धारण कर लिया ॥२५॥ तब जन का शोषण करने वाले भगवान् सूर्य उस सजा नाम की अपनी पत्नी को घर ल गये ॥२६॥ इसी का ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम शाप क कारण धर्मदृष्टि हुआ ॥२७॥ उनको दिये गये शाप का निवारण उनके पिता सूर्य ने स्वयं कर दिया ॥२८॥ तथा धर्म दृष्टि और पशुमित्र में गम दृष्टि देख कर सूर्य ने उनको यमत्व के कार्य में नियुक्त किया ॥२९॥

यमुनाचनक्षीजर्ज्वतिन्दान्तरवाहिनी ।
 अश्विनोदयभियजौतृतीपित्रामहात्मना ॥३०॥
 गुह्यनापिपतित्वेचरेवन्तोऽपिनियोजित ।
 द्यायामजामुनानाचनियोग भ्रूयनामम ॥३१॥
 पूर्वजन्ममनोऽभ्युपदद्याथासजामुनोऽग्रज ।
 तत्र नावशिष्योसजामपाननयोगे ॥३२॥
 नविप्यतिमनु सोऽपिबलिग्निद्रोपदातदा ।
 अनंश्रगोप्रहाणीचमध्येपित्रानियोजितः ॥३३॥

तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ।
 नृपात्संवरणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥३४॥
 तस्यवैवस्वतस्याहंमनोःसप्तममन्तरम् ।
 कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥

उनकी कन्या यमुना नदी रूप से कलिद देश के मध्य में बहने लगी और घोड़ी के दोनों पुत्र (अश्विनीकुमार) पिता के द्वारा स्वर्ग के वैद्य नियुक्त हुये ॥३०॥ तथा रेवंत गुह्यकाधिपति हुए, अब छाया के पुत्रों की नियुक्ति कहता है ॥३१॥ वैवस्वत मनु के समान छाया के गर्भ से उत्पन्न हुए ज्येष्ठ पुत्र का नाम सावर्णिक हुआ ॥३२॥ जब बलि इन्द्र हो जायेंगे तब यह मनु होंगे तथा पिता के द्वारा शनैश्चर को ग्रह में अवस्थित किया गया । सब से छोटी कन्या का नाम तपती हुआ, उसे संवरण नामक नरेश से एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥३४॥ अब उन सप्तम मनु वैगस्वत के अनन्तर सब ऋषि, देवता, इन्द्र और उनके जो पुत्र राजा हुए उनके विषय में बर्णन करता हूँ ॥३५॥

७१ वैवस्वत मन्वन्तर कथन

आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविश्वेमरुद्गणाः ।
 भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणाःस्मृताः ॥१॥
 आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेयाःकश्यपात्मजाः ।
 साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥२॥
 भृगोस्तुभृगवोदेवा पुत्राह्यङ्गिरसःसुताः ।
 एवसर्गश्चमारीचोविज्ञेयःसाम्प्रताधिपः ॥३॥
 ऊर्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ।
 अतीतानागतायेचवर्तन्तेसाम्प्रतंचये ॥४॥
 सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।
 सहस्राक्षाःकुलिशिनःसर्वएवपुरन्दराः ॥५॥

मघवन्तो वृषा सर्वेशु मिथो भजगामिनः ।

ते शतक्रतव सर्वभूताभिभवतेजस ॥६॥

धर्माद्यं कारणैः शुद्धं राधिपत्यगुणान्विताः ।

भूतभव्यभवन्नाया शृणुर्चतस्त्रयद्विज ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इम मन्वन्तर मे आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, भरद्वाज, भृगु और अगिरा यह आठ देवता है ॥१॥ उनमे आदित्य, वसु और रुद्र वश्यजी से उत्पन्न हुए हैं तथा साध्य, वसु और विश्वेदेवा धर्म की मन्तान हैं ॥२॥ भृगुगण भृगु के पुत्र तथा अङ्गिरागण अङ्गिरा के पुत्र हैं, इम सर्ग को मारीच सर्ग कहा गया है ॥३॥ इम मन्वन्तर मे महातमा ऊर्जस्वो यज्ञ भाग के भोगने वाले इन्द्र हुए हैं, पहिले जो इन्द्र हुए, अब जो इन्द्र हैं या जो भविष्य मे इन्द्र होंगे ॥४॥ वह सब देवेन्द्र कह कर ही प्रसिद्ध हैं, सभी सहस्राक्ष, वज्रधर और पुरन्दर हैं ॥५॥ सभी मघवा, वृष, शृङ्गधारी और गज पर गमन करने वाले हैं, सभी भी यज्ञ करने वाले, भूतों को जीतने वाले तथा तेजोमय हैं ॥६॥ वह सब इन्द्र पवित्र, धर्मादि के कारण, आधिपत्य गुण वाले और भूत, मविध्यन्, वर्तमान के अधीश्वर हैं, अब तीनों लोक वा विभाग श्रवण करो ॥७॥

भूलोकोज्यस्मृताभूमिगन्तारक्षदिविस्मृतम् ।

दिव्यास्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलाक्यमितिश्रुते ॥८॥

अग्निश्चैव वमिष्ठश्च वश्यपश्च महानृपि ।

गीतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रो ज्यकीशिक ॥९॥

तथैव पुत्रा भगवातृचीवस्य महात्मन ।

जमदग्निस्तुभर्म ते मुनयोऽतपान्तरे ॥१०॥

इक्ष्वाकुर्नाभश्चैव घृष्ट शर्यातिरेव च ।

नरिष्यन्तश्च विख्यातानाभा गोदिष्ट एव च ॥११॥

वसुश्च पृषधश्च वसुमान् लोकविश्रुत ।

मनो वैवस्वन्स्यंते नवपुत्रा प्रवीतितौ ॥१२॥

यैवस्वन्मिदं प्रह्वान्कथिते मयान्तरम् ।

अस्मिञ्छ्रुतेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ।

मुच्यतेपातकैःसर्वैःपुण्यंचमहदश्नुते ॥१३

इस पृथिवी को भूलोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ॥८॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र ॥९॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ॥१०॥ इक्ष्वाकु, नाभग, घृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, द्विष्ट ॥११॥ कर्षुष और पृषध्र यह नौ उन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१२॥ हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापों से मुक्त होकर भद्रुष्य पुरय फल को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

७२-सावर्णिक मन्वन्तर

स्वयाम्भुवाद्याःकथिताःसप्ततेमनवोमम ।

तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥१

अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।

मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥२

कथितस्तवसावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्चयः ।

पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुभविताष्टमः ॥३

रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।

ऋष्यशृङ्गस्वथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४

सुतापाश्रामिताभाश्चमुख्याश्चैवत्रिधासुराः ।

विशकःकवथिताश्चैषान्रयाणांत्रिगुणोगणः ॥५

तपस्तपश्चशक्रश्चद्युतिर्ज्योतिःप्रभाकरः ।

प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥६

इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविशकोगणः ।

प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तयान्योर्विशकोगणः ॥७

श्रीष्टुति बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु, उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उम समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मत्ता की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि बाठवें मनु होंगे ॥३॥ इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्य शृङ्ग और द्रौणि यह सात ऋषि होंगे ॥४॥ सुतपो, अमिताभ और मुख्य यह तीन गण और प्रत्येक गण में बीस देवता हैं, इस प्रकार यह साठ हैं ॥५॥ उनमें उपरूप, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभाम, दयित, धर्म, तेज, रश्मि और यशसु ॥६॥ आदि सभी देवता उन बीस गणों के घनर्गत हैं, प्रभु, विशु और विभामादि देवता अमिताभ देवताओं के बीस गण हैं ॥७॥

पुराणाममितानांतृतृतीयमपिमेशृणु ।

दमोदात्तमृत मोसोविन्ताद्याश्च विदशति ॥८॥

मुन्याह्ये तेममाख्यातादेवामन्वन्तराधिपा ।

मागीचस्येवतेपुत्रा काश्यपस्यप्रजापते ॥९॥

भविष्याश्चभविष्यन्तिमावरास्तान्तरमनो ।

तेपामिन्द्रोभविष्यस्तुबलिर्वैरोचनिमुने ॥१०॥

पावान्नास्तेयोऽद्यापिर्दत्य समयत्रन्वन ।

विरजाश्चार्चवीरश्चनिर्मोह मत्पवापकृत ।

विष्णवाद्याश्च वतनया सावरांम्यमनोर्तृपाः ॥११॥

यह तृतीय गण का विवरण कहना है—दम, दाश, ऋतु, मोन और विन्त आदि देवतागण मुख्य नाम के तृतीय विश्व के घनर्गत हैं ॥८॥ यह सभी मन्वन्तराधिपति और सभी मरीचि पुत्र प्रजापति काश्यपजी के ही पुत्र हैं ॥९॥ सावर्णि मन्वन्तर में यह देवता और विरोचन पुत्र बलि इन्द्र होंगे ॥१०॥ ओ देव राज प्रविजा पाण में बंधे होने में अब भी पाताल में रहते हैं, यह विरजा, चर्चवीर, निर्मोह, मत्पवाक, कृति, विष्णु नामक यह सावर्णि पुत्र उम काल में राजा होंगे ॥११॥

७३—देवी माहात्म्य-मधुकैटभ बध

सावर्णिःसूर्यतनयोयोमनुःकथ्यतेष्टमः ।
 निशामयतदुत्पत्तिविस्तराद्गदतोमम ॥१
 महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिपः ।
 सबभूवमहाभागःसावर्णिस्तनयोरवेः ॥२
 स्वारोचिषेत्तरेपूर्वचैत्रवंशसमुद्भवः ।
 सुरथोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमंडले ॥३
 तस्यपालयतःसम्यक्प्रजाःपुत्रानिवीरसान् ।
 वभूवुःशत्रवोभूपाःकोलाविध्वंसिनस्तदा ॥४
 तस्यतैरभवच्चुद्धमतिप्रबलदंढिनः ।
 न्यूनैरपिसतैर्युद्धेकोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥५
 ततःस्वपुरमायासोनिजदेशाधिपोभवत् ।
 आक्रान्तःसमहाभागस्तैस्तदाप्रबलारिभिः ॥६
 अमात्यैर्वलिभिर्दुष्टैर्दुर्वलयदुरात्मभिः ।
 कोशोवलंचापहृतंतत्रापिस्वपुरेततः ॥७

मार्कण्डेयजी बोले—जिस सूर्य पुत्र सावर्णि को आठवाँ मनु कहा गया है, उसका विस्तार पूर्वक जन्म कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥१॥ जिस प्रकार वह महामाया भगवती की कृपा से सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर मन्वन्तराधिपति हुआ, उसे सुनो ॥२॥ स्वारोचिष मनु के राज्याधिकार से पूर्व चैत्रवंशोत्पन्न सुरथ नामक समस्त पृथिवी का राजा हुआ ॥३॥ जब वह सुरथ अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगा, उसी अवसर पर कोला विध्वंस नामक राजा उससे शत्रुता करने लगे ॥४॥ और प्रबल दण्ड देने में समर्थ राजा सुरथ के साथ उनका युद्ध हुआ, यद्यपि शत्रु अल्प थे, फिर भी उन्होंने सुरथ को परास्त कर दिया ॥५॥ तब अपने प्रबल शत्रुओं से वशीभूत हुआ राजा सुरथ अपने नगर में आकर राज्य करने लगा ॥६॥ उस नगर में भी

प्रबन् धीर दुष्ट भ्रमायो ने उक्त राजा का शोषागार तथा सेवा नष्ट कर
 टांको ॥१०॥

तनोमृगपाठ्याजेनहृतस्वाम्य सभूपति ।
 एवाकीर्ह्यमारुह्यजगामगहनधनम् ॥८
 सतप्राथमनद्राक्षीद्विद्वजवर्यःसुमेधस ।
 प्रसात्तश्चापदाकीर्णमुनिशिष्योपशोभितम् ॥९
 तत्स्यौकन्तितकालक्षमुनिनातेनसत्कृत ।
 इतश्चेतन्नविचरस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०
 सोचितयत्तदातथममत्वावृष्टमानस ।
 मत्पूर्वं पालितपूर्वमयाहौतपुरहितत् ।
 मद्भृत्यैस्ते रसद्वृत्तेर्धमेत पालयतेनवा ॥११
 नजानेमुप्रधानोमेतूरोद्भृत्सोसदामद ।
 ममवैरिवदायात कान्भोगानुपलप्स्यते ॥१२
 येमभानुगतानित्यप्रमादधनभोजने ।
 अनुवृत्तिं च वनेद्यकुर्वन्त्यभहीभृताम् ॥१३
 अस्म्यन्पथशीलेस्ते कुर्वन्ति सततव्ययम् ।
 भक्षित सोतिदु मेनस्यकोशोगमिष्यति ॥१४

इस प्रकार राज्य के दिन जाने पर राजा सुरप मन्त्राह्वे होकर मृगया
 के लिए निकला ही निर्जन वन में चले गए ॥८॥ वहाँ उनकी परिहारा से
 निवृत्त हुए पशुओं से परिपूर्ण एक आश्रम देखा जो कि मेघा नामक महर्षि का
 था, वह अपने शिष्यों के सहित वहाँ निवास करते थे ॥९॥ उन महर्षि ने राजा
 का प्रत्यक्ष महार विना योग तब वह राजा कुछ काल तक महर्षि के आश्रम
 में टहर कर ऊपर-ऊपर विचारण करत रहे ॥१०॥ फिर उनकी मम ममता
 पूर्वक उन्हें विनय कराने लगा कि मेरे पूर्व पुरुषों द्वारा पालित राज्य अब
 मुझसे विहीन हाया है, मेरे दुराचारों भृत्य, उसका धर्म पूर्वक पालन करते
 होंगे या नहीं ? ॥११॥ तथा मम रहने वाला वह मेरा प्रधान हाथों धर्म
 पशुओं के बर्णभूत होकर कम नष्ट रहा होगा ॥१२॥ जो निरव-प्रति प्रमाद,

धन; भोजनादि देने के कारण मेरे अनुगामी रहते थे, अब वह अवश्य ही अन्य राजाओं की सेवा में लगे होंगे ॥१३॥ तथा अन्यान्य प्रकार से धन व्यय करते हुए भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक संचित कोष उन सेवकों के द्वारा नष्ट कर दिया जायगा ॥१४॥

एतच्चान्यच्चसतर्तचितयामासपार्थिवः ।

तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकंददर्शसः ॥१५

सपृष्ठस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्रागमनेत्रकः ।

सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥१६

इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपतेःप्रणयोदितम् ।

प्रत्युवाचसतर्वैश्यःप्रश्रयावनतोनुपम् ॥१७

समाधिर्नामवैश्योहमुत्पन्नोधनिनांकुले ।

पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभिः ॥१८

विहीनःस्वजनैर्दारैर्पुत्रैरादायमेधनम् ।

वनमभ्यागतोदुःखीनिरस्तश्चाप्तबंधुभिः ॥१९

सोहंनवेद्भिपुत्राणांकुशलाकुशलात्मिकाम् ।

प्रवृत्तिस्वजनानांचदाराणांचात्रसंस्थितः ॥२०

किनुतेषांगृहेक्षेममक्षेमंकिनुसांप्रतम् ।

कथंतेकिनुसद्वृत्तादुवृत्ताःकिनुमेसुताः ॥२१

राजा मुरथ इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ करने लगे, तभी उन्होंने आश्रम के समीप एक वैश्य को देखा ॥१५॥ तो उन्होंने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? यहाँ किसलिये आये हो ? तुम शोक सन्तप्त से क्यों दिखाई दे रहे हो ? ॥१६॥ राजा के ऐसे विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने भी उन्हें अत्यन्त नम्रता पूर्वक उत्तर दिया ॥१७॥ वैश्य ने कहा—मैं धनिक कुल में उत्पन्न हुआ समाधि नामक एक वैश्य हूँ, धन के लालच में मेरी स्त्री और पुत्रों ने ॥१८॥ मेरा सम्पूर्ण धन छीन कर मुझे घर से बाहर कर दिया है और इस अवस्था में मुझे मेरे बंधवों और मित्रों ने भी त्याग दिया है, इसीलिये दुःखित हृदय मैं इस वन में आया हूँ ॥१९॥ तथा इस वन में आकर मैं अपने स्त्री-

पुत्रादि व कुशल या प्रमद्वल की बात से घनभिन्न हूँ ॥२०॥ घर में कुशल है या नहीं तथा उन पुत्रादि का आचरण सुधरा है अथवा नहीं, यही चिन्ता है ॥२१॥

यनिरस्तोभवान्नुष्यं पुत्रदारादिभिर्घनैः ।

तपुकिंभवत स्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥२२

अथमेतद्यथाप्राहभवानस्मद्गतवच ।

किं करोमिन्बध्नातिममनिष्ठुरतामन ॥२३

यै सत्यज्यपितृस्नेहघनलुब्धैर्निराकृत ।

पतिस्वजनहार्दिकहार्दितेष्वेवमेमन ॥२४

किमेतन्नाभिजानामिजानन्नापिमहामते ।

यत्प्रेमप्रवणचित्त विगुरोष्वपिवधुषु ॥२५

तपाहु तमेति श्वासोदीर्घमनस्यचजायते ।

धरोमिक्वियन्नमनस्तेष्वप्रीतिपुनिष्ठुरम् ॥२६

ततस्तोसहितीविप्रतमुत्तिसमुपस्थितौ ।

समाधिर्नामर्षश्योसोसचपाथिवसत्तम ॥२७

वृत्वातुतोयथान्याययथाहंतेनसविदम् ।

उपविष्टोक्थ्या वरश्चिञ्चक्रतुबोध्यपार्थिवो ॥२८

राजा बात—जिन घन के लालची स्त्री पुत्रादि ने तुम्हें घर से निकाल बाहर किया, उनके प्रति भी तुम्हारा चित्त स्नेहवान् क्यों है ? ॥२२॥ वैश्य बाला—घापका कथन यथार्थ है, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा मन किसी प्रकार भी उनका बटोर नहीं हो पा रहा है ॥२३॥ जिन पुत्रों ने पितृ स्नेह को रसाग कर, जिन पत्नियों ने पति प्रेम को छोड़कर और जिन बन्धुओं ने चापवत्य का परिहाण कर घन के लालच से मुझे घर से बाहर कर दिया, चम्ही दुष्ट स्त्री, पुत्र और बन्धुओं ने मेरा मन फँसा हुआ है, हे महामते ! उनमें मेरा चित्त इतना घातपित्त क्यों है, यह मेरी समझ में नहीं आता ॥२४-२५॥ उन्हीं के प्रति निम्न हुआ मेरा चित्त दीप निश्राम छोड़ता हुआ इतना प्रीतिमान् है और बटोरता की प्राप्त नहीं हो पाता ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! इसके परवाह राजा मुरख और वैश्य दोनों ही मिलकर महापि मेघा के पाठ

पहुँचे ॥२७॥ और दोनों ने मुनि का यथोचित सम्मान करके उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया ॥२८॥

भगवंस्त्वामहंप्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तन् ।
 दुःखाय न्मम मनसः स्वचित्ताय त्तां विना ॥२६॥
 मम त्वंगत राज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि ।
 जानतोपियथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ॥३॥
 अयं च निकृतः पुत्रं दारं भृत्यं स्तथोज्ज्वलतः ।
 स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दितथाप्यति ॥३१॥
 एवमेष तथा हंच द्वावप्यत्यंतदुःखितौ ।
 दृष्टदोषेषु विषये मम त्वाक्कृष्टमानसौ ॥३२॥
 तकिमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनो रपि ।
 ममास्य च भवत्येषा विवेकांघस्य मूढता ॥३३॥
 ज्ञानमस्ति स मस्तस्य जंतो विषयगोचरे ।
 विषयाश्च महाभाग यांति चैव पृथक्पृथक् ॥३४॥
 दिवांघाः प्रणिनः केचिद्रात्रावंधास्तथापरे ।
 केचिद्दिवातथारात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५॥

राजा बोले—हे भगवन् ! जिस विषय को न समझने के कारण मेरा मन दुःखित है, उस विषय को आप से पूछा चाहता हूँ, उसे मुझे समझाने की कृपा करें ॥२६॥ हे प्रभो ! यद्यपि यह भ्रम है, फिर भी राज्यादि के प्रति मेरी इतनी ममता है, ऐसा क्यों है ? ॥३०॥ इस वैश्य को भी इसके पुत्र, स्त्री भृत्य, बांधवादि ने अपमानित करके त्याग दिया है, फिर भी यह उन्हीं के प्रति अनुराग युक्त है ॥३१॥ इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनों ही इस दिखाई पड़ते हुए दूषित विषय में ममतावान् होकर अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं ॥३२॥ हम ज्ञानी होकर भी विवेकांघ के समान विमूढ़ हो रहे हैं ऐसा क्यों है ? ॥३३॥ ऋषि ने कहा—सभी जीवों को विषय के दिखाई पड़ने पर ज्ञान है, परन्तु विषयों के प्रति पृथक्-पृथक् ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥३४॥ देखो कोई

कोव दिन में नहीं देय सत्ता, कोई रात्रि में नहीं देल पाता और किसी को दिन और रात्रि में समान रूप से दिखाई देता है ॥३५॥

ज्ञानिनोमनुजा मर्त्यविनुतेनहिकेवलम् ।

यतोहिज्ञानिन मर्वेषशुपक्षिमृगाद्रम ॥३६॥

ज ननतन्मनुष्याणायत्ते पामृगपक्षिणाम् ।

मनुष्यणाचयत्तेयानुल्यमन्यत्तयोभयो ॥३७॥

ज्ञानपिसतिपश्यंतान्पतगाञ्छावचक्षुषु ।

कणमोक्षादृतान्माहृत्पीडयमानानपिक्षुधा ॥३८॥

मानुषामनुजव्याघ्रनाभिलाषा मुतान्प्रति ।

लाभात्प्रत्युपकारायनन्वेतन्किनपश्यमि ॥३९॥

तथापिममतावत्तमाहृगत्तेनिपातितः ।

महामायाप्रभावेणमसारस्थितिवारिणा ॥४०॥

तन्नात्रविस्मय कार्योयोगनिद्राजगत्पते ।

महामायाहरेञ्चपातयासमोह्यतेजगत् ॥४१॥

ज्ञानिनामपिचेतासिदेवीभगवतीहि सा ।

चलादाकृष्यमाहायमहामायाप्रयच्छति ॥४२॥

आप जिन प्रकार ज्ञानवार्ता करत है, ऐसा ज्ञान मनुष्यों को है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु केवल मनुष्य ही ऐसे ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं पशु, पक्षी तथा मृगादि को भी ऐसा ज्ञान प्राप्त है ॥३६॥ दिखाई पड़ने वाले विषय का ज्ञान पशु, पक्षी और मनुष्यों का समान ही है, उसमें कुछ भेद नहीं है ॥३७॥ परन्तु ऐसा ज्ञान होन पर भी पारस्परिक विषय में कितनी विभिन्नता है, देखो यह पक्षी स्वयं शुकानुर होकर भी अपने बालकों की खोज में मोह के बन्दीभूत होकर ही चान्पादि क टालते हैं ॥३८॥ और मनुष्य भी अपनी सन्तान क प्रति प्रीतिमान् होकर उनका भरण-पोषण करत हैं, परन्तु मनुष्य का यह कार्य प्रणुपकार के सोत्र से ही है, क्या तुम्हें यह दिखाई नहीं देता ? ॥३९॥ इस प्रकार उपकार आदि की आशा से रहित होकर भी सभी जीव महामाया के दबाव से नाशना रूप भ्रमर से मुक्त मोह रूप गर्त में पतित होते हैं ॥४०॥ इस

विषय में विस्मय की कोई बात नहीं है, जगदीश्वर श्री विष्णु की योग निद्रा स्वरूपिणी महामाया ही इस विश्व को विमोहित करती है ॥४१॥ वही महामाया ज्ञानियों के चित्त का बलपूर्वक आकर्षण करके उन्हें मोह में गिराती है ॥४२॥

तयाविसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
 सैषा प्रसन्ना वरदानृणां भवति मुक्तये ॥४३॥
 सा विद्या परमा मुक्त हेतु भूता सनातनी ।
 संसारव ग्हे नुश्च संवसर्वेश्वरेश्वरी ॥४४॥
 भगवन्काहिसा देवी महामाये तियां भवान् ।
 ब्रवीति कथमुत्पन्ना कर्म चास्याश्च किद्विज ॥४५॥
 यत्प्रभावात्तसा देवीयत्स्वरूपाय दुःखवा ।
 तत्सर्वश्रोतुच्छामित्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥४६॥
 नित्येव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ।
 तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधाश्च यतां मम ॥४७॥
 देवतां कार्यसिद्धयर्थं भाविर्भवति सा यदा ।
 उत्पन्नेति तदालोके सानित्याप्यभिधीयते ॥४८॥

देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न होती है तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है ॥४३॥ मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं संसार-बंधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अधीश्वरी है ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! जिसे आपने महामाया बताया है, वह कौन है ? उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और उनके कर्म किस प्रकार के हैं ? ॥४५॥ उनका स्वभाव और स्वरूप कैसा है ? हे ब्रह्मविद् श्रेष्ठ ! यह सब मैं आप से सुनना चाहता हूँ ॥४६॥ ऋषि ने कहा—वह जगन्मूर्ति नित्य हैं तथा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है, फिर भी उनके अनेक प्रकार से उत्पन्न होने का वृत्तान्त तुमसे कहता हूँ, श्रवण करो ॥४७॥ जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये उनका आविर्भाव होता है, तब नित्य होती हुई भी लोक में उत्पन्न हुई कहलाती है ॥४८॥

योगनिद्रायदाविष्णुजंगत्येकार्णवीकृते ।
 आस्तोषं शेषमभजत्कल्पांते भगवान्प्रभु ॥४६॥
 तदाद्वावसुरीघोरोविख्यातोमधुकंटभौ ।
 विष्णुकर्णमलोद्भूतो हनु ब्रह्माण्मुद्यती ॥५०॥
 सनाभिवमलेविष्णो स्थितो ब्रह्मा प्रजापति ।
 दृष्ट्वा तावसुरीचोग्रीप्रसुप्तचजनादनम् ॥५१॥
 तुष्टावयोगनिद्रांतामेवाग्रदृढदयस्थित ।
 प्रबोधनार्थायहरेर्हंरिनेशकृतालयाम् ॥५२॥
 विश्वेश्वरीजगद्धात्रीस्थितिसहारकारिणीम् ।
 स्तीमितिद्रांभगवतीविष्णोरतुलतेजस ॥५३॥
 त्वस्वाहात्वस्वधात्वहिवपट्कारस्त्ररात्मिका ।
 मुघत्त्वमक्षरेनित्येत्रिधामात्रात्मिकास्थिता ॥५४॥
 धर्ममात्रास्थितानित्यायानुचचार्याविशेषतः ।
 त्वमेवसध्यासाविश्रित्वदेविजननीपरा ॥५५॥
 त्वर्षतद्धार्यंतेविश्वत्वर्षतत्सृज्यतेजगत् ।
 त्वमेवसत्पाल्यतेदेवित्वमत्स्यतेचसर्वदा ॥५६॥

तया जब कल्पान्त में यह विश्व जल मग्न हो गया था, तब भगवान्
 विष्णु शम्पा पर शयन करने योग निद्रा में निमग्न हो गये ॥४६॥ तभी मधु
 कंटभ नामक दो अत्यन्त भयकर एव प्रमिद्ध धमुर भगवान् विष्णु के कान के
 भ्रंत से उत्पन्न हुए घोर घडा जी का वध करने में तत्पर हुए ॥विष्णु के नाम
 कमल में अवस्थित धरत तेजवान् प्रजापति ब्रह्माजी ने उन दोनों ५
 धमुरों को देखा घोर भगवान् विष्णु को निद्रा में निमग्न देव कर ॥५१॥
 उन्हें जगने के लिए एकाग्र चित्त से विष्णु के नेत्रों में स्थित निद्रा ,
 विश्वेश्वरी, विश्व की स्थिति घोर लप करने वाली एव भगवान् की
 उन भगवती निद्रा की स्तुति करने लगे ॥५२-५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे
 स्वप्ने ! हे निद्रा ! तुम हविदान के मन स्वाहा स्वरूप वाली हो, पितरों
 पर्यट से तुम ही स्वप्नस्थिणी हो, बगद्वार दद्र के हविरोंक मन की

स्वरूपा भी तुम ही हो तुम ही सुधा तथा तुम ही अक्षरों में, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरूपा त्रिमात्रा हो ॥५४॥ जिस गायत्री में अर्द्ध मात्रा का उच्चारण विशेष रूप में स्थित हो, वह तुम ही हो और तुम ही सर्वश्रेष्ठ जगज्जननी एवं प्रकृति स्वरूपा हो ॥५५॥ हे देवि ! इस विश्व को उत्पन्न करने वाली तुम ही हो, तुम ही इसका धारण, पालन एवं प्रलयकाल में प्राप्त करने वाली हो ॥५६॥

विसृष्टीसृष्टिरूपात्वंस्थितिरूपाचपालने ।
 तथासंतदृतिरूपांतेजगतोस्यजगन्मये ॥५७॥
 महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृतिः ।
 महामोहामहादेवीमहादेवी महेश्वरी ॥५८॥
 प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ।
 कालरात्रिमहारान्त्रिमोहरान्त्रिश्चदासुता ॥५९॥
 त्वंश्रीस्त्वमोश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणा ।
 लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्तिःक्षान्तिरेवच ॥६०॥
 खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ।
 शंखिनीचापिनीबाणाभुशुंभीपरिघायुधा ॥६१॥
 सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वन्तिगुन्दरी ।
 परापराणांपरमा त्वमेवपरमेश्वरी ॥६२॥
 यच्चर्कित्वं चिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मके ।
 तस्यसर्वस्ययाशक्तिःसात्त्विकिस्तूयसेमया ॥६३॥

सभी काल में सृष्टि और स्थितिरूप हो और विश्व के विनष्ट होते समय तुम ही संहार स्वरूपा हो ॥५७॥ तुम ही महाविद्या, महामेधा, महामाया, महास्मृति, महामोहा, महादेवी और महेश्वरी हों ॥५८॥ तुम ही सत्, रज, तम स्वरूप में सब जीवों की प्रकृति हो, तुम ही कालरात्रि, महारात्रि एवं प्रलय स्वरूपा हो, तुम ही भयंकर मोहरात्रि हो ॥५९॥ तुम ही श्री, तुम ही ईश्वरी, बुद्धि तथा दिव्यज्ञान की एकमात्र लक्षणा हो, तुम ही लज्जा, पुष्टि,

तुष्टि, शान्ति तथा धान्ति हो ॥६०॥ तुम ही क्षत्रिणी, शूनिनी, त्रयकर
 स्वरूपा, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी हो, वाणु, भुशुण्डी और
 परिष इन अस्त्रों के भी धारण करने वाली हो ॥६१॥ तुम ही सोम्या,
 सोम्यनरा तथा विश्व के सब मुन्दर पदायों में सर्वश्रेष्ठ सोम्यदेवों वाली हो, श्रेष्ठ,
 श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठारो की भी ईश्वरी हो ॥६२॥ सत्, असत् वस्तु और उन ती
 नों की शक्ति है वह तुम ही ही, इसलिए तुम्हारी स्तुति में किन प्रकार
 करूँ ? ॥६३॥

यथात्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पालयत्तियोजगत् ।
 सोपिनिद्रावशनीत कस्त्वांस्तोतुमिहेश्वर ॥६४॥
 विष्णु शरीरग्रहणमहमीशानएवच ।
 कारितास्तेयतोऽन्तस्त्वांकस्तोतु शक्तिमाभवेत् ॥६५॥
 सात्वमित्यप्रभावं स्वरुदारं देविसस्तुता ।
 मोहमयेतौदुराघर्षाविसुरीमघुकंटभौ ॥६६॥
 प्रबोधचजगत्स्वामीनीयतामच्युतोक्षु ।
 बोधश्चक्रियतामस्यहतुमेतांमहासुरी ॥६७॥
 एवस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ।
 विष्णो प्रबोधनार्थायनिहतु मघुकंटभौ ॥६८॥
 नेत्रास्यनासिकाबाहुदृढयेम्यस्यथोरसः ।
 निगंम्यदरंनेतस्योन्नह्यणोव्यक्तजन्मनः ॥६९॥
 उत्तस्यौचजगत्ताथस्तयामुक्तोजनार्दनः ।
 एकार्णवेहिनायनात्ततःसदृशोचतौ ॥७०॥

हे देवि ! जब तुमने विश्व के गृष्टा, पालक और प्रलयकर्ता भगवान्
 को ही निद्राभिभूत किया हुआ है तब तुम्हारे स्तुति करने की सामर्थ्य और
 किन में होगी ? ॥६४॥ हे देवि ! जब तुमने विष्णु ईशान और भुके देह प्राप्त
 कराया है तब अन्य कौन पुण्य तुम्हारे स्तोत्र में समर्थ है ? ॥६५॥ हे देवि !
 तुम अपने वशर स्वभाव के इन वस्तुओं में प्रथम होकर इन मघु कंटम नामक
 दोनों दुर्धन भगुरों को मोहित कर दो ॥६६॥ क्या विश्वेश्वर विष्णु को

शीघ्र जगत्कर इन असुरों के संहार के लिये प्रेरित करो ॥६७॥ ऋषि ने कहा—
ब्रह्माजी ने उन दोनों का संहार करने के लिये जब इस प्रकार उन तमोगुणी
निद्रादेवी की स्तुति की ॥६८॥ तब उनके देखते-देखते भगवान् विष्णु के
नेत्र, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर भगवती अवस्थित हुईं ॥६९॥
फिर निद्रा स्वहृदिणी देवी से मुक्त होकर भगवान् विष्णु ने एकारात्रि में स्थित
हुई शर्या से उठ कर देखा ॥७०॥

मधुकैटभौदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।

क्रोधरक्तेक्षणीहंतुःब्रह्माण्जनितोद्यमौ ॥७१॥

समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ।

पंचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभुः ॥७२॥

तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहिता ।

उक्तवन्तीवरोस्मत्तोन्नियतामितिकेशवम् ॥७३॥

भवेतामद्यमेतुष्टीममवध्यानुभावपि ।

किमन्येनवरेणात्रएतावद्विवृतंभया ॥७४॥

वंचिताभ्यामितितदासर्वमापोभयञ्जगत् ।

विलोक्यताभ्यांगदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥७५॥

प्रीतीस्वस्तवयुद्धेनरलाध्यस्त्वंमृत्युरावयोः ।

आवांजहिनयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥७६॥

तथेत्युक्त्वाभगताशंखचक्रगदाभृता ।

कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥७७॥

एवमेषासमुत्पन्नाब्रह्मणासंस्तुतास्वयम् ।

प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःशृणुवदामिते ॥७८॥

क्रोध से लाल नेत्र किये हुए वे मधु कैटभ नामक दोनों दुरात्मा असुर
ब्रह्माजी का वच करना चाहते हैं ॥७१॥ भगवान् विष्णु ने उठ कर उन दोनों
असुरों के साथ पाँच सहस्र वर्ष तक बाहुओं से ही युद्ध किया ॥७२॥ फिर बल
से उन्मत्त हुए उन दोनों असुरों ने महामाया के द्वारा मोहित होकर भगवान्
से कहा—हम से वर माँगो ॥७३॥ भगवान् ने कहा—यदि तुम मुझ पर

प्रसन्न हुए हो तो मेरे द्वारा मारे जाओ, यही वर चाहता हूँ, अन्य वर से क्या प्रयोजन है ॥७६॥ ऋषि ने कहा—भगवान् द्वारा ऐसा छल करने पर उन प्रसुरो ने सम्पूर्णा विश्व को जलमय देख कर उनसे कहा ॥७५॥ हम तुम्हारे साथ युद्ध करके प्रसन्न हुए हैं इसलिये तुम्हारे हाथ से मग्ना हमे श्लाघनीय है, परन्तु जो स्थान जलमय न हो, हमारा वध वही करना ॥७६॥ ऋषि ने कहा—ऐसा ही हो बहुर भगवान् विष्णु ने छल चक्र और गदा को धारण करके उन प्रसुरो के मन्त्रको का शपथनी जघा पर रख कर चक्र से काट डाला ॥७७॥ स्वयं ब्रह्माजी द्वारा स्तुति करने पर यह मायादेवी इस प्रकार से शपथोली हुई अब इन देवी का प्रभाव तुम्हारे प्रति कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥७८॥

७४- महिषासुर सैन्य वध

देवासुरमभूद्युद्ध पूर्णमन्दशतपुरा ।
 महिषसुराणामधिपेदेवानाचपुरदरे ॥१
 तन्नामुरमंहावीर्यैर्देवसैन्यपराजितम् ।
 जित्वाचमकलान्देवानिद्रोभून्महिषासुरः ॥२
 तत पराजितादेवा पश्योनिप्रजापतिम् ।
 पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रेशगरड्वजो ॥३
 यथावृत्त तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
 त्रिदशा वचयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥४
 सूर्येन्द्राग्न्यनिलेदूनापमस्यवण्णस्यच ।
 अग्न्येवावाधिवारान्मस्वममेवाधितिष्ठति ॥५
 स्वर्गाग्निरावृता सर्वेतेनदेवगणाभुवि ।
 विचरतिपयामार्यामहिषेणदुरात्मना ॥६
 एतद् वयित्तमर्वममरारिविचेष्टितम् ।
 धारण्य प्रपन्ना स्मोवयस्तस्यविचित्यताम् ॥७

मुनि ने कहा—आदिकाल में जब देवाधिपति इन्द्र थे और महिष दानवों का अधिपति था, उस काल में एक सौ वर्ष तक निरन्तर देवता और दानवों का युद्ध हुआ ॥१॥ उस युद्ध में महापराक्रमी दानवों ने देव-सेनाओं पर विजय प्राप्त की एवं सभी देवगण को जीतकर असुराधिपति महिष स्वयं इन्द्र बन गया ॥२॥ तदुपरान्त पराजित देवगण प्रजापति ब्रह्माजी के पास आये और शिवजी व विष्णु के निकट भी पहुँचे ॥३॥ देवगण ने शिवजी व भगवान् विष्णु को सम्पूर्ण युद्ध वृत्तान्त कह सुनाया और महिषासुर की विजय व उसके इन्द्रासन पर अधिकार की बात विस्तार से कही ॥४॥ देवताओं ने कहा कि, महिषासुर ने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण व अन्य दूसरे देवताओं के कार्यों पर अधिकार कर लिया है ॥५॥ महिष द्वारा स्वर्ग से निष्कासित देवता मर्त्यलोक के मनुष्यों के तुल्य पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥६॥ हमने आपसे उन दानवों के अत्याचार का वर्णन किया । हम आपकी शरणागत हैं आप महिषासुर के विनाश के लिए विचार करिये ॥७॥

इत्थंनिशम्यदेवानां वचांसिमधुसूदनः ।

चकारकोपंशंभुश्चभ्रुकुटीकुटिलाननी ॥८

ततोतिकोपपूर्णस्यचक्रिणोवदनात्ततः ।

निश्चक्राममहत्तेजोब्रह्मणःशंकरस्यच ॥९

अन्येषांचैवदेवानांशक्रादीनांशरीरतः ।

निर्गतंसुमहत्तेजस्तच्चैक्यंसमगच्छत् ॥१०

अतीवतेजसकूटंज्वलंतमिवपर्वतम् ।

ददृशुस्तेसुरास्तत्रज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥११

अतुलंतत्रतत्तेजःसर्वदेवशरीरजम् ।

एकस्थंतदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयंत्विषा ॥१२

यदभूच्छांभवंतेजस्तेनाजायततन्मुखम् ।

याम्येनचाभवन्केशाबाहवोविष्णुतेजसा ॥१३

सौम्येनस्तनयोयुग्मममध्यमैद्रेणाचाभवत् ।

वारुणेनचजंघोरूनिर्तंबस्तेजसाभुवः ॥१४

मुनि ने कहा—देवगण के ऐसे घबन सुनते ही निवजी बोर विष्णु भगवान् श्रत्यन्त कुपित हुए, श्रीर क्रोध से उन दोनों के मुख तथा भृशुटी कुटित होगई ॥८॥ तदुपगन्त क्रोध से युक्त विष्णु भगवान्, शिवजी एव ब्रह्माजी के मुचो से एक विमृत्त तेज प्रकट हुआ ॥९॥ इसी प्रकार इन्द्र एव अन्य दूमरे दवनाओ के मुचो से भी तेज निकला । अन्तत निकला हुआ समस्त तेज मिलकर एक होगया ॥१०॥ इसके पश्चात् मिलकर एक हुए उस श्रत्यन्त तेज पुञ्ज को, जिमकी ज्वालाएँ मभूरुणं दिशाओ में फैल गईं, पर्यंत के तुल्य जन्तवे देखा ॥११॥ फिर वह एकत्रित पिभुनन को अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज पुञ्ज स्त्री रूप में परिवर्तित होने लगा ॥१२॥ शिवजी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, वम के तेज से केश तथा विष्णु के तेज से उसकी दो भुजाएँ बन गई ॥१३॥ चन्द्र व तेज से दोनो स्तन, इन्द्र के तेज में मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जघा और ऊर, पृथ्वी के तेज से निगम्ब ॥१४॥

ब्रह्माणस्तेजसापादोतदगुल्योर्वतेजसा ।
 नमूनाचकरागुल्यःकोत्रैरेणचनासिवा ॥१५
 तस्यास्तुद्र ता सभूताःप्राजापत्येनतेजसा ।
 नयनत्रितयजज्ञे तथापावक्तेजसा ॥१६
 भ्र वोचसघ्ययोस्तेज श्रवणावनिलस्यच ।
 भग्येपाचैवदेवानासभवस्तेजसांशिवा ॥१७
 तत ममस्तदेवानातेजोराशिसमुद्भवाम् ।
 ताबिलोकप्रमुद प्रापुरमरामहिपादिता ॥१८
 ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुधानिच ।
 ऊवुर्जयजयेत्युच्चैर्जयतीतिजयैपिण ॥१९
 मूलमूलाद्विनिष्कृध्यददौतस्यैपिनाकभृत् ।
 षकचदस्तवान्कृष्ण समुत्पाट्यस्वचकत ॥२०
 गतधवशरण गक्तिददौतस्यैहुताशन ।
 मास्तोदत्तवाश्रापवाणपूरुणेतयेपुधी ॥२१

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियाँ, वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियाँ कुबेर के तेज से नासिका ॥१५॥ प्रजापति के तेज से दंतावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र ॥१६॥ दोनों संभ्याओं के तेज से भ्रुकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मञ्जुकारी देवी ने जन्म लिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं के तेज-पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से असित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ॥१७॥ फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकांक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ॥१८॥ इसके पश्चात् शिवजी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया । विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ॥२०॥ वरुण ने उन्हें शस्त्र, हुताशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्रःसमुत्पाठ्यकुलिशादमराधिपः ।

ददौतस्यैसहस्राक्षोघटामैरावताद्गजात् ॥२२

कालादंडाद्यमोदंडं पाशंचानुपतिददौ ।

प्रजापतिश्चाक्षभालांददौब्रह्माकमंडलुम् ॥२३

समस्तरोमकूपेषुनिजरश्मोन्दिवाकरः ।

कालश्चदत्तवान्खड्गं तस्यै चर्मचनिर्मलम् ॥२४

क्षोरोदश्चामलहारमजरेचतथांबरे ।

चूडामणितथादिभ्यंकुंडलेकटकानिच ॥२५

अर्द्धचंद्रं तथाशुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु ।

नूपुरौविमलौतद्वद्भ्रं वेयकमनुत्तमम् ।

अंगुलीयकरत्नानिसमस्तास्वगुलीषुच ॥२६

विश्वकर्माददौतस्यैपरशुंचातिनिर्मलम् ।

अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्यंचदंशनम् ॥२७

अम्लानपंकजांमालांशिरस्थुरसिंचापराम् ।

अददाज्जलविस्तस्यैपंकजंचातिशोभनम् ॥२८

सहस्राक्ष भ्रमरेभ्य इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और
 एरावत हाथी का चण्डा खोलकर दिया ॥२२॥ यमराज ने कालदण्ड से एक
 दण्ड उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया । वरुण ने पाश, दक्ष प्रजापति ने अक्षमाला
 एवं ऋद्धाजी ने उन्हें वमण्डनु प्रदान किया ॥२३॥ दितकर ने उन कल्याण
 देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणों प्रदान की, काल ने उन्हें स्वच्छ
 तलवार और दात दी ॥२४॥ क्षीरोद्व रामुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोतियों का
 हार, दो स्वल्प वस्त्र, सुन्दर धूडाभण्ड, दिव्य कुण्डल और कणन प्रदान किये
 ॥२५॥ धर्द्ध चन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनों बाहुओं में बाजूबन्द, कठ के लिए
 सुन्दर घाभूपण एवं समस्त अगुणियों में अनुपम अगुणियाँ दी ॥२६॥ विश्व-
 कर्माजी ने अनुपम परशु और अकाश कवच उन्हें प्रदान किया ॥२७॥ समुद्र
 में मिले हुए समस्त गुणों की शोभायमान मालाएँ कठ एवं सिर पर धारण
 करने के लिये दीं ॥२८॥

हिमवान्वाहनसिहरत्नानिविविधानिच ।

ददावधून्यसुरयापानपानघनाधिप ॥२९॥

शेषश्चसर्वनागेशोमहामणिविभूषितम् ।

नागहारददोतस्यंघत्तं य पृथिवीमिमाम् ॥३०॥

अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ।

समानिताननादीच्च मादृहासमुहमुह ॥३१॥

तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरिततभ ।

अनायतातिमहताप्रतिशब्दोमहानभत् ॥३२॥

चुम्बु सकलालोका समुद्राश्चकपिरे ।

चचालवमुधाचेतु सकलाश्चमहीधरा ॥३३॥

जयेतिदेवाश्चमुदातामूषु सिंहवाहिनीम् ।

तुष्टुमु नयस्वनाभस्किनम्रात्ममूर्त्तं य ॥३४॥

दृष्ट्वासमस्तमक्षुब्धत्रैलोक्यममराय ।

सप्तद्वारिलसंन्यास्तेममुत्तस्थुद्रायुधा ॥३५॥

हिमालय ने देवी की सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान

किये । वनपति कुबेर ने उन्हें सुरा युक्त सुरा-पान पात्र दिया ॥२६॥ पृथ्वी के आधार अनन्त नाभेश ने देवीजी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया ॥३०॥ अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हें विभिन्न प्रकार के अस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये । इस प्रकार देवताओं द्वारा सम्मानित वह देवी अट्टहास के साथ भीषण गर्जना करने लगी ॥३१॥ उस भयङ्कर गर्जना से समस्त आकाश पूर्ण होगया फिर आकाश से एक अचानक घोर प्रति शब्द भी हुआ ॥३२॥ जिससे तीनों लोक हिल गये समुद्र कांप गये, पृथ्वी डगमगाने लगी और सभी पर्वत कम्पायमान होने लगे ॥३३॥ तब सुरगण सिंह पर सवार उन भगवती की प्रसन्नता से जय-जय करने लगे । ऋषिगण भी नम्रता पूर्वक उनका गुण-गान करने लगे ॥३४॥ तीनों लोकों को इस प्रकार क्रियाशील देखकर दानवगण सम्पूर्ण सेना को सज्जित कर शस्त्रास्त्र धारण कर तैयार होगए ॥३५॥

आः किमेतदितिक्रोधादाभाष्यमहिषासुरः ।

अभ्यधावततशब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥३६

सददर्शततोदेवींन्याप्तलोकत्रयांत्विषा ।

पादाक्रांत्यानतभुवंकिरीटोल्लिखितांबराम् ॥३७

शोभिताशेषपातालार्धनुज्वानिःस्वेनेनताम् ।

दिशोभुजसहस्रेणसमतान्ध्याप्यसंस्थिताम् ॥३८

ततःप्रववृत्तेयुद्धंतयादेव्यासुरद्विषाम् ।

शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुवर्तैरादीपितदिगंतरम् ॥३९

महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ।

युयुधेचामरश्चान्यश्चतुरंगबलान्वितः ॥४०

रथानामयुतैषड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ।

अयुध्यतायुतानांचसहस्रेणमहाहनुः ॥४१

पंचाङ्घ्रिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ।

अयुतानांशतैषड्भिर्बाष्कलयुयुधेरयो ॥४२

“अहा ! यह क्या होता है” कुपित महिषासुर ऐसा कहकर समस्त असुर सेना सहित उस और दौड़ पड़ा ॥३६॥ तो महिषासुर ने देखाकि वह

देवी भवनी घामा विम्वरती हुई अलोक्य मे व्याप्त विद्यमान हैं । एव जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ॥३७॥ जिनके घनुष की प्रत्यवा के शब्द से समस्त भू-गर्भ भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी भवनी सहस्र भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं के प्राच्छादित करते हुए शोभायमान थी ॥३८॥ तत्पश्चात् देवी के साथ दानवों का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसमें प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रों से आकाश भी प्रकाशित होगया ॥३९॥ महिषासुर का सेनापक्ष विश्व घोर दानवी युद्ध करने लगा । चतुरङ्गिणी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ॥४०॥ विकराम असुर उदय साठ हजार रथों सहित युद्ध करने लगा एव महाहनु नाम का असुर भी एक करोड़ रथों को लेकर रणक्षेत्र में उतर आया ॥४१॥ समुलोभ नाम का महाअसुर पाँच करोड़ रथ लेकर और महादानव बाजल साठ हजार रथों को लेकर युद्ध करने लगा ॥४२॥

गजवाजिसहस्रीघोरेनेकंरुद्रदण्डिनः ।

वृत्तोरथानाकोट्याचयुद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४३

विडालाक्ष्योमहादैत्य पञ्चाशद्भिरथायुतं ।

युयुधेसयुगेतत्ररथानापरिवारित ॥४४

युत कालोरथानाचरणोपचाशतायुतं ।

युयुधेसयुगेतत्रतावद्भिरपरिवारित ॥४५

अन्येचतत्रायुतशोरथानामहर्षयुता ।

युयुधु सयुगेदेव्यासहतत्रमहासुरा ॥४६

कोटिकोटिसहस्रं स्तुरथानादतिनातथा ।

हयानाचवृत्तोयुद्धे तत्रामूर्त्वाहपासुर ॥४७

सोमरेभिदिपालंश्रशक्तिभिर्मुसलेस्तथा ।

दधाम्नप्रहारैस्तुतेनाहतु प्रचक्रमुः ॥४८

महादैत्य परिवारित अनेक सहस्र हाथी व घोड़ों युक्त एक करोड़ रथों

सहित उनमें मिलकर युद्ध करने लगा ॥४३॥ महाभ्रसुर विडाल पाँच लाख रथों को लेकर युद्ध क्षेत्र में युद्ध-रत होगया ॥४४॥ एवं इतने ही रथों सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध में रत होगया ॥४५॥ साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोड़ों रथ हाथी और घोड़ों से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४६॥ करोड़ों हजारों रथ हाथी और घोड़ों से सज्जित होकर वह महिषासुर उस युद्ध में आया ॥४७॥ इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४८॥ किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ॥४९॥

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राप्यस्त्राणिचंडिका ।
लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥५०॥
अनायस्ताननादेवीस्तूयमानासुरर्षिभिः ।
मुमोचासुरदेहेपुंशस्त्राप्यस्त्राणिचेश्वरी ॥५१॥
सोपिक्रुद्धोधृतसटोदेव्यावाहनकेसरी ।
चचारासुरसैन्येषुवनेष्विवहुताशनः ॥५२॥
निश्वासान्मुमुचेयांश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।
तएवसद्यःसभूतागणाःशतसहस्रशः ॥५३॥
युयुधुस्तेपरशुभिर्भिदिपालासिपट्टिशैः ।
नाशयंतोसुरगणान्देवीशक्त्युपवृंहिताः ॥५४॥
अवादयंतपटहान्गणाःशंखांस्तथापरे ।
मृदंगांश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥५५॥
ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभिः ।
खड्गदिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ॥५६॥

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवों के सभी अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर डाले ॥५०॥ उस समय प्रसन्नतापूर्वक उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे । इसके पश्चात् देवी असुरों पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगी ॥५१॥ देवी-वाहन सिंह भी केसर

कल्पित कर धरति के समान दंष्ट्र मेनाओ मे विवरण करने लगा ॥१२॥ मुड मे रत देवी के निश्वाओ से ही शत सहस्र गण सुगन्त उत्पन्न होगये और धनुष मेलाओ मे मुड करने लगे ॥१३॥ देवी के प्रभाव से बलगामी बहू गण फरसा, भ्रिंश्याव, धर्मि और पट्टितन स दानवो को नष्ट करने लगे ॥१४॥ गण मुड क्षेत्र मे दानवाद भी करते ये और मुदङ्ग भी बजाते थे ॥१५॥ इसके पदचाव देवी ने भ्रं विमान, गदा, धन्कि, वृष्टि, खड्ग वगैरह से शत शत घोर दानवो का क्षमर किया ॥१६॥

पातयामासर्धैवान्यान्यघटास्वनविमोहितान् ।
 इमुरान्भुविपाशेनबद्धाचान्यानवर्षेयत् ॥१७॥
 केनिद्धिधाकृतास्तीक्ष्णं खड्गपातंस्तथापरे ।
 विपायित्तानिपातेनगदयाम्भुविदेरते ॥१८॥
 वेमृश्रकेत्तिद्रुधिरमुसलेनभृशहता ।
 वेन्दिप्रिपतिताभूमोभिघ्ना भूलेनबद्धसि ॥१९॥
 निर तरशरीपेणकृता केचिद्रणाजिरे ।
 शैलानुकारिण्य प्राणान्मुमुबुस्त्रिदशाहं ना ॥२०॥
 केगाचिद्वाह्वदिद्यन्नाद्यिन्नप्रीवास्तथापरे ।
 निरासिपेतुरन्येमपामन्येमध्येविदारिता ॥२१॥
 विन्दिन्नजघास्त्वपरेपेतुरुर्षामहासुरा ।
 एववाह्वक्षिरणा केचिद्देव्याद्विघाकृता ॥२२॥
 छिन्नेपिचान्येचिरत्तिपतिता पुनरुत्थिता ।
 वचयायुषुधुर्देव्यागृहीतपरमायुषाः ॥२३॥

बई को घटे शस्त्र से मोहित कर बारा और दूसरे बहुत से राक्षसों की पाश में बंधकर धरान्न पर धींचा ॥१७॥ बई को अपनी तलवार की तीव्र पार से दो टुकड़े कर शला घोर बई को गदा के प्रहारों से चूरुं कर डाला ॥१८॥ बौई-बौई मूयम के प्रहार से निरन्तर रक्त-वमन करने लगा और बई धनुष दृश्य में त्रिभूल भेदन से पीछिन होकर पृथ्वी पर लुडव गये ॥१९॥ मुड ध्रुति से देवी के शरणों के प्रहारों से निरन्तर धनुषों की मेलाओ की सहायता

करने वाले देवताओं के शत्रु इस प्रकार मरते जाते थे ॥६०॥ किसी असुर की भुजाएं कटीं, किसी की गदंत, अन्य दूसरों के मस्तक धड़ से अलग होगये और किसी के मध्य से वो टुकड़े होगये ॥६१॥ किसी भयंकर असुर की जांघ कटकर धरती पर गिरी और देवी ने किसी-किसी के एक बाहु, एक आंख और एक चरण नष्ट कर दिया व किसी के बीच से दो खंड कर दिये ॥६२॥ कोई-कोई असुर मस्तक कट जाने से भी पृथ्वी से गिरकर पुनः उठकर कई कबन्ध या घड़ पुनः अस्त्र लेकर देवी से युद्ध करने लगे ॥६३॥

ननृतुश्चापरेतत्रयुद्धे तूर्यलयाश्रिताः ।

कबंधाश्छिन्नशिरसःखड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ॥६४

तिष्ठतिष्ठेतिभाषंतोदेवीमन्येमहासुराः ।

रुधिरौघविलुप्तांगाःसंग्रामोलोमहर्षणो ॥६५

पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्चवसुंधरा ।

अग्न्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारणः ॥६६

शोणितौघामहानद्यःसद्यस्तत्रविसुखुदुः ।

मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ॥६७

क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांतथांबिका ।

निन्येक्षयंथथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६८

सर्चसिंहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ।

शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ॥६९

देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतंयुद्धंमहासुरैः ।

यथैनांतुष्टुदुर्देवाःपुष्पवृष्टिमुचोदिवि ॥७०

अनेक कबन्ध या घड़ नृत्य करने लगे और उस महायुद्ध में अनेक भयङ्कर महादैत्य मस्तक कट जाने पर केवल कबन्ध ही रह गये थे । जो कि हाथों में तलवार, शक्ति और दोनों ओर धार वाली तलवार पुनः लेकर ॥६४॥ 'ठहरो, ठहरो !' देवी से कहते थे । जिस क्षेत्र में यह विदारक महा युद्ध हुआ गिरे हुए हाथी, घोड़ों, दानवों और उनके रथों से वह पट सा गया था और ऐसा होगया कि पैर रखने को भी स्थान नहीं था ॥६५-६६॥ तत्काल ही उस

स्थान पर युद्ध में असुर सेनापति के हाथियों, घोड़ों व सैनिकों के रक्त समूह से रक्त की नदियाँ बहने लगी ॥६७॥ सूखे हुए वण्ट की अग्नि जिस प्रकार पल-भर में गन्ध कर देती है, उसी प्रकार उन अश्विनी देवी ने राक्षसों की महा सेनापति का पल मात्र में नष्ट किया ॥६८॥ देवी-वाहन सिंह ने भी महानाद करते हुए, अपने बालों को कम्पित करता हुआ अत्यन्त क्रोध पूर्वक सभी दांतों के प्राणों को हरने लगा ॥६९॥ एक धूम धूमकर असुरों के शरीरों से ही जैसे वह प्राणों को ही खोजने लगा । देवी के सम्पूर्ण गणों ने उन भयङ्कर असुरों से पराक्रम पूर्वक युद्ध किया, जिससे देवता प्रसन्न होकर स्वर्ग से उन पर पुण्य-दर्प कराने लगे ॥७०॥

७५—महिषासुर वध

निहन्यमानतर्मेन्यमवलोकयामहासुर ।
 सेनानीश्चिक्षुर कोपाद्ययौयोद्धुमथाविकाम् ॥१॥
 मन्वेवीदारवर्षणाववर्षममरेऽसुर ।
 यथामेहगिरे शृ गतोयवर्षणतोषद ॥२॥
 तस्यच्छिद्यत्वातदेवीलीलयवशरोत्तरान् ।
 जघानतुरगान्वाणैर्यत्तारचं ववाजिनाम् ॥३॥
 चिच्छेद्वचधनु सद्याष्वजचातिममुच्छ्रितम् ।
 विख्याद्यचैनगात्रेषुच्छिद्यधन्वानमाशुम् ॥४॥
 सच्छिद्यधन्वाविरयोहताश्रोहृतसारथि ।
 मम्यघावततादिवीलङ्गचर्मधरोसुर ॥५॥
 सिंहमाहृतयश्च ह्ये नतीदराघारेणामूर्धनि ।
 आजघानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ॥६॥

उम गये असुर सेनापति को नष्ट हुआ देखकर महिषासुर का सेनाध्यक्ष क्षिप्र युद्ध निमित्त अश्विनी देवी के समीप आया ॥१॥ गुमफ पर्वत के सिखर

पर बादलों की वर्षा के समान वह महा असुर देवी पर धार-वर्षा करने लगा ॥२॥ देवी ने उसके सभी बाणों को काटकर खीला पूर्वक उसके रथ के घोड़ों और सारथी को अपने बाणों से नष्ट कर डाला ॥३॥ देवी ने तत्काल उस चिक्षुर का धनुष और अत्यन्त उच्च ध्वजा को काट कर उसका शरीर बाण वर्षा से बेध डाला ॥४॥ उसका जब धनुष नष्ट होगया, रथ नष्ट होगया तथा घोड़े व सारथी सभी समाप्त होगये, तो वह दैत्य सेनापति तीव्र तलवार व डाल लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥५॥ और घोर गति से अपनी तीक्ष्ण धार की तलवार से सिंह के माथे पर प्रहार करके देवी के भी बायें हाथ पर प्रहार किया ॥६॥

तस्याःखड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ।

ततो जग्राहशूलं सकोपादारुणलोचनः ॥७

चिक्षेपचतस्ततुभद्रकाल्यामहासुरः ।

जाज्वल्यमानंतेजोभीरविबिंबमिवांबरात् ॥८

दृष्ट्वातदापतच्छूलं देवीशूलममुच्यत ।

तेनतच्छतधानीतंशूलं सचमहासुरः ॥९

हतेतस्मिन्महावीर्यमहिषस्यचमूपती ।

आजगामगरुडश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०

सोपिशक्तिमुमोचाथदेव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ।

हंकराभिहतांभूमौपातयामासनिष्प्रभाम् ॥११

भर्गुशक्तिनिपतितां दृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः ।

चिक्षेपचामरशूलं बाणैस्तदपिसाच्छिनत् ॥१२

ततःसिंहसमुत्पत्यगजकुंभांतरेस्थितः ।

बाहुयुद्धेनयुधेतेनोन्वेस्त्रिदशारिणा ॥१३

युध्यमानोततस्तोतुतस्मान्नागान्महींगता ।

युयुधातेतिसंरब्धौप्रहारंरतिदारुणैः ॥१४

हे नृप ! उस दैत्यराज का खड्ग देवी के हाथ के स्पर्श मात्र से ही टूट गया । फिर क्रोधपूर्ण रक्तिम नेत्रों वाले उस महादानव ने त्रिशूल लेकर ॥७॥

भद्रकाली पर वार किया तो देवी ने तेज से प्रकाशमान एवं आकाश से गिरते हुए मयं मण्डल के तुल्य ॥८॥ उस त्रिशूल को देखकर अपना शूल ग्रहण किया देवी द्वारा। वार किये गये त्रिशूल से उस अमुर के त्रिशूल के सौ टुकड़े होगये एवं दैत्य सेनाधिपति चिधुर ने भी सौ टुकड़े होगये ॥९॥ महिषामुर का सना-पार महापराक्रमी चिधुर ने समाप्त होने पर सुरगणों का शत्रु महादानव चामर हाथी पर सवार होकर युद्ध करने व लिये देवी के सामने आया ॥१०॥ उस महादानव ने देवी पर लक्ष्य करके शक्ति छोड़ दी, परन्तु वह शक्ति देवी की हुंकार के घोर शब्द से अभिभूत व प्रभाहीन होकर घरातल पर गिर पड़ी। शक्ति को इस प्रकार नष्ट हुआ देख अमुर चामर ने क्रोधित होकर त्रिशूल चलाया परन्तु देवी ने अपने शरो से उस त्रिशूल को भी भेद दिया ॥१२॥ इनके पदवान् देवी वाहन सिंह छानाग लगाकर हाथी के मस्तक पर चढ़ गया एवं हाथी की पीठ पर बंठे उस महा अमुर से बाहू युद्ध करने लगा ॥१३॥ सिंह एवं अमुर चामर दोनों ही युद्ध करते हुए उस गज से नीचे गिरे व अत्यन्त क्रोधपूर्वक आपस में भीषण प्रहार करने लगे ॥१४॥

ततोवेगात्त्रमुत्पत्यनिपत्यचमृगारिणा ।

वरप्रहारेणतिरश्चामरस्यपृथक्कृतम् ॥१५॥

उग्रश्चरणोदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हृत ।

दत्तमुष्टिलोर्ध्वंकरालश्चनिपातित ॥१६॥

देवीञ्चद्वागदापातैश्चूणयामासचोद्धतम् ।

वाङ्मल भिन्दिपालेनवासीस्ताभ्र तर्थाधिकम् ॥१७॥

उग्रास्यमुग्रबोर्ध्वतर्ध्वंचमहाहनुम् ।

त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥१८॥

विडालस्यासिनाकासात्पातयामासवैशिर ।

दुर्घारदुर्मुत्पत्तोभीसरंनिन्वेयमक्षयम् ।

कालचकानदडेनकालरात्रिरपातयन् ॥१९॥

“उग्रदर्शनमत्पुत्रं चद्वापातैस्ताडयत् ।

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ।

गणौ सिंहेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ॥२०

एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ।

माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान् ॥२१

इसके बाद कुछ समय में ही सिंह ने एकदम आकाश में छलांग लगाई और फिर पृथ्वी पर गिर कर अचानक पंजों से आघात करते हुए असुर चामर का मस्तक उसकी देह से अलग कर दिया ॥१५॥ उदग्र नाम असुर को देवी ने पत्थर और वृक्षों की वर्षा करके और असुर कराल को दाँत व मुष्टिका प्रहारों से समाप्त कर डाला ॥१६॥ अत्यन्त क्रुपित उस देवी ने गदा के आघात से उद्धत नाम के दानव को पीस डाला । फिर भिदिपाल से असुर बाणकल एवं ताम्र व अन्धक नामक दो असुरों को शरों से समाप्त कर दिया ॥१७॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवी ने त्रिबूल द्वारा उग्रस्थ, उग्रवीर्य व महाहनु नामक दानवों को नष्ट कर दिया ॥१८॥ तलवार द्वारा असुर विडाल के मस्तक काटकर गिरा दिया । बाणों के प्रहार से दुर्द्धर व दुर्मुख नाम के दो दानवों को यमलोक भेज दिया । कालरात्रि ने काल असुर को काल दगड से मार दिया ॥१९॥ उग्र खड्ग के आघात से उग्रदर्शन, असि से असिलोभा को समाप्त कर दिया तो सिंह व देवी के गणों ने जय-नाद किया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी समस्त सेना को नष्ट होता हुआ विलोक राक्षसराज महिषासुर अपना महिषरूप धारण करके देवी के गणों को भयभीत करने लगा ॥२१॥

कांश्चित्तुंडप्रहारेणक्षुरक्षेपैस्तथापरान् ।

लांगूलताडितांश्चान्याञ्छंगाम्यांचविदारितान् ॥२२

वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ।

निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥२३

निपात्यप्रमथानीकमभ्यधावतसोसुरः ।

सिंहंतुं महादेव्याःकोपंचकृततोम्बिका ॥२४

सोपिकोपान्महावीर्यःक्षुरक्षुण्णमहीतलः ।

शृंगार्यापर्वतानुच्चैश्चिक्षेपचननादच ॥२५

वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीयंत ।

लागूलेनाहनश्चाधि प्लावयामाससवंत ॥२६॥

धुतशृ गविभिन्नाश्चखड खड पयुर्घना ।

श्वासानिलास्ता शतशोनिपेतुर्नभसोऽचला ॥२७॥

इतिक्रोधसमाध्मातमापततमहासुरम् ।

दृष्ट्वासाचडिकाकोपतदघायतदाकरोत् ॥२८॥

किसी गण को मुख प्रहार से, किसी पर खुर स आघात करके, किसी को पूँछ से आघात से त्रमित करने लगा ॥२२॥ किसी को तीव्र गति द्वारा, किसी को घोर गजन द्वारा, किसी को भ्रमण द्वारा और किसी को श्वास की वायु से विदारण कर डाला ॥२३॥ इस प्रकार दैत्य-गणों को गिराकर वह दैत्यराज महा देवी क वाहन गिह को समाप्त करने की आकांक्षा से दोषा, ती देवी एवदम क्रोधित हुई ॥२४॥ महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधपूर्ण होकर खुरो से धरती को बुरेदत्ता दृष्ट्वा और दीनो तंक्षुण् सीनो द्वारा उच्चतर पर्वत मानासो को उखाड़ना हुण गजने लगा ॥२५॥ उसके वेग से इस प्रकार धूमने पर पृथ्वी कोमल क्षीणई और गडडे होगये तथा पूँछने ताडित समुद्र भी सभी घोर फँजने लगा ॥२६॥ बँपा देने वाले सीनो से धिरे हुए बादल खण्ड खण्ड होगये और उसने श्वास की तीव्र वायु से घनेको पर्वत गिर पडे ॥२७॥ ऐसे क्रोध-पूर्ण उस दैत्यराज को समीप आया देत चरिष्टका देवी भी क्रोधित ही उसे मारने को उत्तन हो गई ॥२८॥

सालिप्रवातस्यवंपातववधमहासुरम् ।

तत्याजमाहिरूपमोपिवद्वोमहामृधे ॥२९॥

तत सिहोभवत्सद्योयावत्तस्यारिकशिर ।

छिनत्तितापत्पुरप सङ्गपाणिरददमत ॥३०॥

ततएवाशुपुरपदवीचिच्छेदमापव ।

सपद्मचर्मणासार्धतत सोभूग्महागज ॥३१॥

परेश रमहामिहलचकपजगजंज ।

कपंतम्पुरदेवीपद्मेननिरटु तन ॥३२॥

ततोमहासुरोभूयोमाहिषं वपुराश्रितः ।
 तथैवक्षोभयामासत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥३३॥
 ततःक्रुद्धाजगन्माताचण्डिकापानमुत्तमम् ।
 पपीपुनःपुनश्चैवजहासारुणलोचना ॥३४॥
 ननर्द्दचासुरःसोपिबलवीर्यमदोद्धतः ।

विषाणाभ्यांचचिक्षेपचण्डिकांप्रतिभूधरान् ॥३५॥

देवी ने पाश फँका, जिससे महिषासुर को बाँध लिया तथा उस महिषा-सुर ने भी अपना महिष रूप छोड़ दिया ॥३३॥ और तुरन्त ही उसने सिंह रूप ग्रहण किया, इसके पश्चात् जैसे ही अम्बिका देवी उस दैत्यराज का सिर काटने को आगे बढ़ी, त्योंही वह तलवार हाथ में लेकर पुरुष रूप में दीखने लगा ॥३०॥ तदुपरान्त अपनी तीक्ष्ण बाण वर्षा द्वारा ढाल व तलवार सहित उस पुरुष रूप महिषासुर को बीच डाला, तभी वह अत्यन्त विशाल हाथी बनकर अपनी सूँड़ से सिंह को खींचता हुआ गर्जना करने लगा । देवी ने सिंह को खींचकर तलवार से हाथी की सूँड़ काट डाली ॥३१-३२॥ इसके पश्चात् महान्-दैत्य पुनर्दार महिष रूप में पहिले के ही प्रकार से वह तीनों लोकों को पुनः प्रसित करने लगा ॥३३॥ तत्पश्चात् विश्व-माता चण्डिका क्रोध पूर्वक उत्तम मधु-पान करने लगी तथा रक्तम नेत्रों सहित बार-बार हँसने लगी ॥३४॥ तब वह मदमस्त, वीर्यवान् दानव भी गर्जना के साथ दोनों सींगों से चण्डिका देवी पर पर्वत उखाड़ कर फँकने लगा ॥३५॥

साचतान्प्रहितास्तेनचूर्णयंतीशरोत्करैः ।

उवाचतमदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६॥

गर्जगर्जक्षरण्मूढमधुयावत्पिवाम्यहम् ।

मयात्वयिहतेत्रैवगजिष्यंत्याशुदेवताः ॥३७॥

एवमुक्त्वासमुत्पत्यसारूढातमहासुरम् ।

पादेनाक्रम्यकंठेशूलेनैनमताडयत् ॥३८॥

ततःसोपिपदाक्रांतस्तयानिजमुखात्ततः ।

अर्द्धनिष्क्रांतएवासीद्द्व्यावीर्येणसंवृतः ॥३९॥

प्रदं निष्क्रातएवामोपुध्यमानोमहानुरः ।
 तयामहामिनादेव्यागिरश्छत्त्वानिपातित ॥४०॥
 एवममहिषोनामससैन्य समुहद्वगण ।
 त्रंलोक्यमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशित ॥४१॥
 त्रं लोक्यस्थंस्तदाभूतंमंहिषेविनिपातिते ।
 जपेत्युक्त तत सर्वे सदेवामुरमानवै ॥४२॥
 ततोहाहाकृतसर्वदं त्यसंन्यनगाशयत् ।
 प्रहर्षचपरजम्भु सकलादेवतागणा ॥४३॥
 तुष्टुवुस्तांमुरादेवीमहृदिभ्यैमंहिषिभि ।
 जगूर्गधर्षपतपोननुशुभ्राभ्ररोगणा ॥४४॥

देवी भी घपनी वाल-वर्षा द्वारा उन ममस्त पर्वतो को घूर्ण करके मुँह
 करने लगी । उस समय वू कि मद्य-पान से देवी का शरीर रक्त वर्ण होगया
 या एव सभी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥३६॥ देवी ने कहा—भरे
 घूर्ण । जब तक मैं मद्य-पीता हूँ, तभी तक तू गर्जना करले फिर मेरे द्वारा तुझे
 निहत हुआ देख देवतागण यहाँ मेरे स्थान पर गर्जना करेगे ॥३७॥ ऋषि ने
 कहा—देवी ऐसा कहकर अनाग लगाकर उस महादानव पर संचार हो गई तथा
 उसे घपने चरणों से दबाकर उस घमुर के कठ में त्रिशूल से प्रहार करने लगी
 ॥३८॥ इसके पश्चात् उस महादानव की घाभा प्रायः समाप्त हो गई और देवी
 के पैरों से दबा होने से अस्त-सा होगया ॥३९॥ उसके बाद सघर्ष करते हुए
 उस महादानव का महाभयि से निरः क्लम कर उसे समाप्त कर दिया ॥४०॥
 इस प्रकार से वह महिषामुर घपनी सेना घोर घमुरगणी के समेत त्रिलोक्य को
 अमित कर अन्त में देवी द्वारा विनाश कर दिया गया ॥४१॥ उस समय महि-
 षामुर के निहत होने पर तौनो लोकों के देवता, मनुष्य घोर भू-गाताल निवासी
 बलि आदि सभी ने देवी का जपघोष किया ॥४२॥ उसके पश्चात् देवी ने
 हाहाकार करती रोष दंष्ट्र मेना को भी नष्ट कर दिया, जिससे कि सुरगण
 अत्यन्त आनन्दित हुए ॥४३॥ देवता व ऋषि-मुनिगण देवी का गुण-गायन करने
 लगे । अन्तर्ष पति भावन करने लगे एवं अम्भराजे नृप करने लगे ॥४४॥

७६—शक्रादिकृत देवीस्तव

ततःसुरगणाःसर्वेदेव्याइंद्रपुरोगमाः ।

स्तुतिमारेभिरेकतुंनिहतेमहिषासुरे ॥१

शक्रादयःसुरगणानिहतेतिवीर्यतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या ।

तांतुष्टुबुःप्रणतिनभ्रशिरोधरांसावाग्भिःप्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥२

देव्याययाततमिदंजगदात्मशक्त्यानि.शेषदेवगणशक्तिसमूहगूर्या ।

तामंबिकामखिलदेवमहृषिपूज्यांभवत्यानताःस्मद्विदधातुशुभानिसानः॥ ३

यस्याःप्रभावमतुलंभगवाननंतोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलंबलंच ।

साचंडिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमर्तिकरोतु ॥४

याश्रीःस्वयंसुकृतिनांभवनेष्वलक्ष्मीःपापात्मनांकृतधियांहृदयेषुबुद्धिः ।

श्रद्धासतांकुलजनप्रभवस्यलज्जातांत्वांनताःस्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥५

किंवरुणायामतवरूपमर्चित्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ।

किंचाह्वेषुचरितानितवादभुता नसर्वेषुदेव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६

हेतुःसमस्तजगतांत्रिगुणापिदेवैर्नजायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ।

सर्वाश्रयाखिलमिदंजगदंशभूतमव्याकृताह्निपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७

ऋषि ने कहा—उस काल इन्द्र सहित समस्त सुरगण देवी द्वारा महिषासुर का वध किया जाने से आनन्दित होकर देवी का गुण-गान करने लगे ॥१॥ भगवती देवी ने सुरगणों के घोर शत्रु महापराक्रमी दैत्यराज महिषासुर का वध कर दिया तो इन्द्र सहित सम्पूर्ण सुरगणों के सुशोभित वन इस आनन्द से और अधिक पुलकित हो उठे, वे अपने सिर व कन्धों को नवाकर विभिन्न प्रकार से गुण-गान करते हुए दुर्गा की स्तुति करने लगे ॥२॥ देवताओं ने कहा—इस प्राणि जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई हैं एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या हैं, हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करे ॥३॥ अनन्त भगवान्, ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं,

यह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके महित व भय के नाश के लिए आकाशित हो ॥१॥ पुनोत् वायं करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मी स्वरूप, पाप-वर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, सद्ब्राह्मण वाली के निये, श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुल में उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप है, उन देवी को नमस्कार करते हैं । हे देवि ! आप जगत् का पोषण करे ॥२॥ आपका अचिन्त्य स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं । हे देवि ! आपका दानवी का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एव दानवी व देवगणों के प्रति रण-क्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार बतान करे ॥६॥ हे देवि ! आप विचारहीन आद्याप्रकृति हैं अथ च सत्व, रज एव तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो । राम द्रुप आदि से युक्त विष्णु व मत्स्य आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! आप प्रपत् हैं भोग सभी जगत् पदार्थों की आप माध्यम-स्वरूप है, यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है ॥७॥

यस्या ममस्तसुरता समुदोरसोनृमिप्रयातिसकलेषुमक्षेपुदेवी ।
 रवाहानिवंपितृगणस्यचतृमिहेतुरुद्धार्यसेत्वमतएवगने स्वधाच ॥८
 मामुत्तिहेतुरविचित्यमहाव्रतात्वमम्यस्यसेमुनियर्तेद्रियतत्त्वसारे ।
 मोक्षार्थिममुनिभिर्ग्रस्तसमस्तदोषैर्विद्यासिसाम्भगवतोपरमाहिदेवि ॥९
 शब्दादिमकामुविमलग्मंजुपानिधानमूद्गरीथरम्यपदपाठवताचसाम्नाम् ।
 देवीश्रयोभगवतीभवभावनायदात्तासिसर्वजगतापरमासिहृषी ॥१०
 मेधामिदेत्रिविदिताखिलशास्त्रसारादुर्गासिदुर्गभवसागरनौरसगा ।
 श्री ऋटभारिहृदयैककृताधिवासागोरीत्वमेवशिमोलिकृत्प्रतिष्ठा ॥११
 ईपरसहासमपवपरिपूणचन्द्रविवानुकारिकनकोत्तमकारितयात्सम् ।
 अरयदभुनप्रहृतमातरयातयाविवक्त्रवित्रोकयसहसामहिषामुरेण ॥१२
 दृष्ट्वातुदेविकुपितभृमुटीकगलमुद्यच्छशाकमदृशश्चद्विषमसद्यः ।
 प्राणान्मुमाचमहिपन्तदतीवचित्रकैर्जीव्यतेहिकुपितवदशनेन ॥ १३

देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ।

विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतंबलंसुद्विपुलमहिषासुरस्य ॥१४

हे देवि ! आपके नाम उच्चारण से ही सम्पूर्ण यज्ञों में देवतागण तृप्ति प्राप्त करते हैं, चूं कि आप ही ऋषिगण एवं सुरगण को तृप्त करने वाले स्वाहा एवं स्वधा स्वरूप उच्चारण की जाती हो ॥८॥ हे देवि ! आपकी महान् प्राराधना का विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोष-विहीन, मोक्ष के आकांक्षी ऋषिगण आपको मुक्ति का कारण मानते हैं । हे देवि ! इसलिये आप ही भगवती सर्वश्रेष्ठ मोक्ष विद्या हैं ॥९॥ हे देवि ! आप शब्द युक्त तीन वेद स्वरूप हैं और प्रणव युक्त, अनुपम पद वाले ऋक्, यजु व साम वेदों का आश्रय स्वरूप हैं, आप ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य पूर्ण हैं, आप ही विश्व का जीवन-रक्षक कृपि-स्वरूप हैं, हे देवि ! समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं ॥१०॥ हे देवि ! आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव-सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कैटभ शत्रु के वध-कर्ता भगवाद् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं और महादेवजी के बायें अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं ॥११॥ इस पर भी आपका मन्द हास्य पूर्ण, स्वच्छ, पूर्ण-चन्द्र तुल्य, सुन्दर वर्ण, कान्ति युक्त, अनुपम मुख देखकर भी महिषासुर ने क्रुपित होकर आप पर शस्त्राघात किया, यह आश्चर्यपूर्ण है अर्थात् समस्त त्रिभुवन को मोहित करने वाली आपकी मुख-कान्ति से भी वह दुष्ट मोहित नहीं हुआ ॥१२॥ हे देवि ! अत्यन्त क्रोधपूर्ण, तनी हुई भ्रुकुटि सहित उदित पूर्ण चन्द्र के समान आपके मुख को देखकर भी तुरन्त ही महिषासुर ने प्राण त्याग नहीं किया, यह आश्चर्यपूर्ण है, क्योंकि क्रोध युक्त यमराज को देखकर भी कोई जीवित रह सकता है ? ॥१३॥ हे भगवती ! आप प्रसन्न हों, विश्व का कल्याण करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं, हे देवि ! क्रोधित होने पर आप समस्त कुल नाश कर देती हैं, यह हम जान गये हैं क्योंकि आपने महिषासुर और उसकी विशाल असुर सेना को नष्ट किया है ॥१४॥

तेसंमताजनपदेषुधनानितेषांयशांसितचसीदतिबंधुवंगः ।

धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥१५

धर्म्याणि देविसव लानिमर्दं वकर्माप्स्यत्याहृत प्रतिदिनमुकृतीकरोति ।
 स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती प्रसादात्लोकत्रयं पि फलदाननुदेवितेन ॥ १६
 दुर्गे स्मृता हरमिभोति मदीपजता स्वस्थं स्मृता मतिमती वशुभाददासि ।
 दारिद्र्यदुःसमयहारिणि कात्वदन्यासर्वोपकारकरणासदाद्रं चिन्ता ॥ १७
 एभिर्हंतं जंगदुपैति मुखतथैते कुवंतुना मनरकायचिरायपापम् ।
 संग्राममृत्युमधिगम्य दिवप्रयां तु मत्वेति नूनमहिता न्विनिहसि देवि ॥ १८
 दृष्ट्यं वकिन भवती प्रकरोति भस्मसर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोपि शस्त्रम् ।
 लोवान्प्रयातुरिषवोपि हि शस्त्रपूता इत्यमतिभवं तितेष्वाहितेषु साध्वी ॥ १९
 यद्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रं शूलाग्रकातिनिवहेन हशोसुराणाम् ।
 यन्नागता विलयमशुभिर्दिदुखडः योग्याननतव विलोकयतां तदेतत् ॥ २०
 दुवंतं वृत्तमनतवदेवि शीलरूपतथैतद्विचित्रम तुल्यमन्यैः ।
 वीर्यं च हतुहृतदेवपराक्रमाणाः वरिष्वपि प्रकटितैर्हृदयात्स्वयेत्यम् ॥ २१

हे दुर्गे ! आप मन्तुष्ट होकर जिनको कल्याण देती हैं, वही राष्ट्र में पूज्य होने हैं, उन्हीं को धन भोर प्रमिद्धि प्राप्त होती है, उनका धर्म अक्षय रहता है भोर उनके पुत्र, स्त्री व मेवक मयमी व गम्भीर होते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! आपके ही प्रसाद से पुण्य कर्म करने वाले व्यक्ति नित्यप्रति पूर्ण भादर सहित परमानु-रक्त कार्य करते हैं तथा मृत्युपरात आपकी ही कृपा से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, हमनि ए हे धन्विका ! आप ही त्रैलोक्य को कनदायक हो ॥ १६ ॥ हे देवि ! प्रमित मनुष्य जब आपका नाम स्मरण करते हैं तो आप उन्हें भयहीन बनाती हैं भोर स्वस्थ हृदय प्राणि जब आपका स्मरण करते हैं तो आप उन्हें कल्याण-दाना बुद्धि प्रदान करती हैं, हे दरिद्रों का दुःख व भय हरण करने वाली ! आपके धनिरिक्त धन्य किम का हृदय रागी के हितार्थ कृपालु अथवा दयापूर्ण रहता है ? ॥ १७ ॥ "समस्त धमुरों के निहत होने से विश्व सुगी होवे भोर नरक प्राप्ति के निये बहुत अवधि तक पाप कर्म करने हम रण-क्षेत्र में निहत होकर स्वर्ग को प्राप्त करे" ऐसा मोचकर आप देव दानुषों का दामन करती हैं ॥ १८ ॥ आपकी ही दृष्टि मात्र से ही दानुषुगण भस्म हो सकते हैं, किन्तु दानुषों को अपने शस्त्र से वधित कर स्वर्ग में पहुँचाने के लिये आपने दानुषों

पर शत्रु चलाया निस्संदेह आपकी शत्रुओं का हित करने वाली मति सर्व श्रेष्ठ है ॥१६॥ हे देवि ! आपके खड्ग की तीव्र आभा और त्रिशूल के अग्रभाग की कान्ति से भी उन सभी दैत्यों की दृष्टि समाप्त नहीं हुई, इसका केवल कारण यही है कि आपके शोभायुक्त मुख चन्द्र की आभापूर्ण किरणों से उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगये थे ॥२०॥ हे दुर्गे ! आपका स्वभाव दुराचारी मनुष्यों के दुराचार का विनाश करने वाला एवं आपका रूप अतुलनीय व अचिन्त्य है । हे देवि ! आपका वीर्य देवगण के बल को हरने वाले दैत्यों का विनाश करता है, अतएव शत्रुओं पर भी आपकी कृपा पूर्ण स्पष्ट है ॥२१॥

केनोपमाभवतुतेस्मपराक्रमस्यरूपंचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ।
चित्तोकृपासमरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरं देभुवनत्रयेपि ॥२२॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातंत्वया समरमूर्द्धनितेपिहत्वा ।
नीतादिवंरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवंनमस्ते २३
शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचांबिके ।
घंटास्वनेननःपाहिचापज्यानिःस्वनेनच ॥२४॥
प्राच्यांरक्षप्रतीच्यांचचंडिकेरक्षदक्षिणे ।
भ्रामरोनात्मशूलस्यउत्तरस्यांतथेश्वरि ॥२५॥
सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरंतिते ।
यानिचात्यंतघोराणितैरक्षास्मांस्तथाभुवम् ॥२६॥
खड्गशूलगदादीनियानिचास्त्राणितेम्बिके ।
करपल्लवसंगीनितैरस्मात्रक्षसर्वतः ॥२७॥
एवंस्तुतासुरैदिव्यैःकुसुमैर्नदनोद्भवैः ।
अचिताजगतांधात्रीतथागंधानुलेपनैः ॥२८॥

हे देवि ! आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता । आपका रूप शत्रुओं को भयदाता एवं अत्यन्त अनुपम है । ऐसा अनुपम स्वरूप स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल में अन्य किसी का नहीं है । हे अम्बिके ! आपका हृदय दयापूर्ण तो है ही, साथ ही रणक्षेत्र में निष्ठुरता पूर्ण भी है, ऐसी समस्त तीनों लोकों में आप ही हैं ॥२२॥ हे देवि ! आपने शत्रुओं का विनाश

करके तीनों लोकों की रक्षा की है, युद्ध क्षेत्र में उन्हीं शत्रुओं को निहत करके स्वर्ग प्रदान किया एवं उन्हीं मद-भक्त दैत्यों के कारण हमारा भय भी समाप्त होगया, हे देवि । आपको नमस्कार है ॥२१॥ हे दुर्गे ! शूल द्वारा हमारी रक्षा करे । हे भ्रमिबके ! सङ्ग द्वारा हमारी रक्षा करे । हे देवि ! घण्टा एवं घनुप प्रत्येक के शब्द द्वारा हमारी रक्षा करे ॥२४॥ हे चरिडके ! शूल घुमाकर आप हमारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में रक्षा करे ॥२५॥ तीनों लोकों में विचरने वाल आपक जितने सौम्य रूप एवं भयङ्कर रूप हैं, उनके द्वारा हमारी व मर्त्यलोक की रक्षा कीजिये ॥२६॥ हे अम्बिका देवि ! अपने कर-कमलों में गुणोन्मित खड्ग, शूल, गदा आदि भस्त्रों द्वारा चारों ओर हमारी रक्षा करे ॥२७॥ ऋषि ने कहा—सुरगणों ने इस प्रकार उन देवी का गुण-गान किया और नन्दन कानन में उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्य गन्ध और धूपों के द्वारा भक्ति पूर्वक उन जगज्जन्नी की पूजा की ॥२८॥

भवत्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूर्प-सुधूपिता ।

प्राहप्रसादमुमुखासमस्तान्प्राणतान्सुरान् ॥२९

त्रियतात्रिदशा सर्वैर्यदस्मत्तोभिवाद्यितम् ।

ददाम्यहमतिप्रीत्यास्तवैरेभि सुपूजिता ॥३०

वत्तव्यमपर यच्चदुष्क रतन्नविद्महे ।

इत्याकर्ष्यंवचोदेव्या प्रयूचुस्तेद्विवीकस ॥३१

भगवत्याकृतसर्वैर्नकिंचिदवशिष्यते ।

यदयनिहत शत्रुरस्माकमहिषामुर ॥३२

यदिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकमहेश्वरि ।

सस्मृत्वास्मृतात्वनोहिसीथाःपरमापद ॥३३

यश्चमर्त्यस्तवैरेभिस्त्वास्तोप्यत्यमलानने ।

तस्यत्रित्तिद्धिविभवैर्धनदारादिसपदाम् ।

वृद्धयेस्मत्प्रपन्नात्प्रभवेया सर्वदोषिके ॥३४

इतिप्रमादितादेवैर्जगतोर्धेतयात्मन ।

तपेत्युवत्साम्द्रवासीप्रभूनातिहितानृप ॥३५

इत्येतत्कथितंभूपसंभूतासायथापुरा ।

देवीदेवशरीरेभ्योजगत्रयहितैषिणी ॥३६

पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ।

वधायदुष्टदैत्यानांतथाशुंभनिशुंभयोः ॥३७

रक्षणायचलोकानांदेवानामुपकारिणी ।

तच्छृंगुष्वमयाख्यातंयथावत्कथयामिते ॥३८

उस समय वर प्रदान करने की इच्छा से उनका मुख मरुडल अत्यन्त शोभायमान होगया और उन्होंने सभी विनीत देवताओं के प्रति कहा ॥२६॥ देवी ने कहा—हे त्रिदशगण ! अपना इच्छित वर मुझसे मांगो, तुम्हारे स्तवन से मैं परम सन्तुष्ट हुई हूँ, इसलिये प्रीति सहित वर प्रदान करूँगी ॥३०॥ इस महिषासुर का वध करने के पश्चात् क्या करना है, यह मैं नहीं जानती, अब तुम्हें जो कुछ दुःसाध्य हो, वही मुझे बताओ, देवी के ऐसे वचन सुनकर देवगण बोले ॥३१॥ देवताओं ने कहा—हे भगवती ! आपने हमारे हितार्थ इस प्रबल शत्रु महिषासुर को मार डाला, इससे हमारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगया है, अब कुछ कार्य शेष नहीं रहा ॥३२॥ फिर भी यदि आप वर देने की इच्छा ही करती हो तो हमें यही वर दीजिये कि जब कभी हम आपका स्मरण करें, तभी आप हमारे सङ्कट को दूर करें ॥३३॥ जो मनुष्य हमारे इस स्तोत्र द्वारा आपकी स्तुति करें, उनकी आप प्रसन्न होकर ज्ञानाधिक्य, ऐश्वर्य युक्त धन, पत्नी आदि की वृद्धि करना, क्योंकि आप सब कुछ देने में समर्थ हैं ॥३४॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! देवताओं द्वारा विश्व के हितार्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान होगई ॥३५॥ देवताओं के देह से जिस प्रकार विश्व का हित करने वाली वह देवी पूर्वकाल में आविर्भूत हुई, वह तुमसे वर्णन किया ॥३६॥ अब जिस प्रकार भगवती गौरी के शरीर से उत्पन्न होकर शुम्भ निशुम्भ और अन्य असुरों का नाश ॥३७॥ लोकरक्षार्थ और देवोपकारार्थ किया, उसे यथावत् तुम्हारे प्रति कहता हूँ, श्रवण करो ॥३८॥

७७—देवी से शंभु के दूत का कथन

पुरानु भनिशु भाम्यामसुराम्याशचीपते ।
 त्रैलोक्ययज्ञभागाश्रतद्वतामिदवलाश्रयात् ॥१॥
 तावेत्सूर्यतातद्वदधिकारतथेन्दवम् ।
 कौबेरमथयाम्यचक्रातेवहणस्यच ॥२॥
 तावेवपवनद्विचक्रतुर्वह्निकर्मच ।
 अन्येपाचाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ।
 ततादेवाविनिधूंताभ्रष्टराज्या पराजिता ॥३॥
 त्वताधिकारास्त्रिदशास्ताम्यामर्वेनिराकृता ।
 महामुरम्यातादेवीसस्मरत्यपराजिताम् ॥४॥
 तयास्माकवराद्तोययापत्सुस्मृताखिला ।
 भवतानाशयिष्यामितक्षणात्परमापद ॥५॥
 इतिष्टत्वामतिदेवाहिमवतनगेश्वरम् ।
 जग्मुस्तत्रततोदेवीचिष्णुमायाप्रतुष्टु ॥६॥

ऋषि ने कहा—पुराकाल की बात है, शुभनिशुभ नामक दो असुरों ने अपने अह्वान में शचिपति देवेन्द्र व त्रैलोक्य का राज्य घोर सम्पूर्ण यज्ञ भाग को हीन लिया ॥१॥ उन शुभ, निशुभ ने चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वःण के अधिकार को अपने हाथ में लिया और पवन तथा अग्नि का कार्य भी स्वयं करने लगे तथा सभी देवताओं के पदों पर उन्होंने अधिकार कर लिया ॥२॥ फिर उन दोनों घोर असुरों ने द्वारा अधिकार में भ्रष्ट और निरस्वार को प्राप्त हुए, राज्य से हीन एवं पराजित ॥३॥ देवगण उन अपराजिता भगवती का स्मरण करने लगे ॥४॥ देवी ने उन्हें विपद्काल में स्मरण करते ही विपत्ति नष्ट करने का वर दिया था, अब घोर विपत्ति आ गई इसलिये उन्हीं की शरण में जाना उचित है ॥५॥ इस प्रकार विचार करके देवतागण पर्वत श्रेष्ठ हिमालय में जाकर चिष्णु की उन माया का स्तव करने लगे ॥६॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥७

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै घात्र्यै नमो नमः ।

नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥८

ज्योत्स्नायै चंद्ररूपिण्यै सुखायै सततं नमः ।

कल्याण्यै प्रणता मृध्यै सिद्धयै कूर्म्यै नमो नमः ॥९

नैर्ऋत्यै भूमृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै तेनमो नमः ।

दुर्गायै दुर्गंपारायै सारायै सर्वकारिणि ।

ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१०

अतिसौम्यायै रौद्रायै नमस्तस्यै नमो नमः ।

नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥११

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४

देवताओं ने कहा—देवी को नमस्कार है, महादेवी, शिवा, प्रकृति और

भद्रा को वारम्बार नमस्कार है, हम विनीत होकर उन भगवती को वारम्बार

नमस्कार करते हैं ॥७॥ रौद्रा नित्या, गौरी, घात्री, जगत्-प्रतिष्ठा और कृत्या

को हमारा वारम्बार नमस्कार है ॥८॥ हम उन प्रकाश स्वरूपा, चन्द्ररूपा

तथा परमानन्द स्वरूपिणी देवी को नमस्कार करते हैं, उन कल्याणि, बुद्धि

रूपिणी एवं साक्षात् सिद्धि को नमस्कार करते हैं ॥९॥ नैर्ऋति स्वरूपा और

राजाओं की गृह लक्ष्मी स्वरूपा देवी को नमस्कार है, शर्वाणि, दुर्गा, दुर्गंपारा,

सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रा स्वरूपिणी भगवती को हम

नमस्कार करते हैं ॥१०॥ जो अति सौम्य तथा अत्यन्त रौद्र हैं, उनको हम

विनय पूर्वक नमस्कार करते हैं, जग-प्रतिष्ठा रूपिणी एवं कृति स्वरूपा देवी

को नमस्कार करते हैं ॥११॥ जो सब प्राणियों में विष्णुमाया नाम से प्रसिद्ध

है उनको वारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सब प्राणियों में चेतना रूप वाली

देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥१३॥ सब प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित रहने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

यादेवीमर्वभूतेपुनिद्रारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१५

यादेवीसर्वभूतेषुक्षुषारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१६

यादेवीसर्वभूतेषुच्छायारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१७

याद्वयीसर्वभूतपुशक्तिरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१८

यादेवीमर्वभूतेषुतृणारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१९

यादेवीमर्वभूतेषुक्षान्तिरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥२०॥

यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥२१

सब प्राणियों में निद्रारूप में स्थित देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥ सब जीवों में शुष्ण रूप में स्थित रहने वाली देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥ जो देवी सब भूतों में छाया रूप से अवस्थित रहती हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१७॥ सब प्राणियों में शक्ति रूप से विराजमान देवी को अनेक बार नमस्कार ॥१८॥ सब प्राणियों में तृणारूप में प्रतिष्ठित भगवती को बारम्बार नमस्कार ॥१९॥ सब प्राणियों में क्षान्ति रूप में अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२०॥ सब जीवों में जाति रूप से विद्यमान करने वाली देवी को नमस्कार ॥२१॥

यादेवीमर्वभूतेषुलज्जारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥२२

यादेवीसर्वभूतेषुशान्तिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२३
 यादेवीसर्वभूतेषुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२४
 यादेवीसर्वभूतेषुकान्तिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२५
 यादेवीसर्वभूतेषुलक्ष्मीरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२६
 यादेवीसर्वभूतेषुधृतिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२७
 यादेवीसर्वभूतेषुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२८

जो सब प्राणियों में लज्जा रूप से रहती हैं, उन देवी को बारम्बार नमस्कार ॥२२॥ सब प्राणियों में शान्तिरूप से अवस्थान करने वाली देवी को नमस्कार ॥२३॥ सब जीवों में श्रद्धारूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥२४॥ सब प्राणियों में कान्तिरूप से विराजमान देवी को नमस्कार ॥२५॥ सब जीवों में लक्ष्मीरूप से प्रतिष्ठित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब जीवों में धृति रूप से अवस्थान करने वाली महामाया को नमस्कार ॥२७॥ सब प्राणियों में वृत्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२८॥

यादेवीसर्वभूतेषुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२९
 यादेवीसर्वभूतेषुदयारूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३०
 यादेवीसर्वभूतेषुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३१
 यादेवीसर्वभूतेषुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३२

यादेवीसर्वभूतेषुमातृरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥३३

यादेवीमर्वभूतेषुभ्रांतिरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥३४

सब प्राणियो मे स्मृति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥३३॥
सब प्राणियो मे दया रूप से भ्रविष्ठित देवी को नमस्कार ॥३०॥ सब प्राणियो
मे नीति रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३१॥ सब जीवो मे तुष्टि रूप से
स्थित भगवती को नमस्कार ॥३२॥ सब जीवो मे पुष्टि रूप से निवास करने
वाली देवी का नमस्कार ॥३३॥ सब प्राणियो मे मातृ रूप से स्थित देवी को
नमस्कार ॥३४॥ सब प्राणियो मे भ्रान्ति रूप से अवस्थित देवी को
नमस्कार ॥३५॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीभूतानखिलेषुया ।

भूतेषुसप्ततव्याप्येतस्यैदेव्यै नमोनम ॥३६

चित्तिरूपेणवाकृत्स्नमेताव्याप्यस्थिताजगत् ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥३७

स्मृतासुरं पूर्वमभीष्टसश्रयात्तयासुरेन्द्रं णदिनेशसेविता ।

करोतुसान शुभहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राप्यभिहतुं चापदः ॥३८

यासांप्रतचोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाञ्चसुरैर्नमस्यते ॥

याचस्मृतातत्क्षणेमेवहंतिन सर्वापदोभक्तिविनम्रभूतिभिः ॥३९

एवस्तवाभियुक्तानादेवानातत्रपावन्ती ।

स्नातुमग्याययीतोयेजाह्नव्यानृपनदन ॥४०

साऽऽरवीसान्पुरान्मुध्रुभं वद्भिस्तूयतेवका ।

शरीरबोशतभ्रास्या समुद्भूताग्रवीच्छिवा ॥४१

स्तोत्रमभैतत्क्रियतेषु भद्रेत्यनिराकृतैः ।

देवं समस्ती समरेतिनु भेतपराजितौ ॥४२

सय इन्द्रियो और जोशो की अधिष्ठात्री और सब प्राणियो मे व्यक्ति रूप
से विद्यमान देवी को नमस्कार ॥३६॥ चैतन्य रूप से सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त

रह कर अधिष्ठान करने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥३७॥
पुराकाल में अपने इच्छित को प्राप्त करके हमने जिन देवी की स्तुति की और
जो मंगलों के करने वाली हैं, उन्हीं भगवती को, प्रचण्ड असुरों से पीड़ित
हुए हम नमस्कार करते हैं, भक्ति से झुकते हुए देह वाले हम जब आपका
स्मरण करते हैं तब जो तुरन्त ही हमारी विपत्ति को दूर करतीं हैं, वह देवी
हमारी विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से हमारा मंगल करें ॥३८-३९॥ ऋषि
ने कहा—हे पुत्रपुत्र ! देवगण इस प्रकार से स्तुति कर ही रहे थे, तभी भग-
वती पार्वती गंगा स्नान को जाने के लिये उनके सम्मुख हुई ॥४०॥ शोभित
अकृष्टि वाली वह पार्वतीजी देवताओं से पूछने लगीं—हे देवगण ! तुम किस-
की स्तुति कर रहे हो, इतनी धार्मिक के साथ ही पार्वतीजी के देह कोश से
भगवती शिवा उत्पन्न होकर बोलीं ॥४१॥ युद्ध में निशुंभ द्वारा पराजित
और शुंभ द्वारा निष्कासित यह देवगण मेरी स्तुति कर रहे हैं ॥४२॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याःपार्वत्यानिःसृतांविका ।

कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगोयते ॥४३

तस्यांविनिर्गतायांतुक्कृष्णाभूत्सापिपार्वती ।

कालिकेतिसमाख्याताहिमाचलकृताश्रया ॥४४

ततोविकांपरंरूपंविभ्राणांसुमनोहरम् ।

ददर्शचंडोमुंडश्रभृत्यौशुंभनिशुंभयोः ॥४५

ताभ्यांशुंभायचाख्याताअतीवसुमनोहरा ।

काप्यास्तेस्त्रीमहाराभासयंतीहिमाचलम् ॥४६

नैवतादृक्कचिद्रूपंदृष्टंकेनचिदुत्तमम् ।

जायतांकाप्यसौदेवीगृह्णातांचासुरेश्वर ॥४७

स्त्रीरत्नमतिचार्वगीद्योतयंतीदिशस्त्विषा ।

सास्तुतिष्ठतिदैत्येन्द्रताभवान्द्रष्टुमर्हति ॥४८

यानिरत्नानिमणायोगजाश्वादीनिवैप्रभो ।

त्रैलोक्येतुसमस्तानिसांप्रतंतानितेगृहे ॥४९

पार्वती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा 'कौशिकी'

नाम से प्रसिद्ध हुई ॥४३॥ जब पार्वती जी के देह से वह कौशिकी देवी निकल गई तब उन्होंने कृष्ण वर्ण धारण करके कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमाचल में निवास किया ॥४४॥ तदुपरान्त अश्विनी ने अत्यन्त मनाहर रूप धारण किया और शुभ निशुभ असुरों के भूषण चण्ड मुण्ड ने उस स्वरूप को देखा ॥४५॥ तब चण्ड मुण्ड शुम्भामुर के पाम गय और उनमें बोले—हे महाराज ! एक अत्यन्त रूपवती स्त्री हिमाचल को सुसौभित करती हुई वहाँ रह रही है ॥४६॥ ऐसा श्रेष्ठ स्वरूप किसी ने भी न देखा होगा, इसलिये यह स्त्री कौन है, इसका पता करके, उसे ग्रहण कर लीजिये ॥४७॥ वह सुन्दरानो स्त्रियो में रत्नरूप है हे प्रयुक्तेन्द्र ! वह स्त्री अपने शरीर की कान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित कर रही है, आपको उसे अवश्य दखना चाहिये ॥४८॥ हे प्रभो ! तीनों लोकों में हाथी, घोड़े, रत्नादिक जो सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वह सभी आपने घर में सुसौभित हैं ॥४९॥

ऐरावतसमानीतो गज रत्नपुरदरात् ।

पारिजातरुश्चायतयैवोद्वैश्रवाहय ॥५०॥

विमानहंससयुक्तमेतत्तिष्ठति तैंगणो ।

रत्नभूतमिहानीतमदासीद्वेधसोद्भुतम् ॥५१॥

निधिरैषमहापद्मसमानीतो धनेश्वरात् ।

त्रिजलिनोद्ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपक्वजाम् ॥५२॥

छत्रतेवारुणमेहेवचिनसावितिष्ठति ।

तथापस्यदनवरोयपुरासीत्प्रजापते ॥५३॥

मृत्यामृत्कान्तिदानामनक्तिरीशत्वयात्कृता ।

पाशसन्निभराजस्यभ्रानुस्तवपरिग्रहे ॥५४॥

निगुभस्याब्धिजाताश्चसमस्तारत्नजातयः ।

वह्निश्चापिददौनुश्वमग्निशोचैचवाससी ॥५५॥

एवदंत्प्रेन्द्ररत्ननिसामस्तान्यात्कृता निते ।

स्त्रीरत्नमेपावत्याणीत्प्रयावस्मान्नगृह्यते ॥५६॥

गजरत्न ऐरावत, सुरम्य पारिजातवृक्ष, और उच्चैर्ध्रवाग्रश्व, इन्द्र के यहाँ से लिया गया ॥५०॥ विधाता का हंसयुक्त रत्न रूप विमान भी यहाँ लाकर भावके आँगन में स्थित किया गया ॥५१॥ महापद्म नाम की यह निधि कुबेर से और किञ्चलिकनि नामक कर्मी भी त मुरझाने वाली पद्ममाला भी समुद्र से प्राप्त की गई ॥५२॥ वरुण का काँचनस्त्रावि छत्र और प्रजापति का यह श्रेष्ठ रथ भी यहाँ विद्यमान है ॥५३॥ यम की मरणादायिनी शक्ति भी आपने छीन ली और आपके भाईं निशुंभ के यहाँ वरुण का पाम ॥५४॥ और समुद्र से प्राप्त हुए सब रत्न विद्यमान हैं, अग्नि ने उनको पवित्र करके वस्त्र एवं उत्तरीय दिया है ॥५५॥ हे असुरेन्द्र ! इस प्रकार यह सभी रत्न आपने ग्रहण किये हैं तो इस स्त्री रत्न को ही ग्रहण क्यों नहीं करते ? ॥५६॥

निशम्येतिवचःशुंभःसतदाचण्डमुण्डयोः ।

प्रेषयामाससुग्रीवदूतदेव्यामहासुरः ॥५७

इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ।

यथाचाम्येतिसंप्रीत्यातथाकार्यत्वयालघु ॥५८

सतत्रगत्वायत्रास्तेरौलोद्देशेतिशोभने ।

तच्चदेवीततःप्राहृलक्षणंमधुरयागिरा ॥५९

देविदैत्येश्वरःशुंभस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ।

दूतोहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागत ॥६०

अव्याहताज्ञःसर्वासुयुःसदादेवयोनिषु ।

निजिताखिलदैत्यारिःसयदाहृशृणुष्वतत् ॥६१

ममत्रैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ।

यज्ञभागानहंसर्वानुपाशनामिपृथक्पृथक् ॥६२

त्र लोकेष्वेवरत्नानिममवश्यान्यशेषतः ।

तथैवगजरत्नंचहृतदेवेन्द्रवाहनम् ॥६३

श्रुति ने कहा—चण्डमुरण्ड के यह वचन सुनकर महादैत्य शुंभ ने अपने सुग्रीव नामक दूत को देवी के पास भेजा ॥५७॥ शुंभ बोला—तुम वहाँ जाकर

ऐसी बात करना जिमसे वह अत्यन्त प्रमत्त होकर शीघ्र ही यहाँ आकर उपस्थित हो जाय ॥५८॥ जिम अत्यन्त गुणोभित पबंन-प्रान्त में पार्वती जी निवास कर रही थी, उस स्थान में पहुँच कर वह दूत उनसे बोला ॥५९॥ दूत ने कहा— हे देवि ! वैश्वानर मुझ तीनों लोकों के ईश्वर हैं, उन्होंने मुझे अपने दूत रूप से तुम्हारे पास भेजा है इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥६०॥ उनकी आज्ञा सब देवताओं को घटल रूप से मान्य है, क्योंकि उन्होंने देवताओं को परास्त कर दिया है, अब उन्होंने जो कहा है उसे मुझसे धरणा करो ॥६१॥ उन्होंने कहा है—तीनों लोक मेरे हैं, सभी देवता मेरे वश में घोर मेरे अनुगत हैं, समस्त के राज भाग को भी मैं ही भोगता हूँ ॥६२॥ तीनों लोकों के सम्पूर्ण रत्न मेरे यत्नीभूत हैं, सभी ध्वंश हाथी तथा गजहरन ऐरावत भी मैंने ले लिया है ॥६३॥

धोरोदमयनोद्भूतमश्वरत्नममामरं ।

उच्चैश्रवसमज्ञतुप्रसिण्णपत्यसमपितम् ॥६४

यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वपुरोपुच ।

रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवरोमने ॥६५

स्त्रीरत्नभूतात्प्रादिविलोकेमन्यामहेवयम् ।

सात्वमस्मानुपागच्छयतो रत्नभुजोवयम् ॥६६

भावाममानुजवापिनिशुभमुरुविक्रमम् ।

भजत्वच्चन्वापांसिरत्नभूतासिदीयत ॥६७

परमैश्वर्यमनुलप्राप्त्यसेमत्परिग्रहात् ।

एतद्बुद्ध्यासमालोच्यमत्परिग्रहतां व्रज ॥६८

समृद्ध मयन से निकला हुआ उच्चैश्रवा घोड़ा भी देवताओं ने विजय पूर्वक मुझे भेंट किया है ॥६४॥ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के सभी रत्न इस समय मेरे ही हैं ॥६५॥ हे देवी ! लोक में तुम्हें हम स्त्री रत्न मानते हैं, हम सभी रत्नों के भोगने वाले होने से, तुम रत्न स्वरूपा भी हमारे घर आना चाहिये ॥६६॥ हे वैश्वानरकृपा वाणी ! तुम मुझे या मेरे अत्यन्त पराक्रमी आज्ञा निशुन्ना की स्त्रीतार करो, क्योंकि तुम रत्न स्वरूप हो ॥६७॥ मेरी

कामना करने से तुम्हें अतुलनीय परमैश्वर्यो की प्राप्ति होगी, इस बात को बुद्धि से विचार कर मेरा ही चिन्तन करो ॥६८॥

इत्युक्त्वासातदादेवीगंभीरांतःस्मिताजगौ ।

दुर्गाभगवतीभद्राययेदंधार्यतेजगत् ॥६९

सत्यमुक्तं त्वयानात्रमिथ्याकिञ्चित्त्वयोदितम् ।

त्रैलोक्याधिपतिःशुंभोनिशुंभश्चापितादृशः ॥७०

किंत्वन्नयत्प्रतिज्ञातंमिथ्यातत्क्रियतेकथम् ।

श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञायाकृतापुरा ॥७१

योमांजयतिसंग्रामेयोमेदर्पव्यपोहति ।

योमेप्रतिबलोलोकेसमेभर्त्ताभविष्यति ॥७२

तदागच्छतुशुंभोत्रनिशुंभवामहासुरः ।

मांजित्वाकिञ्चिरेणात्रपाणिगृह्णातुमेलधु ॥७३

अवलिप्तासिमैवंत्वंदेविब्रूहिममाग्रतः ।

त्रैलोक्येकपुमांस्तिष्ठेदग्रे शुंभनिशुंभयोः ॥७४

ऋषि ने कहा—दूत की बात सुनकर विश्व को धारण करने वाली भगवती दुर्गा ने गम्भीर भाव पूर्वक कुछ हँस कर कहा ॥६९॥ देवी बोली—हे दूत ! तुम्हारा कथन यथार्थ है, शुम्भ तीनों लोकों के स्वामी हैं और निशुम्भ भी उन्हीं के तुल्य हैं ॥७०॥ किन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की हुई है, उसे किस प्रकार तोड़ दूँ ? अल्प बुद्धि के वश में होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसे श्रवण करो ॥७१॥ जो पुरुष युद्ध में मुझे परास्त करेगा, जो मेरा दर्प खरिडत करेगा और जो मेरे समान बलवान् होगा, वही पुरुष मेरा पति होगा ॥७२॥ अब वह शुम्भ या निशुम्भ यहाँ आकर उनमें जो समर्थ हो, वह मुझे परास्त करके ग्रहण करलें, विलम्ब न करें ॥७३॥ दूत ने कहा—हे देवि ! तुम्हें अत्यन्त गर्व है, मुझसे ऐसा न कहो, शुम्भ निशुम्भ का सामना तीनों लोकों में कौन कर सकता है ? ॥७४॥

अन्येषामपिदैत्यानांसर्वेदेवानवैयुधि ।

तिष्ठन्तिसंमुखादेविकिंपुनःस्त्रीत्वमेकिका ॥७५

इन्द्राद्या सकलादेवास्तस्थुर्येषानसयुगे ।
 शुभादीनावथतेपास्त्रीप्रयास्यसिसमुत्तम् ॥७६॥
 सात्वगच्छमयीवोक्तापाश्वंशुम्भनिशुम्भयोः ।
 केशाकर्षणनिद्रधूतगौरवामागभिष्यसि ॥७७॥
 एवमेतद्वलीशुम्भोनिशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
 किंकरोमिप्रतिज्ञामेयदनालोचितापुरा ॥७८॥
 सत्वगच्छमयंवोक्त यदेतत्सर्वमाहृत ।
 तदाचह्वामुरेन्द्रायसचयुक्तं करोतुतत् ॥७९॥

शुभ निशुभ का तो कहना ही क्या है, उनके अनुचर वैश्यो के सामने ही गव देवता मिलकर भी नहीं ठहर सकते तो तुम स्त्री होकर उनसे गिन प्रकार सप्राप्त करोगी ? ॥७६॥ इतलिये तुम मेरी बात मानकर शुभ-निशुभ के पाग चनो, मन्वया भी ही तुम्हारे केश पकड़ कर घसीट ले चलूँगा, जिससे तुम्हारा सब गव पूर्ण हो जायगा ॥७७॥ देवी ने कहा—हे दूत ! शुभ-निशुभ दोनों ही नि सदेह ऐसे महा बलवान् हैं, परन्तु क्या कर्हूँ, पहिले इस बात को न जानकर धन्य बुद्धि से ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठी ॥७८॥ इतलिये तुम यहाँ जाकर मैंने जो कहा है, वह आदर पूर्वक उनसे कहो, इसके परवाह वह जो कुछ उचित समझे, वह करे ॥७९॥

७८—धूम्रलोचन वध

इत्यावर्ण्यचोदेव्या सद्रूतीमर्षपूरित ।
 गामचष्टे समागम्यदं त्यराजामधिरत्तरात् ॥१॥
 तस्यद्रूनस्यतद्वाक्यमावण्यामुरराटतत ।
 तत्रोद्य प्राहृदंत्यानामधिपधूम्रलोचनम् ॥२॥
 हेधूम्रलोचनाशुन्पस्वनेन्वपरिवारितः ।
 साभानयवलाद्दुष्टापेशाकर्षणविह्वलाम् ॥३॥

तत्परित्राणदःकश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपरः ।
 संहतव्योमरोवापियक्षोगन्धर्वएववा ॥४
 तेनाज्ञप्तस्ततःशीघ्रं सदैत्योधूम्रलोचनः ।
 वृतःषष्ठ्यासहस्राणामसुराणांद्रुतययौ ॥५
 सदृष्ट्वातांततोदेवीतुहिनाचलसंस्थिताम् ।
 जगादोच्चैःप्रयाहीतिमूलंशुम्भनिशुम्भयोः ॥६
 नत्रेत्प्रोत्याद्यभवतीमद्भूर्त्तारिमुपैष्यसि ।
 ततोबलान्नयाम्येषकेशकर्षणविह्वलाम् ॥७

ऋषि ने कहा—देवी के यह वचन सुनकर दूत को अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने दैत्येश्वर के पास जाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥१॥ दूत की बात सुनकर दैत्यराज शुंभ ने क्रोध पूर्वक दैत्यों के अधिपति धूम्रलोचन से कहा ॥२॥ हे धूम्र लोचन ! तुम सेना सहित वहाँ जाकर उस दुष्टा के केश पकड़ कह यहाँ घसीट लाओ ॥३॥ यदि कोई उसकी रक्षा में तत्पर हो, तो वह देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी हो, उसे मार डालो ॥४॥ ऋषि ने कहा—शुंभ की आज्ञा सुनकर धूम्रलोचन साठ हजार दैत्यों को साथ लेकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा ॥५॥ और हिमाचल में बँठी हुई देवी से उस धूम्रलोचन ने उच्च स्वर से कहा—शुंभ निशुंभ के पास चलो ॥६॥ यदि तुम स्वेच्छा से उनके पास न चलोगी तो मैं तुम्हारे केश पकड़ कर बलपूर्वक वहाँ ले चलूँगा ॥७॥

दैत्यश्वरेणप्रहितोबलवान्बलसंवृतः ।
 बलान्नयसिमामेवंततःकितेकरोम्यहम् ॥८
 इत्युक्तःसोभ्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचनः ।
 हुंकारेणैवतंभस्मसाचकारांविकांततः ॥९
 अथक्रुद्धंमहासैन्यमसुराणांतथांविका ।
 वर्षवसायकंस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधैः ॥१०
 ततोधुतसटःकोपात्कृत्वानादंसुभैरवम् ।
 पपातासुरसेनार्यांसिहोदेव्यास्तुवाहनः ॥११

कांश्चित्करप्रहारेणदैत्यानास्येनचापरान् ।
 आक्रम्यचररोनाग्यान्निजघानमहासुरान् ॥१२
 केपाचित्पाटयामासनखं कोष्ठानिकेसरी ।
 तथातलप्रहारेणशिरांसिकृतवान्पृथक् ॥१३
 विच्छिन्नबाहुशिरस कृतास्तेनतथापरे ।
 पपीचरुधिरकोष्ठादन्येपाधुतकेसरः ॥१४

देवी ने कहा—तुम्हें दैत्या के अधिपति शुभ ने यहाँ भेजा है, तुम स्वयं बलशाली और सेना के सहित यहाँ आये हो, यदि तुम बलपूर्वक ले जाना चाहोगे तो भी मैं तुम्हारा क्या कर सकूँगी ? श्रुति ने कहा—देवी की बात सुनते ही घूमलाचन उनकी ओर दौड़ा, परन्तु देवी के हुंकार से ही भस्म होगया ॥८-९॥ तब उसकी सत्ता ने क्रोध करके देवी के ऊपर तीक्ष्ण बाण, परशु और शक्ति भी वर्षा की ॥१०॥ यह देखकर देवी के वाहन सिंह ने क्रोध से कपायमान होकर भयङ्कर गर्जन किया और जमुद-सेना पर दूट पड़ा ॥११॥ उसने किसी को पजे से, किसी को मुख से, किसी को होठ से आक्रमण पूर्वक मारा ॥१२॥ किसी का हृदय नख से चीर दिया, किसी का मस्तक हथेली के प्रहार से, शरीर से भसग किया ॥१३॥ अनेक असुरों के बाहु और मस्तक छिन्न-भिन्न कर डाले और बहूतो का रक्त-पान कर लिया ॥१४॥

क्षणेनतद्बलसर्वक्षयनीतमहात्मना ।
 तेनकेसरिणादेव्यावाहनेनातिकोपिना ॥१५
 ध्रुत्वातमसुरदेव्यानिहतघूमलोचनम् ।
 बलचक्षयितकृत्स्नदेवीकेसरिणातत ॥१६
 चुकोपदैत्याधिपति शुम्भप्रस्तुरिताघर ।
 आक्षापेमामासचतीचण्डमुण्डोमहासुरो ॥१७
 हेचण्डहेमुण्डबलैर्बहुभि परिवारितो ।
 गच्छन्तत्रगत्वाचसाममानोयतालघु ॥१८
 येनेश्वाटृप्यबद्धावायदिव सशपेयुधि ।
 तदाशेषायुधो सर्वैरगुरैर्विनिह्वयताम् ॥१९

तस्यःहतायाँदुष्टार्यांसिहेचविनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यताबद्धागृहीत्वातामथाम्बिकाम् ॥२०

क्षण भर में ही उस सिंह ने असुरों की उस विशाल सेना को नष्ट कर डाला ॥१५॥ धूम्रलोचन का देवी के द्वारा और सम्पूर्ण सेना का उनके बाहन सिंह द्वारा मारा जाना सुनकर ॥१६॥ दैत्येश्वर शुंभ अत्यन्त क्रोध में भर गया, उसके होठ फड़कने लगे और उसने चण्ड-मुण्ड को इस प्रकार आज्ञा दी ॥१७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुत-सी सेना लेकर वहाँ जाओ और स्त्री को तुरन्त पकड़ लाओ ॥१८॥ उसके केश पकड़ कर खींच लाओ या उसे बाँध कर ले आओ, यदि ऐसा न कर सको तो पूर्ण बल लगाकर उसका वध कर देना ॥१९॥ उसको और उसके सिंह को मार कर उसी दशा में यहाँ ले आओ ॥२०॥

७६-चण्डमुण्ड वध

आज्ञप्तास्तेततोदैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरंगबलोपेताययुरभ्युद्यतायुधाः ॥१
ददृशुस्तेततोदेवीमीषद्धासांव्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरिर्शैलेन्द्रशृगेमहतिकान्चने ॥२
तेदृष्ट्वातांसमादातुमुद्यमंचक्रुरुद्यताः ।
आकृष्ट्वापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ॥३
ततःकोपंचकारोच्चैरंबिकातानरीन्द्रति ।
कोपेनचास्यावदनमषीवर्णमभूत्तदा ॥४
भृकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ।
कालीकरालवदनाविनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥५
विचित्रखट्वांगधरानरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमांसातिभैरवा ॥६

अतिविस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ।

निमग्नारक्तनयनानादापूरितदिङ्मुखा ॥७

शुभ न कहा—धुभ को ऐसी आज्ञा प्राप्त होती ही चण्डमुरड अपने साथ चतुरगिणी सशस्त्र सेना लेकर वहाँ गये और उन्होंने देखा कि हिमालय के स्वर्णिम गिखर पर मिहारूढ देवी मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं ॥१-२॥ वह घमुर और उनके साथी देवी को इस प्रकार स्थित देख, घनुष खँच कर और तलवार उठाकर उनको पकड़ने का प्रयत्न करने लगे ॥३॥ तब देवी ने उन सबके प्रति अत्यन्त क्रोध किया, इस कारण देवी का मुख कृष्ण वर्ण का हो गया ॥४॥ फिर देवी न जँमे ही भृङ्गुटी चढाई, वैसे ही उनके ललाट से खड्ग-पाश धारिणी कराल वदना भयङ्कर कानी उत्पन्न हुई ॥५॥ वह विविध खड्ग-बाण युक्त, मुण्डमान से सुशोभित, बाणधर धारण विधे अत्यन्त शूष्क मांस वाली जिह्वा को नपलवाती हुई, भीतर की ओर घुमे हुए लाल नेत्र वाली उत्पन्न होती घपन पार शब्द से दिनाम्ना को परिपूर्ण करने लगी ॥६-७॥

सावेगेनाभिपतिताघातयतोमहासुरान् ।

सैन्येतप्रसुरारीणामभययत्तदबलम् ॥८

पाणिग्राहाकुशग्राहयोधघटासमन्वितान् ।

ममादादीवहस्तेनमुमेचिक्षेपवारणान् ॥९

तयैवषोषतुरगैरथसारथिनात्तह ।

निक्षिप्यवक्त्रेदशनीश्रवंयत्यतिभीरवम् ॥१०

एकजग्राह्वेक्षेपुप्रीयायामयच्चापरम् ।

पादेनाबन्धयन्वान्यमुरसान्यमपोययत् ॥११

तंमुत्तानिचसस्त्राणिमहाम्प्राणितयामुरं ।

मुञ्चेत्तजग्राहृणादशनीर्मयितान्यपि ॥१२

यन्निनातदबलमयंममुराणांदुरात्मनाम् ।

ममर्दभशयन्नान्यान्याश्चाताडयत्तया ॥१३

अग्निनानिह्ना केचित्केचित्स्वद्बागताडिताः ।

जग्मुर्विनाशममुरादताप्राभिहतारणे ॥१४

तदुपरान्त वह देवी दैत्य-सेना के ऊपर वेग सहित दूट पड़ी और सब असुरों को नष्ट करती हुई उनके भक्षण में तत्पर हुई ॥८॥ तथा पार्श्व रक्षक, अंकुश हाथ में लिये हुए थोड़ा और घंटाघों के सहित ही हावियों को पकड़-पकड़ कर मुख में डालने लगी ॥९॥ तथा अश्व, रथ और सारथी सहित सबको मुख में डाल कर भयङ्कर रूप से चवाने लगी ॥१०॥ उस काली ने किसी के केश पकड़े, किसी का कण्ठ दबाया और किसी की छाती पर चढ़ कर पैर की ठोकर से उसे मार डाला ॥११॥ उन असुरों के शस्त्रास्त्रों को भी क्रोधपूर्वक मुख में लेकर दाँतों से चवाने लगी ॥१२॥ वह काली उन महाबली एवं विशाल शरीर वाले असुरों के दल को मसलते-मसलते किसी को भक्षण कर रही थी और किसी को मार कर भगाती थी ॥१३॥ कोई असुर खड्ग के प्रहार से, कोई खट्वांग के द्वारा ताड़ित होने से और कोई दाँतों के अग्रभाग द्वारा चबाये जाने से नष्ट होगये ॥१४॥

क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांनिपातितम् ।

दृष्ट्वाचंडोभिदुद्रावतांकालीमतिभीषणाम् ॥१५

शरवर्षेर्महाभीमैर्भीमाक्षीतांमहासुरः ।

छादयामासचक्रैश्चमुंडक्षिप्तीःसहस्रशः ॥१६

तानिचक्राप्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ।

बभ्रुर्यथार्कबिबानिसुबहूनिघनोदरम् ॥१७

ततोऽज्ञहासातिरुषाभीमंभीरवनादिनी ।

कालीकरालवक्त्रांतदुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१८

उत्थायचमहासिंहदेवीचंडमधावत ।

गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥१९

छिन्नेशिरसिदैत्यैर्द्रश्चक्रेनादंसुभीरवम् ॥२०

उस असुर-सैन्य के इस प्रकार क्षमणर में नष्ट हो जाने से क्रोधित हुआ चरड अत्यन्त वेग पूर्वक काली की ओर दौड़ा ॥१५॥ और उसने उन भीमाक्षी देवी पर भीषण बाण-वर्षा की तथा सहस्रों चक्रों को घुमा कर उन्हें प्राच्छादित कर दिया ॥१६॥ वह सभी चक्र देवी के मुख में घुसने लगे और

अथमण्डन मे प्रविष्ट चनेक मूर्धमण्डलो के गमान मुशोभित हुए ॥१७॥ फिर धोत्र निमाद करती हुई काली ने भीषण अट्टहाम किया, उस समय वह अपनी दुर्दम दन्त-प्रभा से दमकने लगी ॥१८॥ तदनन्तर वह देवी अपने महा बाहन निह पर मड़ी होकर चण्ड की ओर वेग से दौड़ी और उसके बाल पकड़ कर अपने चङ्ग से उसका शिर काट डाला ॥१९॥ शीघ्र कटते समय चण्डासुर ने धार वर्जना की, जिससे तीन लोक व्रति हो गये ॥२०॥

अथमुण्डोन्मथावतादृष्ट्वाचड निपातितम् ।
 तमप्यपातयद्भूमौगद्व्वागाभिहतरूपा ॥२१॥
 हतशेषततःसैन्यदृष्ट्वाचड निपातितम् ।
 मुञ्च चमुमहावीर्यादसोभेजेभमातुरम् ॥२२॥
 शिञ्चण्डस्यकालीसागृहीत्वामीडमेवच ।
 प्राहप्रचण्डादृहासमिथमग्नेत्याविण्डकाम् ॥२३॥
 मयातवानोपहृतीचण्डमु डौमहापदा ।
 युद्धयन्नेस्वममुम्भनिशुम्भचहनिष्यसि ॥२४॥
 तवानीतोततोदृष्ट्वाचण्डमृण्डीमहामुरी ।
 उवाचवागीवत्याणीललितचिण्डकावच ॥२५॥
 यस्माच्च त्वचमुण्डचगृहीत्वात्वमुपागता ।
 चामुण्डेतिततोलोकेरुपातादेवीमविष्यसि ॥२६॥

चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड कान्ती की ओर दौड़ा, तब देवी ने उसे भी मृदुगम से काट कर गिरा दिया ॥२१॥ फिर वची हुई सेना भी चण्ड-मुण्ड का वध देखकर भद्रातुर हुई इपर-उपर भाग चली ॥२२॥ फिर वह काली चण्ड-मुण्ड के कटे हुए मस्तक उठाकर चटिका के पास गई और प्रचण्ड अट्टहाम पूर्ववत् बोली ॥२३॥ महा पशु चण्ड-मुण्ड नामक दो असुरों की मार कर मर उपहार प्रस्तुत है, अब तुम निशुम्भ का वध आप स्वय ही करना ॥२४॥ शक्ति ने कहा—उत्त चण्ड-मुण्ड नामक असुरों को उग दना मे वहाँ देखर चटिका देवी ने काली के कहा—॥२५॥ देवी बोली—तुम चण्ड-मुण्ड

को लेकर यहाँ आई हो, इसलिये लोक में तुम्हारा 'चामुरण्ड' नाम प्रसिद्ध होगा ॥२६॥

८०—रक्त बीज वध

चंडेचनिहतेदैत्येमुंडेचविनिपातिते ।
 बहूलेषुचसैन्येषुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥१॥
 ततःकोपपराधीनचेताःशुम्भप्रतापवान् ।
 उद्योगंसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेशह ॥२॥
 अद्यसर्वबलैर्दैत्याःषडशीतिरुदायुधाः ।
 कंबूनांचतुराशीनिर्यान्तुस्ववलीवृताः ॥३॥
 कोटिवीर्यारिणंपंचाशदसुराणांकुलानिवै ।
 शतंकुलानिधूआणांनिर्गच्छंतुममाज्ञया ॥४॥
 कालकादौहृदामीर्याकालकेयास्तथासुराः ।
 युद्धायसज्जानिर्यान्तुआज्ञयात्वरितामम ॥५॥
 इत्याज्ञाप्यासुरपतिःशुम्भोभौरवशासनः ।
 निर्जंगाममहासैन्यसहस्रंबहुभिवृतः ॥६॥
 आयातंचंडिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ।
 ज्यास्वनैःपूरयामासधरणीगगनांतरम् ॥७॥

ऋषि ने कहा—चण्ड-मुरण्ड के साथ ही समस्त सेना के नष्ट होने के कारण असुरेश्वर ॥१॥ प्रतापी शुंभ ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक सम्पूर्ण असुर सेना को एक साथ वहाँ जाकर युद्ध करने की आज्ञा दी ॥२॥ सम्पूर्ण एक साथ ही लेकर उदायुध नामक छियासी और कम्बु नामक चौरासी दैत्य वहाँ जाय ॥३॥ कोटिवीर्य नामक पचास कुल के वृद्धवंश नामक एक सौ कुल के असुर मेरी आज्ञा से निकले ॥४॥ काल, दौहृद मीर्य और कालकेय वंश के असुर भी शीघ्र सज कर संग्राम में पहुँचे ॥५॥ असुरेश्वर शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों की संख्या में महासेना को लेकर स्वयं भी संग्राम के लिये चला ॥६॥

उस आशुत भयङ्कर मंग्य-ममूह को घाता देखकर चडिका ने प्रत्यवा की घोर टङ्कार से पृथिवी-प्राकाश को भर दिया ॥७॥

सर्वासिंहोमहानादमतीववृत्तवान्मृप ।
घटाम्बनेनतन्नादमत्रिकाचाप्यवृ ह्यत् ॥८
धनुज्याँसिंहघटानानादापूर्वतिदिङ्मुत्ता ।
निनादं भीषर्गं काली जग्येक्षिस्तारितानना ॥९
तन्निनादमुपश्रुत्यदं त्यसौन्मीश्रतुदिशम् ।
देवीमिहस्तथाकालीशरीरौ परिवारिता ॥१०
एतस्मिन्न तरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विता ॥११
ब्रह्मो गगुर्हविष्णुनातथेद्रस्यचशक्तय ।
शरीरेभ्याविनिष्कम्यतद्रूपेश्च डिक्वाययु ॥१२
यस्यदेवस्ययद्रूपयथाभूषणवाहनम् ।
तद्देवहितच्यक्तिरसुरान्योद्बु मायमी ॥१३
हसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमेठलु ।
आयाताब्रह्मण शक्तिर्ह्याणीसाभिधीयते ॥१४

हे राजन् ! फिर देवी ने वाहन सिंह ने घोर गर्जन किया और देवी ने धरने घटा के शब्द से उस नाद को द्विगुण कर दिया ॥८॥ प्रत्यवा की टङ्कार से घोर सिंह तथा घटा के नाद से दिशाएँ परिपूर्ण हो गईं और तब काली ने भी घोर नाद पूर्वक जय-जयकर किया ॥९॥ उस नाद को सुनकर दैत्य-सेना ने चडिका, काली और सिंह को धारो से ओघपूर्वक घेर लिया ॥१०॥ हे राजन् ! तभी घमुरी के मास और देवताओं के हित के लिये अत्यन्त बल, पराक्रम से युक्त ॥११॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कालिकेय और इन्द्र की शक्तियाँ उनके देह से प्रकट हो होकर ऊर्ध्व देवताओं का रूप ग्रहण कर चण्डिका के निकट आई ॥१२॥ त्रिम देवता का जो स्वरूप घोर वाहन था, वैसे ही रूप घोर वाहन थादि से सम्बन्ध हुई शक्तियाँ घमुरी से सप्राप्त करने की उद्यत हुई ॥१३॥

ब्रह्माजी की शक्ति हाथ में अक्ष माला और कमण्डलु धारण किये हंम युक्त विमान पर आरूढ़ होकर वहाँ आई, उस शक्ति का नाम ब्रह्माणी हुआ ॥१४॥

माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ।

महाहिवलयाप्राप्ताचन्द्रलेखाविभूषणा ॥१५॥

कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवारहना ।

योद्ब्रुमम्याययौदैत्यान्त्रिकागुहूरूपिणी ॥१६॥

तथैवविष्णुवीशक्तिर्गरुडोपरिसस्थिता ।

शंखचक्रगदाशाङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१७॥

जज्ञे वाराहमतुलं रूपंयात्रिभ्रतीहरेः ।

शक्ति साप्याययौतत्रवाराहोविभ्रतीतनुम् ॥१८॥

नारसिंहीनृसिंहस्यविभ्रतीसदृशवपुः ।

प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसहितः ॥१९॥

वज्रहस्तातथैवैद्रीगजराजोपरिस्थिता ।

सहस्रनयनाप्राप्तायथाशक्रस्तथैवसा ॥२०॥

ततःपरिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ।

हन्यतामसुराःशीघ्रंममप्रीत्याहचंडिकाम् ॥२१॥

शिवजी की शक्ति त्रिशूल को धारण किये, चन्द्ररेखा से मुशोभित, नागों के आभूषण धारण करके और बैल पर चढ़ कर आई, वह माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१५॥ कौमारी शक्ति हाथ में शक्ति धारण किये, सुन्दर मोर पर चढ़ कर आई ॥१६॥ विष्णु की शक्ति वैराग्वी शंख, चक्र, गदा, शाङ्गधनु और खड्ग धारण करके युद्ध के लिये आई ॥१७॥ यज्ञ वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु की शक्ति भी वाराहरूप में वहाँ आई ॥१८॥ नारसिंही शक्ति नृसिंह रूप में वहाँ आई, उनके सटाक्षेप से नक्षत्रों की पंक्ति बनायमान होगई ॥१९॥ इन्द्र की शक्ति हाथ में वज्र धारण कर, हाथी पर चढ़ी हुई युद्ध क्षेत्र में आई, उसका नाम ऐन्द्रीशक्ति हुआ ॥२०॥ फिर उन सब देव-शक्तिधियों के सहित चण्डिकासे भगवान् शंकर ने कहा—मेरी प्रसन्नता के लिये इन सब अमुगों का शीघ्र ही वध कर डालो ॥२१॥

ततोऽवीशरीरात्तु विनिष्प्रतातिभीषणा ।
 चण्डिकाशक्तिरत्युग्राशिवाशतनिनादिनी ॥२२
 साचाहृद्घ्नजटिलमीशानमपराजिता ।
 दूतत्वगच्छभगवन्पाद्वंशुम्भनिशुभयो ॥२३
 ब्रूहिशुम्भनिशुम्भचदानवावतिगवितो ।
 येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिता ॥२४
 त्रंलोक्यमिन्द्रोलभतदेवा सतुह्विभुंज ।
 यूपप्रयातपातालयदिजोवितुमिच्छथ ॥२५
 वनावलेपादयचेद्भूवतो युद्धकाक्षिण ।
 तदागच्छततृप्यनुमच्छिवा पिशितेनव ॥२६
 यतोनिमुक्तादूत्सेनतयादेव्याशिवःस्वयम् ।
 शिवदूतोतिलोकेस्मिन्तत साख्यातिमागता ॥२७॥

फिर दरी के देह में अत्यन्त भयकर मो शिवाग्रो के सम्मिलित नाद करने के समान भीषण नाद करती हुई चण्डिका शक्ति प्रकट हुई ॥२२॥ तब उन अपराजिता चण्डिका देवी ने भगवान् शंकर से कहा—हे भगवन् ! आप शुभ निशुभ के पास जाकर दीत्य कर्म कीजिये ॥२३॥ वहाँ पहुँचकर शुभ निशुभ सहित सब युद्धाभिलाषी दैत्यों से कहिये ॥२४॥ हे दैत्यों ! इन्द्र तीनों लोको के पावें, देवता पुन यज्ञ भाग को भोगने वाले हो शीघ्र तुम यदि जीवन की इच्छा करते हो तो पाताल लोक में जा कर रहो ॥२५॥ अथवा बल में गवित हूयें तुम यदि युद्ध करना चाहत हो तो आयो, मेरी शिवाएँ तुम्हारे रक्त पान से मृत होंगी ॥२६॥ देवी ने शिवजी को दीत्य कर्म में स्वयं नियुक्त किया, हमनिए उन्हें 'शिवदूतो' कहा गया ॥२७॥

तेषिभ्रुत्वावचोदेव्या सर्वास्यात महामुरा ।
 धर्मपापूग्निनाजग्मुर्भ्रंत्रवात्यायनीस्थिता ॥२८
 तत प्रथममेवाग्रो नरैश्चक्रानत्युष्टिभिः ।
 ययपुंरुद्धनामपांस्नादेवीममरारय ॥२९

साचतस्रप्रहितान्वाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
 चिच्छेदलीलयाध्मातधनुमुक्तैर्महेषुभिः ॥३०॥
 तस्याग्रतस्तथाकालीशूलपाशविदारितान् ।
 खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वनीव्यचरत्तदा ॥३१॥
 कमंडलुजलाक्षेपहतवीर्याग्हतौजसः ।
 ब्रह्माणीवार्करोच्छत्रन्येनयेनस्मधावति ॥३२॥
 माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रैरावैष्णवी ।
 दैत्याञ्जघानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपना ॥ ३॥
 ऐन्द्रीकुलिशपातेनशतशोदैत्यदानवाः ।
 पेतुविदारिताःपृथ्व्यांरुधिरौघप्रवाषिणः ॥३४॥
 तुण्डप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
 वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रैराचविदारिताः ॥३५॥

शिवजी के द्वारा सन्देश प्राप्त करके वह घोर असुर क्रोध पूर्वक उन देवी कात्यायनी के समीप पहुँचे ॥२८॥ फिर वे उन देवी के समक्ष बाण, शक्ति और ऋषि बादि की भयंकर वर्षा करने लगे ॥२९॥ असुरों द्वारा चलाये गये सभी शस्त्रास्त्रों को बरिण्डका देवी ने अपने बड़े-बड़े बाणों से लीला पूर्वक काट डाला ॥३०॥ तभी उन ऋण्डका देवी के सामने काली देवी किसी असुर को शूल से विदीर्ण करती और खट्वांग से भारती हुई घूम रही थी ॥३१॥ जिस जिस ओर शत्रुगण दौड़ रहे थे, उसी-उसी ओर जाकर ब्रह्माणी शक्ति उन पर जल छिड़क कर उन्हें वीर्य और तेज से हीन करने लगी ॥३२॥ माहेश्वरी त्रिशूल से, वैष्णवी चक्र से और कौमारी शक्ति के द्वारा ही बहून, से दैत्यों को मार रहीं थीं ॥३३॥ ऐन्द्री शक्ति के वज्र-प्रहार से ताड़ित हुए सैकड़ों दैत्य रक्त वमन करते-करते धराशयी होने लगे ॥३४॥ वाराह-शक्ति के मुख प्रहार और दंष्ट्रा के अग्रभाग से ताड़ित असुरगण हृदय विदीर्ण होने के कारण पृथिवी पर गिरने लगे ॥३५॥

नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयंतीमहासुरान् ।

नारसिंहीचवाराजीनादापूरुणंदिगंतरा ॥३६॥

चडादृहासैरगुरा शिवदूष्यभिदूषिता ।
 पेतु पृथिव्यापनितास्ताश्चखादायसातदा ॥३७
 इतिमातृगणक्रुद्ध मर्दं यतमहासुरान् ।
 दृष्ट्वाभ्युपायं विविचैर्नेशुर्देवारिमेनिका ॥३८
 पलायनपरान्दृष्ट्वादेत्यान्मातृगणादितान् ।
 योद्धुमभ्यामयोक्नुद्धोरक्तबीजोमहासुरः ॥३९
 रक्तविदुषंदाभूमौपतत्यस्यशरीरतः ।
 समुत्पततिमेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहासुर ॥४०
 युयुधेमगदापाणिर्द्रशवस्यामहासुर ।
 ततश्चन्द्रीस्ववज्रैणरक्तबीजमताडयत् ॥४१
 कुलिशेनाहतस्याशुबहुमुखावशोणितम् ।
 रागुत्तस्पुन्ततोपोवास्तद्रूपास्तत्पराक्रमा ॥४२
 यावत्पतितास्तस्यशरीराद्रक्तविदव ।
 तावत्पुरुषाजातास्तद्वीर्यंवलविक्रमा ॥४३

नारायणी शक्ति घग्ने गजेंन मे दिशापो और आकाश को वग्निपूर्ण
 करने देखो को नन्व से विदारण कर भक्षण करते करते, इस प्रकार वह युद्ध
 भूमि में घूम रही थी ॥३६॥ शिवदूषी के प्रचण्ड घट्टहास से अभिभूत होकर
 राक्षसगण पराशयो होन लगे और फिर उन गिरे हुये असुरों का वह शिवदूषी
 भी भक्षण करने लगी ॥३७॥ इस प्रकार उन्हें क्रोध पूर्वक मर्दन करते देख
 कर देव-सेना भाग पड़ी ॥३८॥ उनको भागता हुआ देख कर रक्तबीज
 नामक देव क्रोधपूर्वक युद्ध के लिये आया ॥३९॥ जैसे ही उस असुर के शरीर
 में रक्त बी एक दूँद पृथिवी पर टपकती वैसे ही उसी के समान एक देव
 उतरने हो जाता ॥४०॥ यदा ग्रहण पूर्वक वह असुर ऐन्द्री शक्ति के साथ युद्ध
 करने लगा तत्र ऐन्द्री शक्ति ने उस पर बज्र-प्रहार किया ॥४१॥ बज्र-प्रहार
 के कारण रक्तबीज के देह में टपके हुए रक्त से उसी के समान रूप और
 गन्ध रखने वाले और उदाम्न हो गये ॥४२॥ रक्त की जानी धूँदें टपकी

उतने ही योद्धा उत्पन्न हुए, वे सब योद्धा बल, वीर्य, पराक्रमादि में रक्तबीज के ही समान थे ॥४३॥

तेचापियुगुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवाः ।

समंमातृभिरत्पुत्रंशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४४

पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ।

ववाहरक्तंपुरुषास्ततोजाताःसहस्रशः ॥४५

वैष्णवीसमरेचैनंचक्रैणाभिजघानहृ ।

गदयाताडयामासऐन्द्रोतमसुरेश्वरम् ॥४६

वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्त्रावसम्भवेः ।

सहस्रशोजगद्व्याप्तंतत्प्रमाणंमहासुरैः ॥४७

शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ।

माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजंमहासुरम् ॥४८

सचापिगदयादैत्यःसर्वाएवाहनपृथक् ।

मातृःकोपसमाविष्टोरक्तबीजोमहासुरम् ॥४९

रक्त की दूँदों से उत्पन्न हुए योद्धाभण उन मातृगणों के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा घोर संग्राम करने लगे ॥४४॥ जब ऐन्द्री शक्ति ने उसके मस्तक को पुनर्बार छिन्न किया, तब क्षत स्थान से प्रवाहित हुए रक्त से सहस्रों असुर उत्पन्न हो गये ॥४५॥ वैष्णवी शक्ति ने उसे चक्र से तथा ऐन्द्री शक्ति ने वज्र से मारा ॥४६॥ वैष्णवी शक्ति के चक्र से कट कर उस दैत्य के देह से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उससे उसी के समान उत्पन्न हुए सहस्रों विकराल असुरों से यह संसार व्याप्त हो गया ॥४७॥ तब उस रक्तबीजासुर को कौमारी अपनी शक्ति से, वाराही खड्ग से और माहेश्वरी त्रिशूल से मारने लगीं ॥४८॥ तब वह घोर राक्षस रक्तबीज भी सब मातृगणों पर गदा द्वारा प्रहार करने लगा ॥४९॥

तस्याहृतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ।

पपातयोवैरक्तोघस्तेनासञ्छतशोसुराः ॥५०

तंश्चासुरमृषमभूतैरसुरै र्मकानजगत् ।
 व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजमुस्तमम् ॥५१
 तांविषण्णान्मुरान्दृष्ट्वाचडिकाप्राहमन्वरा ।
 उवाचबालीचामु डेविस्तीर्णं वदनकुम् ॥५२
 मच्छम्भपातसम्भूताघक्तविदून्महासुरान् ।
 रक्तबीजात्प्रतीच्छत्ववक्त्रेणानेनवेगिना ॥५३
 भक्षयतीचररसोतदुम्भधान्महासुरान् ।
 एवमेपक्षवदेत्यश्रीणारक्तोममिष्यति ।
 भदयमाणास्त्वयाचाग्रानोवोत्पत्स्यतिचापरे ॥५४
 इत्युक्त्वाताततांदेवीमूलेनाभिजघानतम् ।
 मुथेनकालीजगृहेरक्तबीजस्यगोमितम् ॥५५

जबकि शून्य आदि विभिन्न प्रकार के अश्वी मे आहत हुए उस रक्तबीज के देह स पृथिवी पर पतित हुए रक्त विदुषा द्वारा संबडी असुरों की उत्पत्ति हुई ॥५०॥ उनके रक्त से उत्पन्न हुए असुरों से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त होगया, इससे देवगण घबराते भयभीत हुए ॥५१॥ तब देवताओं को भयभीत देख कर षण्डिका ने बाली से कहा—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फाडो ॥५२॥ और मेरे द्वारा शस्त्र मारत से गिरती हुई रक्त की बूँदों या उससे उत्पन्न होने वाले असुरों को बेग पूर्वक अपने मुख में लेली जाओ ॥५३॥ तथा उससे उत्पन्न हुए राक्षसों का भक्षण करती हुई शुद्ध भूमि में प्रसन्नी रहो, इस प्रकार रक्त के क्षीण होने पर ही यह नष्ट हो सकेगा ॥५४॥ इस प्रकार तुम उसका भक्षण प्रारम्भ करोगी तो उसका पुन उत्पन्न होना रद्द जायगा, ऋषि ने कहा— बाली के प्रति ऐसा कह कर षण्डिका देवी ने उन असुरों को त्रिधूल स आहत किया और उगस गिरे हुए रक्त को बाली ने अपने मुख में ग्रहण कर लिया ॥५५॥

ततोमात्रजघानाथगदमातयचडिकाम् ।

नचाम्यानेदनाचक्रं गदापातोत्पिबामणि ॥५६

तस्याहतस्यदेहात्तु बहुसुखावशोणितम् ।
यतस्ततः स्वकर्त्रेण चामुण्डासंप्रतीच्छती ॥५७
मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुराः ।
तां च खादाथ चामुण्डापपीतस्य च शोणितम् ॥५८
देवीशूलेन च क्रेण वाणैरसिभिरिष्टिभिः ।
जघान रक्तबीजतां चामुण्डापपीतशोणितम् ॥५९
सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसंहतितोहतः ।
नीरक्तश्च महीपालरक्तबीजो महासुरः ॥६०
ततस्तेर्हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥
तेषां मातृगणो मत्तो न नर्त्तासृङ् मदोद्धतः ॥६१

फिर उस रक्तबीज ने देवी पर गदा का प्रहार किया, परन्तु उससे देवी को किंचित् भी वेदना नहीं हुई ॥५६॥ इधर रक्तबीज के देह से गिरते हुए रक्त को चामुण्डा अपने मुख में लिये जा रही थी ॥५७॥ काली के मुख में गिरे हुए रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए उनका भी उसने भक्षण कर लिया ॥५८॥ जब इस प्रकार चामुण्डा ने रक्तबीज का रक्त पान किया तब चरिडका ने उसे शूल, चक्र, बाण, खड्ग और ऋषि से मारा ॥५९॥ फिर वह घोर असुर शस्त्रों द्वारा क्षत-विक्षत तथा रक्त-हीन होकर पृथिवी में गिर पड़ा ॥६०॥ हे राजन् ! इस पर देवताओं को महान् हर्ष हुआ और वे मातृगण उन असुरों का रक्त पान करके मदोन्मत्त हुईं नाचने लगीं ॥६१॥

८१-निशुम्भ वध

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवतामम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥१
भूयश्चोच्छ्राम्यहं श्रोतुं रक्तबीजेनिपातिते ।
चकारशुम्भो यत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपनः २॥

च मारकोवमनुलङ्कवीजेनिपातिते ।
 शुम्भामुरोतिशुम्भश्चहृतेष्वन्येषुचाहवे ॥३॥
 हन्यमानमहामन्यविनोत्रयामर्षमुद्रहन् ।
 अम्यधावन्निशुम्भोयमुदययामुरसेनया ॥४॥
 तस्याग्रनस्तथापृष्टेपाद्वयोश्चमहामुरा ।
 मदष्टोष्टपुटा ऋद्धाहृत्तु देवीमुपायम् ॥५॥
 आजगाममहावीर्यं शुभोपिस्ववर्लं कृतं ।
 निहन्तु चण्डिकाकोपात्कृत्वापुद्ध तुमातृभि ॥६॥
 ततोयुद्धमनीत्रासोद्देव्या शुभनिशुम्भयो ।
 शरवपमतोवोग्रमेघयोरिववर्षतो ॥७॥

राजा ने कहा—ह भगवन् धापन मुझ से रक्तबीज के वध के विषय
 मे देवी चरित्र के अद्भुत माहात्म्य का वर्णन किया ॥१॥ अत्यन्त क्रोधित
 धनु ने रक्तबीज व मार जान पर जो कार्य किया, मैं अब उसे सुनना चाहता
 हूँ ॥२॥ ऋषि बोले—युद्ध मे रक्तबीज के समाप्त होन पर एव विभिन्न सेनाओं
 के मारे जान पर दोनो राक्षस शुभ और निशुभ बहुत क्रोधित हुए ॥३॥ इस
 प्रकार उस सभी सेना को मरता देखकर निशुभामुर अत्यन्त क्रोध सहित
 राक्षसों की मुख्य सेना की माय लेकर देवी के सामने दौडा ॥४॥ तथा उस
 धोर अमुर के सम्मुख, पृष्ठ भाग मे एव अगल-वगल बड़े बड़े राक्षस अपने
 घोडों को भीजने हुए क्रोध सहित देवी को समाप्त करने के लिए आये ॥५॥
 तत्पश्चात् महाबलशाली अमुर शुभ अपनी सेना को माय लेकर देवी के गाली
 के साथ युद्ध करने हुए देवी का मारने के निमित्त क्रोधपूर्वक आया ॥६॥
 तब दो मैघों ने गमान अत्यन्त प्रचण्ड बाल-वर्षा करते हुए शुभ व निशुभ
 का देवी के साथ अथवा युद्ध होन तथा ॥७॥

चिच्छेदास्ताञ्छगस्ताभ्याचटिकास्वगरोत्तरैः ।

तात्पामामचानेषुशम्भोर्धरमुरेश्वरी ॥८॥

निशुम्भोनिशितंखड्गंचर्मचादायसुप्रभम् ।
 अताडयन्मूर्ध्निसिंहंदेव्यावाहनमुत्तमम् ॥६
 ताडितेवाहनेदेवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
 निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचंद्रकम् ॥१०
 द्विन्नचर्मणिखड्गेचशक्तिचिक्षेपसोसुरः ।
 तामप्यस्यद्विधाचक्रेचक्रेणाभिमुखागताम् ॥११
 कोपाध्मातोनिशुम्भोथशूलंजग्राहदानवः ।
 आयातंमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२
 अथादायगदांसोपिचिक्षेपचंडिकांप्रति ।
 सापिदेव्यात्रिशूलेनभिन्नाभस्मत्वमागता ॥१३
 ततःपरशुहस्तंतमायांतदैत्यपुङ्गवम् ।
 आहत्यदेवीवाणीधैरपातयतभूतले ॥१४

चण्डिका देवी उन दोनों राक्षसों द्वारा चलाये गये बाणों को अपने
 बाणों के द्वारा जल्दी से काटकर अपने बाणों से दोनों विकराल असुरों के अंगों
 पर धार करने लगी ॥६॥ तेज धार वाली तलवार और चमकती डाल निशुम्भ
 ने देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक में मारी ॥६॥ वाहन पर आक्रमण
 हुआ देखकर देवी ने क्षुरप्र नाम के अस्त्र से निशुम्भ की तेज तलवार काटकर
 उसकी अष्टचन्द्रक डाल भी काट डाली ॥१०॥ तलवार और डाल के कट जाने
 पर असुर निशुम्भ ने देवी पर शक्ति छोड़ी लेकिन देवी ने चक्र द्वारा उस
 सम्मुख आती हुई शक्ति के भी दो टुकड़े कर दिये ॥११॥ फिर क्रोध में भरे
 हुए राक्षस ने शूल लेकर चलाया और देवी ने आक्रमण से शूल को भी घूँसा
 मारकर चूर्ण कर डाला ॥१२॥ तब उस दानव ने धुमाकर गदा चलाई, किन्तु
 देवी ने उस गदा को भी अपने त्रिशूल से खण्ड करके भस्म कर दिया ॥१३॥
 फिर जब वह महादानव फरसा हाथ में लेकर आया तो देवी ने उसे बाणों
 से घायल कर धरती पर गिरा दिया ॥१४॥

तस्मिन्नपतितेभूमौनिशुम्भेभीमविक्रमे ।

आतर्यतीवसंकुद्धप्रययीहंतुमम्बिकाम् ॥१५

सरथस्थस्तदात्युच्चं गृहीतपरमायुधं ।
 भुजैरप्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषवभौनभ ॥१६॥
 समायततमालोकधदेवीशब्दमवादयत् ।
 ज्याशब्द चापिघनुपश्चकारतीव्रदुःसहम् ॥१७॥
 पूरयामासककुभोनिजघटास्वनेनच ।
 समस्तदं त्यसंन्यानातेजोवधविधायिना ॥१८॥
 तत सिहमहानादं स्त्याजितेभमहामदैः ।
 पूरयामासगगनगातयैवदिशोदश ॥१९॥
 तत कालीसमुत्पत्यगगनदमामताडयत् ।
 कराभ्यातन्निनादेनप्राक्स्वनास्तेतिरोहिता ॥२०॥
 अट्टाट्टाहासमशिवशिवदूतीचकारह ।
 तं शब्दं रसुरास्त्रं सुशुम्भकोपपरययो ॥२१॥

महाबली भयंकर भाई निजु भ को पृथ्वी पर गिरता देख कर राक्षस
 शुभ अत्यन्त क्रोधपूर्वक देवी को मारने आया ॥१५॥ तथा बहुत लम्बी महा-
 पराक्रमयुक्त अष्टभुजाओ सहित और बड़े-बड़े भस्त्र लेकर रथ में बैठकर वह
 सम्पूर्ण आकाश में फैला दृष्टा दीखने लगा ॥१६॥ उसे आता देखकर देवी ने
 शब्द बजाकर अत्यन्त अमहनीय शब्द घनुप की प्रत्यक्षा से किया ॥१७॥ तथा
 सम्पूर्ण अमुरो की मेना का गतिशील विनाश करने वाले अपने घण्टे की शब्द-
 ध्वनी से सम्पूर्ण दिशाओ को भर दिया ॥१८॥ अनन्तर सिंह ने भी हाथियों
 के महामद को नष्ट करने वाले महानाद से आकाश, पृथ्वी एवं दस दिशाओं
 को पूर्ण कर दिया ॥१९॥ फिर देवी काली ने आकाश में उछलकर अपने
 दोनों हाथों से पृथ्वी पर आघात किया, जिसकी शब्द-ध्वनि ने पहली समस्त
 शब्द-ध्वनि मन्द हो गयी ॥२०॥ शिवदूती भी शत्रु राक्षसों का अमगल करने
 वाली तेज हंसी में हँसी, उस के शब्द से राक्षस लोग दुखी हुए और शुभ
 अत्यन्त क्रोधित दृष्टा ॥२१॥

शुम्भनामत्ययाशक्तिमुक्ताज्ज्वालातिमीपणा ।

धायानीप्रह्निफूटाभासानिररताग्दोलकया ॥२३॥

सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तंलोकत्रयांतरम् ।
 निर्घातिनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥२४
 शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
 चिच्छेदस्वशरैस्त्रैःशतशोथसहस्रशः ॥२५
 ततःसाचण्डिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ।
 सतदाभिहतोभूमौमूर्च्छितोनिपपातह ॥२६
 ततोनिशुम्भः सप्राप्यचेतनामात्तकामुंक्तः ।
 आजघानशरैर्देवींकालीकेसरिणांतथा ॥२७
 पुनश्चकृत्वावाहूनामयुतदनुजेश्वरः ।

चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचण्डिकाम् ॥२८

आकाश में स्थित देवगण तब जय-जय शब्द करने लगे जब अम्बिका ने शुंभ से कहा "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" ॥२२॥ असुर शुंभ ने अत्यन्त भयंकर तेज अग्नि वाली शक्ति छोड़ी, अग्नि के समान आती हुई उस शक्ति को देवी ने महोत्त्वानाम्नी शक्ति से काट कर दूर फेंक दी ॥२३॥ फिर तीनों लोक शुम्भ दानव के सिंहनाद से पूर्ण हो गये, तब हे अवनीपाल ! आकाश से उत्पन्न विद्युत् की भयानक शब्द-ध्वनि ने शुंभ के नाद पर विजय पानी ॥२३॥ शुंभ द्वारा चलाये गये सौ सहस्र शरों को देवी ने अपने तेज बाणों से काट डाला और देवी द्वारा चलाये गये सैकड़ों सहस्रों बाणों को शुंभ ने भी अपने तेज बाणों से काट डाला ॥२५॥ तत्पश्चात् चण्डिका देवी ने क्रोध सहित शूल द्वारा शुंभ को घायल किया और शूल से आहत असुर शुंभ अचेत होकर धरती पर गिर गया ॥२६॥ इसके बाद चेतना आने पर निशुंभासुर धनुष के बाणों से देवी काली और सिंह को आहत करने लगा ॥२७॥ फिर राक्षसराज दैत्य निशुंभ ने दस हजार भुजाएँ धारण कीं और उनसे चक्र व सुद्धास्त्रों द्वारा चण्डिका देवी पर छा गया ॥२८॥

ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गात्तिनाशिनी ।

चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकाश्चतान् ॥२९॥

ततोनिशु भोवेगेनगशामादायचण्डिकाम् ।
 अन्यथावतवँहतु दैत्यसेनासमावृतं ॥३०
 तम्पापतनएवाशुगदाचिच्छेदचण्डिका ।
 यज्ञे नशितघारेणसचशूलसमाददे ॥३१
 शूलहस्ततमायाननिशु भममराह्नम् ।
 रृदिविब्याघशूलेनवेगाविद्धे नचण्डिका ॥३२
 भिन्नस्यतस्यशूलेनरृदयात्रि मृतोपर ।
 महात्रलोमहावीर्यस्तिष्ठेतिपुष्योऽदन् ॥३३
 तस्यनिष्कामतोदेवीप्रहस्यस्वनवत्तत ।
 शिरश्चिच्छेदतङ्गेनततोसावपतद्भुवि ॥३४
 तत सिंहश्चखादोप्रद घ्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
 अमुरास्तास्तथाकालोशिवद्वृतीतथापरान् ॥३५

हमने क्रोधित हुई सकट नाशिनी देवी दुर्गा ने उन सम्पूर्ण बाणों और
 चक्रों को काट डाला ॥२६॥ उनके पशुचान् निशुभ दैत्यो की सेना सहित गदा
 लेकर उन देवी को नष्ट करने के लिए अत्यन्त तेजी से दौड़ा ॥३०॥ तब निशुभ
 राक्षस की उम छाती हुई गदा को चण्डिका देवी ने अत्यन्त तेज धार वाली
 तलवार से काट डाला फिर निशुभ ने धूल ले लिया ॥३१॥ फिर शूल लेकर
 सामने आने हुए अमुर निशुभ की देवी ने महान् गति से प्रपना त्रिशूल चला-
 कर हृदय में धीध धेध दिया ॥३२॥ तो शूल से बिधे अमुर-हृदय में एक
 द्रुमग महाबली और महावीर्यवान् पुरुष देवी से 'टहर' शब्द कहता हुआ निकला
 ॥३३॥ तब देवी ने हँसकर नाद करते हुए उम बाहर भाये हुए अमुर या गिर
 तनवार में काट डाला और बह धरती पर गिर पडा ॥३४॥ इसके बाद सिंह
 तेज दातोसे गर्दन चबाकर अमुर का भक्षण करने लगा तथा शिवद्वृती और
 कानी अन्य द्रुमरे राक्षसों का भक्षण करने लगी ॥३५॥

योभारोगक्तिनिभिन्ना वेचिन्नेशुमंहामुरा ।
 अह्नाणीमप्रपूनेनतीयेनान्येनिगह्नाः ॥३६

माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्नाःपेतुस्तथापरे ।
 वाराहीतुंडघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि ॥३७
 खंडखंडंचक्रेणवैष्णव्यादानवाःकृताः ।
 वज्रेणचंद्रोहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे ॥३८
 केचिद्विनेशुरसुराःकेचिन्नष्टामहाहवात् ।
 भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥३९

कई विकराल राक्षस कोमारी-शक्ति के बल से कटकर मरगये ।
 ब्रह्माणी के मंत्रपूत जल को छूने से ही अपने आप अनेक राक्षस समाप्त हो गये
 ॥३६॥ माहेश्वरी के त्रिशूल की चोट से बहुत से अनेक दानव अलग-अलग
 होकर गिर पड़े और कोई-कोई दानव चाराही के मुख के बाघात से पिसकर
 भूमि पर गिर गये ॥३७॥ वैष्णवी ने चक्र से अन्य दूसरे असुरों को टुकड़े-
 टुकड़े कर डाला और ऐन्द्री द्वारा छोड़े गये वज्र से धायल होकर ॥३८॥ उन
 दानवों में कोई समाप्त हुए और कोई-कोई महायुद्ध से भाग गये । तथा जो
 बचे, उनका काली, शिवदूती और सिंह ने भक्षण कर लिया ॥३९॥

८२-शुम्भ वध

निशुम्भनिहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसंमितम् ।
 हन्यमानं वलचैव शुम्भः क्रुद्धो ब्रवीद्वचः ॥१
 वलावलेपाद्दुष्टे त्वं मादुर्गर्वावह ।
 अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी ॥२
 एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया काममापरा ।
 पश्यैतादुष्टमय्येव विशत्योमद्विभूतयः ॥३
 ततः समस्तास्ता देव्या ब्रह्माणी प्रसुखालयम् ॥
 तस्या देव्यास्तनी जग्मुरेकैवासीत्तदां विका ॥४

अहविभूत्यावहुभिरिहृषैर्दयाम्बिता ॥
 नत्मत्तद्वर्तमयैकवतिष्ठात्माजीस्विराभव ॥५
 नन प्रवृत्तयुद्ध दब्ध्या शुम्भस्यचाभगा ।
 पश्यतामवदानामसुराणाचदारुणम् ॥६
 शरवर्षे शितं शस्त्रंस्तवाचाम्भ्रं सुदारुणं ।
 ततोयुद्धमभूद्रूय सवलाकभयकरम् ॥७

अपि बोल—तुम ने प्राणा के समान भाई पुनियुभ और सेना को
 मग दायर कर काशूत्र कहा ॥१॥ ह दुगे दुगे ! तू बल वा अभिमान न कर,
 तू दूराक उन पर आविन राज मानवा के समान युद्ध करती है ॥२॥
 क्या न रहा—अरु इष्ट । इस समय में कतल एव में ही है मरे बलावा दूरा
 बोल है ? दत्त यह मगे सब विभक्ति मुझ में ही विद्यमान है ॥३॥ ऋषि ने
 कहा—इसमें पशवान् ब्रह्मणी आदि समस्त पवित्र्याँ देवी की देह में विलीन
 हो गईं और तब प्रकृति प्रकृति ही मन्मुख रह गई ॥४॥ फिर देवी बोली—
 अरे तुम ! इस स्थान पर मैं अपनी विभूति द्वारा प्रकृति रूप में विद्यमान थी,
 अब उन सभी रूपों को नष्ट करके मैं युद्ध-क्षेत्र में प्रकृति ही रही हूँ तू
 स्थिर हो ॥५॥ ऋषि ने कहा—तदनन्तर यह सब देखत हुए देवता और
 दानवों के सामने प्रमुख तुम और देवी वानवा का भयकर युद्ध होने लगा
 ॥६॥ फिर देवी और तुमामुर में परस्पर दागावर्षा, घातित व दाहण
 अस्त्रों के प्रहार द्वारा एका युद्ध हुआ जो मन्मुख लोगों में भय उत्पन्न करने
 वाला था ॥७॥

दिव्यान्यम्प्राणिगतसोमुमुचेनान्यथायिका ।
 यमजतानिदं त्वेन्द्रस्तत्प्रतीघातवर्तुंभि ॥८
 मुक्त्वानितेनचाम्प्राणिदिग्मानिपरमद्वरी ।
 यमघ्नोत्सर्वेवोप्रहृणारोत्तारणादिभ ॥९
 तत्र शरानैर्दधीमाच्छादयतमानुर ।
 माचनत्कृपितादवीघनुश्चिच्छेदचेपुभि ॥१०

छिन्नेधनुषिदौ त्येद्रस्तथाशक्तिमथाददे ।
 चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥११
 ततःखड्गमुपादायशतचन्द्रचभानुमत् ।
 अभ्यधावततांहंतुं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१२
 तस्यापततएवाशुखड्गं चिच्छेदचण्डिका ।
 धनुमुक्तैःशितैर्दाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥१३
 अश्वांश्चपातयामासरथंसारथिनासह ।
 हताश्वःसतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ।
 जग्राहमुगदरंधोरमंबिकानिधनोद्यतः ॥१४

अम्बिका द्वारा छोड़े गये शत-शत दिव्य अस्त्रों को उस दैत्यराज
 शुंभासुर ने उनको काटने वाले अस्त्रों से सभी अस्त्रों को काट डाला ॥१॥
 और शुंभसुर द्वारा छोड़े गये सभी दिव्यास्त्रों को देवी चण्डिका ने अपनी लीला
 से व हुंकार द्वारा तोड़ डाला ॥१॥ फिर उस भयंकर राक्षस ने सीकड़ों वारणों
 की वर्षा द्वारा देवी को आच्छादित कर दिया । तब देवी ने भी क्रोध से
 वारणों द्वारा उसका धनुष काट डाला ॥१०॥ धनुष कट जाने पर शुंभ राक्षस
 ने शक्ति ले ली, किन्तु देवी ने उस शक्ति को भी चक्र से उसके हाथों ही में
 काट डाला ॥११॥ तब वह दैत्यराज ने दीक्षियुक्त विशिष्ट चन्द्र ढाल और
 तलवार लेकर देवी पर आक्रमण वाला हुआ ॥१२॥ तब देवीने शुंभ की तलवार
 एवं सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल ढाल को धनुष से तीक्ष्ण वारण छोड़-
 कर काट डाला ॥१३॥ जब उस राक्षस-राज के रथ के घोड़े निर्जिव हो गये,
 धनुष खण्डित होगया और सारथी भी नष्ट हो गया, तब वह भयंकर मुगदर
 लेकर अम्बिका को मारने के लिये तैयार हुआ ॥१४॥

चिच्छेदापततस्तस्यमुद्गरनिशितैःशरैः ।
 तथापिसोभ्यधावत्तांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥१५
 समुष्टिपातयामासहृदयेदैत्यपुङ्गवः ।
 देव्यास्तचासिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥१६

तलप्रहाराभिहतोनिपपातमहीतले ।
 मदंत्यराज सहसापुनरेवतथोत्थित ॥१६
 उत्पत्यचप्रगृह्योच्चैर्देवीगगनमास्थित ।
 तत्रापिसानिराघारायुयुधेतेनचडिका ॥१८
 नियुद्ध खेतदादंत्यश्रृण्णिकाचपरस्परम् ।
 चक्रतु प्रथमसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१९
 ततानियुद्ध सुचिरकृत्वातेनाविकासह ।
 उत्पात्य भ्रातृभ्यामासचिक्षेपघरणीतले ॥२०
 भद्रिमाधरणीप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगित ।
 अम्यघावनद्रुष्टात्माचडिकानिघनेच्छया ॥२१

तब सामने आय दानव वा मुद्गर देवी ने तीक्ष्ण धारणी से नष्ट कर दिया किन्तु फिर भी वह महादानव मुद्रिका तानकर तेज गति से देवी पर दौडा ॥१५॥ महादानव ने वह मृष्टिका प्रहार देवी के हृदय पर किया । तब देवी ने भी ध्वज द्वारा उभरे मीन पर आघात किया ॥१६॥ धण्ड के घाघात ने वीरहित दंष्ट्रराज पृथ्वी पर गिरा और तुरन्त ही पुन उठा ॥१७॥ इसके पश्चात् उद्दान कर देवी को लेकर गुभ आकाश में पहुँच गया और देवी भी आकाश में निरालम्ब होकर केवल भुजाओं से युद्ध करने लगी ॥१८॥ प्राक ग म गुभ व चण्डिका देवी अद्वितीय और मुनियों को अचम्भे में डालने वाला युद्ध करने लग ॥१९॥ उम दानव ने माप बिना अस्त्र केवल भुजाओं से युद्ध करने पर गिरकर वह दृष्टात्मा दानव मुद्रिका उठाकर चडिका को मारने की इच्छा में आक्रामक हुआ ॥२१॥

तमायातततोदवीसवंदंत्यजनश्वरम् ।
 जगत्यापातयामामभित्त्वामूलेनयक्षसि ॥२२
 गतामुपपातोव्यदिवीमूलाप्रविशत ।
 बालयन्मक्तापृथ्वीसाव्यद्वीपोमपवंताम् ॥२३

ततःप्रसन्नमाखिलहृतेतस्मिन्दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलचाभवन्नभः ॥२४
उत्पातमेघाःसौल्कायेप्रागासस्तेशमययुः ।
सरितोभागवाहिन्यस्तथाशुम्भेनिपातिते ॥२५
ततोदेवगणाःसर्वहर्षनिभरमानसाः ।
बभूवुनिहृतेतस्मिन्नाधर्वाललितजगुः ॥२६
अवाद्यस्तथैवान्येननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
चक्रुःपुण्यास्तथावाताःसुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥२७
जज्वलुश्चाग्नयःशांताशान्तःदिग्जनितस्वनाः ॥२८

उस दैत्यराज शुभ को आक्रामक देव देवी ने अपने शूल से उसका हृदय वेध दिया और उसको पुनः पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२२॥ देवी के शूल के अग्र भाग द्वारा शुभ का हृदय आहत हुआ जब वह निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिरा तो उस समय समुद्र, द्वीप और पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी विचलित हो गई ॥२३॥ उस दुरात्मा दानव के मारे जाने पर सभी आनन्दित हुए, संसार बहुत स्वस्थ हुआ और आकाश पूर्णतः स्वच्छ होगया ॥२४॥ शुभ के रहते हुए जो भी अनिष्टकारी मेष और उत्कागण विद्यमान थे, वे सब शुभ के मृत्यु-परान्त अदृश्य होगये और नदियाँ भी अपने समुचित मार्गों में बहने लगीं ॥२५॥ उस दानव के समाप्त होने पर सम्पूर्ण देवगण के चित्त में अत्यन्त हर्ष हुआ और गंधर्व मधुर गान करने लगे ॥२६॥ कोई बाद्य बजाने लगा और अप्सराएँ नाचने लगीं, शीतल मन्द वायु चलने लगी और सूर्य ने भी सुन्दर व्याभा फैला दी ॥२७॥ यज्ञ की कुम्भी अग्नि जलने लगी और सभी विशाओं में शांत शब्द फैला प्रतीत हुआ ॥२८॥

८३—देवी स्तोत्र

देव्याहृतेतत्रमहासुरेन्द्रेसेन्द्राःसुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनींतुष्टुबुरिष्टलाभाद्विकासिवंक्राव्जविकासितायाः ॥१॥

देवाऊनु देविप्रपन्नातिहरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ।
 प्रमोदविश्वेश्वरिप,हिविश्व त्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥२
 आधारभूताजगतस्त्वमेकामहीम्वरूपेणयत स्थितासि ।
 अपास्यरूपस्थितयात्वयंतदाप्याप्यतेकृत्स्नमलघ्यवीर्यं ॥३
 त्वव्योष्यवीशक्तिरनतविर्भाविश्वस्यबीजपरमासिदेवि ।
 मायासमोहितदेविसमस्तमेतस्त्वगोप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥४
 विद्या समस्तास्तवदेविभेदा स्त्रियम समस्ता सकलजगच्च ।
 त्वयंकयापूरितमवयंतत्कातेस्तुतिस्तव्यपरापरोक्ति ॥५
 सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
 त्वस्तुतास्तुतयेकावाभवतिपरमोक्तय ॥६
 सर्वस्यवृद्धिरूपेणजनस्यहृदिसस्थिते ।
 स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिानमोस्तुते ॥७

ऋषि ने ब्रह्मा—देवी ने जब उन महादानव को नष्ट कर दिया, तो समस्त देवता अपने इच्छित फल प्राप्त होने के कारण प्रसन्न मुख कमलों से इन्द्र व अग्नि वी आगे वर समस्त दिताओं को प्रवाक्षित कर उन काल्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ॥१॥ देवता बोल—“हे शरणागत दुःख भजन देवि ! प्रसन्न हो, हे सम्पूर्ण जगत् की जननी प्रसन्न हो, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न हो, तुम विश्व की रक्षा करो, हे देवि ! चराचरो की तुम ही ईश्वरी हो ॥२॥ हे देवि ! तुम ही जगत् की आमात रूप हो, क्योंकि पृथ्वी का रूप तुम्हीं में स्थित है हे देवि ! जन का स्वरूप भी तुम ही धारण करके इस सम्पूर्ण जगत् को वृत्त करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उदलघन नहीं किया जा सकता ॥३॥ हे देवि ! अनन्त वीर्य व्योष्यवी शक्ति तुम ही हो, ससार की हेतुभूत परमलोका तुम ही हो, सम्पूर्ण जगत् को तुमन ही मोहित कर रखा है, हे देवि ! तुम जब प्रसन्न होती हो, तब ही पृथ्वी पर मुक्ति का कारण होनी हो ॥४॥ हे देवि तुम्हारी मूर्ति विशेष में ही समस्त विद्या विद्यमान है और त्रिवीर्य में समस्त भिषा तुम्हारी मूर्ति विशेष हैं, हे जननी ! तुम एक अकेली इस जगत् में व्याप्त हो तुम स्तुति से पर और तुम्हारी स्तुति ही श्रेष्ठ उक्ति है और अशुभ कथ

स्तुति करें ॥५॥ समस्त प्राणी-स्वरूप में तुम ही प्रकाशमान हो और स्वर्ग व भुक्ति तुम ही प्रदान करती हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के लिए कोई भी उक्ति श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि तुम निर्गुण हो और निर्गुण के गुणों की कीर्तन रूप स्तुति किस प्रकार संभव है ? ॥६॥ तुम बुद्धि के रूप में सबके हृदय में बसी हो, हे स्वर्ग-मुक्ति दाता ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥७॥

कलाकाष्ठादिरूपेणपरिग्रामप्रदायिनी ।

विश्वस्योपरतीक्ष्णनारायणिनमोस्तुते ॥८

सर्वमङ्गलमाङ्गल्येशिवेसर्वार्थसाधिके ।

शरण्येश्यंबकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ॥९

सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ।

गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोस्तुते ॥१०

शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ।

सर्वस्यातिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥११

हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणीरूपधारिणि ।

कौशाभःक्षीरकेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥१२

त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ।

माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोस्तुते ॥१३

मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेनघे ।

कौमारीरूपसंस्थानेनारायणिनमोस्तुते ॥१४

हे विश्व-विनाश में समर्थ ! कला एवं काष्ठादि रूप से तुम जगत् का विधान करती हो अथवा क्षण भर में मानवों को अंत प्रदान करती हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥८॥ हे सर्व मंगल-माङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरणदाता ! हे त्रिनेत्र वाली ! हे गौरी ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥९॥ तुम सृष्टि के स्थिति और विनाश की शक्ति रूप हो, हे सनातनि ! गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१०॥ शरणागत, दीन, अर्त्त व त्रसितों का उद्धार करने वाली सबका दुख हरती हो,

हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥११॥ हस युक्त विमान में ब्राह्मी
रूप धारण कर युद्ध क्षेत्र में कुशामिमत्रित जल छिड़कती हो, हे देवि ! हे
नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१२॥ माहेश्वरी रूप में बाल पर सवार होकर
महदचन्द्र और नाभ भूषण सहित त्रिशूल आपने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको
नमस्कार है ॥१३॥ तुमने कौमारी रूप में मयूर और कुक्कुट युक्त होकर महा
शक्ति धारण की, हे अन्वये ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१४॥

शङ्खचक्रगदासाङ्गं गृहीतपरमायुधे ।

प्रसीदवोष्णवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥१५॥

गृहीतोग्रमहाचक्रं दंष्ट्रोद्धतवसुन्धरे ।

वराहरूपिणिसिन्धेनारायणिनमोस्तुते ॥१६॥

नृसिंहरूपेणोप्रेणहतुर्दंत्यान्कृतोद्यमे ।

त्रैलोक्यत्राणसहिनेनारायणिनमोस्तुते ॥१७॥

किरीटिनिमहावज्रोसहस्रनयनोज्ज्वले ।

वृषप्र्राणहरेर्बेद्विनारायणिनमोस्तुते ॥१८॥

शिवदूतीस्वरूपेणहतर्दंत्येमहाबले ।

घोररूपेमहारावेनारायणिनमोस्तुते ॥१९॥

दंष्ट्राकरान्वदनेशिरोमालाविभूषणे ।

चामुण्डेमुण्डमथनेनायणिनमोस्तुते ॥२०॥

लक्ष्मिलज्जेमहाविद्येश्चद्वेषुष्टिस्वधेष्रुधे ।

महारात्रेमहामायेनारायणिनमोस्तुते ॥२१॥

वोष्णवी रूप में शख, चक्र, गदा एव साङ्गं पनुष परम आयुधों की
तुमने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१५॥ वराह रूप में
तुमने हे सिन्धे ! हे नारायणि ! दाँतों से जल मग्न पृथ्वी की उठाकर महाचक्र
ग्रहण किया, तुमको नमस्कार ॥१६॥ नृसिंह रूप में दानवों के नाश को उद्यत
हो त्रैलोक्य की रक्षा करने वाली हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१७॥ हे
नारायणि ! हे ऐश्वरी ! हजारों नयनों से उज्ज्वल किरीटों के धारण करने वाली
एव महाबल्य ग्रहण करने वाली, तुमको नमस्कार ॥१८॥ शिवदूती के रूप में

भयंकर स्वरूप धारण कर हे नारायणि तुमने महाबलि दानवों को समाप्त किया, तुमको नमस्कार ॥१९॥ दंष्ट्रा और कराल मुख के सिरों की माला धारण कर हे नारायणि ! तुमने चण्ड और मुण्ड नाम के दानवों को नष्ट किया, तुमको नमस्कार ॥२०॥ लक्ष्मी, लजा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि, महामाया, ध्रुवा तुम ही हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२१॥

भेधेसरस्वतिवरेभूतिवाभ्रवितामसि ।

नियतेत्वंप्रसीदेशेनारायणिनमोस्तुते ॥२२

सर्वतःपाणिपादातेसर्वतोक्षिशिरोमुखे ।

सर्वतःश्रवणघ्राणेनारायणिनमोस्तुते ॥२३

सर्वस्वरूपेसर्वेशेसर्वशक्तिसमन्विते ।

भयेभ्यस्त्राहिनोदेविदुर्गेदेविनमोस्तुते ॥२४

एतत्तेवदनंसौम्यलोचनत्रयभूषितम् ।

पातुनःसर्वभीतिभ्यःकात्यायनिनमोस्तुते ॥२५

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।

त्रिशूलंपातुनोभीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते ॥२६

हिनस्तिर्देत्यतेजांसिस्वनेनापूर्ययाजगत् ।

साघंटापातुनोदेविपापेभ्योनःसुतानिव ॥२७

असुरासृग्वसापंकर्चचितस्तेकरोज्ज्वलः ।

शुभायखड्गोभवतुचंडिकेत्वांनताद्रयम् ॥२८

भेधा, सरस्वती, भूति, वामसी, तामसि तुम ही हो, हे नारायणि ! हे ईशे ! हे नियते ! तुम प्रसन्न हो, तुमको नमस्कार ॥२२॥ सर्वत्र हाथ, पैर, सिर, मुख, कान, नासिका तुम्हारे ही स्वरूप हैं, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२३॥ सर्वस्वरूप, सर्वेश्वरी, सर्वशक्ति समन्वित हे देवि ! हे दुर्गे ! भय से रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२४॥ तुम्हांग सौम्य मुख और उस पर विभूषित त्रिनेत्रों वाली हे कात्यायनि ! सबसे रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२५॥ ज्वाला से भी अधिक कराल बहुत तेज और शेषासुर को नष्ट करने वाला

तुम्हारा मित्र, है भद्रवाति । हमारी भय से रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२६॥ पत्नी ध्वनि से विद्य को पूरित कर दातव्य के तेज को नष्ट करती थावा तुम्हारा पदा पुष्यन् पापा मे हथारी रक्षा करे ॥२७॥ असुरगण ने लड़ें और रक्षा के पर से वरित स्थितों के समान उज्ज्वल यह दोभाषमान तनवार, ह चन्द्रिरे । हमारा वरपाण करे ॥२८॥

रोगानशौघानपहमितुष्टाददासिकामान्मकवानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानानविपन्नराणांत्वामाश्रिताह्याश्रयताप्रयाति ॥२९॥

एतत्कृतयत्कदनत्वयाद्यधर्मद्विपादेविमहामुराणाम् ।

एषैरनेकैर्वहुधात्मभूत्कृत्वाविकंतत्प्रकरोतिकान्या ॥३०॥

विद्यामुष्णस्थेषुविवेकदीपेत्वाद्येपुत्राकयेपुत्रकत्वदन्या ।

ममत्प्रगर्तितमहाधकारेविभ्रामयम्येतदतीवविश्वम् ॥३१॥

रक्षासिधन्नाप्रविपाश्रनागायत्रारपोदस्युबलानियत्र ।

दावानलोपन्नथादिवपध्येतप्रस्थितात्वपरिपानिविश्वम् ॥३२॥

विश्वेश्वरीत्वपरिपासिविश्वविद्वान्मिमाधारयमोतिविध्वम् ।

विश्वशवद्याभवतीभवतिविश्वश्रयायेश्वयिभक्तिन्मनाः ॥३३॥

देविप्रगीदपरिपालयनोरिभीनेनित्यययामुरवधादघुनेवसद्यः ।

पापानिमर्जजगताप्रशमनयाशुत्पातपाकजनिताश्चमहोपसर्गान् ३४

प्रणतानाप्रपीदत्वदेविविश्वान्तिहारिणि ।

श्रेणोकप्रवाभिनामोडर्थे लोकावावरदाभव ॥३५॥

प्रमत्त होने पर सभी रोगों को नष्ट करती हो । एवं अदम्य होने पर सभी आनाहित वानुषों को छीन लेती हो । तुम्हारे आश्रितों पर कभी कोई निगलित नहीं रहती और तुम्हारे आश्रित ही अन्य सबको आश्रय देने वाले होते हैं ॥२९॥ पत्नी रूप आश्रित कर तुमने धर्म के विपत्तियों और असुरों का प्राण, वह कदा कोई दूसरी नाही कर सकती है ? ॥३०॥ विश्व, महा आश्रित, विश्व-शरीर और देवों के आदि शक्तियों के होने हुए भी महा अपराधम समस्त सभी गर्त से विश्व को तुम्हारे अनिच्छित अन्ध कीन दवा करना है ॥३१॥ जहाँ अमुर हैं, विनाश गर्त हैं, शत्रु हैं, लोगों के समूह हैं, दावानल हैं, तुम वहाँ

घोर समुद्र में रह कर जगत् की रक्षा करती ही ॥३२॥ तुम जगत् की रक्षा करने वाली विश्वेश्वरी हो, विश्व को धारण करने वाली विश्वात्मिका हो । विश्व-ईश ब्रह्माजी द्वारा वन्दनीया हो और विश्व के आश्रय ब्रह्माजी भी तुम्हारे प्रति भक्ति-नम्र हैं ॥३३॥ हे देवि ! तुमने जेमे दानवों का नाश करके इस समय रक्षा की है उसी प्रकार अब प्रसन्न होकर शत्रु भय में रक्षा करो । समस्त विश्व के पापों का नाश करो और जगत् के उत्पातों से हुई महामारी को तुरन्त शान्त करो ॥३४॥ समस्त जगत् के दुखों को नष्ट करने वाली, प्राणियों पर प्रसन्न होओ और हे त्रिलोकवासियों द्वारा पूजी जाने वाली देवि ! उन सबको वर दो ॥३५॥

वरदाहंसुरगणाःवरयंमनसेच्छथ ।

तंवृगुध्वंप्रयच्छामिजगतामुपकारकम् ॥३६

सर्वबाधाप्रशमनत्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।

एवमेतत्त्वयाकार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३७

वैवस्वतंतरेप्राप्तेअष्टाविंशतिमेयुगे ।

शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येतेमहासुरौ ॥३८

मंदगोपकुलेजातायशोदागर्भसंभवा ।

ततस्तौनाशयिष्यामिविध्याचलनिवासिनी ॥३९

पुनरप्यतिरौद्रेणरूपेणपृथिवीतले ।

अवतीर्यहनिष्यामिवैप्रचित्तास्तुदानवान् ॥४०

भक्षयंत्याश्रतानुग्रान्वैप्रचित्तान्सुदानवान् ।

रक्तादंताभविर्ध्यतिदाडिमीकुसुमोपमाः ॥४१

ततोमादेवताःस्वर्गोमर्त्यलोकेवमानवाः ।

स्तुवंतोव्याहरिष्यंतिसततरक्तदन्तिकाम् ॥४२

देवी बोली—हे देवताओ ! मैं वर प्रदान करूंगी, और तुम तीनों, लोकों के कल्याण करने वाले जिस वर की आकांक्षा करते हो, वही माँगो और प्रदान करूंगी ॥३६॥ सुरगणों ने कहा—हे अखिलेश्वरि ! तीनों लोकों की सभी प्रकार की विपदाओं को नष्ट करो और इसी प्रकार हमारे

सबूझो को नष्ट करती रही, यही वर हम मांगते हैं ॥३७॥ देवी बौली—
 धैरवस्थत ममबन्तर के बीच अट्टईसवें युग मे दो महादानव शुभ और निशुभ के
 नाम ने जन्म लेंगे ॥३८॥ उस समय मैं प्रसोदा के गर्भ से गोपनन्द के गेह मे
 जन्म लूँगी और विष्णुचलधामिनी होकर उन दोनों को नष्ट करूँगी ॥३९॥
 फिर पृथ्वी पर अरवन्त विकरात रूप मे अवनार लेकर वैप्रचित्त नाम के अमुरो
 का विनाश करूँगी ॥४०॥ वैप्रचित्त नाम के भीषण दैत्यो को भक्षण करते
 हुए मेरी दन्तमुक्तावनी तुमुम के समान लाल रंग की हो जायगी ॥४१॥ इसके
 पश्चात् स्वर्ग मे देवगण और भयंलोक मे मानव स्तुति करते हुए सबैव मुझे
 "रक्त दन्तिका" के नाम से पुकारेंगे ॥४२॥

भूयश्चशतवर्षवयामनावृष्टधामनभमि ।
 मुनिभिःसन्नुताभूमोमभविष्याम्यथोनिजा ॥४३॥
 तत शनेननेत्राणांनिरीक्षिष्यामियन्मुनीन् ।
 शीतंविष्यतिमनुजा शताशीमितिमासत ॥४४॥
 ततोहमखिललोकमात्मदेहममुद्भवी ।
 भरिष्यामिसुरा शार्करावृष्टं प्राणधारकं ॥४५॥
 धाकभरोतिविख्यातितदायास्याम्यहभुवि ।
 तत्रं वचवधिष्यामिदुर्गंमाख्यमहासुरम् ।
 (दुर्गादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ।
 पुनश्चाहयदाभीमरूपकृत्वाहिमाचले) ॥४६॥
 रक्षातिभक्षयिष्यामिधुनीनांशरणकारणात् ॥४७॥
 तदामामुनय सर्वेस्तोप्यत्यानम्रमूर्तय ।
 भीमादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ॥४८॥
 यदारुणादयस्त्रं लोबधेमहावाघाकरिष्यति ।
 तदाहभ्रामररूपकृत्वामप्येयपट्पदम् ॥४९॥
 त्रं लोबमस्पृहितार्यायवधिष्यामिमहासुरम् ।
 भामरोनिचर्मानोवास्तादास्तोप्रन्तिमवन्त ॥५०॥

इत्थंयदायदावाधादानवोत्थाभविष्यति ।

तदातदावतीर्षाहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥५१॥

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी सूखा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेगे उस समय मैं बिना मनुष्य योनि के ही जन्म लूँगी ॥४३॥ उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे 'शताक्षी' कहकर कीर्तन करेंगे ॥४२॥ उत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरभरण ! स्वकीय-देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूँगी ॥४५॥ इसलिए जगत् में मेरा "शाकम्भरी" नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुर्गम नाम के महादानव को समाप्त करूँगी ॥४६॥ और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूँगी ॥४७॥ उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊँगी ॥४८॥ जिस काल में अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों में भारी विपत्ति पैदा करेगा, उस समय अनेक षट्पद गमन्वित अमरों का रूप ग्रहण कर ॥४९॥ तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव को मारूँगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से श्रुति करेंगे ॥५०॥ इस तरह जिस काल में असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जायँगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूँगी ॥५१॥

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभिःस्तवैश्रमांनित्यंस्तोष्यतेयःसमाहितः ।

तस्याहंसकलांबाधांनाशयिष्याम्यसंशयम् ॥१॥

मधुकैटभनाशंचमहिषासुरघातनम् ।

कीर्त्तयिष्यंतियेतद्द्वधंशुम्भनिशुम्भयोः ॥२॥

अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतसः ।

स्तोष्यन्तिचैवयेभवत्यामममाहात्म्यमुत्तमम् ॥३॥

नतेपाद्दुष्टृत्तन्निचिदुद्धृतोत्थानचापद ।
 नभविष्यतिदारिद्र्यनक्षेत्रेष्टवियोजनम् ॥४
 शश्रुतो न भयते पादस्युतो वानराजत ।
 नक्षत्रानलतीयो घातकदाचित्मभविष्यति ॥५
 तन्मन्ममंतन्माहात्म्यपठितव्यसमाहितं ।
 श्रोनव्यचसदा भक्त्या परस्वत्ययनमहत् ॥६
 उपमर्गानि शोपांस्तु महामारी समुद्भवात् ।
 तथा त्रिविधमुत्पातमाहात्म्यशमयेन्मम ॥७

देवी ने बहा—इन सभी वचनों से सचेत होकर जो मनुष्य मेरी प्रति-
 दिन स्तुति करेगा, यह सदेहहीन है कि मैं उन सभी विपत्तियों का विनाश
 करूँगी ॥१॥ मधुरंतम, शुभ निशुभ और महिषासुर की कथा का उत्तम
 माहात्म्य जो मनुष्य एक चित्त होकर भक्ति पूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी या नवमी
 तिथि में सुने या वह ॥२॥ सो उनको पाप एव पाप से रूढ़ा कोई बाधा नहीं
 रहेगी, दरिद्रता दूर होगी एव प्रियजनो का वियोग भी न होगा ॥४॥ दुश्मन,
 चोर और राजा से किसी स्थान पर भय न होगा और अरुण, अग्नि व पानी
 से भी निडर रहेंगे ॥५॥ इसलिए मेरा वह माहात्म्य दत्तचित्त होकर अध्ययन
 करे और श्रवण करे । मेरा यह माहात्म्य ही मेरी सर्वश्रेष्ठ स्तुति है ॥६॥ यह
 महामारी जन्म सभी विपदाओं और तीनों प्रकार की विपत्तियों को नाश करता
 है ॥७॥

यत्र तत्प्रवृत्तसम्यक्नित्यमायतनेमम ।
 सदानतद्विमोक्ष्यामिसानिध्यतत्रमेस्थितम् ॥८
 बलिप्रदाने पूजायामग्निवार्ये महोत्सवे ।
 सर्वे ममंतच्चरितमुच्चार्य श्राव्यमेव च ॥९
 जानता जानता वापि बलिपूर्जा तथा कृताम् ।
 प्रतीच्छिष्याम्यहंप्रीत्या बह्विहोमतथा कृतम् ॥१०
 शरत्काले महापूजा त्रियते या च वापिकी ।
 तस्यां ममंतन्माहात्म्यं तूत्तमं तस्मिन्वित् ॥११

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसमन्वितः ।
 मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१२॥
 श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यमथोत्पत्तीः पृथक्शुभाः ।
 पराक्रमांश्च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१३॥
 रिपवः संक्षयं याँतिकल्याणं चोपपद्यते ॥
 नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१४॥

जिस गृह में यह माहात्म्य समुचित विधि से मनन किया जाता है, मैं सर्वदा उसी गृह में अथवा उसके समीप वास करती हूँ ॥८॥ पूजा-कार्य या बलि के अवसर पर तथा यज्ञ कार्य आदि उत्सवों में मेरी यह समस्त कथा बोलनी और सुननी चाहिए ॥९॥ प्राणीगण जाने या अनजाने जो पूजा करें, बलि दें या अग्नि में आहुति देते हैं, वह सब मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करती हूँ ॥१०॥ शरद ऋतु में वार्षिक महा पूजा के अवसर पर मेरा यह चरित्र भक्ति-पूर्वक सुनने से ॥११॥ मनुष्य मेरा प्रसाद पाकर सपस्त बाधाओं से विमुक्त होते हैं और यह संदेह से परे है कि वे धन, सम्पत्ति और पुत्र प्राप्त करते हैं ॥१२॥ यह माहात्म्य, शुभ उत्पत्ति की कथा एवं युद्ध-कौशल चरित्र सुनने से मनुष्य को भय नहीं रहता ॥१३॥ उसके शत्रुओं का क्षमन होता एवं उसका कल्याण होता है । और मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले मनुष्य का परिवार आनन्द-पूर्ण हो जाता है ॥१४॥

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
 ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१५॥
 उपसर्गाः शमं याँति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
 दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१६॥
 बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
 संघातभेदे च नृणां भैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७॥
 दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
 रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेवनाशनम् ॥१८॥
 सर्वममैतन्माहात्म्यं मम संनिधिकारकम् ॥१९॥

पशुपुष्पाध्यंघूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।
 विप्राणाभोजनेहोमैःप्रेक्षणीयैरह्निराम् ॥२०॥
 अन्यैश्चविधौर्भोगैःप्रदानैर्वत्सरेणया ।
 प्रीतिर्मन्त्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चरितश्रुते ॥२१॥

सभी शांति कार्यों, भयानक स्वप्न देखने के अवसर पर और घोर पारिवारिक दुःख के समय मेरा यह चरित्र सुने ॥१५॥ इसके श्रवण में विपदाएँ एवं घोर पारिवारिक दुःख मिट जाते हैं और जैसे मनुष्य को दुःखद स्वप्न शीघ्र फलदायक बनते हैं, उसी प्रकार तुरन्त उत्तम फल प्रदान करते हैं ॥१६॥ मेरी यह कथा पूतना, डकिनी, शाकिनी, बालको पर आयी ग्रहों को शमन करने वाली है और यदि मनुष्यों में आपस में मतभेद व शत्रुता हो जाय तो श्रेष्ठ विधि से पुन प्रीति कराने वाली है ॥१७॥ यह भगवन्त अविचारी व दुष्ट मनुष्यों को निर्बन्ध करता, उनके बल को घटाता है, इसके अध्ययन से असुर, भूत व पिशाच नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥ माहात्म्य के अध्ययन से अध्ययन करने वाला मेरे निकट आता है । यह प्रारम्भ, मध्य घोर समाप्ति पर मुझे सर्व प्रकार प्रमत्त करता है ॥१९॥ उत्तम पशु, फूल, अर्घ्य, घूप, गन्ध, दीप, ब्रह्मभोज, यज्ञ, प्रोक्षणीय एवं ॥२०॥ अन्य दूसरी रीतियों से एक वर्ष पर्यन्त दिन रात पूजा करने वाले से मैं जितनी प्रसन्न हो सकती हूँ, उतनी इस माहात्म्य को सिर्फ एक ही बार श्रवण से प्रमत्त हो जानी हूँ ॥२१॥

श्रुतहरतिपापानितयारोग्यप्रयच्छति ।
 रक्षाकरोतिभूतेभ्योजन्मनाकीर्त्तनमम ॥२२॥
 युद्धेषुचरितयन्त्रेदुष्टैर्दत्यनिवर्हेणम् ।
 तस्मिन्ज्युनेदौरिष्टतमपशुसागजायते ॥२३॥
 गुप्ताभिस्तुनयोयाश्चयाश्चब्रह्मापिभिःकृता ।
 ब्रह्मणाचकृतायास्ताःप्रयच्छतिशुभागतम् ॥२४॥
 अरण्येप्रानरेवापिदावाग्निपरिवारितः ।
 दम्बुभिर्वातृत शून्येगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥२५॥

सिंहव्याघ्रानुयातोवावनेवावनहस्तिभिः ।
 राजाक्रुद्धेनचाज्ञप्तोवध्योबन्धगतोपिवा ॥२६॥
 आघूर्णितोवावातेनस्थितःपोतेमहार्णवे ।
 पतत्सुचापिषस्त्रेषुसंग्रामेभृशदारुणे ॥२७॥
 सर्वावाधासुघोरासुवेदनाभ्यर्दितोपिवा ।
 स्मरन्ममैतच्चरितंनरोमुच्येतसंकटात् ॥२८॥

मेरे माहात्म्य का श्रवण सर्व पापों का हरण-कर्ता है और नीरोगता प्रदान-कर्ता है, साथ ही मेरे जन्म सम्बन्धी कीर्तन करने से भूतों वगैरह से भय जाता रहता है ॥२२॥ घोर दानवों के शमन-युद्ध का वर्णन सुनने से मनुष्य को किसी शत्रु से भय नहीं रहता ॥२३॥ हे देवताओ ! तुम्हारी प्रार्थना और ब्रह्म ऋषियों द्वारा की गई प्रार्थनाएँ एवं ब्रह्माजी द्वारा मेरे स्तवन, इन सबको अध्ययन करने से शुभ फल प्राप्त होता है ॥२४॥ ऐसे स्थान पर जहाँ अपना प्रिय कोई न हो, वहाँ शत्रुओं द्वारा घेरे जाने पर, चोरों द्वारा घेरे जाने पर और प्रान्तर में दावानल से ग्रसित होने पर ॥२५॥ खेर या व्याघ्र द्वारा वन में घेरे जाने पर, हाथियों से घिरने पर, आग में गिर जाने पर, क्रोधित राजा द्वारा वध का दण्ड देने के कारण कारागार में होने पर ॥२६॥ विशाल समुद्र में किसी छोटी नाव पर बैठे हुए तूफान द्वारा घिर जाने पर, घोर युद्ध के समय अस्त्रों के समाप्त होने पर ॥२७॥ अथवा सभी तरह की आपदाओं में अतकित या ग्रसित होने पर प्राणी यदि मेरा माहात्म्य या चरित्र का स्मरण करे तो वह समस्त आपदाओं से विमुक्त होता है ॥२८॥

ममप्रभावात्सिहाद्यादस्यवोवैरिणास्तथा ।

दूरादेवपलायंतेस्मरतश्चरितंमम ॥२९॥

इत्युक्त्वासाभगवतीचण्डिकाचण्डविक्रमा ।

पश्यतामेवदेवानांतत्रैवांतरधीयत ॥३०॥

तेपिदेव्यानिरातंकाःस्वाधिकारान्यथापुरा ।

यज्ञभागभुजःसर्वेचक्रुर्विनिहतारयः ॥३१॥

दैत्याश्चदेव्यानिहतेशृम्भेदेवरिपौयुधि ।

जगद्विघ्नसकेनस्मिन्महोम्नेतुलविक्रमे ।
 निशुम्भेचमहावीर्येदोषा पातालमाययु ॥३२
 एवभगवतीदेवीसानित्यापि पुन पुन ।
 सम्भूयकुरुतेभूपजगत् परिपालनम् ॥३३
 तथैतन्माहृतैविश्वसौवविश्वप्रसूयते ।
 सायाचिताचविज्ञानतुष्टाऋद्धिप्रयच्छति ॥३४

मेरे चरित्र को बार-बार मनन करने वाले प्राणी को देखकर ही मेरे प्रभाव से सिंह जैसे हिंसक पशु चोर और शत्रु भी पलायन कर जाते हैं ॥२६॥ ऋषि ने कहा—अतः ऐसा उपदेश देनी हुई महा पराक्रमी चरिण्डिका देवी सुरगण के सम्मुख एकदम अन्तर्धान होगई ॥३०॥ तत्पश्चात् शत्रुओं के भय से निर्भीक सुरगण यज्ञ भाग भोजन करस हुए अवन-अवने कामों में व्यस्त होगये ॥३१॥ विश्व का विनाश करने वाले महा पराक्रमी व देवताओं के शत्रु सुभ एव महाबली निशुभ को जब रण स्थल में चण्डिका ने नष्ट कर दिया तो शेष समुत्सव पाताल को चले गये ॥३२॥ हे राजा ! वह भगवती देवी नित्या होकर भी अन्तः बार पृथ्वी पर प्रकट होकर इस विश्व का पोषण करती है ॥३३॥ उगी भगवती की माया से यह जगत् मोहित है वही इस जगत् की गृष्टि-कर्ता है और उगने समीप स्तुति करने पर वह प्रसन्न होकर तरुणान एव मन-धान्य प्रदान करती है ॥३४॥

व्याप्ततर्पितसर्वतप्रह्लाड मनुजेश्वर ।
 महाकाल्यामहाकालेमहामारीश्वरूपया ॥३५
 सौत्रकालेमहामारीमैवगृष्टिभंवत्यजा ।
 स्थितिरुगेतिभूतानासंवकालेसनातनी ॥३६
 भवकालेनृगामैवत्यक्षमीवृद्धिप्रदागृहे ।
 संवाभावेत्यालक्ष्मीविनाशायोपजायते ॥३७
 स्तुनामपूजितापुष्पैर्गंधधूपैर्दिभिस्तथा ।
 ददातिस्निग्धुश्रीश्चमनिघमैर्गतिशुभाम् ॥३८

हे मनुजेश्वर ! समस्त ब्रह्मांड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय में यह ब्रह्माण्ड महाभारी के रूप में महाकाली से युक्त होता है ॥३१॥ वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप में मनुष्यों की रक्षा करती है ॥३६॥ प्रानन्द के समय वही प्राणियों के भेद में विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नहीं होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य चला जाता है व विनाश हो जाता है ॥३७॥ उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ॥३८॥

८५— सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्तै कथितं भूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
 एवं प्रभावासादेवीययेदं धार्यते जगत् ॥१॥
 विद्यातथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
 तथा त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ।
 मोह्यं ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यं तिचापरे ॥२॥
 तामुपैहि महाराजशरणं परमेश्वरीम् ।
 आराधितासैव नृणां भोगस्वर्गपिवर्गदा ॥३॥
 इति नस्य वचः श्रुत्वा सुरथः सनराधिपः ।
 प्रणिपत्य महाभागं तमृषिसंशितव्रतम् ॥४॥
 निविष्णोति मम त्वेन राज्यापहरणेन च ।
 जगाम सद्यस्तपसे सच वैश्यो महामुने ॥५॥
 सदृशं नार्थं मवाया नदीपुलिनसंस्थितः ।
 सच वैश्यस्तपस्तपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥६॥
 तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ।
 अर्हणां च क्रतुस्तस्याः पुष्पधूपान् गन्तर्पणैः ॥७॥

श्रुति ने कहा—हे भूप ! आपको मैंने यह सर्वोत्तम माहात्म्य देवी का वर्णन किया । वह देवी जा इम विश्व की धारण करने वाली विष्णु माया भगवती की कृपा ऐसी है कि वही मनुष्य को तत्त्वज्ञान प्रदान करती हैं और वही तुम्हें इम वंश का एव अन्य दूसरे बुद्धिमान् व्यक्तियों का भी मोहित किये हुए है, साथ ही भविष्य में भी मनुष्य उनके ही द्वारा मोहित रहेंगे ॥१॥ हे राजा ! ऐसी परमेश्वरी भगवती की शरणागत होओ जिनकी पूजा करने से ही यह प्राणी को ध्यान-द स्वर्ग एव मुक्ति प्राप्त होती है ॥२॥ मार्कण्डेय ने कहा—“हे महर्षि ! भारी ममता एव राज्य के हरण होने से बहुत दुखी वह कठोर धर्म करने वाला सुग्य मुनि क इन वचनों को सुनकर वह उन मुनि की प्रणाम करके तुरन्त तपस्या करने चला गया एव वह वैश्य भी तपस्या करने चला गया ॥४-५॥ तत्पश्चात् राजा व वंश दोनो नदी क तट पर पहुँचे और वही देवी क दशनो क लिए सर्वोत्तम देवी—सूक्त अपते हुए तपस्या में लीन होगये ॥६॥ वही दोनो न मिट्टी से देवी की मूर्ति स्थापित की और पुष्प सुगन्ध, धूप, यज्ञ एव तर्पण से उनकी आराधना की ॥७॥

निराहारीयतात्मानोत्तमनस्कोसमाहितो ।

ददतुस्तोत्रलिचंचनिजगाथासृगुक्षितम् ॥८

एवसमाराधयतोस्त्रिभिर्वर्ष्यतात्मनो ।

परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षप्राहचडिवा ॥९

यत्प्रार्थ्यंतेऽस्याभूपत्वयाचकुलन्दन ।

मत्तस्तत्प्राप्यतासवपश्चितुष्टावदामितत् ॥१०

तनोवर्षे नृपोराज्यमविभक्ष्यप्रजन्मनि ।

अत्रं वचनिजराज्यहनदाशुचलयतात् ॥११

सोपिर्वदस्तनाज्ञानवद्रे निविष्णुमानम ।

ममेत्यहमिनिप्राज्ञ मगत्रिच्युनिनारकम् ॥१२

स्वपेग्होभिर्नृपतेस्वराज्यपाप्स्यतेभवान् ।

हृत्वारिपूनस्सालिततवतत्रभविष्यति ॥१३

मृतश्चभूयः संप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः ।

सावर्णिकोनाममनुर्ध्वान्भुविभविष्यति ॥१४

वैश्यवर्यत्वयास्मत्तोवरोयश्चाभिवाञ्छितः ।

संप्रयच्छामिसंसिद्धयै तवज्ञानंभविष्यति ॥१५

इतिदत्त्वातयोर्देवीयथाभिलषितंवरम् ।

बभूवातर्हितासद्योभक्त्याताम्यामभिष्टुता ॥१६

एवंदेव्यावरंलब्ध्वासुरथः क्षत्रियर्षभः ।

सूर्याज्जन्मसमासाद्यसावर्णिर्भवितामनुः ॥१७

वे दोनों आहार बिना शयवा सूक्ष्म आहार लेकर आराधना में लीन हुए और उन्होंने अपने शरीरों से रक्त की बलि दी ॥१४॥ इस तरह तीन वर्ष पर्यन्त एकाग्र-चित्त से तपस्या करने पर जगत् उद्धारक चण्डिका ने प्रसन्न हो उनसे सम्मुख आकर कहा ॥१५॥ देवी ने कहा—हे राजा ! और हे श्रेष्ठ कुल वैश्य ! तुम जो मेरी आराधना करते हो, तुम मेरे समीप होकर सभी इच्छित फल प्राप्त करोगे, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें प्रदान करती हूँ ॥१६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—दूसरे पश्चात् नृप ने वर मांगा कि द्वितीय जन्म में अखंड-राज्य और इस जन्म में बल द्वारा अपने शत्रुओं को नष्ट कर अपना राज्य पुनः पा सकूँ ॥१७॥ पीड़ित मन वाले विवेकी वैश्य ने 'यह मेरा' और 'मैं' के मोह नाश करने वाला ज्ञान मांगा ॥१८॥ देवी ने कहा—हे राजा ! कुछ ही समय में तुम शत्रुओं का शमन करके अपने राज्य को पुनः प्राप्त करोगे एवं भविष्य में तुम्हें अपने राज्य का त्याग नहीं करना होगा ॥१९॥ फिर मरने के बाद तुम उत्पत्ति लाभ प्राप्त करके पृथ्वी पर सावर्णि नामक प्रतिद्ध मनु होओगे ॥२०॥ हे वैश्य ! तुमने जो वर मुझसे मांगा है, उसकी सिद्धि के लिए तुमको वर प्रदान करती हूँ ॥२१॥ मार्कण्डेय ने कहा—इस प्रकार उन दोनों को इच्छित वरदान प्रदान कर तुरन्त ही वह अन्तर्धान होगई उससे पूर्व उन्होंने पूर्ण भक्ति से देवी की स्तुति की ॥२२॥ अतः क्षत्रिय में श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी से वर प्राप्त करके सूर्यदेव से उत्पत्ति लाभ प्राप्त कर पृथ्वी पर सावर्णि नामक मनु होंगे ॥२३॥

८६—पाँच मन्वन्तर कथन

सार्वणिकमिदमम्यवप्रोक्त मन्वन्तरतव ।
 तथोपदेवीमाहात्म्यमहिषामुरघातनम् ॥१॥
 उत्पत्तयश्चयादेव्यामातृणाञ्चमहाहवे ।
 तथैवसभवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभव ॥२॥
 शिवदूत्याश्चमाहात्म्यवध शुम्भनिशुम्भयो ।
 रक्तबीजत्रयश्चैवसर्वमेतत्तवोदितम् ॥३॥
 श्रूयतांमुनिशार्ङ्गलसार्वणिकमथापरम् ।
 दत्तपुत्रश्चसावणिभावीयोनवमोमनु ॥४॥
 कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामूनयोनृपा ।
 पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तयासुरा ॥५॥
 एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशवागणा ।
 तेषामिद्रोभविष्यन्तुसहस्राक्षोमहाबल ॥६॥
 साम्प्रतकालिकेयोयावह्लिपुत्रपडानन ।
 अद्भुतोनामशक्वाऽसौभावीतस्यान्तरेमनो ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषि श्रेष्ठ ! यह सार्वणिक का मन्वन्तर
 आपने वर्णन किया अब इसी मन्वन्तरे में देवी माहात्म्य, महिषामुर-घातन ॥१॥
 पार रण्य म मातृगणा एव दधी की उत्पत्ति, चामुण्डा देवी की उत्पत्ति ॥२॥
 शिवदूती माहात्म्य, शुभ निगु भ घोर रक्त बीज वध इन सभी को उचित
 प्रकार में आपस कहा ॥३॥ हे ऋषिवर ! अब नवे दश-गुण सार्वणिक के
 मन्वन्तर का वर्णन सुनो ॥४॥ उसमें मनु के मानव-काल में जो देवता, मुनि
 घोर रात्रा होंगे, यह सुनो । पारानर, मरीचि, भर्ग घोर सुधर्मा देवताएँ हैं
 ॥५॥ यह तीन गण एव प्रत्येक गण में बारह गण्य देवगण हैं । वर्तमान बलि
 पुत्र पडानन कालिकेय, इन भविष्य के मन्वन्तर में महा पराक्रमी महस्राक्ष ह
 रण्य ॥६॥ ७॥

मेधातिथिर्वसुःसत्योज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा ।

सप्तर्षयोऽन्यःसबलस्तथान्योहृष्यवाहनः ॥८

धृष्टकेतुर्वहकेतुःखड्गहस्तोनिरामयः ।

पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान्भूरिद्युम्नोवृहद्भ्यः ॥९

एतेनृपसुतास्तस्यदत्तपुत्रस्यवैनृपाः ।

मनोस्तुदशमस्थान्यच्छृणुमन्वरन्तद्विज ॥१०

मन्वन्तरेचदशमेब्रह्मपुत्रस्यधीमतः ।

सुखासीनानिरुद्धाश्चद्विप्रकाराःसुराःस्मृताः ॥११

शतसंख्याहितेदेवाभविष्याभाविनोमनोः ।

यत्पुत्राणांशतंभावितद्देवानां तदाशतम् ॥१२

शान्तिरिन्द्रस्तथाभावीसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ।

सप्तर्षीस्तान्निबोधत्वंयेभविष्यन्तिवैतदा ॥१३

आपोमूर्तिर्हविष्मांश्चसुकृतीसत्यएवच ।

नाभागोऽप्रतिमश्चैववासिष्ठश्चैवसप्तमः ॥१४

उस समय मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल एवं हृष्य-वाहन ऋषि होंगे ॥८॥ धृष्टकेतु, वहकेतु, खड्गहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न एवं वृहद्भ्य ॥९॥ वृह-पुत्र सावर्णिक मनु के पुत्र नृप होंगे । हे ब्राह्मण ! तत्पश्चात् दशम मनु के दूसरे मन्वन्तर को श्रवण करो ॥१०ः॥ इस मन्वन्तर में महा बुद्धिमान् ब्रह्मजी के पुत्र दशम मनु होंगे और उनके मानव-काल में सुखासीन एवं निरुद्धादि नाम के तीन तरह के सुरगण होंगे ॥११॥ भविष्यत मनु के मन्वन्तर में भावी सुरगण सौ होंगे, इस मानव-काल में प्राणियों की संख्या भी सौ और सुरगण की संख्या भी सौ होगी ॥१२॥ इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण शान्ति उस समय इन्द्र होंगे और सप्त मुनियों के संबंध में भी मेरा कथन सुनो ॥१३॥ सप्त मुनियों के नाम आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम एवं सप्तम वसिष्ठ हैं ॥१४॥

सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चभूरिषेणश्चवीर्यवान् ।

शतानीकोऽथवृषभोह्यनमित्रोजयद्रथः ॥१५

भूरिच्छुम्न सुपर्वाव्रतस्यैतन्नयामनोः ।
 भविष्याद्यमंपुत्रस्यसावर्णंस्वान्तरशृणु ॥१६॥
 विहगमा कामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ।
 त्रि प्रकाराभविष्यन्ति एकैर्कर्मिन्त्रयकोशेण ॥१७॥
 मासतुं दिवसायेतुनिर्माणपतयस्तुते ।
 विहङ्गमारात्रयोऽपमोहूर्ताःकामगागणा ॥१८॥
 इन्द्रोवृषारयोभवितातेपाप्रस्थातविक्रमः ।
 हविष्माश्चवरिष्ठश्चष्टिस्वस्तथाहृणिः ॥१९॥
 निश्चरश्चानघश्चैवविष्टिश्रान्द्योमहामुनिः ।
 सप्तयथोऽन्तरेतन्मित्रगितेजाश्चसप्तम ॥२०॥
 सर्वेनग मुसार्माचदेवानीक पुरूद्वहः ।
 हेमघन्वाहृष्टामुश्चभाविनस्तत्सुतानृपा ॥२१॥

मुक्षेत्र, उत्तमोजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, क्षताकीक, वृषभ, धनमिव, जय-
 श्रेय ॥१६॥ भूरिच्छुम्न और सुपर्वा इस पुत्र वराम मनु के हैं, अन्य मनु धर्म पुत्र
 सावर्ण का मन्वन्तर इस प्रकार है ॥१६॥ विहगम, का मन एवं निर्माण पति
 तीन गण देवताओं के हैं और प्रत्येक गण में तीस मुर होंगे ॥१७॥ मास, श्रुतु
 एवं दिवस निर्माण-पति हैं, रात्रि विहङ्गमदेव और सम्पूर्णं मूर्त्तं अन्य विषम-
 कामय सुरों के गण है ॥१८॥ महा पराक्रमी वृषार्य इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तर
 की षष्ठी में हविष्मान्, वरिष्ठ, अदणतनय ॥१९॥ निश्चर, धनघ, विष्टि एवं
 सप्तम अग्निदेव, सप्तमि होंगे ॥२०॥ सर्वाय, मुसार्मा, देवानिक, पुरूद्वह, हेमघन्वा
 व इत्यादि उन मनु के पुत्र होंगे और राजा होंगे ॥२१॥

द्वादशैरुद्रपुत्रस्यश्राव्तेमन्वन्तरेमनो ।
 सावर्णत्वाश्चयेद्देवामुनघश्चशृणुत्परतान् ॥२२॥
 सुधर्माण सुमनसोहरितोरोहितस्तथा ।
 सुवशीश्चमुरास्तत्रपञ्चैतेदयवागणा ॥२३॥
 तेषामिन्द्रमनुविक्षेपश्चैतधामामहाबल ।
 सवैरिन्द्रगुर्त्तयुंक्ता सप्तर्षीनपिमेशृणु ॥२४॥

धृतिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ।

तपोरतिस्तथैवान्प्रःसप्तमस्तुतपोधृतिः ॥२५

देववानुपदेवश्चदेवश्रोष्ठोविदूरथः ।

मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ॥२६

सावर्णं मनु के द्वादश मन्वन्तर के बीच जो देव और ऋषि होंगे, अब उनका वर्णन सुनो ॥२२॥ उनके मन्वन्तर में सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित एवं सुवर्ण इस प्रकार के देवता होंगे और प्रत्येक गण में दश देवगण होंगे ॥२३॥ इंद्र के समस्त गणों से युक्त पराक्रमी ऋतधामा इंद्र होंगे । सप्तर्षियों का वर्णन सुनो ॥२४॥ सप्तर्षियों के नाम हैं, धृति, तपस्वी, सुतपाः, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति एवं सप्तम तपोधृति ॥२५॥ देवान् उपदेव, देवश्रोष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् एवं मित्रविन्द उन मनु के पुत्र एवं भावी नृप होंगे ॥२६॥

त्रयोदशस्यपथ्यैरीच्यारुष्यस्यमनोःसुरान् ।

सप्तर्षींश्चनृपांश्चैवगदतोमेनिशामय ॥२७

सुधर्माणःसुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ।

सुशर्माणःसुराह्येतेसमस्तामुनिसत्तम ॥२८

महाबलोमहावीर्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ।

भविष्यानथसप्तर्षीन्गदतोमेनिशामय ॥२९

धृतिमानव्ययश्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ।

निर्मोहःसुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तमः ॥३०

चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयोदृढः ।

सुनेत्रःक्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुताः ॥३१

अब मैं रौष्य नाम के तृयोदश मनु के मन्वन्तर में जो सप्तर्षि और उनके पुत्र राजा होंगे, उनका वर्णन सुनो ॥२७॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! उनके मन्वन्तर में सुधर्मा और सुकर्मा देवता होंगे ॥२८॥ महत्पराक्रमी दिवस्पति इन्द्र होंगे । साथ ही सप्तर्षियों के विषय में भी सुनो ॥२९॥ धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा एवं सप्तम निष्प्रकम्प सप्तर्षि होंगे ॥३०॥ एवं रौष्य

मनु के पुत्र विप्रमेन, विचित्र नियति, निर्भय, दृढ, मुनेत्र, सप्तयुद्धि और सुव्रत नामक पुत्र होंगे ॥३१॥

८७-रुचि को पितरों का गार्हस्थ्य उपदेश

रुचि प्रजापति पूर्वनिर्ममोनिरहवृत्त ।
 यनास्तमितसायीचचचारपृथिवीमिमाम् ॥१॥
 अग्निमनिकेतन्तमेवाहारमनाश्रमम् ।
 विमुक्तमङ्ग तदृष्ट्वाप्रोचुस्तत्पितरोमुनिम् ॥२॥
 वत्सकम्मास्वयापुष्योनवृत्तोदारमग्रह ।
 स्वर्गापवगंहेतुत्वाद्बन्धन्तेनानिशविना ॥३॥
 गृहीगमन्तदेवानापितृणाश्वतथाहंणाम् ।
 श्रुपीणामतिथीनाश्वकुब्जलोकानुवाग्नुते ॥४॥
 स्वाहोच्चारणतोदेवान्स्वघोच्चारणत पितृन् ।
 विभजत्यन्नदानेनभूताद्यानतिथीनपि ॥५॥
 मत्सर्वेवाहृणाद्यन्धबन्धमस्मदृणादपि ।
 प्रावाप्नोपिमनुष्यपिभूतेभ्यश्चदिनेदिने ॥६॥
 अनुत्पाद्यमुताग्देवानमन्तर्प्यपितृस्तथा ।
 भूनादीश्रक यमीष्ट्यात्मुगतिगन्तुमिच्छसि ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—प्राचीन काल की बात है कि प्रजापति रुचि ने ममत्त ममता का त्याग कर दिया और महद्द्वार रहित होकर जहाँ भी सूँधीं हो जाय, वहाँ सो जाने से. इस प्रकार से पृथिवी में घूमण करने लगे ॥१॥ उनके पितरों ने जब उन्हें अग्नि रहित, गृह-रहित, एकाहारी, निराश्रय और मग त्यागी के रूप में देखा ता इस प्रकार बोले ॥२॥ पितरों ने कहा—हे वरुण ! सुमन स्त्री का पालनक्षण क्यों नहीं किया, क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष का कारण है, विवाह के न होने से तो सभी बन्धन हैं ॥३॥ यही देवता, पितर,

ऋषि, अतिथि आदि का सत्कार करके ही गृहस्थ स्वर्गादि लोकों के सुख भोगते हैं ॥४॥ स्वाहा कह कर देवताओं की, स्वधा कहकर पितरों की और अन्न देकर अतिथि की सेवा रूपी यह तीन ऋणों को चुका कर ही पुरुष गृहस्थ होता है, तुम इस प्रकार दिनों दिन देवता, पितर, मनुष्य और सब जीवों के ऋण में बन्धन को प्राप्त हो रहे हो ॥५-६॥ पुत्र को उत्पन्न किये बिना, देवताओं और पितरों का तर्पण किये बिना तथा कर्मों का अनुष्ठान किये बिना श्रेष्ठ गति पाने की किस प्रकार आशा करते हो ? ॥७॥

क्लेशमेवैहिकंपुत्रमन्यामोऽत्रभवेत्तव ।

मृतस्यनरकंतद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥५

परिग्रहोऽतिदुःखायपापायाधोगतेस्तथा ।

भवत्यतोमयापूर्वनकृतोदारसंग्रहः ॥६

आत्मनःसंयमोयोऽयंक्रियतेक्षनियन्त्रणात् ।

समुक्तिहेतुर्नभवत्यसावपिपरिग्रहात् ॥१०

प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसंयदात्मानिष्परिग्रहैः ।

ममत्वपङ्कदिग्धोऽपिचित्ताम्भोभिर्वरहितत ॥११

अनेकभवसभूतकर्मपङ्काङ्कितोबुधैः ।

आत्मासद्वासनातीर्यैःप्रक्षाल्योनियतेन्द्रियैः ॥१२

युक्तप्रक्षालनंकर्तुमात्मनोनियतेन्द्रियैः ।

किन्तुलेपायमार्गोऽयंयत्रत्वंपुत्रवर्तसे ॥१३

पंचर्णदीनैरशुभंनुद्यतेऽनभिसन्धितैः ।

फलैस्तथोपभोगैश्चपूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥१४

हे पुत्र ! तुमको जिस-जिस क्लेश की प्राप्ति होगी, उस-उस को हम भले प्रकार जानते हैं, जैसे मरने के पश्चात् नरक भोगने वाला दुःख पाता है, वैसे ही तुम्हें जन्मजन्मान्तर में दुःख भोगने होंगे ॥५॥ रुचि ने कहा—स्त्री का ग्रहण अत्यन्त दुःख का देने वाला और पाप का कारण ही है, उसी से अधोगति होती है, इसी कारण मैंने स्त्री परिग्रह नहीं किया ॥६॥ इन्द्रियों का दमन करने के लिये आत्म संयम करना ही मोक्ष का कारण है, दार परिग्रह कभी भी मोक्ष

का कारण नहीं हो सकता ॥१०॥ ममता रूपी कीचड़ में लित होने वाले
 आत्मा को जो परिग्रह हीन पुरुष नित्यप्रति धित रूपी जल से धोते हैं वही
 पुरुष श्रेष्ठ हैं ॥११॥ अनरु जन्मा म उपपन्न कर्मरूपी कीचड़ में सने हुए आत्मा
 को सद्ब्रह्मज्ञाना रूपी जल से स्वच्छ करना ही बुद्धिमानों को उचित है ॥१२॥
 पितर बोले—यह ठीक है कि समयतेन्द्रिय पुरुषों को आत्मा को स्वच्छ करना
 चाहिये, परन्तु हे वरुण ! तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, क्या वह मार्ग मोक्ष
 प्राप्ति वरान वाता है ? ॥१३॥ जैसे निष्काम दान से भ्रमण का नाश होता
 है, वैसे ही शुभ प्रशुभ फल के भोग से पूर्व जन्म के सचित्र कर्म का नाश होता
 है ॥१४॥

एवमवन्धीभवतिकुवत कारणात्मक ।
 नक्षवन्धायतत्कमभवत्यनभिसन्धितम् ॥१५॥
 पूर्वकर्मकृतभोगे क्षीयतेऽहृनिशतथा
 सुखदुःखारत्नकैर्वेत्सपुण्यापुण्यात्मर्तृणाम् ॥१६॥
 एवप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्मावन्धाच्चरक्ष्यते ।
 नत्वेवमविवेकेनपापपङ्केननिप्यते ॥१७॥
 अविद्यापठघतेवदैकर्ममागपितामहा ।
 नत्क्वयकर्मणामार्गोभवन्तोयोजयन्तिमाम् ॥१८॥
 अविद्यासत्यमेवैतत्तन्मनैतन्मृषावच ।
 किन्तुविद्यापन्निप्राप्तीहेतुःकमनसशय ॥१९॥
 विहिताकरणात्पुभिरमद्भिःक्रियतेतुय ।
 समयमामुक्तयनासोप्रत्युताऽधोगतिप्रद ॥२०॥
 प्रदालयामीतिभवान्परमात्मानन्नुमन्यते ।
 विहिताकरणोद्भूतं पापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ॥२१॥
 अविद्याप्युपकारायविषयवज्जायतेनृणाम् ।
 अनुष्ठिताभ्युपायेनवन्धायान्यायनोहिमा ॥२२॥
 तन्माद्वत्सबुग्व्यतरविधिवद्धारसग्रहम् ।
 माजन्मनिषततऽस्तुभ्रसम्प्राप्यनुत्तीक्ष्णम् ॥२३॥

अनभि संधि के कर्म बन्धन का कारण न होने से कर्म करने वालों को ही संसार के बन्धन में नहीं पड़ना होता ॥१५॥ हे पुत्र ! सुख, दुःख के रूप में भोगे जाने वाले भोग से ही पूर्व जन्म के संचित पुराय पाप युक्त कर्म दिन रात क्षीण होते रहते हैं ॥१६॥ बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अविवेक रूप पाप के कीचड़ में निमग्न न हों और आत्मा को इस प्रकार स्वच्छ करें तथा बन्धन से अपने को बचावे ॥१७॥ रुचि ने कहा—हे पितरगण ! वेद में कर्म मार्ग को ही अविद्या कहा गया है, फिर आप मुझे कर्म मार्ग में क्यों प्रवृत्त करना चाहते हैं ॥१८॥ पितरों ने कहा—कर्ममार्ग को अविद्या कहा है, वह यथार्थ है, परन्तु कर्म के द्वारा यह वचन असत्य ही जाता है, क्योंकि कर्म से ही तो विद्या की प्राप्ति होती है ॥१९॥ सभी करने योग्य कार्यों के न करने से असत् पुरुष मोक्ष के लिये जो संयमादि करते हैं, अन्त में वह अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ हे पुत्र ! तुम समझते हो कि मैं आत्मा को धो रहा हूँ, परन्तु यह निश्चय समझो कि विहित कर्म के न करने से उसके पाप में जलते हैं ॥२१॥ जैसे अपकार करने वाला विष औषधि रूप में मनुष्य का उपकार करने वाला होता है, वैसे ही यह अविद्या भी मनुष्य के लिये उपकारिणी होती है, अन्य गुण वाला होने पर भी अनुष्ठित कार्य उचित उपाय के द्वारा हमारे लिये कल्याण-प्रद होता है ॥२२॥ हे पुत्र ! इसलिये तुम अब विवाह कर लो, जिससे सांसारिक धर्म की प्राप्ति न होने से तुम्हारा जन्म असफल न हो ॥२३॥

८८—रुचिकृत पुत्रस्तव

सत्तेनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानसः ।

क्रम्याधिलापीविप्राभिःपरिवभ्राममेदिनीम् ॥१॥

कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपितः ।

चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२॥

किंकरोमिक्वगच्छामिकथमेदारसंग्रहः ।

क्षिप्रंभवेत्पितृगांयोममभ्युदयकारकः ॥३॥

इति चित्तयस्तस्त्वमतिर्जाता महात्मन ।
 तपसारायाम्यनग्रह्याणकमलाङ्गवम् ॥४
 ततावपशतदिव्यतपस्तपेसवयसम् ।
 दिदृक्षु मुचिरकानपरनियममास्थित ॥५
 ततस्वदशयामामग्रह्यानाकपितामह ।
 उवाचतप्रपन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
 ततोऽप्यौप्रणिपत्याहृग्रह्याणजगतागतिम् ।
 पितृणावचनात्तनयत्कतुंमभिवाञ्छितम् ।
 ब्रह्माचाहृर्षिविप्रश्चत्वात्म्याभिवाञ्छितम् ॥७

मावण्डेय जी ने कहा—ब्रह्मापि रुचि ने पितरों का ऐसा महत्त्व मुने
 का उद्दिष्ट चित्त से कदा की इच्छा को और इसके लिए पृथिवी में विचरण
 करने योग्य ॥४॥ पितरों की वाणी कृपी अग्नि में तपन के पश्चात् कदा प्राप्त
 न होने में उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ॥२॥ पितरों का अभ्युदय करने यात्रा में
 विधान काय किम प्रकार में प्रेरणा पूर्वक सम्पन्न हो ? इनके लिए मुझ क्या
 करना और कहाँ जाना चाहिए ? ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन्होंने
 निश्चय किया कि 'मुझे तपस्या के द्वारा भगवान् ब्रह्माजी को धाराधना करनी
 चाहिए ॥४॥ ऐसा निश्चय कर ब्रह्माजी को प्रणम्य करने के लिये विधियन्
 त्द्वय गी वप तक तप किया ॥५॥ तब ब्रह्माजी उनके समक्ष साक्षात् रूप में
 प्रकट हुए और रुचि ने उवाच कहा—मैं प्रणम्य हुआ हूँ तुम अपना इच्छित कर
 माँगा ॥६॥ यह सुनकर रुचि ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और पितरों के
 धारणा-नुसार जा कामना की है वह उनसे निवेदन की, तब रुचि की इच्छा
 जान कर ब्रह्माजी बात ॥७॥

प्रजापतिस्त्वभधितास्यष्टयाऽवताप्रजा ।
 मृदाप्रजा मुतान्विप्रममुत्पाद्याक्रियास्त्वया ॥८
 धृताकृतापि नारस्यनन मिद्धिमवाप्यमि ।
 स यय्यास्त पितृभिर्गुण्दागपिग्रहम् ॥९

कामंचेममभिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ।
 तएवतुष्टाःपितरःप्रदास्यन्तितवेप्सितान् ।
 पत्नीसुतांश्चसन्तुष्टाः किन्दद्युःपितामहाः ॥१०॥
 इत्यृषेर्वचनंश्चुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 नद्याविविक्तेपुलिनेचकारपितृतर्पणम् ॥११॥
 तुष्टावचपितृन्विप्रःस्तवंरेभिस्तथादृतः ।
 एकाग्रप्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२॥
 नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धेयेवसन्त्यधिदेवताः ।
 देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्चाद्धेस्वधोत्तरैः ॥१३॥
 नमस्तेऽहंपितृन्स्वर्गेयेतर्प्यन्तेमहर्षिभिः ।
 श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४॥

उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजा को उत्पन्न करने वाले प्रजापति जब तुम प्रजा की सृष्टि और सन्तानोत्पत्ति करके समस्त क्रिया ॥८॥ करके अतिकार से व्युत्त होजाओगे, तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी इसीलिये पितर गण तुम्हें विवाह करने का आदेश देते हैं ॥९॥ इसे अपना कर्त्तव्य मानकर पितरों का पूजन करो, वह सन्तुष्ट होकर तुम्हें इच्छित पत्नी और पुत्र देने ? सन्तुष्ट हुए पितर गण क्या नहीं दे सकते ? ॥१०॥ मार्कंडेयजी ने कहा— अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का ऐसा आदेश पाकर रुचि ने नदी के निर्जन तट पर पितरों का तर्पण किया ॥११॥ उन्होंने अत्यन्त आदर पूर्वक, एकाग्रचित्त से, भक्तिभाव के द्वारा मस्तक झुका कर स्तोत्र के द्वारा पितरों को प्रसन्न किया ॥१२॥ रुचि ने कहा—श्राद्ध काल में जो अधिदेवता रूप से निवास करते हैं और श्राद्ध में देवगण भी स्वाहा कह कर जिनका तृप्ति-विधान करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ, ॥१३॥ जिन्हें महर्षि गण मुक्ति-मुक्ति की कामना युक्त श्राद्ध में तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१४॥

नमस्येऽहंपितृन्स्वर्गेसिद्धाःसन्तर्पयन्तियान् ।
 श्राद्धेपुदिव्यैःसकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५॥

नमस्येऽहपितृन्मत्परचर्यन्तेभुविद्येसदा ।

श्राद्धेपुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७

नमस्येऽहपितृन्विप्रंरचर्यन्तेभुविद्येसदा ।

वाञ्छिताभीष्टनाभायप्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८

नमस्येऽहपितृन्येवैतर्ष्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।

वन्ध्यांश्राद्धंयन्ताहारैस्तपोनिधूँतकिल्बिषं ॥१९

नमस्येऽहपितृन्विप्रैर्नेऽऽकव्रतचारिभिः ।

येयत्तात्मभिनित्यत्तत्तर्ष्यन्तेसमाधिभिः ॥२०

नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धंराजन्यास्तर्षयन्तियान् ।

वाढ्यैरशोर्षाधिबल्लोऽत्रयफलप्रदान् ॥२१

जिन पितरों को सिद्ध स्वर्ग में श्राद्ध के समय सभी दिव्य उपहारों से तृप्त करते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५॥ जिन पितरों का प्रत्युत्पृष्ट समृद्धि की कामना वाले गृह्यकरण भक्ति में तन्मय होकर पूजन करते हैं, उन पितरों को भोग नमस्कार है ॥१६॥ मर्त्यलोक के निवासी मनुष्यगण इच्छित लोगों के दाना जिन पितरों की श्राद्ध में श्राद्ध सहित पूजा करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१७॥ जो पितरगण प्राजापत्य पद प्रदान करने वाले हैं, वे ब्राह्मणों के द्वारा इच्छित विषय की प्राप्ति के निमित्त पूजे जाते हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ जिन वनवासियों के पाप मिनाहार और तपस्या के कारण क्षीण हो गये हैं, वे वन श्राद्ध द्वारा जिन पितरों को तृप्त करते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है ॥१९॥ मयनसमा नैशिक ब्रह्मचारों विप्र जिन पितरों को समाधि द्वारा तृप्त करते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है ॥२०॥ तीनों लोकों में पन देने वाले विभिन्न पितरों को शनिव्रतगण श्राद्ध पूर्वक कव्य देकर तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२१॥

नमस्येऽहपितृन्वैश्यैरचर्यन्तेभुविद्येसदा ।

म्बकमौंभिरनं नित्यपुष्पधूपान्नचारिभिः ॥२२

नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धंयैशुद्रैरपिभक्ति ।

मन्तर्ष्यन्तेजगत्प्रयनाम्नाम्यानाः मुनाजिन ॥२३

नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धैः पातालेयेमहासुरैः ।

सन्तर्प्यन्तेस्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥२४

नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै रच्यन्तेयेरसातले ॥

भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥२५

नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तपितान्सदा ।

तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६

पितृन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाद्य देवलोकेचतथात्तरिक्षे ।

महोत्तलेयेचसुरादिपूज्यास्तेमेप्रतीच्छन्तुमयोपनीतम् ॥२७

पितृन्नमस्येपरमात्मभूतायेवै विमानेनिवसन्तिमूर्त्ताः ।

यजन्तियानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८

अपने कर्म में लगे हुए वैश्य जिन पितरों को पुष्प, धूप, अन्न और जल के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२२॥ इस संसार में जिन सुकालीन नामक प्रसिद्ध पितरों को शूद्रगण श्रद्धा भक्ति पूर्वक तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२३॥ जिन स्वधाहारी पितरों को पातालवासी महाअसुर दम्भ और मद का त्याग करके श्राद्ध के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२४॥ काम की अभिलाषा वाले नामवंशीय रसातल में जिन पितरों को अशेष भोग और श्राद्ध से सदा तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ जिन पितरों को वे सर्पगण मन्त्र, भोग और सम्पत्ति से युक्त होकर श्राद्ध द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ॥२६॥ जो पितरगण देवलोक और अन्तरिक्ष में प्रत्यक्षरूप से रहते हैं और भूतल में देवताओं द्वारा जिनका अर्चन किया जाता है, उनको नमस्कार है, वह मेरी प्रार्थना स्वीकार करें ॥२७॥ जो परम आत्मभूत पितर विमान में साक्षात् रूप से निवास करते हैं, तथा जिन पितरों की क्लेश नाशिनी वाणी द्वारा यज्ञ में प्राराधना करते हैं, उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

पितृन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।

प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विभुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु ॥२९

तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितर समस्ताश्चिद्धावतायेप्रदिशन्तिकामान् ।
 सुरत्वमिन्द्रत्वमताऽधिकवासुतान्पशून्स्वानिवलगृहाणि ॥३०॥
 सोमस्ययेरश्मिपुयेऽर्कंविम्बेशुक्लेविमानेचसदावसन्ति ।
 तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिनापुष्टिमितोन्नजन्तु ॥३१॥
 येपाट्टतेऽग्नीहविपाचनृत्तिर्येभुञ्जतेविप्रशरीरसस्था ।
 येपिण्डदानेनमुदप्रयान्ति तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयै ॥ ३२॥
 बध्यान्यशेषाणिचयान्यभोष्टान्यतीवतेषाममराक्षितानाम् ॥३३॥
 तेषातुमान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येषुमयाकृतेषु ॥३४॥
 दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्चामासातपूज्याभुविषेऽष्टकासु ।
 येवत्सरातेऽभ्युदयेचपूज्या प्रयान्तुतेमेपितरोऽन्नतृप्तिम् ॥३५॥

जो स्वर्ग में मूर्तिमान् रहकर काम्यफल के निमित्त स्वर्ग का आहार करते हैं और प्राणियों को इच्छित प्रदान करने में समर्थ हैं तथा निष्काम कर्म में मोक्ष प्रदान करते हैं, उन पितरों को प्रणाम है ॥२६॥ जो प्राणियों को आपित वस्तु प्रदान करते हैं और जो देवत्व, इन्द्रत्व अथवा इससे भी बढ़ कर तथा जो पुत्र, पशु, धन, बल, पर आदि कामना के अनुसार देते हैं, वह पितरगण मेरे इस पूजन से तृप्ति को प्राप्त हो ॥३०॥ जो पितरगण सोम-चरणों, सूर्य-विम्ब और श्वेत विमान में निवास करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होने हुए अन्न, जल, गन्धादि से पुष्टि को प्राप्त हो ॥३१॥ जो अग्नि में घृत की माहुति देने से तृप्ति को प्राप्त होते हैं। जो आह्वय के देह में प्रविष्ट होकर भोजन-ग्रहण करते हैं तथा जो पिण्डदान से सन्तुष्ट होते हैं, वह पितरगण इस अन्न और जल के द्वारा सन्तुष्ट हों ॥३२-३३॥ देवताओं द्वारा पूजित उन पितरों के लिए जो बध्य अर्भोष्ट हैं, उन्हीं पुष्प, गन्ध, अन्नादि पदार्थों का मैंने सग्रह किया है, वह इनके निकट आवें ॥३४॥ जो निरवप्रति पूजा ग्रहण करते और प्रतिमास अष्टका में पूजे जाने हैं, तथा वर्ष के अन्त में जिनका पूजन होता है, वह पितरगण मेरे इस पूजन द्वारा तृप्त हों ॥३५॥

पूज्याद्विजानांकुमुदेन्दुभासोयेक्षत्रियाणांचनवार्कवर्णाः ।
 तथाविशायिकनकावदातानीलीनिभाःशूद्रजनस्ययेच ॥३६
 तेऽस्मिन्समस्ताममपुष्पगंधधूपान्ततोयादिनिवेदनेन ।
 तथाग्निहोमेनचयांतुतृप्तिसदापितृभ्यःप्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३७
 येदेवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतो रश्नन्तिकव्यानिशुभाहुतानि ।
 तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवन्तितृप्यन्तुतेस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३८
 रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ।
 आद्याःसुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३९
 अग्निष्वात्ताबर्हिषदभ्राज्यपाःसोमपास्तथा ।
 व्रजंतुतृप्तिश्चाद्धेऽस्मिन्पितरस्तपितामया ॥४०
 अग्निष्वात्ताःपितृगणाःप्राचींरक्षन्तुमेदिशम् ।
 तथाबर्हिषदःपान्तुयाभ्यायिपितरःस्मृताः ॥४१
 प्रतीचीमाज्यपास्तद्दुदीचीमपिसोमपाः ।
 रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२

जो पितरगण श्वेत वर्ण वाले और प्रभा से सम्पन्न होकर देवताओं के द्वारा पूजनीय होते हैं तथा नवोदित सूर्य के समान रक्त वर्ण वाले होकर क्षत्रियों के द्वारा पूजित होते हैं जो स्वर्ण जैसी कान्ति वाले होकर वैश्यों द्वारा पूजे जाते हैं और नीलिमा रूप होकर शूद्रों द्वारा पूजनीय होते हैं ॥३६॥ वह सभी पितरगण मेरे द्वारा किये गये पुष्प, धूप, अन्न तथा जलादि की भेंट और अग्निहोत्र से तृप्त हों, उन पितरों को मेरा प्रणाम है ॥३७॥ जो अत्यन्त तृप्ति के लिये देवताओं के समक्ष होमे गये सब श्रेष्ठ वन्न रूप कव्य का आहार करके तृप्त होते और अणिमादि आठों सिद्धियाँ प्रकट करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जो पितरगण राक्षस, भूत और विकराल असुरों को नष्ट करने वाले और अमंगल को मिटाने वाले हैं तथा जो देवताओं के आदि पुरुष और इन्द्र के पूजनीय हैं, वह पितरगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद,

आज्यपा और सोमपा पितरगण भेरे द्वारा तपण को प्राप्त होकर इस श्राद्ध में तृप्त हैं ॥४०॥ अग्निष्वात्ता पितर पृथु दिशा में मेरी रक्षा करें और बहिषद पितर दक्षिण दिशा में रक्षा करें ॥४१॥ आज्यपा पितर पश्चिम दिशा में तथा सोमपा पितर उत्तर दिशा में राक्षस, भूत, पिचास और असुरों द्वारा उत्पन्न क्रिय उपद्रव में रक्षा करें ॥४२॥

मर्वतश्चाधिपस्तपायमोरक्षाकरातुमे ।
 विश्वोविश्वभुगाराध्योघर्मोघन्य शुभानन् ॥४३॥
 भूतिदोभूतिकृद्भूति पितृणायगणानव ।
 कल्याण कल्यताकर्त्ताकल्य कल्यतराश्रय ॥४४॥
 कल्यताहेतुरनघ पांडिमेनेगुणा स्मृता ।
 वरोवरेण्योवरद पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥४५॥
 विश्वपातातथाघातासप्तैवेततथागणा ।
 महान्महात्मानामहितोमहिमावान्महाबल ॥४६॥
 गणा पञ्चतथैवेतेपितृणापापनाशना ।
 सुखदोघनदश्चान्योघमंदोअन्यश्चभूतिद ॥४७॥
 पितृणाकथ्यतेचैतत्तयाम्गणचतुष्टयम् ।
 एवत्रिंशत्पितृगणायैव्याप्तमखिलजगत् ।
 तमेजुतृप्तास्तुप्यतुयच्छन्तुचसदाहितम् ॥४८॥

जिन पितरों के विश्व, विश्वभुक्त आराध्य घम, घन्य, शुभानन् भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह नौ सन्धक गण हैं उनके धृषिपति यम भेरे सब ओर से रक्षा करें कल्याण कल्यता, कर्त्ता कल्य, कल्यतराश्रय ॥४३-४४॥ कल्यता हेतु और अनघ यह छ प्रकार के गण जिन पितरों के हैं तथा जि पितरों के वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥४५॥ विश्वपाता और घात यह मात प्रकार के गण हैं तथा महान्, महात्मा, महित, महिमावान् महाबल ॥४६॥ यह पाँच प्रकार के गण जिन पितरों के हैं एव सुखद, घनद, घम और भूतिदाता यह चार प्रकार के पितरों के गण हैं यह सब मिलकर

इकत्तीस पितरगण सम्पूर्ण विद्वं की व्योप्त किये हुए हैं, वह संभी मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्ति होकर मेरी कामना पूर्ण करें और मेरे लिये सदैव हितकारी हों ॥४८॥

८६—रुचि को पितरों का वरदान

एवंतुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिरु च्छतः ।
 प्रादुर्बभूवसहसामगनव्याप्तिकारकः ॥१॥
 तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमासाद्यस्थितजगत् ।
 जानुभ्यामवनिगत्वारुचिःस्तोत्रमिदंजगौ ॥२॥
 अमूर्तानांचमूर्तानापितृणादीप्ततेजसाम् ।
 नभस्यामिसदातेषां ध्यानानादिव्यचक्षुषाम् ॥३॥
 इन्द्रादीनांचनेतारोदक्षमौरीचयोस्तथा ।
 सप्तर्षीणांतथान्येषांतां नभस्यामिकामदान् ॥४॥
 मन्वादीनांमुनीन्द्राणांसूर्यांचन्द्रमसोस्तथा ।
 तान्नमस्याभ्यहंसवर्वाण्पितरश्चाराणवेषुये ॥५॥
 नक्षत्राणांग्रहाणांचवायव्रग्नयोर्नभसस्तथा ।
 द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृतांजलिः ॥६॥
 देवर्षीणांग्रहाणांचसर्वलोकनमस्कृतान् ।
 अक्षय्यस्यसदादातृन्नमस्येऽहंकृतांजलिः ॥७॥

मार्कण्डेय जी कहा—रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर उनके समीप उच्च शिखायुक्त और आकाश व्यापी तेज सहसा प्रकट हुआ ॥१॥ उस तेज को सम्पूर्ण विद्वं को आच्छादित करके अचस्थित देखा तो रुचि ने जानुं से पृथिवी को स्पर्श करके इस स्तोत्र का कीर्तन किया ॥२॥ रुचि बोले— उन ध्यान सम्पन्न, दिव्य नेत्र, दीप्त तेज, निराकार एवं पूजितपितरों को मैं

नमस्कार करता है ॥३॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि तथा इन्द्रादि के नेता स्वरूप काम के देने वाले पितरो को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥ मनु इत्यादि मुनीश्वरों तथा सूर्य-चन्द्रमा के नेता और काम के प्रदान करने वाले, समुद्र और जल में अवस्थित उन सभी पितरो को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ नक्षत्र, ग्रह वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवी के नेता तथा काम प्रदायक पितरों को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥६॥ देवपियों के उत्पत्ति कर्ता, अश्वत्थ फल के दाता और सब जोको द्वारा नमस्कार किये जाने वाले पितरों को बरबद प्रणाम करता हूँ ॥७॥

प्रजापते कश्यपायसोमायवरुणाय च ।
 योगेश्वरेभ्यश्चसदानमस्यामिकृताजलि ॥८
 नमोगरोम्य सप्तभ्यस्तथालोकेषुसप्तसु ।
 स्वयभुवेनमस्यामिब्रह्माण्योगचक्षुषे ॥९
 सोमाधारास्त्वितृगणान्योगमूर्तिधरास्तथा ।
 नमस्यामितथासोमपितरजगतामहम् ॥१०
 अग्निरूपास्तथवान्याग्निमस्यामिपितृनहम् ।
 अग्नीषोममयविश्वयतएदशेषतः ॥११
 येतुतेजसियेचंतेसोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ।
 जगत्स्वरूपिणश्चैवतथाब्रह्मस्वरूपिण ॥१२
 तेभ्योऽजिलेभ्योयोगिभ्य पितृभ्योयतमानसः ।
 नमोनमोनमस्तेमेप्रसीद तुस्वधाभुजः ॥१३

प्रजापतियो म कश्यप और सोम, वरुण तथा योगेश्वर स्वरूप हैं, उन पितरों को मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥८॥ जो सप्त लोकों में सात गणों के मध्य स्थित हैं, उन्हें तथा जो योग-चक्षु स्वयम् ब्रह्मा स्वरूप हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हूँ ॥९॥ जो पितर सोम के आश्रय, योगमूर्ति, सोम-रूप एवं अगतिता हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१०॥ जिन अशेष पितरों के द्वारा अग्नि सोम और अश्वत्थ उत्पन्न हुआ है, उन अग्नि रूपी आश्रय

सभी पितरगण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ जो चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूपी तेज में स्थित होकर विश्व स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं उन समस्त योगी पितरों को मैं अपने संयत मन के द्वारा बारम्बार नमस्कार करता हूँ, वे स्वर्घा का आस्वादन करने वाले पितर मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२-१३॥

एवंस्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ।

निश्चक्रमुस्तेपितरोभासयन्तोदिशोदश ॥१४

निवेदितञ्चयस्तेनपुष्पगंधानुलेपनम् ।

तद्भूषितानथसतान्दृशेपुरतःस्थितान् ॥१५

प्रणिपत्यपुनर्भवत्यापुनरेवकृतांजलिः ।

नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यमित्याहृथगादृतः ॥१६

ततःप्रसन्नाःपितरस्तमूढुर्मुनिसत्तमम् ।

वरंवृणीष्वेतिसतानुवाचानतकंधरः ॥१७

सम्प्रतसर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणामम ।

सोऽहंपुत्रीमभीप्सामिघन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥१८

अर्चयसद्यःपत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ।

तस्यांचपुत्रो भविता भवतो मनुवृत्तमः ॥१९

मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्नाम्नं वोपलक्षितः ।

रुचेरोच्यइतिख्यातियोयास्यतिजगत्त्रये ॥२०

तस्यापिबहवःपुत्रामहाबलपराक्रमाः ।

भविष्यन्तिमहात्मानःपृथिवीपरिपालकाः ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे मुनिवर ! रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए पितरगण प्रकट हुए ॥१४॥ फिर उन्हें जो पुष्प, गंध कव्यादि अर्पण किया गया था, उससे विभूषित हुए पितरों को रुचि ने अपने सामने आते हुए देखा ॥१५॥ तब वह भक्ति सहित हाथ जोड़ कर प्रणाम पूर्वक सब को नमस्कार करने लगे ॥१६॥ फिर पितरों ने प्रसन्न होकर मुनिवर रुचि से कहा—वर मांगो, इस पर रुचि ने श्रीवा नीची

करके उनसे निवेदन किया ॥१७॥ रुचि बोले—मुझे ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने का आदेश दिया है, इसलिए मैं प्रथम सत्त्वानोत्पत्ति के निमित्त भार्या प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१८॥ पितरो ने कहा—हे वत्स ! तुम्हें अभी इसी स्थान में मनोहारिणी भार्या की प्राप्ति हागी उसके गर्भ से तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र की उत्पत्ति हागी ॥१९॥ हे रुचे ! तुम्हारा वह पुत्र बुद्धिमान् मन्वन्तराधिपति होगा और तुम्हारे नाम के धनुमार ही उसकी ख्याति हागी अर्थात् वह 'रोच्य' नाम से विश्व में विख्यात हागा ॥२०॥ फिर उस रोच्य के भी महाबली, पराक्रमी, पृथिवी का वासन करने वाले बहुत से महात्मा पुत्र उत्पन्न हावे ॥२१॥

त्वचप्रजापतिभूँ त्वाप्रजा सृष्ट्वाचतुर्विधा ।
 क्षीणाधिकारोघर्मजतत सिद्धिमवाप्यसि ॥२२॥
 स्तोत्रेणानेनचनरोमाऽस्मास्तोप्यतिभक्तित ।
 तस्यतुष्टावयभोगानात्मजानतयोत्तमम् ॥२३॥
 शरीरारोग्यमयंचपुत्रपौत्रादिकन्तया ।
 प्रदास्यामोनसदेहोयच्चान्यदभिवाँछितम् ॥२४॥
 तस्मात्पुण्यफललोकेवाँछिद्भिः सततनरै ।
 पितृणां चाक्षयाँतृप्तिस्तव्या स्तोत्रेणमानवै ॥२५॥
 वाँछिद्भिः सततस्तव्या स्तोत्रेणानेनवैयत ।
 श्राद्धे चयद्मभक्त्याऽस्मत्प्रीतिवरस्तवम् ॥२६॥
 पठिष्यतिद्विजाग्घाणांभु जतामुपुरत स्थित ।
 स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्यातान्निघानेपरेवृते ॥२७॥
 अस्माकमदायश्राद्ध तद्मविष्यत्यसदायम् ।
 यद्यप्यत्रोनियश्राद्ध यद्यप्युपहतभवेत् ॥२८॥

तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न करोगे और जब मैं जाता तथा अधिकार से क्षीण हागे तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति हागी ॥२२॥ रोच्य दस स्तोत्र के यहित भक्ति भाव पूर्वक हाारा स्तवन करे, हम

उन पर संतुष्ट होने और उन्हें भोग तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥२३॥
 जो शरीर की आरोग्यता, धन, पुत्र-पौत्रादि की कामना अथवा अन्यान्य
 अभिलाषा करेंगे वह इस स्तोत्र के द्वारा हमारी स्तुति करने पर, हम से
 अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥२४॥ इसलिए संसार में पुण्यफल प्राप्ति की कामना
 वाले मनुष्यों को इस स्तोत्र के द्वारा पितरों की अक्षय तृप्ति करनी उचित है
 ॥२५॥ जो हमें प्रसन्न करना चाहें, वह इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करें,
 श्राद्ध के समय भोजन करते हुए ब्राह्मणों के समक्ष स्थित होकर जो मनुष्य
 हमारी प्रीति उत्पन्न करने वाले ॥२६॥ इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पाठ
 करेगा और स्तोत्र सुनने से उत्पन्न हुई प्रीति के द्वारा निकट में स्थित को
 दृष्टि मानेगा, उसके द्वारा हमारा अक्षय श्राद्ध अवश्य ही सम्पन्न होगा यदि
 श्राद्ध श्रोत्रिय रहित अथवा दोष युक्त हो ॥२७॥

अन्यायोपात्तवित्तं नयदिवाकृतमन्यथा ।

अश्राद्धाहं रूपहर्तृरूपहारैस्तथाकृतम् ॥२६

अकालेष्वथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा ।

अश्राद्धयावापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् ॥३०

अस्माकंतृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणाद् ।

यत्र तत्पचठतेश्राद्धं स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३१

अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ।

हेमते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३२

शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिस्तीव्रमिदं शुभम् ।

वसंतेषो षड्वासमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ॥३३

ग्रीष्मे च षोडशैर्वैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ।

विकलेऽपि कृते श्राद्धं स्तोत्रेणानेन साधिते ॥३४

वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ।

शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ॥३५

अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिं च दशाब्दिकीम् ।

यस्मिन्गृहे चलितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ॥३६॥

मग्निघानकृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ।

तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्रार्णां भुञ्जत पुरः ॥३७॥

या भग्याय द्वारा उत्पादित धन के द्वारा किया जाय या असमय में, विपरीत स्थान में या अविधि से, अश्रद्धा पूर्वक अथवा दूषित उपहार से दंभी पशुप्यो के द्वारा मत्पन्न किया जाय ॥२८-२९-३०॥ तो भी इस स्तोत्र का पाठ होने से वह श्राद्ध में तृप्ति देने वाला होगा, जिस श्राद्ध में हमें सुखी करने वाले इस स्तोत्र का पाठ होता है ॥३१॥ उस श्राद्ध से हमें बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है, या द्दमभ्त काल में यह स्तोत्र हमें बारह वर्ष तक तृप्ति देने वाला होता है ॥३२॥ शिशिर ऋतु में यह स्तोत्र चौबीस वर्ष तक धीर वर्मत्त ऋतु में करने पर सोनह वर्ष तक तृप्ति दायक होता है ॥३३॥ ग्रीष्मकाल में इस स्तोत्र के पाठ पूर्वक श्राद्ध करने से सोलह वर्ष तक तृप्ति रहती है, किसी कारणवश श्राद्ध दूषित हो तो इस स्तोत्र के पाठ से श्रेष्ठ हो जाता है ॥३४॥ हे दृचे ! वर्षाऋतु में श्राद्ध के समय इस स्तोत्र के पढ़ने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है, यदि शरद ऋतु में इस स्तोत्र के पाठ सहित श्राद्ध का द्रव्य अर्पण करे तो पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति होती है, जिस घर में यह स्तोत्र लिखा हुआ श्रेष्ठ स्थान पर रखा रहता है, उस घर में श्राद्ध करने से हमारी सन्निधि प्राप्त होती है, अर्थात् हम उस घर में उस समय उपस्थित रहते हैं, इनलिये तुम श्राद्ध में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के सम्मुख हमारे इस स्तोत्र को पढ़ कर गुनाहो । इससे हमारी पुष्टि होगी । इस प्रकार रुचि को समझा कर पितृगण स्वर्ग को चले गये ॥३५-३८॥

६०—रीच्य मनु का जन्म

ततस्तन्माम्नदीमध्यात्ममुत्तस्यो मनोरमा ।

अम्लोचानामतन्वद्भीतत्समीपे वराप्सरा ॥१॥

साचोवाचमहात्मानंरुचिनुमधुराक्षरम् ।
 प्रश्रयावनतासुभ्रूःप्रम्लोचावैवराप्सराः ॥२
 अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपतांवर ।
 जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥३
 तांगृहाणमयादत्तांभार्याथैवरवसिनीम् ।
 मनुर्महामतिस्तस्यांसमुत्पत्स्यतितेसुतः ॥४
 तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
 उज्जहारततःकन्यांमालिनींनामनामतः ॥५
 नद्याश्रुपुलिनेतस्मिंस्वरुचिमुंनिसत्तमः ।
 जग्राहपारिणिविधिवत्समानाय्यमहामुनः ॥६
 तस्यांतस्यसुतोजज्ञमहावीर्योमहामतिः ।
 रोच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर उस नदी में से प्रम्लोचना नाम की एक अप्सरा बाहर आई और उन रुचि नामक मुनि से कहने लगी—हे महात्मन् ! मेरी मालिनी नामक एक कन्या है जो वरुण देव के पुत्र श्रीमान् पुष्कर द्वारा उत्पन्न की गई है । उस अत्यन्त रूपवती सुशील कन्या रत्न को मैं आपको अर्पित करती हूँ । आप उसे भार्या रूप में ग्रहण करके गृहस्थी बनिये (उसके गर्भ से आपका जो पुत्र उत्पन्न होगा वही आगामी मन्वन्तर में मनु बनेगा । (१ से ४) मार्कण्डेयजी कहने लगे कि उस अप्सरा के ऐसे वचन सुनकर रुचि ने उसे स्वीकार कर लिया और उसी नदी के तट पर महामुनियों को एकत्र फरके उस मालिनी कन्या से विधिवत् विवाह कर लिया । कुछ काल उससे जो महापराक्रमी और वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ वह अपने पिता के नाम के अनुसार रोच्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७॥

तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ।
 तनयाश्रुनृपाश्चैवतेसम्यक्कथितास्तव ॥८
 धर्मवृद्धिस्तथारोग्यंघनधान्यसुतोद्भवः ।
 नृणांभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरेश्रुते ॥९

पितृस्तवंतयाश्रुत्वापितृणांचतथागणान् ।
सर्वाकामानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥१६॥

इमं रोष्य नामक मन्वन्तर के देवता, सप्तविंशति और सप्तसत्त राजाओं तथा उनके पुत्रों के विषय में पहले बतलाया जा चुका है ॥६॥ इस मन्वन्तर की कथा सुनने से धर्म की वृद्धि होती है, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है । जो पितरों की स्तुति और उनके गुणों की श्रद्धा पूर्वक ध्यावण करता है उसकी सभी अभिलाषायें पूरी होती हैं ॥६-१०॥

६१—भौत्य मन्वन्तर आरम्भ

तत परं तु भौत्यस्य सप्तमुत्पत्तिनिशामय ।
देवानृषीस्तथापुत्रास्तथैव सुधाधिपान् ॥१॥
बभूवार्द्धिरस शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः ।
षण्डशापप्रदोऽप्येर्धेमुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥२॥
तस्याश्रमेमातरिश्चानववावर्तिनिष्ठुरम् ।
नातितापरविश्रक्तेष्वेन्योनातिकदंभम् ॥३॥
नातिदीतचदीतानुःपरिपूर्णाऽपिरदिमभिः ।
चकार भौत्याद्यैतस्य कोपनस्यातितेजसः ॥४॥
श्रुतवश्रकर्मत्यवत्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ।
तस्यपुष्पफलचक्रुराज्ञयामार्वाकानिकम् ॥५॥
ऊहुरापश्चछन्देनतम्याश्रमसमीपगाः ।
पमण्डलुगताश्च वतस्य भीतामहात्मनः ॥६॥
नातिकनेससहोविप्रसोऽभवत्कोपनीभृशम् ।
अपुत्रश्चमहाभागसतपस्यकरोन्मनः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—“तस्य भाव” भौत्य नामक मनु के उत्पत्ति होने और उनके मन्वन्तर के गुराण, श्रुति और उनके गुण पुत्रों की कथा सुनने ॥१॥

महर्षि अङ्गिरा के भूति मुनि शिष्य थे, जो कि क्रोधी और क्षणिक अपराध पर ही घोर शाप देते थे एवं अनजाने ही निरपराधी को उनके कटु वचनों का सामना करना पड़ता था ॥२॥ उन क्रोधी और तेजस्वी का ऐसा भय छाया हुआ था कि उनके आश्रम में वायु सरल स्वभाव बहती थी, सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे, इन्द्र अनपेक्षित वर्षा नहीं करते थे ॥३॥ पूर्ण चन्द्रमा अपनी चाँदनी से शीत प्रदान नहीं करता था एवं उनके भय से असहनीय शीत नहीं होता था ॥४॥ ऋतुएँ भी उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सभी ऋतुओं में सभी प्रकार के फल पुष्प उनके आश्रम की वृक्षावलियों में उत्पन्न करती थीं ॥५॥ ऋषि भूति के भय से आश्रम के समीप बहता हुआ जल भी उनकी इच्छानुसार क्षणमात्र में उनके कमण्डलु में आ जाता था ॥६॥ हे ब्राह्मण ! वह महा क्रोधी ऋषि किसी बाधा को सहन नहीं करते थे, चूंकि उनके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ इस कारण वह तपस्या में लीन हुए ॥७॥

पुत्रकामोयताहारः शीतवातानलाहतः ।

तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे ॥८

तस्येन्दुर्नातिशीताग्रजातितापायभास्करः ।

अभवन्मातरिश्वाचववीनातिमहामुने ॥९

आपीड्यमानोद्वन्द्वंश्चसभूतिमुनिसत्तमः ।

अनवाप्याभिलाषंतंतपसःसन्ववर्त्तत ॥१०

तस्यभ्रातासुवच्चऽभूच्चजेतेनाभिमन्त्रितः ।

यियासुःशान्तिनामानशिष्यमाहमहामतिम् ॥११

प्रशान्तमक्षप्रतिमंविनीतंगुहकर्मणि ।

सदोद्युक्तंशुभाचारमुदारमुनिसत्तमम् ॥१२

अह्यङ्गं गमिष्यामिभ्रातुःशान्तेसुवर्चसः ।

तेनाहूतस्त्वयाचेह्यत्कर्त्तव्यंशृणुष्वतत् ॥१३

अतिजागरणं वल्लेस्त्वयाकार्यं ममाश्रमे ।

तथातथाप्रयत्नेनयथाग्निर्नशमं व्रजेत् ॥१४

पुत्र की इच्छा से तपस्या करने वाले उन महात्मा ने सयत घाहार एव शीत, वायु व अग्नि की वेदना महकर भी तपस्या करने का व्रत लिया और अन्ततः तपस्या में ही चित्त लगाया ॥९॥ हे महर्षि ! उनके तपस्या-काल में भी भयभीत चन्द्रमा शीत एव सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे तथा वायु भी समक्ष में मन्द-मन्द से स्वाभाविक बढ़ती थी ॥१०॥ उनके एक भाई सुवर्चा ने उनको यज्ञ में आमन्त्रित किया उस समय भाई के यहाँ जाने की इच्छा कर उन्होंने अपने शिष्य शान्तिनाम को बुलाया अपने नाम के अनुकूल वह गुरु के कार्य में सदैव उत्पर और उदार-चित्त एव सदाचारो थे ॥१२॥ भूति बोले—हे शान्ते ! अपने भाई सुवर्चा के आमन्त्रण पर मैं यज्ञ में जाता हूँ, अब तुम्हें आश्रम में रहकर जो कार्य करने हैं, वह ध्यान से सुनो ॥१३॥ मेरे आश्रम में प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित रहना, वह बुझे नहीं ऐसे यत्नशील रहना ॥१४॥

इत्याजाप्यतथेत्युक्तोगुरुःशिष्येणशान्तिना ।

जगामयज्ञं तत्रातुराहूतःसयवीयम् ॥१५॥

सचशान्तिर्गताद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ।

उपानयतिभूत्यर्थागुरोस्तस्यमहात्मन ॥१६॥

अग्न्यञ्चकुरुतेकमंगुरुभक्तिवशानुग ।

प्रशान्तिस्तावदनलोयोऽमोभूतिपरिग्रहः ॥१७॥

तदृष्ट्वामोऽनलगान्तशान्तिरत्यन्तदुःखित ।

भोतश्चभूतेर्वहुधाचिन्तामापमहामति ॥१८॥

किंवरोमिकथं वात्रमवितागमनगुरो ।

मयाद्यप्रतिपत्तव्यकिञ्चित्तेमुकृतमवेत् ॥१९॥

प्रशान्ताग्निमिधिमधिष्ण्ययद्विपश्यतिमेगुरुः ।

ततोमाविपमेह्यद्यव्यसनेत्रियोद्यति ॥२०॥

यद्यन्दश्चग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितत् ।

सर्वाप्रत्यक्षदृग्भस्ममोऽवश्यमाकरिष्यति ॥२१॥

माकण्डेयजी ने कहा—शिष्य शान्ति ने गुरु की आज्ञा को 'इसी प्रकार होगा' कहकर शिरोधार्य किया। तब भूति अपने भाई के यहाँ यज्ञ में गये ॥१५॥ तदनन्तर अपने गुरु की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए जंगल से समिधा, पुष्प, फल आदि एकत्रित कर लाते ॥१६॥ साथ ही गुरु-भक्ति में वशीभूत शान्ति अन्य दूसरे कार्य भी करने लगे, उसी समय भूति द्वारा प्रज्वलित रखी गई, अग्नि किसी प्रकार बुझ गई ॥१७॥ बुद्धिमान् मुनि शान्ति उस अग्नि को बुझी हुई देखकर दुखी हुए और अपने गुरु भूति के भय से चिन्ता-ग्रस्त होगये ॥१८॥ वह विचारने लगे कि क्या किया जाय ? इस समय क्या उचित कर्म हो, जिससे भला हो सके, अब गुरु किस प्रकार आयेंगे ? ॥१९॥ मेरे गुरु यदि आश्रम में अग्नि को बुझी हुई देखेंगे तो तत्काल मुझे दण्ड देकर दुःख देंगे ॥२०॥ और यदि मैं पुनः अग्नि प्रज्वलित करता हूँ, तो वह सर्वज्ञानी गुरु मुझे निश्चय ही मरम कर देंगे ॥२१॥

सोऽहंपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ।

तथात्मानंनशोचामियथापापंकृतंगुरोः ॥२२

दृष्ट्वाप्रशान्तमनलंनूनंशप्स्यतिमांगुरुः ।

यथावापावकःऋद्धस्तथावीर्योऽहिसद्विजः ॥२३

यस्यप्रभावादिबभ्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ।

कृतागसंसमायुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥२४

बहुवैवंविचिन्त्यासौभीतस्तस्यसदागुरोः ।

ययौमतिमतांश्रेष्ठःशरणांजातवेदसम् ॥२५

सचकारतदास्तोत्रंसप्तर्च्यैतमानसः ।

सचैकचित्तोमेदिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः ॥२६

मैं पापात्मा उन गुरु के क्रोध और शाप का वैंसा शोक नहीं कर सकता जिस तरह गुरु के समीप हुए पाप का शोक होता है ॥२२॥ गुरु जब आयेंगे तो अग्नि को बुझी देखकर अवश्य घोर रूप में क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे अथवा उनसे भयभीत अग्नि भी मुझे शाप दे सकती है, क्योंकि मेरे गुरु का

कीयं ही ऐसा है ॥२३॥ जिनसे भयभीत होकर सुरगण भी उनके पराधीन हो गये हैं, वह मुझ मपराधी को देखकर किस प्रकार दण्डित करेंगे ? ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मपने गुरु से भयभीत विवेकी शिष्य शान्ति इस प्रकार चिन्तित हुए जातवेशः अग्नि की शरण में पहुंचे ॥२५॥ इसके पश्चात् वह शान्त संपत् चित्त होकर धरती में घुटने नवा एक हाथ जोड़ सप्तशिला युक्त अग्नि-स्तोत्र का पाठ करने लगे ॥२६॥

श्रीनम सर्वाभूतानासाधनायमहात्मने ।

एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूयेपडात्मने ॥२७

नम समस्तदेवानावृत्तिदायसुवच्चंसे ।

शुक्ररूपायजगतामशेषाणास्थितिप्रद ॥२८

त्व मुत्सर्वादेवानात्वयात्त भगवन्हवि ।

प्रीण्यस्यखिलान्देवास्त्वत्प्राणासर्वादेवताः ॥२९

हुतहविस्त्वय्यनलमेघत्वमुपगच्छति ।

ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपतियत् ॥३०

तेनाखिलीपधीजन्मभवत्यनिलसारथे ।

श्रीपधीभिरशेषाभि सुखजीवन्तिजन्तव ॥३१

वितन्वतेनरायज्ञास्त्वत्सृष्टास्वोपधीपुत्र ।

यज्ञं देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षासिपावक ॥३२

आप्याम्यन्तेचतेमज्ञास्त्वदाधाराहुताशन ।

अत सर्वस्यस्ययोनिस्त्व बह्ले सर्वमयस्तथा ॥३३

देवतादानवापक्षादैत्यागन्धर्वाः ।

मानुषा पशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपा ॥३४

आप्याम्यन्तेत्वयासर्वोत्सवर्ध्मन्तेचपावक ।

स्वत्तएवोद्भवयान्तित्वम्यन्तेचतथालयम् ॥३५

शान्ति बोले—ममस्त प्राणियों के माधन, महात्मा, दो पक्ष रूप एक

राजसूय यज्ञ में पशुमूर्ति धारण करने वाले, उनकी ममस्वार ॥२७॥ सम्पूर्ण

सुरगण की कृति प्रदान-कर्ता सुवर्चा और सम्पूर्ण विश्व को स्थिति प्रदान करने

वाले शुक्र रूप, तुमको नमस्कार ॥२८॥ हे सम्पूर्ण देवगण के मुख-स्वरूप ! ईश्वर तुम्हारे द्वारा ही घृत, पान कर देवगण को सन्तुष्ट करते हैं एवं तुम ही समस्त देव गण के प्राण रूप हो ॥२९॥ तुम ही में हविः हुत होकर अमल मेघ्यत्व प्राप्त करती है और फिर उसका जल स्वरूप हो जाता है ॥३०॥ हे अनिलसार ! तुम से ही सभी औषधियों की उत्पत्ति होती है और उन औषधियों से ही प्राणियों सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं ॥३१॥ हे पावक ! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न औषधियों से प्राणी जो यज्ञ करते हैं, ऐसे यज्ञों से ही सुर, दैत्य और असुर ॥३२॥ तृप्त होते हैं । हे हुताशन ! उन सभी यज्ञों के तुम आधार रूप हो । इसलिए हे बहो ! तुम सभी के उत्पन्न करने वाले और सर्व व्यापी हो ॥३३॥ हे पावक ! सुर, असुर, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मानव, पशु, वृक्ष, गृह, आपही से तृप्त व पोषित होते हैं एवं तुम से ही उत्पन्न अन्त में तुम ही में मिल जाते हैं ॥३४॥

अपःसृजसिदेवत्वंत्वमृत्सिपुनरेवताः ।

पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥३६

देवेषुतेजोरूपेणकान्त्यासिद्वेष्ववस्थितः ।

विषरूपेण नागेषुवायुरूपः पतत्रिषु ॥३७

मनुजेषुभवान्क्रोधोमोहःपक्षिमृगादिषु ।

अवष्टम्भोऽसितरुपुकाठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥३८

जलेद्रवस्त्वं भगवाञ्छ्ववरूपी तथाऽनिले ।

व्यापित्वेन तथैवाग्नेन भसित्वं व्यवस्थितः ॥३९

त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपालयन् ।

त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुः स्त्रिविधं पुनः ॥४०

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ॥४१

त्वामृते हि जगत्सर्वसद्यो नश्येद्धृताशन ।

तुम्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्मविहितां गतिम् ॥४२

हे देव ! तुम ही जल के उत्पादक हो और फिर उसको पान करते हो, तथा तुम्हारे द्वारा ही उसका पाचन होता है, जो प्राणियों को पुष्टिकारक

बनाता है ॥३६॥ देवगण मे तुम्ही तेज स्वरूप' सिद्धो मे क्रान्ति स्वरूप, नागो मे विप स्वरूप एवम् पक्षियो मे वायु स्वरूप हो ॥३७॥ मनुष्यो मे कोप रूप मे पक्षी व मृगादि मे मोह रूप मे, वृक्षो मे जड रूप मे, पृथिवी में कठोर रूप मे ॥३८॥ जल मे द्रव्य रूप मे तुम ही स्थित हो और वायु को गति रूप मे और आकाश को व्याप्त रूप मे आत्मा द्वारा अवस्थित किया है ॥३९॥ हे अग्ने ! पापगु करते हुए तुम ही उन प्राणियो के अन्तर मे विचरते हो । यद्यपि कवि तुम्हारा निर्देश एक से ही करते हैं, फिर भी तुम त्रिविध कहलाती हो ॥४०॥ कविगण तुम्हारी अष्टधा के रूप मे कल्पना करके आप यज्ञ की कल्पना करते है, तुम से ही विश्व की उत्पत्ति हुई है, ऐसा महान् ऋषियो ने कहा है ॥४१॥ हे हुताशन ! समस्त विश्व तुम्हारे नष्ट होने पर विनाश होता है ॥४२॥

प्रयातिहृव्यकव्याद्यं स्वधास्वाहाभ्युदी रणात् ।

परिणामात्मवीर्याणिप्राणिनाममराचित ॥४३

दहन्तिसर्वं भूतानिततो निष्क्रम्यहेतयः ।

जातवेदस्त्वयैवेदविश्व सृष्ट महाद्युते ॥४४

तवैवैदिककर्ममवभूतात्मकजगत् ।

नमस्तेऽनलपिगाक्षनमस्तेऽम्तुहुताशन ॥४४

पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहृव्यवाहन ।

त्वमेवमवभूतानापाचनाद्विश्वपावन ।

त्वमेवभुक्तपीतानापाचनाद्विश्वपाचकः ॥४६

सस्यानापाककर्तात्वपोष्ठात्वजगतस्तथा ।

त्वमेवमेघस्त्ववायुस्त्वबीजसस्यहेतुकम् ॥४७

दोषस्यसर्वं भूतानाभूतमव्यभवो ह्यसि ।

त्वज्योतिः सर्वं भूतेषु त्वमादित्यो विभावसुः ॥४८

त्वमहस्त्वंतथारात्रिरभेसन्ध्येतथाभवान् ।

हिरण्येतास्त्वंबह्वे हिरण्योद्भवकारणम् ॥४९

विप्रगण हृद्य कव्यादि द्वारा तुम्हारी आराधना करके 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके स्वकर्म विहित गति प्राप्त करते हैं । हे अमराचित अर्थात् सुरगण द्वारा पूजित ! प्राणियों के परिणामात्मा वीर्य स्वरूप ॥४३॥ तुम से उत्पन्न सम्पूर्ण अग्निशिखाएँ भूतगणों को भस्म करती हैं, हे महाद्युते जातवेदः ! सम्पूर्ण विश्व के तुम सृष्टि-कर्त्ता हो ॥४४॥ हे अनल ! सर्वभूतात्मक यह विश्व एवम् वैदिक कर्म तुम्हारे अधीन हैं । हे पिङ्गाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार, हे हुताशन ! तुमको प्रणाम ! ॥४५॥ हे आद्य ! हे पावक तुमको प्रणाम, तुम ही भोज्य एवम् पेय को पचाने वाले विश्व-पावन हो, हे विश्व पावन ! तुम सर्व भूत पवित्रकर्त्ता हो ॥४६॥ अन्न को पकाने वाले तुम विश्व को पुष्टिकरण एवं तुम ही मेघ, वायु व सस्य उत्पादन के लिए बीज रूप भी हो ॥४७॥ सभी का पोषण करने वाले तुम ही भूत, भविष्य और वर्तमान रूप हो । तुम ही सम्पूर्ण प्राणियों में ज्योति का स्वरूप और आविद्य सूर्य हो ॥४८॥ दिन, रात्रि और सन्ध्या तुम ही हो । हे बह्वे ! रेता एवम् हिरण्य की उत्पत्ति कारक तुम ही हो ॥४९॥

हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्य सदृशप्रभः ।

त्वंमुहूर्त्तक्षणाश्चत्वंत्वंत्रुटिस्त्वंतथालवः ॥५०

कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासिजगत्प्रभो ।

त्वमेतदखिलंकालःपरिणामात्मकोभवान् ॥५१

याजिह्वाभवतःकालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ।

तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५२

करालीनामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ।

तयानःपापिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५३

मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ।

तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५४

करोतिकामंभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ।

तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५५

सधूम्रवर्णयाजिह्वाप्राणिनांरोगदायिका ।

तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५६

तुम ही हिरण्य गर्भ एव हिरण्य के समकक्ष कान्तिमान् हो । मुहुत्तं, क्षण, नृष्टि एव त्व तुम ही हो ॥५०॥ हे जगत्प्रभो ! कलाकाष्ठ और निम्-पादि के रूप में तुम ही परिणामात्मक अन्तकाल हो ॥५१॥ हे प्रभो ! अपनी कालनिष्ठा पूर्ण कानो जीभ द्वारा पाप, भय एव ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ॥५२॥ करानो नामक जो जीभ तुम्हारी महाप्रलय के समय में है, उसके द्वारा हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५३॥ अपनी लघिमागुण युक्त मनोऽर्था जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५४॥ प्राणियों की कामना पूर्ति करने वाली अपनी सुलोहिता नामक जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५५॥ प्राणियों के रोगों का शमन करने वाली, सधूम्रवर्ण जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५६॥

स्फुर्लिगिनीचयाजिह्वायत संकल्पदुग्दला ।

तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५७

यातेविश्वमृजाजिह्वाप्राणिनाशमंदायिनी ।

तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५८

पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवत्संहुताशन ।

प्राहिमामवंदोपेभ्य ससागदुद्धरेहमाप् ॥५९

प्रमीदवह्ने समाचि कृशानोहव्यवाहन ।

अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरदीरित ॥६०

अग्नेऽग्रे सर्वाभूतानासमुत्पत्तिविभावसो ।

प्रमीदहव्यवाहारयग्रभिष्टुतमयाव्यय ॥६१

त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूप समृद्धिमन्दुप्रसहोऽतितीव्रः ।

तवाव्ययभीममनोपलोकसंबर्धकहन्त्यथवातिवीर्यम् ॥६२

स्वामिनामने

आत्मा एवं देह को उत्पन्न करने वाले स्फुलिङ्गिनी भीम से ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५७॥ प्राणियों को मङ्गल दाता विश्वा नामक अपनी जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५८॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिंगल वर्ण, ग्रीवा लोहित वर्ण और तुम्हारी देह कृष्ण वर्ण है । तुम सर्व प्रकार के दोषों से मेरी रक्षा करो और इस विश्व से उद्धार कीजिये ॥५९॥ हे बह्ने ! आठ नामों वाले हो सप्तारिचः, हव्यवाहन, कुशानु, अग्नि, पावक, धुक नाम से विख्यात तुम प्रसन्न होओ ॥६०॥ हे अग्ने ! समस्त भूतों से तुम उत्पन्न हो । हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ उससे तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६१॥ हे बह्ने ! तुम अक्षय हो, तुम्हारा अत्रित्य रूप है, तुम समृद्धिमान्, आश्रयदाता एवं अत्यन्त तीव्रतापूर्ण हो और अव्यय व भीम तुम्हारे मूर्तिमान् रूप अत्यन्त बलशाली एवं समस्त विश्व का भी विनाश करने वाले हैं ॥६२॥ हे हुताशन ! तुम श्रेष्ठ सत्त्व और समस्त जीवों के हृदय-कमल सदृश हो और तुम उन सबके पूज्य अत्यन्त ब्रह्म रूप हो । उस ब्रह्म स्वरूप से तुमने इस प्राणी जगत् को परिपूर्ण कर रखा है । इसलिए तुम एक होकर भी अनेक रूप में इस विश्व में स्थिति करते हो ॥६३॥

त्वमक्षयःसगिरिवत्तावसुन्धरानभःससोमार्कमर्हदिवाखिलम् ।

महोदधेर्जठरगतश्चत्राडवोभवान्विभुःपिबतिपय्रांसिपावक ॥६४

हुताशनस्त्वमितिसदाभिपूज्यसेमहाक्रतोनियमपरर्मर्हषिभिः ।

अभिष्टुतःपिबसिचसोमध्वरेवषट्त्तान्यपिचहवीषिभूतये ॥६५

त्वंविप्रैःसततमिहेज्यसेफलाश्रवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ।

त्वद्धेतोर्ग्रजनपरायणाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्यधिगमयन्तिसर्वाकाले ६६

त्वंब्रह्मायजतपरस्तथैवनिष्णुभूतेशःसुरपतिरयग्रमाजलेशः ।

सूर्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यैःसन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ६७

अर्चिर्भिःपरममहीपघातदुष्टस्पष्टत्वशुचिजायतोसमस्तम् ।

स्नानानांपरममतीवभस्मनासत्सन्ध्यायांमुनिभिरतीवसेव्यसेतत् ६८

तत्कृत्वात्रिदिवमवाप्नुवन्ति लोकाः ।

मद्भक्त्यासुखनियता समूहगीतम् ॥६६

प्रसीदवह्ने शुचिनामधेयप्रसीदवायोविमलातिदीप्ते ।

प्रसीदमेपावकगेद्युताभप्रसीदहव्याशनपाहिमात्मम् ॥७०

यत्तवह्ने शिवरूपयेचतोसप्तहेतय ।

तं पाहिनस्तुतोदेवापितापुत्रमिवात्मजम् ॥७१

हे प्रनल ! तुम प्रकथ्य ही, एव सूर्य सहित पृथ्वी तुम्हारे ही स्वरूप और चन्द्रमा एव सूर्य सहित आकाश स्वरूप तुम ही हो, दिन और रात का रूप मे निखिल कामस्वरूप हो, तुम ही महा समुद्र के अन्तर्गत बहवाम्नि भी परम विभूति से समस्त किरणों में विद्यमान हो ॥६४॥ हे हुताशन ! तुम्हारा भोजन द्रुतहृत्वि है इसीलिए नियम परायण परम भुनिगण यज्ञों में तुम्हारा सदैव पूजा करते हैं और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर विश्व के कल्याणों सोमरस और वषटकारसहित हवि. सेवन करते हो ॥६५॥ सम्पूर्ण वेदांग ! तुम्हारा गायन है और यज्ञ परायण हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण सदैव वेदांग अध्ययन करते हैं ॥६६॥ यजन परायण ब्रह्मा, विष्णु, भूतनाथ महादेव तुम ही हो देवराज इन्द्र, प्रथमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य एवं चन्द्रमा तुम ही हो, सुर एव असुर हृद्य द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट कर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥६७॥ नद उपपात से दूषित समस्त वस्तुओं तुम्हारी ली के स्पर्श मात्र में पवित्र होती है अनेक स्नानों में भस्म द्वारा ही स्नान उत्तम माना जाता है, अतएव ऋषिगण गन्ध्या समय यही स्नान करते हैं ॥६८॥ इस प्रकार करने वाले मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं और सच्ची भक्ति से सर्व सुख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ हे बर्हते ! इसीलिए ही तुम्हारा नाम शुचि है, चाप उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होयें तुम स्वच्छ एव प्रबल वायु स्वरूप, उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होयें । पावक ! तुम वैशुजाग्नि आदि नामों से कीर्तिमान् हो, उसी रूप में मुझ प्रसन्न होओ । हे हव्याशन ! तुम प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करो ॥७०॥ यह्ने ! तुम मद्भक्तमय रूप हो । जो सप्तहेति ज्ञानाएँ हैं, उनसे हे देव

स्तुति से प्रसन्न होकर जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार मेरी रक्षा करो ॥७१॥

६२-सर्व मन्वन्तर श्रवण फल कथन.

एवंस्तुतस्तत्स्तेनभगवान्हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदप्रतोमुने ॥१॥
देवोविभावसुःप्रीतस्तोत्रेणानेनवं द्विज ।
तंशान्तिमाहप्रणतंमेघगम्भीरवागथ ॥२॥
परितुष्टोऽस्मितेविप्रभक्त्याघातेस्तुतिःकृत्वः ।
वरददामिभवत्तेप्रार्थ्यतांयत्तवेप्सितम् ॥३॥
भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वांपश्यामिरूपिणाम् ।
तथापिभक्तिनम्रस्यभवताश्रयतांमम ॥४॥
भ्रातृयज्ञगतोदेवममाचार्योनिजाश्रमात् ।
आगतश्चाश्रमंधिष्यंत्वत्सनाथंसपश्यतु ॥५॥
ममापराधात्सन्त्यक्तधिष्यंयत्तोविभावसो ।
तत्त्वयाधिष्ठितंसोऽद्यपूर्वदत्पश्यतुद्विजः ॥६॥
तथान्यदपिमेदेवप्रसादं कुरुष्वेयदि ।
पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरोः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषि ! शांति की ऐसी स्तुति पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामाला सहित उनके समक्ष प्रकट हुए ॥१॥ हे ब्राह्मण ! विभावसु देव ने स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर उन प्रणत तपस्वी शांति से मेघ सम गम्भीर शब्दों में कहा ॥२॥ अग्नि ने कहा—‘ हे ब्राह्मण मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण स्तुति से प्रसन्न हुआ हूँ । तुम अपने इच्छित वर की प्रार्थना करो, मैं वर देता हूँ ॥३॥ शांति बोले—हे भगवन् ! आपके स्वरूप को देख कर मैं

वृत्तकृत्य हुआ हूँ । फिर भी नम्रता एव भक्तिपूर्वक मेरा वचन 'सुनिये ॥४॥
हे देव ! मेरे गुरु अपने इस आश्रम से भाई के यहाँ 'यज्ञ' में गये हैं । आश्रम
में भाकर वह अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित देखें ॥५॥ हे विभावसो जिन
अग्निकुण्ड को तुमने मेरे अपराध के कारण वञ्चित किया है वह द्विज श्रेष्ठ
गुरु आने पर पहिले की भाँति ही प्रज्वलित देखें ॥६॥ हे देव ! यदि तुम
मुझमें प्रसन्न हो, तो दूसरा निवेदन है कि मेरे पुत्रहीन गुरु के गुणवान् पुत्र
उत्पन्न हो ॥७॥

तथाचमंत्रीतनयेसकरिप्यतिमेगुरुः ।

तथासमस्तसत्त्वेपुभवत्वस्यमनोमृदु ॥८

यश्चत्वास्तोप्यतेऽग्नेनप्रीतियातोऽसिमेऽभ्यय ।

स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेयामत्प्रसादितः ॥९

एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यतमाहद्विजसत्तमम् ।

स्तोत्रेणगराधितस्तेनगुरुभवत्याचपावकः ॥१०

गुरोरर्थ्यतोन्नहान्याचितमेवरेद्वयम् ।

नात्मार्यतेनमेप्रीतिस्त्वय्यसौवमहामुने ॥११

भविष्यत्येतदितिलगुरोर्यत्प्राधितत्वया ।

मंत्रीसमस्तभूतेषुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥१२

मन्वन्तराधिपपुत्रश्चभौयोनामभविष्यति ।

महाबलोमहावीर्योमहाप्राज्ञोगुरुस्तव ॥१३

अनेनयश्चेत्स्तोत्रेणस्तोप्यतेमाससमाहित ।

तस्याभिलषतसर्वेषुप्यचास्यभविष्यति ॥१४

अपन उस श्रुत से मेरे आचार्य जिन प्रकार प्रीति करें, उसी प्रकार
समस्त प्राणियों से प्रीति और कोमल व्यवहार करने वाले हो ॥८॥ हे अभ्यय !
मुझ पर इन प्रकार तुम्हें प्रसन्न हुआ देव जो 'प्राणी भविष्य मे 'तुम्हारी
आराधना करें, उनके लिए भी, तुम मेरे लिए प्रसन्न होकर, वर प्रदान' करने
वाली हो ॥९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—गुरु भक्ति एव इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न

अग्नि देव द्विज शांति की प्रार्थना सुन कर वीले ॥१०॥ अग्नि ने कहा—हे
 ब्राह्मण ! तुमने अपने निज के लिए वर न मांगकर केवल अपने गुरु के लिए वर
 की प्रार्थना की, हे महर्षि ! इस कारण मैं तुम से अत्यधिक प्रसन्न हूँ ॥११॥
 गुरु के हेतु तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति उनकी प्रीति
 होगी और उनको पुत्र-प्राप्ति होगी ॥१२॥ तुम्हारे गुरु अत्यन्त मेधावी हैं, उनके
 महापराक्रमी, वीर्यवान् भीरु नाम का पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति होगा
 ॥१३॥ साथ ही जो मनुष्य एकचित्त होकर मेरे इस स्तोत्र से मेरी आराधना
 करेगा, उसकी सम्पूर्ण मन की इच्छाएँ पूरी होंगी और पुण्य का भागी भी
 होगा ॥१४॥

यज्ञेषु पूर्वकालेषु तीर्थे ज्याही मकर्मसु ।
 धर्मयि पठता मेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५॥
 अहोरात्र कृतं पापं श्रुतमेतत्सकृद्द्विज ।
 नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् ॥१६॥
 अहोमकालदोषादीनयोर्यैरपितत्कृतैः ।
 ये दोषास्तानि दसद्यः शमयिष्ये तिसंश्रुतम् ॥१७॥
 पूर्णमास्यां ममावास्यां पूर्वस्वन्येषु च तवः ।
 ममैष संश्रुतो मर्त्ये भविता प्रापनाशनः ॥१८॥
 इत्युक्त्वा भगवान् अग्निः पश्यतस्तस्य वैमुने ।
 बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्थो निवृत्तो यथा ॥१९॥
 स च शान्तिर्गते ब्रह्मैरितुष्टेन चेतसा ।
 हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमंगुरोः ॥२०॥
 जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ये हुताशनम् ।
 ददर्श पूर्ववत्प्रापततः स परमां मुदम् ॥२१॥

यज्ञ, पूर्वकाल, तीर्थ यज्ञ, धर्मार्थ, व यज्ञ-कर्म में यह बलदाता स्तोत्र
 जप करने अथवा केवल एक बार सुनने से ही दिन रात के सम्पूर्ण पापों का
 विना सन्देह विनाश होगा । हे ब्राह्मण मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त संतुष्टि वाचक

है ॥१६॥ यज्ञकाल के ध्यनीत होने पर यज्ञ करने एवं अनधिकारी पुरुष द्वारा यज्ञादि करने पर जो दोष होता है, वह सभी इस स्तोत्र के श्रवण से ही तुरन्त नष्ट होगा ॥१७॥ यह उत्तम स्तोत्र पूर्णिमा, अमावस्या या अन्य किसी पर्व के श्रवण पर श्रवण करने से प्राणियों के शपो का घमन होगा ॥१८॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषिवर ! किसी दीपक की लौ जिस प्रकार अचानक बुझ जाती है, उसी प्रकार वे अग्नि भगवान् यह वर देकर उन शान्ति मुनि के मामले अन्तर्धान हो गये ॥१९॥ पावक के अन्तर्धान होने पर शान्ति मुनि सन्तुष्ट हृदय एवं ध्यानन्द से पूर्ण होकर अपने गुरु के आश्रम में पहुँचे ॥२०॥ तदनन्तर शान्ति मुनि अग्निकुण्ड में उसी प्रकार अग्नि को प्रज्वलित देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरेसोऽपिगुरुस्तस्यमहात्मन ।
 भ्रातुर्यवीयसोयज्ञादाजगामस्वमाश्रमम् ॥२२॥
 तस्याग्रतश्चशिष्योऽसौचक्रेपादाभिवन्दनम् ।
 गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः ॥२३॥
 चत्मातिहाद त्वयिमेतथाग्येषुचजन्तुषु ।
 नवेद्भिषिमिदं त्वञ्चेद्वे तस्येतत्कथाशुभे ॥२४॥
 तत सशान्तिस्तत्सर्वमाचार्य्यायिमहामुने ।
 अग्निनाशादिकविप्र समाचष्टेययातथम् ॥२५॥
 तच्छ्रुत्वासपरिष्वज्यस्नेहाद्रनयनोगुरुः ।
 शिष्यायप्रददौवेदान्सागोपाङ्गान्महामुने ॥२६॥
 भोत्योनाममनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत ।
 तस्यमन्वन्तरेदेवानृषीन्भूपाश्रमेऽष्टरुणु ॥२७॥
 भविष्यस्यभविष्यास्तुगदतोममविस्तरात् ।
 देवेन्द्रोयश्चभयितातस्यविहयातवर्मणः ॥२८॥

उसी समय शान्ति के गुरु वह ऋषि श्रेष्ठ छोटे भाई के यहाँ से यज्ञ में थे अपने आश्रम में वापिस आये ॥२२॥ तब सम्मुख आकर शिष्य शान्ति ने

उनको चरण-वंदना की । उसके पश्चात् गुरु पूजा वन्दन पूर्ण कर आसन ग्रहण कर बांति से बोले ॥२३॥ हे वत्स ! तुम्हारे व अन्य दूसरे जीव प्राणियों के प्रति मेरे हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई है, ऐसा कैसे हुआ, मैं अनभिज्ञ हूँ । हे वत्स ! कदाचित्, यदि तुम्हारे ज्ञान में ही, तो मुझ से वर्णन करो ॥२४॥ हे महर्षि ! तब विप्र बांति ने अग्नि बुझने आदि की सम्पूर्णा विगत कथा गुरु से कही ॥२५॥ हे महर्षि ! गुरु ने समस्त घटना सुनकर प्रेम से आर्द्र नेत्रों से शिष्य बांति को आर्लिंगन बद्ध कर लिया और उसे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्णा वेद भी प्रदान किये ॥२६॥ इस प्रकार उन भूति ऋषि के पुत्र भौत्य मनु ने जन्म लिया । उन मनु के मन्वन्तर के बीच जो देवगण, ऋषि, राजा और इन्द्रादि होंगे उनका विस्तार पूर्वक वर्णन सुनो ॥२७-२८॥

चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा ।

धारावृकाश्चेत्येतेव पञ्चदेवगणाःस्मृताः ॥२८

शुचिरिन्द्रस्तदातेषां त्रिदशानां भविष्यति ।

महाबलमहावीर्यः सर्वं रिन्द्रगुरोयुतः ॥३०

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिमुक्तोऽस्यमाववः ।

शुक्रोऽजितश्चसप्तैतेतदासप्तर्षयःस्मृताः ॥३१

गुरुर्गभीरोब्रह्मश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा ।

श्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णुःसंक्रन्दनस्तथा ॥३२

तेजस्वीसुवलश्चैवभौत्यस्यैतेमनोःसुताः ।

चतुर्दशमयेतत्तेमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३

श्रुत्वामन्वन्तराणीत्थंक्रमेणमुनिसत्तम ।

पुण्यमाप्नोतिमनुजस्तथाऽक्षीणांचसन्ततिम् ॥३४

श्रुत्वामन्वन्तरपूर्वधर्ममाप्नोतिमानवः ।

स्वारोचिषस्यश्चवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥३५

चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक प्रभार ये देवगण होंगे ॥२८॥ उस काल में इन्द्र के समस्त गुरुओं से पूर्ण महापराक्रमी वीर्यवान्

“गुवि” उनके इन्द्र होंगे ॥३०॥ उम मन्वन्तर में अग्निघ्न, अग्निबाहु, गुवि, मुक्त, माधव, युक्र और मजित नामक ऋषि महर्षि होंगे ॥३१॥ युह, गभीर, धन्, भक्त, अनुग्रह, श्रीमणि, प्रतीर, विष्णु, सक्रमण तथा ॥३२॥ तेजस्वी सुबल नामक पुत्र भीत्य मनु के होंगे । इस प्रकार मैंने आप से चौदह मन्वन्तरो के विषय में कहा ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह समस्त मन्वन्तरो का क्रम-वृद्ध धर्मान् मनुने से मनुष्य पुण्य-लाभ प्राप्त करते हैं एवं उनका परिवार-सर्वव्यथारण रहता है ॥३४॥ प्रथम मन्वन्तर का वर्णन सुन कर धर्म में आस्था बढ़ती है और दूसरे मन्वन्तर के ध्वण से उनकी समस्त मन की इच्छाएँ पूरी होती हैं ॥३५॥

श्रीसमेधनमाप्नोतिज्ञानमाप्नोतितामसे ।
 रंवेतेषथूतेबुद्धिमुखाविन्दतेस्त्रियम् ॥३६॥
 आरोग्यचाक्षुषेषु साथूतेर्ववस्वतेवलम् ।
 गुणवत्पुत्रपौत्रास्तुमूढ्यमावर्णिकेशूते ॥३७॥
 माहात्म्यब्रह्मसावर्ण्यंमंसावर्णिकेशुभाम् ।
 मतिमाप्नोतिमनुजोद्वद्रमावर्णिकेजयम् ॥३८॥
 ज्ञातिश्रेष्ठोगुणैर्युक्तोदक्षसावर्णिकेशूते ।
 निशातयश्वरिवनरोच्यश्चत्वानरोत्तम ॥३९॥
 देवप्रमादमाप्नोतिभीत्येमन्वन्तरेषूते ।
 तयाग्निहोत्रपुत्रांश्चगुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०॥
 सर्वोभ्यनुक्रमाद्यश्चभूणोतिमुनिसप्तम ।
 मन्वन्तराणितस्यापिश्रूयतांस्त्रियमुत्तमम् ॥४१॥

मृतीय मन्वन्तर शीतम के ध्वण से धन व धनुर्य सामग मन्वन्तर के ध्वण से ज्ञान प्राप्ति होती है । पचम रंवेत मन्वन्तर के ध्वण से बुद्धिमान् एवं रूपवती भार्या मिलती है ॥३६॥ षष्ठ मन्वन्तर चाक्षुष के ध्वण से मनुष्य नीरोग रहने हैं, सप्तम मन्वन्तर वैश्वन्त के ध्वण से पराक्रम एवं अष्टम मूर्ध सावर्णिक मन्वन्तर के ध्वण से गुणी पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होने हैं ॥३७॥

नवम ब्रह्म सावर्णि मन्वन्तर के श्रवण से माहात्म्य, दशम धर्म सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से कल्याण और प्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से सुबुद्धि और विजय प्राप्त होती है ॥३८॥ हे नर श्रेष्ठ ! बारहवें मन्वन्तर दक्ष सावर्णिक के श्रवण से पुरुष जाति में सर्वोत्तम और गुणवान् होता है, तेरहवें मन्वन्तर रौच्य के श्रवण से शत्रुओं का बल शमन करने को समर्थता प्राप्त होती है ॥३९॥ चौदहवें मन्वन्तर भीत्य के श्रवण से भगवान् का प्रसाद, अग्निहोत्र फल एवं गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है ॥४०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! प्रथम मन्वन्तर से क्रमबद्ध सभी मन्वन्तरों का श्रवण करने वाले मनुष्यों को किस प्रकार श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है, इसका वर्णन सुनो ॥४१॥

तत्रदेवानृषीनिन्द्रान्मनूस्तत्तनयान्नुपान् ।
 श्रुत्वावंशांश्चसर्वेभ्यःपापेभ्योप्रमुच्यते ॥४२
 देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्येयेतन्मन्वन्तराधिपाः ।
 तेप्रीयन्तेतथाप्रीताःप्रयच्छन्तिशुभांमतिम् ॥४३
 ततःशुभांमतिप्राप्यकृत्वांकर्मतथाशुभम् ।
 शुभांमतिमवाप्नोतियांविन्द्रांश्चतुर्दश ॥४४
 सर्वेस्युद्धृतवःक्षेम्याःसर्वेसौम्यास्तथाग्रहाः ।
 भवन्त्यसंशयंश्रुत्वाक्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५

हे ब्राह्मण ! उन मन्वन्तरों के देवगण, सम्पूर्णा ऋषिगण, मनु के नृप पुत्रगण एवं उनकी वंशावलि वर्णन का श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाते हैं ॥४२॥ देवगण, मुनिगण, इन्द्र, नृपतिगण एवं उस मन्वन्तर के अधिपति अपर, वे सब सन्तुष्ट होते हैं एवं सन्तुष्ट होने पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं ॥४३॥ इस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त कर शुभ कार्य करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब-तब सद्बुद्धि मनुष्य प्राप्त करते रहेंगे ॥४४॥ क्रम-बद्ध मन्वन्तरों का वर्णन श्रवण करने सम्पूर्ण ऋतुएं सहनीय होती हैं और तिस्रन्देह सम्पूर्णा ग्रह भी शांत हो जाते हैं ॥४५॥

६३— राज वंशानुकीर्तन

भगवन्व्यथितामम्यवत्वयामन्वन्तरस्थितिः ।
 क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचंवावधारिता ॥१॥
 ब्रह्माद्यमखिलवशभूभुजाद्विजसत्तम ।
 श्रोतु ममेच्छत मम्यग्भगवन्प्रव्रवीहिमे ॥२॥
 शृणुवत्मनृपाणांत्वमशेषाणांसमुद्भवम् ।
 चरितचजगन्मूलमादौकृत्वाप्रजापतिम् ॥३॥
 अयहिवशोभूपालं रनेकक्रतुकर्तृभि ।
 सग्रामजिद्धिर्घर्मज्ञं शतसहस्रंरलकृत ॥४॥
 श्रुत्वाचंपानन्द्रेद्राणांचरितानिमहात्मनाम् ।
 उत्पत्तयश्चपुरुष सर्वपापं प्रमुच्यते ॥५॥
 मनुष्यंत्रतयेदवाकुरनरण्योभगीरथः ।
 अन्येचशतशोभूपा सम्यक्पालितभूमय ॥६॥
 धर्मंजायज्विन दूरा परमार्यायंवेदिनः ।
 श्रुतेतस्मिन्पुमाग्वशेषापोधाद्विप्रमुच्यते ॥७॥

कोष्टकि बोले—हे महाराज । मन्वन्तरो के विषय में आपने भली प्रकार वर्णन किया है और मैंने भी उसे विस्तारपूर्वक श्रवण किया है ॥१॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं क्षत्रियों की सम्पूर्ण वंशावलि ब्रह्माजी से प्रारम्भ कर मुनने का इच्छुक हूँ । हे महाराज । वह मुझ से सम्यक् प्रकार से कहिये ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विश्वाधार ब्रह्माजी से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण क्षत्रियों की जन्म-गाथा एवं चरित्र का वर्णन मुनो ॥३॥ यह वंश यज्ञ करने वाले, राज विजेता, धर्मज्ञ गंधर्वों विविध नृपों से प्रकृत है ॥४॥ इन महान् नृपियों के जन्म और चरित्र के विषय में मुनवर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता है ॥५॥ मनु, इन्द्राकु, अनरण्य, भगीरथ, एवं अन्य दूसरे

शतशः ॥६॥ धर्मात्मा, यज्ञ कर्त्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है ॥७॥

तदयंश्च यतावंशोयतोवंशाःसहस्रशः ।
 भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामकरोहायथावटात् ॥८
 ब्रह्माप्रजापतिःपूर्वसिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः ।
 अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्विजसत्तम ॥९
 वामङ्गुष्ठाच्चतत्पत्नीजगत्सूतिकूरोविभुः ।
 ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतांकारणंपरम् ॥१०
 अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।
 तस्यांचकश्यपोदेवमातंडंसमजीजनत् ॥११
 ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।
 आदिमध्यान्तभूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु ॥१२
 यतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ।
 यत्स्वरूपंजगच्चेदंसदेवासुरमानुषम् ॥१३
 यःसर्वभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ।
 आदित्यामभवद्भ्रास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥१४

एक वटवृक्ष के एक अंकुर से ही एक अलग पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता है, उसी तरह मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न होगये, वह सुनिये ॥८॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की आकांक्षा से प्रजापति ब्रह्माजी ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्ष अधिपति को जन्म दिया ॥९॥ विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए अपने बाँये हाथ के अंगूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ॥१०॥ अदिति नाम की एक सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया । उस कन्या और कश्यप से मार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ॥११॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो अशेष इस विश्व को बरदाता है, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व अन्त स्वरूप

हैं ॥१२॥ समस्त विश्व के जन्म दाता, जिनमें समस्त विश्व विद्यमान है सुर,
अमर और मनुष्यो सहित यह विश्व उनका स्वरूप है ॥१३॥ जो सर्वा प्राणी
स्वरूप और सर्वात्मा सनातन परमात्मा हैं, प्रदिति द्वारा स्तुति करने पर उन्हीं
भास्वर सूर्य ने उमके गर्भ से जन्म ग्रहण किया ॥१४॥

भगवद्भ्रूतुमिच्छामि यत्स्वरूपविवस्वत ।
यत्कारणं चादितेव सोऽभवत्कश्यपात्मज ॥१५॥

यथाचाराधितो देव्या सोऽदित्याकश्यपेन च ।
आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता ॥१६॥

प्रभाववावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम ।
भवता कथितस्य बद्भ्रूतुमिच्छाम्यशेषत ॥१७॥

विस्पष्टापरमाविद्या ज्यातिर्भाशाश्च तीस्फुटा ।
कैवल्यज्ञानमाविभूँ प्राणाम्यसविदेव च ॥१८॥

बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिविज्ञानमेव च ।
इत्येता नीहरूपाणि तस्यारूपस्य भास्वत ॥१९॥

अथ यत्ताचमहाभाग विस्तारदत्तो मम ।
यत्पृष्टवानसि रवेराविर्भावो यथा भवत् ॥२०॥

क्रीष्टुकी बाने—हे महाराज । भास्वान् सूर्य के स्वरूप जितके कारण
वह प्रादि देव कश्यप के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए उसका वर्णन मुझना चाहना

है ॥१२॥ एव प्रदिति व कश्यप ने त्रित प्रकार धारापता की धीर धारापता
से प्रसन्न मूर्यदेव ने जो कहा ॥१६॥ एव गृहीत जन्म सूर्य का प्रचार जैसे पहले

भापने वणन किया है श्रेष्ठ । वह सभी सम्पक् प्रकार से धवण करने की
इच्छा है ॥१७॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योति,

शाश्वती, शक्ति, कैवल्य, ज्ञान, प्राविर्भाव, प्राणाम्य, सवित् ॥१८॥ बोध, प्रव-
गति, स्मृति एवं विज्ञान प्रादि सभी मूर्यदेव के स्वरूप हैं । हे महाराज ! रवि

ने प्राविर्भाव के विषय में विस्तारपूर्वक धवण करो ॥२०॥

निर्प्रमेऽग्निप्रिरानो वै सर्वतस्तमसावृते ।
वृष्टदददममूदेकमक्षरकारणपरम् ॥२१॥

तद्विभेदतर्दन्तःस्थोभगवान्प्रपितामहः ।

पद्मयोनिःस्वयं ब्रह्मायः स्रष्टा जगतां प्रभुः ॥२२

तन्मुखादोमिति महान् भूच्छब्दो महामुने ।

ततो भूस्तु भुवस्तस्मात्तत्तश्चस्वरनन्तरम् ॥२३

एताव्याहृतयस्ति सः स्वरूपं तद्विवस्वतः ।

ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ॥२४

ततो महरिति स्थूलं जनं स्थूलतरंततः ।

ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्तानि सप्तधा ॥२५

स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भन्ति च ।

स्वभावभावयोर्भावं यतोगच्छन्ति संक्षयम् ॥२६

आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् ।

ओमित्युक्तं मया विप्रतत्परं ब्रह्मतद्वपुः ॥२७

सृष्टि के पूर्व, जब यह विश्व आभाहीन, अन्धकारमय था तब क्षय रहित एक विशाल अङ्ग उत्पन्न हुआ ॥२१॥ उसी समय जगत् के जन्मदाता प्रपितामह ब्रह्म पद्म-योनि में विद्यमान थे, उन्हीं ने स्वयं इस अण्डे को भेद दिया ॥२२॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी के मुखारविन्द से उस समय ॐ शब्द हुआ । ओंकार शब्द से पहले भू, भुवः एवं तत्पश्चात् स्वः उत्पन्न हुआ ॥२३॥ यह व्याहृति भगवान् भास्कर का स्वरूप है । ॐ शब्द के स्वरूप से सूर्य का अत्यन्त सूक्ष्म रूप हुआ है ॥२४॥ उससे स्थूल रूप 'महः' तत्पश्चात् स्थूल रूप 'जन' फिर स्थूल रूप 'तपः' अनन्तर स्थूल रूप 'सत्य' उत्पन्न होगया । सूर्य का संपूर्ण रूप स्थूल है । विवस्वान् सूर्य के स्थूलों के सूक्ष्म भेद से ओंकार के सप्त रूप उत्पन्न हुए ॥२५॥ सूर्य भगवान् के सप्त रूप भी कभी-कभी सम्मुख होते हैं और कभी छिपे रहते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव एव प्रकृति का अस्तित्व संशयात्मक होता है ॥२६॥ हे ब्राह्मण ! इस जगत् के प्रारम्भ व अन्त में निराकार परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान है, ॐ कार से मेरा अभिप्राय उन्हीं से है । हे ब्राह्मण ! वह ब्रह्मस्वरूप ही मार्कण्ड देव की देह है ॥२७॥

६४—वेदमय-मार्तण्ड की उत्पत्ति

तस्मादण्डाद्विभिन्नावतुह्यगोऽव्यक्तजन्मनः ।
 ऋचोवभूवु प्रथमप्रथमाद्ददनान्मुने ॥१
 जपापुष्यनिभा मद्यन्तेजोन्पाद्वासहता ।
 पृथक्पृथक्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्तत ॥२
 यजू पिदक्षिणाद्वक्त्रादनिरूद्धानिकानिचित् ।
 यादृग्दर्शनयावर्णान्यसहतिधराणिच ॥३
 पश्चिमयद्विभोर्वंशत्र ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
 प्राविभूतानिमासानितत्तच्छन्दामितासितान्यय ॥४
 अथर्वणामशेषचभृङ्गाञ्जितचयप्रभम् ।
 यावद्द्वारस्वरूपतदाभिचारिकान्तिकम् ॥५
 उत्तराप्रकटीभूतवदनात्स्यवेधम् ।
 सुगमन्त्रतम प्रायसौम्यासौम्यस्वरूपवन् ॥६
 ऋचारजोगुणा मन्वयजुपाचगुणामुने ।
 तमोगुणानिसामानितम मन्त्रमययम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा— हे ऋषि ! उस ऋण्डे के भेदन पर अत्यन्त जन्मा ब्रह्माजी मात्रार हुए और उनके मुख में निकले वचनों में ऋग्वेद की रचना हुई ॥१॥ वह जपापुष्य तृण तेजस्वरूप और पृथक् विभिन्न रजो रूप धारण करने वाला था ॥२॥ ब्रह्माजी के दक्षिण मुख में स्वर्गं सुगम वर्णयुक्त भगवति ग्रहण करने वाले ममस्त यजु की अनिरुद्ध भाव में रचना हुई ॥३॥ तदनन्तर परमात्मा ब्रह्माजी के पश्चिम मुख से साम की रचना हुई, सम्पूर्ण साम छन्द पूर्ण था ॥४॥ ब्रह्माजी के उत्तर मुख में मृग व अञ्जन के समान वे गमान प्राभापूर्ण वृषण बरुण, प्राभिचारिक, शान्तिकर्ता, सुग, मन्त्र, तम में युक्त सौम्य और प्रसौम्य अशेष अथर्व की रचना हुई ॥५-६॥ हे ऋषि ! सम्पूर्ण ऋच में रजोगुण, सम्पूर्ण यजु में मन्त्र गुण, सम्पूर्ण साम में तमोगुण एवं सम्पूर्ण अथर्व में मन्त्र एवं तमोगुण है ॥७॥

एतानिज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेनवै ।
 पृथक्पृथक्वस्थानंभाञ्जिपूर्वमिवाभवन् ॥८
 ततस्तदाद्यंयत्तेजओमित्युक्त्वाभिक्षब्दद्यते ।
 तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्यसंस्थितम् ॥९
 यथायजुर्मयंतेजस्तद्वत्साम्नामहामुने ।
 एकत्वमुपयातानिपरेतेजसिसंश्रये ॥१०
 शान्तिकंपौष्टिकंचैवतथाचैवाभिचारिकम् ।
 ऋगादिषुलयंत्रह्रास्त्रितयंत्रिष्वथागमत् ॥११
 ततोविश्वमिदंसद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् ।
 विभावनीयंविप्रर्षेतिर्य्यगूर्ध्वमघस्तथा ॥१२
 ततस्तन्मण्डलीभूतंछान्दसंतेजउत्तमम् ।
 परेणतेजसात्रह्रान्नेकत्वभुपगम्यतत् ॥१३
 आदित्यसंज्ञामगमदादावेवयतोऽभवत् ।
 विश्वस्यास्यमहाभागकारणश्चाव्ययात्मकम् ॥१४

इन सभी ने अद्वितीय तेज से प्रकाशवाद् होकर पृथक्-पृथक् भाव से स्थिति की ॥८॥ उसके पश्चात् प्रथम का वह तेज, जिसके लिये ॐ शब्द प्रयुक्त हुआ है, उससे उत्पन्न जो तेज है, उसे वह अपने में समेट कर स्थित हुआ ॥९॥ हे महर्षि ! इस प्रकार साम युक्त तेज एवं यजुयुक्त तेज को भी अपने में समेट लिया, इस प्रकार सम्पूर्ण तेज उस ॐ स्वरूप परम तेज में आवृत हीकर एक होगये ॥१०॥ हे विप्र ! इसके बाद ऋक्, साम, यजुः तीनों वेदों में, शान्ति युक्त, पौष्टिक, आभिचारिक इन तीनों में अर्थव नेद भी मिल गया ॥११॥ हे ब्रह्मर्षे ! अन्धकार नष्ट होने पर समस्त जगत् तुरन्त स्वच्छ होगया, जिससे उसका ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् अथवा पार्श्व देश प्रकाश में आये ॥१२॥ हे विप्र ! तत्पश्चात् वह परम छन्दस तेज मंडलीभूत हो फिर श्रेष्ठ ॐ कार तेज में लीन होकर एक होगया ॥१३॥ इस प्रकार इस तेज को आदि में उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' की संज्ञा दी गई । हे महाभाग ! यही इस जगत् का अन्वयात्म कारण है ॥१४॥

प्रातर्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्निके ।
 त्रयोतपतिसाकालेऋग्यजु सामसजिता ॥१५
 ऋचस्तपतिपूर्वाह्णे मध्याह्णे चयजू पिवं ।
 सामानिचाराह्णे वैतपन्तिमुनिसत्तम ॥१६
 शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णे यजु प्वेवचपौष्टिकम् ।
 विन्यस्तसाम्निसायाह्णे ह्याभिचारिकमन्तत ॥१७
 मध्यन्दिनेऽपराह्णे चसमेचैवाभिचारिकम् ।
 अपराह्णे पितृणान्तुमाभ्नाकार्याणितानिवै ॥१८
 विसृष्टीऋङ्मयोब्रह्मास्यिताविष्णुर्यजुर्मयः ।
 रुद्र पाममयान्तेचतस्मात्तस्याशुचिध्वनिः ॥१९
 तदेवभगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसस्थित ।
 वेदविद्यात्मकश्चैवपर पुरुषउच्यते २०
 सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरज सत्त्वादिवान्गुणान् ।
 आश्रित्यब्रह्मविष्णवादिसत्तामभ्येतिशाश्वत ॥२१
 देवे सदेडच सत्तुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽपिलमर्त्यमूर्तिः ।
 विश्वाश्रयज्योतिरवेद्यधर्मावेदान्तगम्य परम.परेण ॥२२

ऋत् यजु और नाम तीनो मन्त्राः। प्रातः, मध्याह्न एव अपराह्न काल
 में तपती है ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उनमें ऋक् प्रातः काल, यजु मध्याह्न में
 और साम अपराह्न में तपता है ॥१६॥ पूर्वाह्न-काल ऋक् में शान्ति कर्य,
 मध्यह्न में यजु में पौष्टिक एव अपराह्न काल में साम में सम्पूर्ण आभिचारिक
 कर्म निहित है ॥१७॥ मध्याह्न और अपराह्न समय में ही अभिचारिक-कर्म करे
 एव साम द्वारा केवल अपराह्न में ही पितरा का कार्य सम्पन्न करे ॥१८॥
 मृष्टि के समय में ब्रह्मा अ-मय, स्थितिकाल में विष्णु यजुर्मय एव क्षमन काल
 में रुद्र नाम मय होते हैं, इसलिये अपराह्न काल को अशुचि कहते हैं ॥१९॥
 द्रम वारण्य उरुक्त प्रकार में वेदात्मा, वेद सम्भित एव वेद विद्यायुक्त भगवान्
 भास्वान् परम पुरुष नाम उच्चारण किया गया है ॥२०॥ मृष्टि के आदि, स्थिति
 व प्रत्ययवर्त्ता यह शाश्वत आदित्य सत्त्व रज एव तमोगुण को आश्रय कर
 ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम प्राप्त होते हैं ॥२१॥ देवताओं द्वारा सर्वत्र आराध्य

वेदमूर्ति, निराकार, सम्पूर्ण प्राणि स्वरूप एवं ज्योति स्वरूप आदि पुरुष भगवान् आदित्य विश्व के आश्रयदाता श्वेद्य वर्मा, वेदान्तगम्य एवं उत्तम से भी परमोत्तम हैं ॥२२॥

६५—ब्रह्मकृत रविस्तव

तेस्यसन्ताप्यमानेतुतेजसोद्धर्मधस्तथा ।
 सिसृक्षुश्चिन्तयामासपद्मयोनिःपितामहः ॥१॥
 सृष्टिःकृतापिमेनाशंप्रयास्यत्यभितेजसा ।
 भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥२॥
 अप्राणाःप्राणिनःसर्वप्रापःशुष्यन्तितेजसा ।
 नचाम्भसाविनासृष्टिर्विश्वस्यास्यभविष्यति ॥३॥
 इतिसञ्चिन्त्यभगवान्स्तोत्रंभगदतोरवेः ।
 चकारतन्मयोभूत्वाब्रह्मलोकपितामहः ॥४॥
 नमस्येयन्मयंसर्वमेतत्सर्वमयश्चयः ।
 विश्वमूर्तिःपरंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्तियोगिनः ॥५॥
 यश्चिन्तयत्युद्युष्टानिधानंसाम्नांचयोयोःनिरचिन्त्यशक्तिः ।
 त्रयीमयःस्थूलतयार्धमात्रापरस्वरूपोगुरापारयोग्यः ॥६॥
 त्वासर्वहेतुपरमंचवेद्यमाद्यंपरंज्योतिरवेद्यरूपम् ।
 स्थूलञ्चदेवात्मतयानमस्येभास्वन्तमाद्यंपरमंपरेभ्यः ॥७॥

मार्करण्डेयजी ने कहा—उसके पश्चात् आदित्य के तेज से ऊर्ध्व एवं अधः संतापित होने पर सृष्टि की रचना के इच्छुक ब्रह्मा चिन्तित होने लगे ॥१॥ कि सृष्टि की रचना करने पर भी उसका नाश भगवाद् भास्कर की तीव्र किरणों के तेज से होगा ॥२॥ उन भास्कर के तेज से सम्पूर्ण जीवधारी प्राणविहीन एवं जल सूख जाता है, फिर जलहीन इस जगत् की सृष्टि भी नहीं होगी ॥३॥ जगत् पितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्तित हुए तल्लीन होकर भगवाद् भास्कर

की स्तुति करते लगे ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—जो समस्त जगत् के आत्मा रूप
घोर इम जगत् में विद्यमान हैं, विश्व जिनका मूर्तरूप है एव योगी भी जिन
अग्निद्रवगाह्य श्रेष्ठ ज्याति की आराधना करत है, उन्हें मैं नमस्कार करता हू
॥५॥ श्रृग्वेद युक्त अचिन् य शक्ति, यजुर्वेद के आघार साम की रचना के
कारण, स्थूलता प्रमुक्त तीनों म निहित, अर्द्धमाता स्वल्प, परमब्रह्म रूप घोर
महान् गुणी हैं ॥६॥ सर्वं प्रथम उन्ही सर्वाधार रूपी परम पूज्य, परमेश्वर,
अवह्विरूप, परमज्योति, देवात्मता के लिये स्थूल रूप एव श्रेष्ठो से श्रेष्ठतम
आदि पुरुष भगवान् भास्कर को नमस्कार करता हूँ ॥७॥

सृष्टिकरामियदहतवर्गक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविषयाप्रणवाद्यशेषानात्मेच्छयास्थितिलयावपिनद्वदेव ॥८॥
वह्निस्त्वमेवजनशोपगत पृथिव्या सृष्टिः । पिजगताचतथाद्यपाकम् ।
व्यापोत्वमेवभगवन्मनस्वत्पत्वपञ्चधाजगदिदपरिपामिविश्वम् ॥९॥
यज्ञं यंजन्तिपरमात्मविदोभवन्त विष्णुस्वत्पमसिलेष्टिमयविवस्वन् ।
ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरपरममात्मविमुक्तिकाम १०

नमस्तेदेवस्वरूपाययज्ञरूपायतेनम ।

परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमाताययोगिभि ॥११॥

उपसहृतेजोपत्तजस सहतिस्तव ।

सृष्टेर्विधातामविभोःशृष्टौचाहसमुद्यत ॥१२॥

इत्येवसस्तुतोमान्वाङ्मह्यणासंस्कृतृणा ।

उपसहृतमान्तेज परस्वल्पमधारयत् ॥१३॥

चकारचतत सृष्टिजगत पद्मसम्भव ।

तयातेषुमहाभाग पूर्वकल्पान्तरेषुवै ॥१४॥

देवासुरादीन्मर्त्याश्चपश्वादीन्मृशवीरुध ।

ससजंपूर्ववद्ब्रह्मानरकाश्चमहामुने ॥१५॥

हे देव । धारकी ही शक्ति नित्या है, क्योंकि मैं उसने प्रेरणा पाकर

ही, जल, पृथ्वी, वायु घोर अग्नि देवतादि एव प्रणवादि अक्षय की गृष्टि करता
है । इस प्रकार स्थिति घोर प्रलय भी श्वेच्छा से नहीं करता, यह सब भी

आपकी प्रेरणा से ही करता हूँ ॥८॥ हे भगवन् ! तुम वह्निरूप भी हो । जिस समय धरती से तुम जल शुष्क करते हो तब मैं विश्व-सृष्टि एवं प्रथम पाक सम्पन्न करता हूँ, सर्वव्यापी आकाश स्वरूप आप ही हो, पञ्चरूप इस जगत् के रक्षक भी आप ही हो ॥९॥ हे भास्कर ! परमात्मविद सकल यज्ञमय विष्णु स्वरूप में यज्ञ द्वारा आपकी आराधना करते हैं, आत्म-मोक्ष के आकांक्षी जितेन्द्रिय यति भी आपको परम सर्वेश्वर मानकर आपका मनन करते हैं ॥१०॥ आप देवरूप हैं, आपको प्रणाम करता हूँ, आप ही यज्ञरूप और परब्रह्म स्वरूप मानकर योगी आपका चिन्तन करते हैं, आपको प्रणाम करता हूँ ॥११॥ हे प्रभो ! आप तेज को त्यागें, मैं सृष्टि की रचना के लिये उद्यत हूँ, आपका तीव्र तेज सृष्टि की रचना में बाधा है ॥१२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान् भास्कर ने सृष्टि के रक्षियता ब्रह्माजी की आराधना से प्रसन्न होकर अपना तीव्र तेज त्याग दिया और केवल सामान्य तेज धारण किया ॥१३॥ फिर महाभाग ब्रह्माजी ने पूर्व कल्पान्त कल्प में विश्व की सृष्टि रचना की ॥१४॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी ने पूर्व की भाँति सुर, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि एवं समस्त नरक की रचना की ॥१५॥

६६—कश्यप प्रजापति की सृष्टि

सृष्ट्याजगदिदंब्रह्माप्रविभागमथाकरोत् ।
वर्णाश्रमसमुद्राद्विद्वीपानांपूर्ववद्यथा ॥१॥
देवदैत्योरगादीनारूपस्थानानिपूर्ववत् ।
धेदेम्यएवभगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥२॥
ब्रह्माणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरिति विश्वतः ।
कश्यपस्तस्यपुत्रोऽभूत्काश्यपोनामनामतः ॥३॥
दक्षस्यतनयाब्रह्मस्तस्यभाय्यास्त्रयोदश ।
वहवरत्तसुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥४॥

अदितिर्जनयामास देवास्त्रिभुवनेश्वरान् ।
 दंत्यान्दितिर्दनुश्चोप्राग्दानवानुरविक्रमान् ॥१॥
 गरुडारुणौ च विनतायक्षरक्षासिवैजसा ।
 वद्रु सुपावनागाश्च गन्धर्वांसुपुत्रेभ्युनि ॥६॥
 क्रोधायाजज्ञिरे कुत्स्यारिष्टायाश्चाप्सरो गणा ।
 ऐरावतादीन्मातङ्गानिराचसुपुत्रद्विज ॥७॥

मार्कण्डेयजी न ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने विश्व की रचना करने पूर्व की
 भाँति वण, धात्रम, समुद्र, गिरि और सम्पूर्ण द्वीपों का विभाजन किया ॥१॥
 भगवान् ब्रह्माजी ने देवगण दैत्य एवं उरगणा का रूप तथा स्थिति देवगणों में
 प्रारम्भ कर पूर्व की भाँति ही निर्दिष्ट किया ॥२॥ ब्रह्माजी के मरीचि नामक पुत्र
 से कश्यप नामक एक विभ्यात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि कश्यप नाम से ही
 विभ्यात हुए ॥३॥ हे विप्र ! दक्ष की तरह कन्याएँ उनकी पत्नियों हुई, त्रिनके
 गर्भ से देव, दैत्य और उरग आदि अनक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ अदिति ने
 त्रिभुवनेश्वर देवताओं को जन्म दिया, दित्त न दंत्या और दनु ने महापराक्रमी
 क्रोधी दानवों को जन्म दिया ॥५॥ विनता ने गरुण व अरुण, खगा न यक्ष व
 राक्षसा, वद्रु ने नागा एवं मुनि ने गन्धर्वों को जन्म दिया ॥६॥ हे ब्राह्मण !
 क्रोधा ने कुत्सागण, रिष्टा स अप्सराएँ और ईरा से ऐरावत इत्यादि हविया ने
 जन्म लिया ॥७॥

ताम्नाचमुपुवेश्येनीप्रमुखा कन्यकाद्विल ।
 यासाप्रमूला स्वगमा श्यनभासिगुनादय ॥८॥
 इलाया पादपाजाला प्रघायायादमागणा ।
 आदित्यायासमुत्पन्नाकश्यपस्येतिसन्तति ॥९॥
 तस्याश्चपुत्रद्वीहित्रं पौत्रद्वीहित्रिकादिभि ।
 व्पासमेतज्जगत्भूत्यातेपातासाश्ववंमुने ॥१०॥
 तेषामश्वपुत्राणाप्रधानादेवतागणा ।
 सारित्रकाराजयास्त्रयेते तामसाश्चमुनेगणा ॥११॥

देवान्यज्ञभुजश्चक्रेतथात्रिभुवनेश्वरान् ।
 ब्रह्मब्रह्मविदांश्चेष्टःपरमेष्ठीप्रजापतिः ॥१२
 तानवाधन्तसहिताः स पत्नादैत्य दानवाः ।
 राक्षसाश्चतथायुद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥१३
 दिव्यं वर्षसहस्रान्तुपराजीयन्तदेवताः ।
 जयिनश्चाभवन्विप्रबलिनोदैत्यदानवाः ॥१४

ताम्रा से श्येनी आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं । इन कन्याओं से ही श्येत, भास एवं शुकादि खेचरगण उत्पन्न हुए ॥८॥ इला ने पादपगणों एवं प्रधा से पतङ्ग गणों ने जन्म लिया । हे ऋषिवर ! अदिति के गर्भ से उत्पन्न कश्यप की जो सन्तानें थीं ॥९॥ उनके पुत्र, धेवते और नाती, धेवते आदि एवं उनकी सन्तानें समस्त विश्व में व्याप्त हो गईं ॥१०॥ हे ऋषि ! कश्यप के पुत्रों में देवता ही प्रमुख हैं, उनके त्रिविधगण, सात्विक, राजस एवं तामस हैं ॥११॥ परमेश्व एवं ब्रह्मज्ञ श्रेष्ठ प्रजापति प्रह्लाजी देवतागणों को त्रिभुनेश्वर एवं यज्ञ-भुक् किया था ॥१२॥ किन्तु विमाताओं से उत्पन्न दैत्य, दानव और राक्षस मिलकर देवतागणों के प्रति शत्रुता का आचरण करते हुए बाधा पैदा करते थे, इसलिये उनका दैवगणों के साथ हजारों वर्षों तक विकराल युद्ध हुआ । हे ब्राह्मण ! इस महायुक्त में देवगणों की पराजय हुई और बलवान् दैत्य व दानव जीत गये ॥१३-१४॥

ततो निराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ।
 हृतविभुवनान्दृष्ट्वाह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५
 आच्छिन्नयज्ञभागांश्चशुचासंपीडिताभृशम् ।
 आराधनायसवितुः परंयत्नंप्रचक्रमे ॥१६
 एकाग्रानियताहारापरंनियममास्थिता ।
 तुष्टावतेजसां राशिगगनस्थं दिवाकरम् ॥१७
 नमस्तुभ्यंपरांसूक्ष्माभ्रैवर्णीविभ्रतेतनुम् ।
 धामधामवतामीशधाम्नामाधारशाश्वत ॥१८

जगतामुपकारायतथापस्तवगोपते ।
 श्राददानस्ययद्रूपतीव्र तस्मै नमाम्यहम् ॥१९॥
 ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयरमम् ।
 विभ्रतस्तवयद्रूपमतितीव्र नतास्मितम् ॥२०॥
 तमेवमुच्चत सर्वरसवैवर्णाययत् ।
 रूपमाप्यायनभास्वस्तस्मैमेघायतेनमः ॥२१॥

हे ऋषिभ्रेष्ठ ! तदुपरान्त दैत्य दानवा द्वारा त्रिभुवन का हरण किया गया एव इम प्रकार अपने पुत्रो को पराजित हुआ एव यज्ञ भागो से वंचित किये हुए दशकर, अदिति साक एव पीडा महित भगवान् भास्वर देव की स्तुति करने लगे ॥१५-१६॥ एकचित्त, नियताहार एव उत्तम नियम परायणता का पालन करती हुए आकाश मटल में विद्यमान तेज राशि भगवान् सूर्यदेव की आराधना करने लगे ॥१७॥ अदिति बोली—हे शाश्वत ! आप सुन्दर सूक्ष्म मुखर्ण तन धारक हो आप ज्योति स्वल्प, ज्योतिष्कगणो मे मुख्य एव ज्योति के आधार हो, आपको नमस्कार ॥१८॥ हे गोपत ! विद्व का कल्याण करने के लिये जल ग्रहण करने वाली आपकी तीव्र मूर्ति को नमस्कार ॥१९॥ घाठ महीने की अवधि पर्यन्त इन्दुमय रम ग्रहण करने वाली आपकी अत्यन्त तीव्र मूर्ति को प्रणाम करती हू ॥२०॥ हे भगवन् ! उस एकत्रित सम्पूर्ण रस को परित्याग कर वर्षा करने के लिये आप जो तृप्ति कारक मेघ रूप धारण करते हो, उस मेघरूप आपकी मूर्ति का प्रणाम ॥२१॥

वायुं त्मर्गं विनिष्पन्नमशेषश्वीपघीगणम् ।
 पावायतवयद्रूपभास्करतनमाम्यहम् ॥२२॥
 यच्चरूपनवातीतहिमोत्सर्गादिशीतलम् ।
 तत्कालमस्यपोपायतरणेतम्यतेनमः ॥२३॥
 नाति तीव्र चयद्रूपनातिशीतचयत्तव ।
 वसन्तत्तीर्ग्वेसोम्यतस्मै देवनमोनमः ॥२४॥
 आप्यायनमशेषाणादेवानाचतयापरम् ।
 पितृणाचनमस्मै नमस्यानायासहेतवे ॥२५॥

यद्रूपंजीवनायैकंवीरुधाममृतात्मकम् ।

पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनमः ॥२६

आप्यायदाहरूपाभ्यांरूपंविश्वमयन्त्व ।

समेतमग्नीषोमाभ्यांनमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७

यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येनत्पतेतव ।

विश्वमेतत्रयीसंज्ञंनमस्तमैविभावसो ॥२८

जल वर्षा से उत्पन्न अशेष औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणो ! अस्व-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! वसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अशेष देवता एवं पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है, उसको नमस्कार करती हूँ ॥२५॥ संपूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एवं सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो अमृतमय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२८॥

यत्तु तस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्वाभिश्चिदितम् ।

अस्थूलानन्तममलंनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९

एवंसानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ।

निराहाराविवस्वस्तमारिराधयिषुमुने ॥३०

ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे ।

प्रत्यक्षतामगादस्यादाधायप्याद्विजोत्तम ॥३१

साददर्शमहाकूटंतेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।

जगादभेप्रसीदेतिनत्वांपश्यामिगोपते ॥३२

यथाहृष्टवतीपूर्वभम्बरस्थंसुदुर्दृशम् ।

निराहाराविवस्वन्तंतपन्तंतदनन्तरम् ॥३३

नपाततेजमानद्विदृष्ट्यामिभूतले ।

प्रसादकुरुपश्येययद्रूपन्नेदिवाकर ।

भक्तानुकम्पय विभीभक्ताहृषाहिमेमुनान् ॥३४

इसके अनिश्चित भाषण जो उत्तम गृह्य, अनन्य एवं स्वच्छ शौरार रूप कहा जाता है, उस निम्नस्वरूप को नमस्कार ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषिवर ! भद्रिनि देवी इस प्रकार नियमपरायण एवं निराहार जीवन पानन कर भास्कर भगवान् की धाराधना करने की धानाधा से दिन रात उनकी स्तुति करत लगे ॥३०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर भगवान् मूर्धे गगल स्थित हुए दक्ष-मुनि के समक्ष दिखाई देने लगे ॥३१॥ जो एकदम चमकने वाली अशुमाना द्वारा आकाश मंडल में भी स्पष्ट दर्शनीय नहीं थे, उन्हें तेजराति स्वरूप रवि भगवान् की भद्रिनि ने पृथ्वी के तल पर विद्यमान दया । उन्हें देखकर भद्रिनि बहुत भयभीत हुई और बोली—“हे गोपन ! आप मुझ पर प्रमत्त होंगे, मैं आपको देख नहीं सकती ॥३२॥ प्राग्जन्म में निराहार होकर आकाश में विद्यमान असहनीय सूर्यदेव का जिस प्रकार तप्तता प्रदान करते दया, अब इस धरातल पर भी मैं उसी प्रकार तीव्र तेजवान् मूर्धे को देख रही हूँ । हे दिनकर ! मुझ पर प्रमत्त होवे, जिसने मैं आपकी स्वभाविक स्वरूप का दर्शन कर सकूँ । हे प्रभो ! धाम नती पर कृपा करने है, मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रों को रक्षा करे ॥३३-३४॥

त्वधानाविन्मृजसि त्रिदशमेतत्त्वपासिन्वितिकरणायसुप्रवृत्त ।

वध्यन्नेलवमिनिप्रयातितत्त्वततोऽन्यानहिगतिरन्तिमर्वन्तोके ॥३५

तत्रद्वाहृरिजसजित्स्वमिन्द्रोविशोरापितृपतिरप्पतिःसमीर ।

नीमाग्निगंगनपतिर्भृंहोपगोऽविव ।

किन्त्वव्यनयमक तात्मरूपधाम् ॥३६

यज्ञेशत्वामनुदिनमान्मकमंयुक्ताः ।

स्तुवन्तोविविधपदं द्विजायत्रन्ति ।

ध्यायन्तोऽत्रिनियनचेतमोनवन्तयोगस्था रग्भापदं प्रयातिन्मर्त्या ॥३७

तपसिपचसिविश्वं पासिभस्मीकरोषि,

प्रकटयसिमयूखैर्हृदि यस्यम्बुगर्भः ।

सृजसिक मलजन्मापालयस्य,

च्युताख्यः क्षपयसिच्युगांते रुद्ररूपस्त्वमेकः ॥३८॥

आप ब्रह्मा के रूप में इस जगत् के जन्मदाता हैं, जगत् की सृष्टि के पश्चात् स्थिति काल में इसका पोषण करते हैं एवं प्रलय काल में सम्पूर्ण तत्त्व आप में ही विलीन होते हैं। इसलिए सभी लोगों में आपके अतिरिक्त अन्य कोई मति नहीं है ॥३५॥ आप ब्रह्मा, हरि, अजसंज्ञित शिव, इन्द्र, धनपति कुबेर, यम, वरुण एवं समीर हैं और आप ही अग्नि, आकाश, पृथ्वी का आधार एवं सागर हैं। आप ही समस्त तेज पदार्थों के आत्मरूप हैं, अधिक आपकी क्या स्तुति करूँ ? ॥३६॥ हे यज्ञेश ! आपके कर्मों में लीन ब्राह्मण लोग प्रतिदिन विभिन्न छन्दों द्वारा स्तुति करके आपको पूजा करते हैं। एकाग्रचित्त योगी पुरुष आपका ध्यान करते हुए परमधाम प्राप्त करते हैं ॥३७॥ विश्व को उन्मत्ता प्रदान कर्ता तुम ही जगत् को रक्षित, भस्म किरणों द्वारा प्रकाशित करते हो एवं जल गर्भ को भेदने वाली किरणों के समूह से आह्लादित एवं पुनः उत्पन्न करते हो, देवशरा व मनुष्य सर्वैव आपको प्रणाम करते हैं और पापी मनुष्य एकचित्त होने पर भी आपको प्राप्त नहीं कर सकते ॥३८॥

६७—अदिति के गर्भ से आदित्य का जन्म

ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ।

अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ॥१॥

अथ तां प्रणतां देवीं तस्य संदर्शनान्मुने ।

प्राह भास्वान्वृणाष्वेष्टवरं मत्तोयमिच्छसि ॥२॥

प्रणताशिरसासाचजानुपीडितभेदिनी ।

प्रत्युवाच त्रिवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥३॥

देवप्रसीदपुत्राणां तद्दत्तत्रिभुवनमम ।
 यज्ञभागाश्च दत्तेत्येध्वद्दानवैश्च बलाधिके ॥४॥
 तन्निमित्तप्रसादत्त्वकुहृष्वममगोपते ।
 अशेनतेषां भ्रातृत्वगतवानाशयतद्रिपून् ॥५॥
 यथामत्तनयाभूयाद्यज्ञभागभुजप्रभो ।
 भवेयुरधिपाश्चैवर्त्रं लोक्यस्य दिवाकर ॥६॥
 तथानुकम्पापुत्राणामुप्रसन्ने रवेमम ।
 कुरुप्रपन्नार्तिहरस्मिन्तत्तत्त्वमुच्यसे ॥७॥

माकण्डेय जी न बहा—नत्पदवान् भगवान् अपने तेज मण्डल के बीच
 तपे हुए तबि के ममान चमकन हुए प्रकट हुए ॥१॥ हे ऋषिवर ! उनको
 बिलोक कर अदिनि देवी ने उनको प्रणाम किया तो मूर्य भगवान् ने कहा—
 आपकी जो आज्ञाशा हो वही अभीष्ट वर मुझ से मागो ॥२॥ अदिति अपने
 पुत्रने पृथ्वी पर टेक कर शीश नवा कर प्रणाम करते हुए वर प्रदान करने को
 उत्पन्न भगवान् मूर्य से बोली—हे दैव ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, घोर बल-
 दानी दैत्य और दानवी ने मेरे पुत्रों का त्रिभुवन एवं यज्ञ भाग हर लिया है
 ॥३-४॥ हे गोपन ! इस अभिप्राय से आप मुझ पर प्रसन्न होकर और अ-
 दिति मेरे पुत्रों के भाई बन कर शत्रु दैत्य और दानवी का क्षमन कीजिये
 ॥५॥ हे दिनकर प्रभो ! जिसमें कि मेरे पुत्रगण पुनः यज्ञ भाग से अतिकारी
 एवं त्रिभुवन के अधिपति बानें ॥६॥ हे रवे ! मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे
 पुत्रों को ऐमा अनुग्रहीत कीजिये पीडितों के आता । आपकी लोक-पालन बहन
 हैं ॥७॥

ततस्तामाह भगवान् भाम्निरो वारितस्कर ।
 प्रणनामदिति विप्रप्रमादमुमुत्सो विभु ॥८॥
 महत्साशेनते गर्भे सम्भूयाहममपत्त ।
 स्वत्पुनश्चूतदितेनाशयाम्यागुनिर्वृत ॥९॥
 इत्युत्तरा भगवान् भास्वानन्तर्द्वानिमुपागमत् ।
 निवृत्तासापितपम मनुसाग्विनवाञ्छिता ॥१०॥

ततोरश्मिसहस्रात्तुसौसुम्नाख्योरवेःकरः ।
 विप्रावतारंसंचक्रेदेवमातुरथोदरे ॥११
 कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाञ्चक्रेसमाहिता ।
 शुचिःसंधारयामासदिव्यंगर्भमितिद्विज ॥१२
 ततस्तांकश्यपःप्राहकिञ्चत्कोपप्लुताक्षरम् ।
 किम्मारयसिगर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ॥१३
 साचतंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ।
 नमारितंविपक्षाणांमृत्यवेतद्भ्रुविष्यति ॥१४

माकरण्डेय जी ने कहा—हे ब्राह्मण ! उसके पश्चात् जल शुष्क करने वाले भगवान् भास्कर प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक अदिति से बोले ॥११॥ हे अदिति ! सहस्रांशु तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रगण के शत्रु समस्त दैत्य व दानवों को समूल नष्ट करूँगा । तुम्हारे पीड़ित पुत्र तुरन्त ही सुखी होंगे ॥१२॥ इस प्रकार वर देकर भगवान् भास्कर अदिति के मामने से अंतर्धान हो गये और अदिति ने भी मनोवांछित वर प्राप्त करके तपस्या त्याग दी ॥१०॥ हे ब्राह्मण ! तदुपरान्त सूर्य की सौ पुत्र किरण सहस्रांशु से अदिति के गर्भ से अवतरित हुई ॥११॥ हे ब्राह्मण ! वह अदिति सावधानी पूर्वक कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत व अनुष्ठान करती हुई पवित्रता पूर्वक दिव्य गर्भ धारण करने लगी । तब कश्यप जी ने क्रोधित हो कहा—तुम प्रतिदिन उपवास करके अपने इस गर्भ को नष्ट करोगी ॥१३॥ अदिति बोली—“हे कुपित स्वभाव, मैं इस गर्भ को नष्ट नहीं कर, रही, यह तो शत्रु दैत्य और दानवों का शमन करने वाला होगा ॥१४॥

इत्युक्त्वातंतदागर्भमुत्ससर्जसुरारणिः ।
 जाज्वल्यमानंतेजोभिःपत्युर्वचनकोपिता ॥१५
 तंहृष्टाकश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
 तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥१६
 संस्तूयमानःसतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ।
 पद्मपत्रसवर्णमिस्तेजसाग्याप्तदिङ्मुखः ॥१७

अथान्तरिक्षादाभाप्यकश्यपमुनिसत्तमम् ।
 मनोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ॥१८
 मारिततेयत प्रोक्तमेतदण्डस्त्वयामुने ।
 तस्मान्मुनेस्तुतस्तेऽयमात्तण्डारयोभविष्यति ॥१९
 मूर्याधिकारचक्रिभुर्जगत्येपकरिष्यति ।
 हनिष्यत्यसुराश्राययज्ञभागहरानरीन् ॥२०
 देवानिशम्येतिवचोगगनात्समुपागमन् ।
 प्रहर्षमतुलयातादानवाश्चत्तृतीजसः ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार वह देवमाता अग्नि पति के वचनों को सुनकर तेज एव जावज्जन्म गर्भ को परित्याग किया ॥१५॥ उगने हुए मूय व तुल्य प्रभावान् उस गर्भ को देख कर कश्यप आदर सहित नत-मस्तक होकर मन्त्रोच्चारण द्वारा स्तुति करने लगे ॥१६॥ कश्यप की स्तुति को सुन कर वह आश्चर्य तेजस्वी फिरणो को दिशाओं में फैलाते हुए पक्षपत्र युक्त वर्णयुक्त हीरुर गर्भाण्ड से प्रसूत हुए ॥१७॥ इसके पश्चात् जलपूर्ण मेघ व समान अंतरिक्ष के मध्य कोई विदेह वाली ऋषिवर कश्यप को सम्बोधित करते हुए कहने लगे ॥१८॥ हे ऋषि, आपने इस अण्ड को 'मारित' कहा, इसलिए आपके इसमें उत्पन्न पुत्र का नाम मात्तण्ड होगा ॥१९॥ यह महा-पुरुष, विश्व में मूर्य की भाँति तेजस्वी होगा एव आपके देव पुत्रों के यज्ञ भाग हरन वाले दैत्य, दानव और असुरों का विनाश करेंगे ॥२०॥ अंतरिक्ष वाली के इन वचनों को सुन कर देवगण आश्चर्य हीन होकर आकाश में घाये एव दैत्य, दानवगण तेज विहीन हो गये ॥२१॥

ततोयुद्धायर्देवयानाजुहावशतक्रतु ।
 महद्देवीमुंदायुक्तोदानवाश्चसमम्ययु ॥२२
 तेषायुद्धमभूद्धोरदेवानाममुरं मह ।
 सन्श्रान्श्रदोतिसदीम समस्तभुवनान्तरम् ॥२३
 तस्मिन्पुद्गेभगवतामान्ण्डेननिरीक्षिताः ।
 तेजमादह्यमानाम्नेभम्मीभूतामहामुराः ॥२४

ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ताः सर्वेदिवीकसः ।
 तुष्टुवुस्तेजसांयोनिमार्त्तण्डमदितितथा ॥२५
 स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्चपूर्ववत् ।
 भगवानपिमार्त्तण्डःस्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६
 कदम्बपुष्पवद्भ्रास्वानधश्चोर्ध्वचरश्मिभिः ।
 वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदघ्नेनातिस्फुरद्वपुः ॥२७

उसके पश्चात् सुरगण सहित इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया तो वे उत्साहपूर्वक आये ॥२२॥ उस समय दानवों से सुरगण का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया और त्रिभुवन सुरों व असुरों के शस्त्रास्त्रों की चमक से भी उसी प्रकार तेजपूर्ण हो गया ॥२३॥ उस महाभयंकर संघर्ष में तमोगुण युद्ध में असुरगण भगवान् मार्त्तण्ड के तेज द्वारा नष्ट हो गये और देवगण शक्तिमान् होकर हर्ष मनाने लगे उन्होंने सूर्य भगवान् और अदिति की स्तुति की ॥२४-२५॥ अब देवता अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करके यज्ञ भाग पाने लगे और सूर्य भगवान् और भी अधिक प्रकाशमान होकर आकाश में कदम्ब पुष्प की तरह स्थित होकर सर्वांग तेजोमयी किरणों का प्रसार करने लगे ॥२६:२७॥

६८—भानुतन लेखन

अथतस्मैददीकन्यांसंज्ञानामविवस्वते ।
 प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१
 वीवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्याविवस्वतः ।
 पूर्वमेवतथाख्यातंत्स्वरूपंविशेषतः ।
 भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिमार्त्तण्डस्यमहात्मनः ।
 चरितंहंतियत्पापंकलौसंशृण्वतानृणाम् ॥२
 त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ।
 द्वौपुत्रौसुमहाभागीकन्याञ्चयमुनांमुने ॥३

मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठ आद्वदेव प्रजापतिः ।
 ततायमोयमोचैवयमलोसवभूवतु ॥४
 यत्तेजोऽभ्यधिकतस्यमातं डस्यविवस्वतः ।
 तेनातिनापयामासश्रील्लोकन्सचराचरान् ॥५
 गोलाकारन्तुतद्दृष्ट्वा मज्ञात्पविवस्वतः ।
 असहन्तीमहत्तेजस्वाद्यायाप्रेक्ष्यसाऽब्रवीत् ॥६
 अहयास्यामिमद्र तेस्वमेवभवनपितुः ।
 निर्विकारत्त्रयाप्यत्रस्थेयमच्छासनाच्छुभे ॥७
 इमोचवालकौमह्य कन्याचवरवर्णिनी ।
 सभाष्योर्नैवचाख्येयमिदं भगवतेत्वया ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—तदनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य नागपण
 ने सम्मुख प्रणत होकर उन्हें प्रसन्न किया और अपनी 'सज्ञा' नाम की कन्या
 का विवाह उनके साथ कर दिया सज्ञा के गर्भ से जिन 'वैवस्वत मनु' का
 जन्म हुआ उनका वर्णन विस्तार पूर्वक पहले ही किया जा चुका है। यह
 मुनिकर कौशिक ने प्रार्थना की कि उनके परचान् मार्तण्ड का जो कुछ और
 चरित्र हो उसको भी मैं मुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका पुण्य चरित्र कलि-कान
 के पापों को मिटाने वाला है। मार्कण्डेय जी कहने लगे कि संज्ञा से सूर्य-
 भगवान् के तीन मनानें उत्पन्न हुईं, वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र और
 यमुना नाम की पुत्री इनमें से वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं और उनके परचान् यम
 और यमी जुड़वां भाई-बहिन उत्पन्न हुए। उस समय का सूर्य का तेज बहुत
 अधिक था जिनमें वह तीनों मोकों को बहुत अधिक तप्त करते थे। उनकी
 पत्नी मज्ञा उस महान् तेज को सहन करने में असमर्थ हुई और उसने अपनी
 छाया में एक धार कहा—हे शुभे ! तुम्हारा बर्याण हो। मैं अपने पिता
 के घर जाती हूँ। तुम मेरी आज्ञानुसार यही रह कर मेरी इन तीनों सन्तानों को
 प्रेमपूर्वक पालन करती रहना और इस वृत्तान्त को सूर्य भगवान् को कभी
 मालूम न होने देना ॥१-८॥

आकेशग्रहणाद्देविआशापान्नेवर्कहृचित् ।
 आख्यास्यामिमतंतुभ्यंगम्यतांयत्रवाञ्छितम् ॥६
 इत्युक्त्वाछायायासंज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ।
 तत्रावसत्पितुर्गोहेकञ्चित्कालंशुभेक्षणा ॥१०
 भर्तुःसमीपंयाहीतिपित्रोक्त्वासापुनःपुनः ।
 अगच्छद्वद्वडवाभूत्वाकुरुन्विप्रोत्तरांस्ततः ॥११
 तत्रतेपेतपःसाध्वीनिराहारामहामुने ।
 पितुसमीपंयातायाःसंज्ञायावाक्यतत्परा ॥१२
 तद्रूपधारिणीछायाभास्करंसमुस्थिता ।
 तस्यांचभगवान्सूर्य्यःसंज्ञंयमितिचिन्तयन् ॥१३
 तथैवजनयामासद्वीसुतौकन्यकांतथा ।
 पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसावर्णिस्तेसोऽभवत् ॥१४
 यस्तयोःप्रथमंजातःपुत्रयोद्विजसत्तम ।
 द्वितीयोयोऽभञ्चान्यःसग्रहोऽभूच्छनंश्चरः ॥१५

छाया ने कहा—जब तक सूर्य भगवान् जब तक दण्ड देने के भाव से मेरे केश नहीं पकड़ेंगे अथवा शाप देने को उद्यत न होंगे तब तक मैं इस ग्रहस्य को कदापि प्रकट न होने दूंगी । यह सुन कर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और कुछ समय तक वही निवास करती रही । इसके पश्चात् जब उसके पिता विश्वकर्मा ने उससे पति के घर जाने का कहा तो वह बड़वा (घोड़ी) का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर निराहार तपस्या करने लगी । इस बीच में छाया संज्ञा सूर्य भगवान् की सेवा करती रही और उन्होंने उसे अपनी पत्नी संज्ञा ही समझकर उससे भी दो सन्तानें उत्पन्न कीं इनमें से एक सावर्णि मनु और दूसरे शनिश्चर (ग्रह) थे ॥६-१५॥

कन्याभूत्तपतीयातांब्रह्मसवरणोत्पुः ।
 संज्ञातुपार्थिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत् ॥१६
 स्नेहात्पूर्वजातानांतथाकृतवतीसती ।
 मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्यायमश्वास्यानचक्षमे ॥१७

बहुशोयाच्यमानस्तुपितु पत्न्यासदु पित ॥
 सवशोपाञ्चवाल्याञ्चभाविनोऽर्थस्यवैवलात् ॥१८
 पद्मामन्तर्जयामासद्ययासज्ञायमोमृने ॥
 तत शशापवयमसज्ञामामपिणीभृशम् ॥१९
 पद्मामन्तर्जयसेयस्मात्पितृभाय्यगिरीयसीम् ।
 तस्मात्तवैवचरण पतिप्यतिनसशय ॥२०

छाया के गर्भ से एक 'तपनी' नाम की बच्चा भी हुई जिसका विवाह
 यथा समय मवरण नामक नृप से किया गया । छाया-मंशा अपनी सन्तानों से
 जितना अधिक स्नेह करती थी उतनी प्रथम पत्नी की तीनों सन्तानों में नहीं
 करती थी । उसके इस पक्षपात पूरा व्यवहार को देखकर वैनस्वत मनु ने तो
 कुछ न कहा पर यम के दूत उसे सहन न कर सके और एक बार उन्होंने रोप
 पूषक तथा होनहार के बर्षाभूत होकर छाया मजा को डाट कर मारने के लिये
 पैर उठाया । इस पर छाया को बड़ा क्रोध आया और अपने कहा—'जि मैं
 तुम्हारे पूजनीय पिता की पत्नी हूँ, फिर भी तुमने मुझे मारने को लात उठाई
 इससे फल स्वरूप तुम्हारा यह पैर कट कर गिर जायगा' ॥१९-२०॥

यमस्तुतेनशापेनभृशपीहितमानस ।
 मनुनामहधमत्मासर्वपित्रेन्यवेदयत् ॥२१
 स्नेहेनतुल्यमम्मासुमातादेवनवर्तते ।
 विमृज्यज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयासीधुभूर्पति ॥२२
 तस्यामयोद्यत पादोनतुदेहेनिपातित ।
 वाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भ्रवान्क्षन्तुमर्हति ॥२३
 शशोऽज्ञातयोपेनजनन्यातनयोपत ।
 ततोमन्येजननीमिमावैतपतावर ॥२४
 विगुणेष्वपिपुत्रेषुनमात्ताविगुणापित ।
 पादस्तेपततापुत्रवधमेतत्प्रवक्ष्यति ॥२५
 तवप्रमादाच्चरणोनपतैद्भ्रगवन्वया ।
 मातृनापादयमेऽद्यतथाचिन्तयगोपते ॥२६

इस शाप को सुनकर यम बड़े दुःखी हुए और पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त उर्नको सुनाया और कहा कि हे देव ! माता हमारी अपेक्षा छोटे भाई-बहिनों का अधिक स्नेह और पालन-पोषण करती है । इससे असन्तुष्ट होकर बाल-स्वभाव ब्रह्म अथवा भूल से मैंने उसकी ओर जात जडाई, पर मारा नहीं । फिर भी मैं उस अपराध की आपसे क्षमा चाहता हूँ ॥ यम ने फिर कहा—पिता जी ! यदि कोई पुत्र दुष्ट, दुराचारी होता है तो भी माता उसका कभी अहित नहीं करती । पर उसने क्रोध करके 'तुम्हारा पैर गिर जाय' ऐसा जो शाप दे डाला इससे मुझे वह अपनी माता नहीं जात पड़ती । अब आप ऐसी कृपा करें कि माता के क्रोध पूर्वक दिये शाप के कारण मेरा वह पैर न गिरे ॥२१-२६॥

असंशयमिदंपुत्रभविष्यत्प्रकारणम् ।

येनत्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञसत्यवादिनम् ॥२७

सर्वपापेवशापानांप्रतिघातोहि विद्यते ।

ननुमात्राभिशप्तानां क्वचिच्छ्रापनिवर्तनम् ॥२८

नशक्यमेतन्मिथ्यातुकनुमातुर्वचस्तत्र ।

किञ्चित्तत्रविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९

कुमयोर्मांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ।

कृतंतस्यावचसत्यंत्वंचत्रातोभविष्यसि ॥३०

आदित्यस्त्वन्नदीच्छायांकिमर्थतनयेषुषी ।

तुल्येष्वप्यधिकःस्नेहेकत्रक्रियतेत्वया ॥३१

नूननैषांत्वंजननीसंज्ञाकापित्वमागता ।

विगुरोष्वप्यपत्येषुकथंमाताशपेत्सुनम् ॥३२

सूर्य भगवान् ने कहा—पुत्र ! तुम धर्मजाता और सत्य परायण होकर भी जब क्रोध के वशी भूव हो गये तो उसका यह कुपरिणाम होना संभव है । और सब शापों से छुटकारा मिल सकता है पर माता के शाप से बच सकने का कोई मार्ग नहीं है । इसलिए तुम्हारी माता के वचनों को मिथ्या करने में तो असमर्थ है पर तुम्हारी विनय के कारण कोई अंध उपाय-व्यतलाऊंगा । जिस

से तुम्हारी माता की बात पूरी हो जाय और तुम्हारा पैर भी बच जाय । इन-
लिये ऐसा होगा कि वृषि तुम्हारे पैर का मस लेकर पृथ्वी तल पर डाल देगे—
ऐसा होने पर तुम्हारी माता का क्षाप पूरा हो जायगा और फिर तुम्हारा पैर
भी ठीक हो जायगा । इसके पश्चात् सूर्य भगवान् ने छाया से कहा कि—तुम्हारे
लिये सभी सन्तान समान रूप से प्रिय होनी चाहिये । पर ऐसा न करके तुम
किसी के प्रति कम और किसी से अधिक स्नेह करती हो । इससे मालूम पड़ता
है कि तुम इनकी माता नहीं हो, यदि माता होती तो पुत्र को ऐसा क्षाप नहीं
दे सकती थी ” ॥ २७-३२ ॥

सातत्परिहरन्तीचनाचक्षेविवस्वतः ।

सचात्मानसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत् ॥३३

तस्य भुञ्जतदृष्ट्वा छायासज्ञादिवस्पतिम् ।

भयेनकपिताग्रहान्यथावृत्तन्यवेदयेत् ॥३४

विवस्वास्तुततोक्रुद्धश्रुत्वाश्वमुरमभ्यगात् ।

सचापितपथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ।

निदंभ्युकामरोपेणसान्त्वयामामसुव्रत. ॥३५

तवातितेजसाव्याप्तमिदरूपसुदुसहम् ।

अमहन्तीतत्सज्ञावनेचरतिवन्तप ॥३६

द्रक्ष्यतेताभवानद्यस्वभार्याशुभचारिणीम् ।

रूपार्थंभवतोऽरण्येचरन्तीसुमहत्तप ॥३७

स्मृतमग्रहणोवाक्ययदितेदेवरोचते ।

रूपनिवर्तयाम्येतत्तवयान्तदिवस्पते ॥३८

यतोहिभास्वतोरूपप्रगासीत्परिमण्डलम् ।

ततस्तथेतितप्राहृत्वष्टारमगवानुरवि ॥

विद्वक्मत्स्विनुज्ञातभ्रावद्धीपेविवस्वत ।

अभिमारोप्यतरोजनातनायोपचक्ष्मे ॥४०

तब छाया राणा ने सत्य बात छिपा कर बुद्ध वहाँना बना दिया इस
पर सूर्य भगवान् ने दार्ढिक इति से गरुड पटना की दारनविहता जान की और

वे छाया-मंजा को शाप देने के लिये उल्टत हुये । इस पर छाया-संज्ञा भयभीत होकर कांप उठी और जो कुछ घटना घटी थी वह सब खोल कर सुनादी । सारा हाल जान कर सूर्य को बड़ा क्रोध पैदा हुआ और मन में छाया समस्त विश्व को दग्ध कर दें । तब विश्व-कर्मा ने उनकी यथाविधि पूजा करके उनको शान्त किया और कहा कि तुम्हारे इस अत्यन्त दुःसह तेज को सहन न कर सकने से संज्ञा तप करने लगी गई है । उसे अब भी एकान्त वन में तपस्या और संयम का पालन करते देख सकते हैं । अगर आपकी आज्ञा होती मैं आपके वर्तमान रूप और आकार को सोम्य और दर्शनीय रूप में परिवर्तन करूँ । सूर्य भगवान् ने विश्व की बातों से संतुष्ट और प्रसन्न होकर कहा— 'ऐसा ही करो ।' तब भगवान् भास्कर शाकद्वीप में चले गये और विश्व कर्मा उन्हें खराह के समान घुमाकर नवीन सौम्य रूप देने लगे ॥ ३३-४० ॥

भ्रमताऽशेष जगतां नाभिभूतेनभास्वता ।

समुद्राद्रिवनोपेतासारुरोहमहीनभः ॥४१

गगनञ्चाखिलंब्रह्मन्सचन्द्रग्रह तारकम् ।

अधोगतमहाभागबभूवाक्षितमाकुलम् ॥४२

विक्षिप्त सलिलाःसर्वबभूवुश्चतथाब्धयः ।

वर्षाभद्यन्तमहाशैलाःशीर्षांसानुनिबन्धनाः ॥४३

ध्रुवाधाराण्यशेषाणिष्विष्यान्निमुनिसत्तम ।

वृट्यद्रश्मिनिबन्धानिह्यधोजग्मुःसहस्रशः ॥४४

वैगभ्रमण संजातवायुक्षिप्ताःसमन्ततः ।

व्यशीर्यतमहामेघाघोर रावविराविराः ॥४५

भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तंभूम्याकाशरसातलम् ।

जगादाकुलमत्यर्थतदासीन्मुनिसत्तम ॥४६

त्रैलोक्येसकलेविप्रभ्रममाणसुरर्षयः ।

देवाश्चब्रह्मणासाह्वंभास्वन्तर्माभितुष्टुः ॥४७

आदिदेवोऽसिदेवानांज्ञातमेतत्स्वरूपतः ।

स्वर्गस्थित्यन्तकालेषुत्रिधाभेदेनतिष्ठसि ॥४८

स्वस्तितेऽस्तुजगन्नाथधर्मवर्षाहिमाकर ।

जुपस्वशान्ति लोकाना देवदेवदिवाकर ॥४१

इन्द्रश्रागत्यतदेवलिख्यमानयथाऽस्तुवत् ।

जयदेवजगद्ब्यापिञ्जयाशेष जगत्पते ॥५०

मार्कण्डेय जी कहने लगे—ममस्त विश्व के नाभि स्वरूप भगवान् मास्वर के घूमने से समुद्र, पर्वत, वन, जलज्योत, पृथ्वी, आकाश आदि अस्थिर होने लगे । उस समय चन्द्रमा, ग्रह, तारागण आदि के सहित सम्पूर्ण गगन-भण्डल ही नीचे गिरता हुआ सा जान पड़ने लगा । समस्त सागर, नदी, जला-शयो की जलराशि में हलचल पैदा होगई और महापर्वतों के शिलर-बिखरने लगे । ध्रुव अपने स्थान से च्युत होने लगा और इससे समस्त आकाशस्थ पिंडों की स्थिति उलटी-पलटी होने लगी । सब नीचे गिरने लगे । वायु भी महा भयङ्कर वेग से बहकर काटने लगी और महामेघ और शब्द करने लगे । इस प्रकार सूर्य भगवान् के घूम जाने पर पृथ्वी, आकाश और रसातल में सर्वत्र अश्रुंखलता, गड़बड़ी उत्पन्न होकर समस्त विश्व में आकुलता फैल गई । इस प्रकार त्रिलोक घूम जाने से सर्वत्र सङ्कट आया देखकर देवपि, देवगण, ब्रह्मा आदि भगवान् आदित्य की स्तुति, प्रार्थना करने लगे—आप समस्त देवों में आदि देव हैं, आपकी महिमा सर्वत्र विदित है, आप ही स्वर्ग आदि समस्त लोकों और अखिल भुवनों की स्थिति का कारण है, आप ही सबकी रक्षा और कल्याण करने वाले हैं । हे जगन्नाथ ! आप ही श्रीष्म, वर्षा और घीन स्वरूप हैं । हे सब देवों में महान् दिवाकर देव । प्रसन्न होकर त्रिलोक की व्याकुलता को दूर करो । स्वर्गाधिपति इन्द्र ने भी आकर सूर्य भगवान् की स्तुति की—हे देव ! आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं, आपकी जय हो, हे अखिल जगत्पति आपकी जय हो ॥४१ से ५०॥

श्रुपयश्चतत सप्तत्रसिष्ठात्रिपुरोगमा ।

तुष्टुवृषिविधिंस्तोत्रं स्वस्तिस्वस्तीतिवादिन ॥५१

वेदोक्ताभिरथाग्र्यामिर्वालिखित्याश्रतुष्टुवु ।

भास्वन्तभृगिभराद्याभिलिख्यमानंमुदायुता ॥५२

त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षोध्येयस्त्वंध्यानानांपरः ।

त्वंगतिःसर्वभूतानांकर्मकाण्डेऽपिवर्तताम् ॥५३

शंप्रजाम्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ।

शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे ॥५४

ततोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ।

कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभिःप्रणतारविम् ॥५५

ऊवुरवं विधावाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः ।

सह्यंभवतुतेतेजोभूतानांभूतभावन ॥५६

इसके पश्चात् अग्नि, अग्नि आदि सातों ऋषियों ने स्वस्ति वचन उच्चारण करके सूर्य भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति की। बालखिल्य ऋषि भी ऋग्वेद के आद्य वचनों द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे—“हे भगवन् ! आप ही मुमुक्षुजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले, ध्यानी पुरुषों के ध्येय और कर्मकारण बालों को शुभ फल देने वाले तुम्हीं ही। हे देव ! हे जगन्नाथ ! आप समस्त प्रजा का, हमारा और हमारे द्विपद तथा चतुष्पद जीवों का कल्याण करो। फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदि सब हाथ जोड़कर सूर्य भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे—हे भगवन् ! आपका तेज समस्त छोटे-बड़े जीवों के सहन करने योग्य हो। सब कोई उससे सुखी हो सकें ॥५१ से ५६॥

ततोहाहाहूहृश्च वनारदस्तुम्बुस्तथा ।

उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम् ॥५७

षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ।

मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसंप्रयोगैःसुखप्रदम् ॥५८

विश्वाचीचधृताचीचउर्वश्यथतिलोत्तमा ।

मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा ॥५९

ननृतुर्जगतामीशेलिख्यमानेविभावसी ।

ज्ञानभावविलासाङ्घ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयावहून् ॥६०

प्रावाचन्ततस्तत्रवेणुवीणादिभ्रुङ्गीरा ।
 पणवा पुष्कराश्च वमृदङ्गा पटहानकाः ॥६१॥
 देवदुन्दुभय शङ्खाः शतशोऽथसहस्रशः ।
 गायत्रिश्च वगाधर्वनृत्यत्रिश्चाप्सरोगणैः ॥६२॥
 तूर्यवादित्रयोपञ्चसर्गकोलाहलीकृतम् ।
 तत कृताञ्जलिपुटाभक्तिभ्रात्ममूर्तय ॥६३॥
 तिस्यमानसहस्राशु प्रसोमु सर्ष देवताः ।
 तत कोलाहलेतस्मिन्सर्ष देवसमागमे ।
 तेजस शान्तनश्चक्रे विश्वकर्माशनं शनै ॥६४॥

इति हिमजलधर्मकालहेतोर्हंरकभलासनविष्णुसस्तुतस्य ।
 तनुपरिलिखननिशम्यभानोर्न जतिदिवाकरलोकमायुषोऽप्ते ॥६५॥

इसके अनन्तर सगीत घास्र मे निपुण हाहा-हूहू, तुम्बर, नारद आदि पंडित, मध्यम और गायार तीनों घामो तथा मूच्यंता, ताल आदि के नियमानुसार सूर्य भगवान् के सम्मुख श्रेय गायन करने लगे ॥५७-५८॥ उसी अवसर पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजग्या, रम्भा आदि स्वर्ग की आमराएँ भी सूर्य भगवान् के नवीन रूप से प्रसन्न होकर हाव-भाव पूर्वक तरह तरह के नृत्यों का प्रदर्शन करने लगीं ॥५९-६१॥ देवनन्द द्वारा वेणु, वीणा, दुंदूर पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटव, भ्रानक, दुन्दभी, शख आदि हजारी वाद्यों की ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गणपती के सगीत, अप्सराओं के नृत्य और देवगणों के वाद्या के शब्द द्वारा उस समय समस्त जगत् महात् ध्वनि से भर गया । फिर सब किसी ने अत्यन्त भक्ति और विनय सहित भगवान् भास्वर की नमस्कार किया । उसी कोलाहल के बीच विश्वकर्मा धीरे-धीरे सूर्य के तेज को कम करते गये ॥६१-६४॥ जो सूर्य भगवान् जाड़ा, वर्षा और घोष आदि श्रुतियों के उत्पादक हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी त्रिनकी स्तुति करते उनकी यह तनुनिस्तन की कथा भक्ति पूर्वक सुनने से भानुजोक में मर्दगति प्राप्त होती है ॥६५॥

६६—विश्वकर्मा द्वारा सूर्यस्तवन

लिख्यमानेततोभानीविश्वकर्माप्रजापतिः ।

उद्भूतपुलकःस्त्रोत्रमिदंचक्रे विवस्वतः ॥१

विवस्वतेप्रणतहितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ।

सुतेजसेकमलकुलावबोधिनेनमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥२

पावनातिशयपुण्यकर्मणोनैककामविषयप्रदायिने ।

भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणे नमः ॥३

अजायलोकत्रयकारणायभूतात्मनेगोपतयेवृषाय ।

नमोमहाकारिणकोत्तमायसूर्य्यायिचक्षुःप्रभवालयाय ॥४

विवस्वतेज्ञानभृतेन्तरात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ।

स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुषेसुरोत्तमायामिततेजसेनमः ॥५

क्षरामुदयाचलमौलिमणिःसुरगरामहितहितोजगतः ।

त्वंमयूखसहस्रवपुर्जंगतिविभासितमांसिनुदन् ॥६

भवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहता ।

मिहिरविभासियतः सुतरांत्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥७

मार्कण्डेय जी कहने लगे—जिस समय विश्वकर्मा जी सूर्य भगवान् के तेज को क्षीण करके सहन योग्य बना रहे थे, उस समय उसके तवीन रूप के दर्शन से पुलकित होकर उन्होंने उस मूर्ति का स्तवन किया । विश्वकर्मा जी बोले—जो जीव आपके सम्मुख प्रणत हो रहे हैं । उन सबका आप कल्याण और कृपा करने वाले हैं । आप ही सम वेग वाले, सप्त अश्व वाले, कमलों को खिलाने वाले और अन्धकार को दूर करने वाले हैं, आपको नमस्कार हो । अत्यन्त पवित्र, पुण्य शाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अत्यन्त तीव्र किरणों से युक्त और समस्त लोकों के हितकारी भगवान् भास्कर को नमस्कार हो तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, पंचभूतों के मूल, रश्मि पति, धर्म स्वरूप, कृपालु और नेत्रों को प्रकाश देने वाले सूर्य भगवान् को नमस्कार हो । जगत् के आधार अन्तरात्मा के प्रकाश, स्वयम्भू, अखिल विश्व को दृष्टि शक्ति

देने वाले, देवों में श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। हे भगवन् ! तुम ही जगत् के हितकारी और उदयाचल के शिखर के माला स्वरूप हो, तुम ही सहस्रों रूप ग्रहण करके जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम्हीं तिमिर रूपी आसव को पान करन के निमित्त लोहित मूर्ति धारण करके किरणों द्वारा दीप्तिमान् होते हो ॥१-७॥

रथमधिरुह्यसमावयवन्नारुविकपितमुरुचिचिरम् ।

सततमस्त्रिभुव्यैर्भवंश्ररसिजगद्धितायविततम् ॥८

अमृतमयेनरसेनसमविवृधपितृनपितृपयसे ।

अरिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपेत्यलिखामिवपुः ॥९

पुकसमवर्णहयप्रथितंतवपदपासुपवित्रतमम् ।

नतजनवरसलमाप्रणतत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥१०

इतिमकलप्रमूर्तिभूतत्रिभुवनभावनघामहेतुमेकम् ।

रविमखितजगत्प्रदीपभूतत्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदात्वाम् ॥११

हे सूर्य नारायण ! जिस रथ पर चढ़कर सान घोड़ों के द्वारा जगत् के हितार्थं तुम विचरण करते हो वह समान अवयव वाला, आकर्षक विस्तार युक्त और किंचित् कांपने वाला है। हे पशुहन्ता ! तुम देवता और पितरों को एक ही साथ जीवन प्रदामक मुखा प्रदान करते हो। इसी निमित्त जगत् को हित कामना से मैंने प्रथम ही आपकी प्रणाम करके आपके देह को लिखा है (तथाशा) है। हे भक्तवत्सल ! हे त्रिभुवन को पवित्र करने वाले ! मैं आपकी ही इस हरी-भरी मूर्ति के कारण विश्वात हुआ हूँ और तुम्हारी चरण-रज के प्रताप से अश्वत्थ पवित्र माना जाता हूँ आप मेरी रक्षा करें। इस तरह मैं सर्वदा संसार के कारण रूप, त्रिभुवन को पवित्र बनाने वाले, तेज के भण्डार, जगत् के प्रकाशक और निर्माणकर्ता भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ ॥८-११॥

१००—रविमाहात्म्य वर्णन

एवंसूर्यस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मादिवस्पतेः ।
 तेजसःषोडशभागंमण्डलस्थमधारयत् ॥१
 शातितंस्तेजसोभागंर्दशभिःपञ्चभिस्तथा ।
 अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीत्तदावपुः ॥२
 शातितंचास्ययत्तेजस्तेनचक्रंविनिर्मितम् ।
 विष्णोःशूलंचशर्वस्यशिविकाधनदस्यच ॥३
 दंडःप्रेतपतेःशक्तिर्हमसेनापतेस्तथा ।
 अन्येषांचैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥४
 चकारतेजसाभानोभसुराण्यरिशान्तये ।
 इतिशातिततेजाःसशुशुभेनातितेजसा ॥५
 वपुर्दधारमार्तण्डःसर्वावयवशोभनम् ।
 सददर्शंसमाधिस्थःस्वांभाव्यांविडवाकृतिम् ॥६
 अघृष्यांसर्वभूतानांतपसानियमेनच ।
 उत्तरांश्चक्रुन्गत्वाऽऽवोभानुरागमत् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—विश्वकर्मा जी इस प्रकार सूर्य नारायण की स्तुति करके उनके तेज का पंद्रह अंश निकाल कर सोलहवाँ भाग क्षेप रहने दिया । इससे सूर्य का कलेवर अत्यन्त सुन्दर, सौम्य और कांति वाला बन गया जो पंद्रह अंश तेज निकाला गया था उसके द्वारा विश्वकर्मा ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुवेर की पालकी, यम का दण्ड, कार्तिकेय की शक्ति और अन्य कितने ही अमोघ अस्त्र निर्माण किये जिनसे देवगण शत्रुओं को जीत सकें । इस प्रकार मार्तण्ड का तेज नियन्त्रित हो जाने पर उनकी शोभा बहुत बढ़ गई और जगत् के हितार्थ उनका कलेवर अत्यन्त उत्तम बन गया । इस प्रकार परमोपयोगी आकार पाकर वे अपने स्थान पर स्थित हुए और फिर ध्यान लगाकर अपनी पत्नी को घोड़ी के रूप में देखा जो कुरु प्रदेश में उनके हितार्थ अत्यन्त संयम नियम सहित तपस्या कर रही थी । तब सूर्यदेव भी घोड़े का स्वरूप रखकर उसके पास पहुँचे ॥१-७॥

साचदृष्ट्वात्तमायान्तपरपु सोविशङ्कया ।
 जगामसमुखेतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥८
 ततश्चनासिकायोगतयोस्तत्रसमेतयो ।
 वडवायाचतेत्तं जोनासिकाभ्यादिवस्वत ॥९
 देवीतत्रसमुत्पन्नावश्विनोभिपजावरी ।
 नासत्यदस्त्रोतनयावश्विवक्राद्विनिर्गतौ ॥१०
 मार्काण्डस्यसुतावेतावश्वरूपधरस्यहि ।
 रेतसोऽन्तेचरेवन्त छङ्गीघन्वीतनुनघृक् ॥११
 अश्वारूढ समुद्भूतोवाणतूणसमन्वित ।
 तत स्वरूपममलदर्शयामासभानुमान् ॥१२
 तस्यशान्तसमालोक्यसारूपमुदमाददे ।
 स्वरूपधारिणीचेमामनिनायनिजालयम् ॥१३
 सज्ञाभाय्यीप्रीतिमतीभास्करोवारितस्कर ।
 तत् पूर्वमुत्तयोऽस्यासोऽभूद्वैवस्वतोमनु ॥१४

उनको समीप आते देवकर सज्ञा को अपने सतीत्व रक्षा की चिन्ता हुई और वह उनके सामने मुँह करके खड़ी हुई । जब दोनों की नासिकायें मिली तो सूर्य भगवान् का तेज नाक के मार्ग से ही घोड़ी के भीतर प्रविष्ट हुआ और उससे दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए जो देवगण के वैद्य बने । उनके मुख से निकले तेज से 'नासत्य' और 'दस्त्र' की उत्पत्ति हुई और शेष भाग से 'देवन्त' का जन्म हुआ जो रक्षा धारण, खडग और धनुष धारी हैं । फिर जब सूर्य भगवान् न अपना निमंत्रण शान्त रूप दिखाया तो सज्ञा परम प्रसन्न हुई और अपना वास्तविक रूप ग्रहण करके उनके साथ स्वगृह में आगये ॥८-१४॥

द्वितीयश्चयम शापाद्धर्महृष्टिग्नुरहात् ।
 यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ॥१५
 धर्मोभिरोचतेयस्माद्धर्मराजस्वत स्मृत ।
 श्रमयोमासमादायपादतप्तमहीतलम् ॥१६

पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रे पितास्वयम् ।
 धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥१७
 ततोनियोगेतंयाम्येचकारतिमिरापहः ।
 तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥१८
 पितृगामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः ।
 यमुनांचनदींचक्रोर्कलिदान्तरवाहिनीम् ॥१९
 अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ।
 गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोविनियोजितः ॥२०

संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु की पदवी पर अधिष्ठित हुए, उनसे छोटे यम धर्म के ज्ञाता होने से धर्मराज बने। वे धर्म और सत्य पर स्थिर रहकर प्रत्येक प्राणी के साथ न्याय युक्त व्यवहार करते थे, इसे उन्हें जीवों के कर्मों का फल देने का कार्य दिया गया। उनको छाया-संज्ञा ने जो शाप दिया था उसके फलस्वरूप उनके पैर का मांस कृमि पृथ्वी तल पर ले गये। सूर्य भगवान् ने उनको लोकपाल और पितरों का अधिकार भी दिया। पुत्री यमुना को कलिन्द देव में बहने वाली नदी बनाया गया। अश्विनी कुमारों को देवताओं का बँध, रेवन्त को गुह्यकों का शासक नियुक्त किया ॥१५-२०॥

एवमप्याहचततोभगवाँल्लोकभाधितः ।
 त्वमप्यशेषलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥२१
 अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषुच ।
 त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥२२
 क्षेमंबुद्धिसुखंराज्यमारोग्यंकीर्तिमुन्नतिम् ।
 नराणांपरितुष्टस्त्वंपूजितःसंप्रदास्यसि ॥२३
 छायासंज्ञासुतश्चापिसावर्णिःसुमहायशाः ।
 भाव्यःसोऽनागतकालेमनुःसावर्णिकोऽष्टमः ॥२४
 मेरुपृष्ठेतपोघोरमद्यापिचरतिप्रभुः ।
 भ्राताशानैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥२५

यवीयसीतुयाकन्याऽऽदित्यस्याभूद्विद्वजोत्तम ।
 अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपतो लोकपावनी ॥२६
 यस्तुज्येष्ठोमहाभाग सर्गोयस्येहसाम्प्रतम् ।
 विस्तरतस्यवक्ष्यामिमनोर्वैवस्वतस्यह ॥२७
 इदयोजन्मदेवानाशृणुयाद्वापठेतवा ।
 विवस्वतस्तूनाजानारवेर्माहात्म्यमेवच ॥२८
 आपदप्राप्यमुच्येतप्राप्नुयाच्चमहायशः ।
 अहोरात्रवृत्तपापमेतच्छ्रमयतेश्रुतम् ।
 माहात्म्यमादिदेवस्यमार्तण्डस्यमहात्मन ॥२९

भगवान् सूर्यं नारायण ने देवन्त से कहा कि तुम सब लोकों में पूजनीय
 होंगे और जो कोई अग्नि, शत्रु, चोर आदि के भय से आक्रान्त होकर तुम्हारा
 स्मरण करेगा तो तुम विपत्ति में उनकी रक्षा करने में समर्थ होंगे । छाया सज्ञा
 के पुत्र सावर्णं मेरु पर्वत पर तपस्या में निरत हैं और वे आगामी 'सावर्णिक'
 नाम के मन्वन्तर में मनु होकर महात्पद्मस्वी होंगे । उनके भ्राता धर्मेश्वर की
 प्रमुख ग्रह नियत किया । प्रमुना जो को भी नदियों में श्रेष्ठ स्नान दिया गया
 और वे लोकपावनी प्रसिद्ध हुई । वैवस्वत मनु का मन्वन्तर समय में चल रहा
 है । उनके वंश का विस्तार और वर्णन मन्वन्तर किया जायगा । इस प्रकार
 जो व्यक्ति सूर्य भगवान् का माहात्म्य और उनकी सन्तानों की क्या थक्का पूर्वव
 श्रवण करते हैं वे सब प्रकार की आपत्तियों से छुटकारा पाकर सुख सौभाग्य
 वे अधिमारी बनते हैं और उनके समस्त पाप दूर ही जाते हैं ॥२१-२९॥

१११—राज्य वद्धि की आयुर्वृद्धि

भगवन्वयित मम्यग्भानो मन्ततिसभव ।
 माहात्म्यमादिदेवस्यस्वरूपश्चातिविस्तरात् ॥१
 भूयोऽपिभावत्त सम्यङ्माहात्म्यमुनिसत्तम ।
 श्रोतुमिच्छाम्यहनन्मेप्रसन्नोववनुमर्हसि ॥२

श्रूयतामादिदेवस्यमाहात्म्यंकथयामिते ।
 विवस्वतोयज्ञकारपूर्वमाराधितोजनैः ॥३
 दमस्यपुत्रोविख्यातो राजाभूद्राज्यर्धनः ।
 ससम्यक्पालनंचक्रे पृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥४
 धर्मतःपाल्यमानंतुतेनराष्ट्रमहात्मना ।
 ववृधेऽनुदिनंविप्रजनेनचधनेनच ॥५
 हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्नाजन्यशेषतः ।
 निर्भयःसकलश्रोव्यापौरजानपदोजनः ॥६
 नोपसर्गो न चव्याधिर्न चव्यालोद्भवंभयम् ।
 नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रमहीपतौ ॥७

क्रौण्टुकि बोले—हे भगवन् ! सूर्य के माहात्म्य को मैं पुनः श्रवण करना चाहता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होकर उसे मुझे सुनाइये ॥१-२॥ मार्करण्डेयजी ने कहा—आदि देव भगवान् सूर्य ने पुराकाल में आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥३॥ दम के पुत्र राज्यवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने भले प्रकार से पृथ्वी का पालन किया ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने अपने धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा की, इसलिये उनके शासन काल में धन, जन से राष्ट्र की नित्य वृद्धि होने लगी ॥५॥ उनके राज्याहृद्ध होने पर अन्य राजा पुरजन और सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त पुष्ट हुई ॥६॥ उन राजा राज्यवर्द्धन के राज्य में कोई उपसर्ग, रोग हिंसक जीवों का तथा अनावृष्टि का भय आदि नहीं था ॥७॥

सईजिचमहायज्ञैर्देवानानिचार्थिनाम् ।
 सुधर्मस्याविरोधेनबुभुजेदिषयानपि ॥८
 तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ।
 सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्षयथा ॥९
 निदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृतः ।
 तस्यपत्नीवभूत्राथमानिनीनाममानिनी ॥१०

कदाचित्तस्यसासुभ्रू शिरसोऽप्यङ्गनाहता ।
 पश्यतो राजलोकस्यभूमोचाश्रूणिमानिनी ॥११
 तदश्रु बिन्दवोगान्नेयदातस्यमहीपते ।
 तदावीक्ष्याश्रुवदनातामपृच्छन्माननीम् ॥१२
 किमेतदितिपप्रच्छमाननीराज्यवधनः ॥१३
 पृष्ठासातुततस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ।
 नकिंचिदितिभूय पप्रच्छममहीपति ॥१४

वह महापत्नी का अनुष्ठान करके अर्घ्यार्थियों को दान देते और विषयों का भोग भी घम महित करते थे ॥१५॥ इस प्रकार राज्य शासन चलाते और भले प्रकार प्रजा पालन करते हुए उनका मात सहस्र वर्ष का समय एक दिन के समान व्यतीत होगया ॥१६॥ उनका विवाह दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पुत्री मानिनी से हुआ था ॥१७॥ एक समय राजपुत्र्यो के समक्ष रानी मानिनी राजा के शिर पर तल मल रही थी, तभी उसके नेत्र ने आँसू टपक पडा ॥११॥ जब वह आँसू राजा के शरीर पर पडा, तब उन्होंने उसके अश्रु पूर्ण नेत्र देखकर उसका कारण पूछा ॥१२॥ परन्तु,उमने कोई उत्तर नहीं दिया और वह बिना शब्द किय रुदन करने लगी, यह देखकर राजा न पूछा—तुम क्यों रो रही हो ? ॥१३॥ रानी ने राजा क प्रश्न का उत्तर 'कोई बात नहीं' कहकर दिया ॥१४॥

बहुधा पृच्छन्स्तस्यभूभृत सासुमध्यमा ।
 नकिंचिदितिहोवाचसाभूयोराज्यवधनम् ।
 किमेतदितिपप्रच्छमानिनीपार्यिवःपुन ।
 बहुधा प्रेरितातेनसाभर्त्रातित्रभाजिनी ।)
 दशयामासपलितकेशभारान्तरोद्भवम् ॥१५
 पौराणाचमहीपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ।
 ममातिमन्दभाग्यायाजहामायनृपस्तत ॥१६
 मधिऽम्याहतापत्नीशृण्वतासर्वभूमृताम् ।
 पौराणाचमहीपालायेतत्रामन्ममावृता ॥१७

शोकेनालं विशालाक्षिरोदितव्यं न ते शुभे ।
जन्मद्विपरिणामाद्या विकाराः सर्वजन्तुषु ॥१८॥
अधीताः सकला वेदा इष्टायज्ञाः सहस्रशः ।
दत्तां द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्नावरानने ॥१९॥
भुक्ता भोगास्त्वया साद्धये मर्त्यै रतिदुर्लभाः ।
सम्यक्च पालिता पृथ्वी शीर्य युद्धे ष्वनुष्ठितम् ॥२०॥
मित्रैः सहेष्टैर्हंसितं विहृतं च वनान्तरे ।
किमन्यन्न कृतं भद्रे पलितेभ्यो विभेषियत् ॥२१॥

राजा के पुनः अनेक बार प्रश्न करने पर भी जब रानी ने कीई उत्तर नहीं दिया, तो राजा का आग्रह बढ़ा और उनके चारन्वार पूछने पर रानी ने उनके बालों के बीच में एक श्वेत बाल दिखाया ॥१५॥ और बोली—हे महाराज ! क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है, आप इसे देखिये, यह मेरा मन्द भाग्य ही है, रानी की यह बात सुनकर राजा बड़े जोर से हँस पड़े ॥१६॥ उन्होंने हँसते-हँसते ही राजपुरुषों और पुरजनों के समक्ष ही रानी मानिनी से कहा ॥१७॥ हे बल्याणी ! हे विशाल नेत्र वाली ! तुम रोओ मत, क्योंकि सभी जीवों में जन्म, वृद्धि और परिणामादि विकार उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये इस विषय में शोक नहीं करना चाहिये ॥१८॥ मैंने सभी वेदों का अध्ययन, हजारों यज्ञों का अनुष्ठान, ब्राह्मणों को दान और पुत्रोत्पादन ॥१९॥ मनुष्यों के लिये दुर्लभ सुखों का तुम्हारे साथ उपभोग, भले प्रकार पृथिवी-पालन, न्याय पूर्वक सग्राम ॥२०॥ तथा मित्रों के साथ हास-परिहास और वन-विहार आदि सभी कार्य किये हैं, ऐसा कौन-सा कार्य मेरे द्वारा होने से रह गया है, जिसके लिये तुम मेरा पका हुआ बाल देखकर डर रही हो ॥२१॥

भवन्तुकेशाः पलितावलयः सन्तुमेशुभे ।
शैथिल्यमेतुमेकायः कृतकृत्योऽस्मिमानिनि ॥२२॥
मूर्ध्न्यद्दक्षितं भद्रं भवत्या पलितं मम ।
चिकित्सा भवतस्याहं करोमि वनसंश्रयात् ॥२३॥

धात्येवालक्रियापूर्वंतद्वत्कीमारकेचया ।
 यौवनेचापियायोग्यावाद्धं केवनसश्रया ॥२४
 एवमत्पूर्वंजैमंद्रे वृत्तत्वत्पूर्वंजैश्रयत् ।
 अतोनेत्थ्रु पातस्यक्वित्पश्याभिकारणम् ॥२५
 अलन्तेमन्युना भद्रे गन्वभ्युदयवारिमे ।
 दर्शनपलितस्यास्यमारोद्गीनिष्प्रयोजनम् ॥२६
 तत प्रणम्यतभूषा पौराश्रवमभीषगा ।
 साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षेराज्यवधंनम् ॥२७
 नरोदितव्यमनयातवपत्न्यानराधिप ।
 रोदिनव्यमिहास्माभिरथवासर्वजन्तुभि ॥२८

हे शुभे ! चाहे मेरे बाल पक गये हों, चाह देह निखिल हो जाय, इस
 अय में कोई हानि नहीं समझना, क्योंकि मैं अय धन्य होगया हूँ ॥२२॥ तुमने
 मेरे शिर में जो पत्रा हुआ वान्य देखा है, उसकी चिकित्सा बन कर प्राथय
 लेकर कहूँगा ॥२३॥ धात्यकाल में बाल क्रीडा, कौमारावस्था में उसके अनुष्ण
 कार्य और युवावस्था में भोगादि तथा वृद्धावस्था के प्राप्त होने पर बन का ही
 प्राथय लेना चाहिये ॥२४॥ मेरे पूर्व पुत्रों ने तथा उनके भी पूर्व पुरणों ने इसी
 प्रकार किया है, इसलिये मैं तुम्हारे रदन को व्यर्थ ही समझता हूँ, इसलिये
 शीत को छोड़ दो ॥२५॥ मेरे इन रगेन वंश का दिवायी देना, मेरा भाग्योदर
 होता ही है, इसलिये रदन नहीं करना चाहिये ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—
 हे महर्षे ! फिर पास में बैठे हुए राज पुत्रों और पुरवासियों ने महाराज राज्य-
 वर्द्धन को प्रणाम करके विनय पूर्वक कहा ॥२७॥ हे राजर्ष ! आपकी भाषा
 का रदन व्यर्थ है, परन्तु अय हमारे अथवा अन्य सत्र प्राणियों के राने का
 ममय प्राणया है ॥२८॥

त्वश्रुवीणिययानायवनवासाश्रितवच ।
 पतन्तिनेनन प्राणानानितानात्त्रयानृप ॥२९
 सप्येयास्यामहेभूषयदियातिभवान्वनम् ।
 ततोऽपक्रियाहानि सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०

भविष्यतिनसन्देहस्त्वथिनाथवनाश्रये ।
 साचधर्मोपघाताययदितत्प्रविमुच्यताम् ॥३१॥
 सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयंपालितामही ।
 तत्समुत्थंमहापुरायमालोकयनराधिप ॥३२॥
 वनेवसन्महाराजत्वंकरिष्यसियत्तपः ।
 तन्महीपालनस्यास्यकलानार्हतिषोडशीम् ॥३३॥
 सप्तवर्षसहस्राणिमयेयंपालितामही ।
 इदानींवनवासस्यममकालोयमागतः ॥३४॥
 ममापत्यानिजातानिदृष्ट्वामेऽपत्यसन्ततीः ।
 स्वल्पैरेवमहोभिर्मह्यन्तकोनसहिष्यति ॥३५॥

हे नाथ ! आप हमारा प्रति पालन करने वाले हैं, आपके मुख से वन का आश्रय ग्रहण करने की बात सुनकर हमारे प्राण ही निकले जा रहे हैं ॥३१॥ यदि आप वन को जाते हैं, तो हम सभी आपके साथ चलेंगे, क्योंकि आपके वनवासी होने पर मनुष्यों की सभी क्रिया नष्ट हो जायगी ॥३०॥ यदि आप इससे धर्म की हानि समझें तो अपने वनाश्रयी होने के विचार को छोड़ दीजिये ॥३१॥ हे राजन् ! आपको इस पृथिवी का पालन करते हुए सात सहस्र वर्ष हुए हैं, इतने काल में कितने महा-पुराय की उपलब्धि हुई है, इस पर विचार कीजिये ॥३२॥ हे राजन् ! वन में निवास करके वहाँ आप जितनी तपस्या करेंगे, उसका फल इस पृथिवी पालन रूप कर्म के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होगा ॥३३॥ राजा बोले—मैं सात सहस्र वर्ष से इस पृथिवी का पालन कर रहा हूँ, अब वनवास करने का उपयुक्त अवसर मेरे समक्ष उपस्थित है ॥३४॥ मेरे पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, उन पुत्रों की जो सन्तान होगी, उसे देखकर यमराज अब कुछ समय के लिये भी मेरा जीवित रहना सहन नहीं करेंगे ॥३५॥

यदेतत्पलितंमूर्ध्नितद्विजानीतनागराः ।

दूतभूतमनार्थस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥३६॥

सोऽह राज्येसुतकृत्वाभोगास्त्यक्त्वावनाश्रय ।

तपस्तप्स्येसमायान्तिनयावक्षमसैनिका ॥३७

ततोविद्यामु मवनदेवज्ञानवनीपति ।

पुत्रराज्याऽभिषेकायदिनलग्नान्यपृच्छत ॥३८

श्रुत्वाचतेतुनृपतेर्वचोव्याकुलचेतस ।

दिनलग्नचहोराश्रनविदु शास्त्रदृष्टय ॥३९

ऊचुश्चतमहीपालदेवज्ञावाष्पगदगदम् ।

ज्ञानानिन प्रणष्टानिश्रु त्वंततोवचोनृप ॥४०

ततोऽन्यनगरेभ्यश्चभृत्यैराष्ट्रेभ्यएवच ।

ततस्तस्माच्चनगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१

समुत्पत्यमहीपालतयियासु मुनेवनम् ।

प्रनम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणमत्तमा ॥४२

हे नागर्णिको ! मरे गिर म जा श्वेत वेश देवा गया है, उसी वेश को उग्र वर्म वाली मृत्यु का दूत सम्भो ॥३६॥ इमलिये मैं पुत्र का राज्याभिषेक करके और सम्पूर्ण भोगों को छोड़ कर वन में निवास करता हुआ वम सैनिकों को आने तक तप करूँगा ॥३७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर राजा ने वन में जाने का हृद निश्चय कर ज्योतिषियों से पुत्र के राज्याभिषेक दिन और लग्न दिखवाया ॥३८॥ राजा के वचन को सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी भी व्याकुल हृदय होगये और इन वारण लग्नादि देवगने में अममर्थ रहकर ॥३९॥ गदगद स्वर में राजा के प्रति बोले—हे राजन् ! आपकी बात सुनकर हमारा सभी ज्ञान लुप्त होगया है ॥४०॥ हे मुन ! इसके पश्चात् जो अन्यान्य राज्य उन महाराज के आधीन हुए थे, उनमें तथा उसी राजधानी के अन्य नगरों से अपने-आपके वृद्ध ब्राह्मण वहाँ ॥४१॥ आये और उन्होंने अपने गिर को कम्पित करते हुए राजा से इस प्रकार कहा ॥४२॥

प्रमोदपाहिनीराजन्यालिता म्मयथापुरा ।

सोदिप्यत्यसिनोलोकस्त्वयिभूपवनाश्रये ॥४३

त्वकुरप्सतयाराग्न्यधानोसीदनेजगत् ।

यावज्जीवामहेवीरस्वल्पकालमिमेवयम् ।
 नेच्छामश्चभवच्छून्यद्रष्टुं सिंहासनंविभो ॥४४
 इत्येवंतैस्तथान्यैश्चद्विजैःपौरपुरःसरैः ।
 भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्तःपुनःपुनः ॥४५
 वनवासविनिर्बन्धनोपसंहरतेयदा ।
 क्षमिष्यत्यन्तकोनेतिददौसचतदोत्तरम् ॥४६
 ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ।
 समेत्यमन्त्रयामासुःकिमत्रक्रियतामिति ॥४७
 तेषामन्त्रयतांविप्रनिश्चयोऽयमजायत ।
 अनुरागवतांतत्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥४८
 सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयामःसमाहिताः ।
 तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपतेः ॥४९

हे राजन् ! प्रसन्न होइये, हम पर अनुग्रह करते हुए पहिले के समान ही हमारा पालन कीजिये, हे महाराज ! आपके वन में जाने से सभी जीव अत्यन्त दुःखित होंगे ॥४३॥ इसलिये, जिस प्रकार यह विश्व दुःखी न हो वैसा ही कार्य करिये, हमारा जीवन अल्पकाल का ही रह गया है, इतने समय में हम इस सिंहासन को सूना नहीं देखना चाहते ॥४४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— उन विप्रगण, राजागण, प्रजाजन, मंत्रिगण और भृत्यों के द्वारा वारंवार अनुरोध किये जाने पर भी ॥४५॥ उन्होंने वनवास की इच्छा को नहीं छोड़ा और उन सबको यही उत्तर दिया कि 'यम मुझे क्षमा नहीं करेंगे' ॥४६॥ तब, ब्राह्मणों, वृद्ध पुरवासियों, मन्त्रियों और भृत्यों ने परस्पर विचार करना प्रारंभ किया कि 'अब क्या करें ?' ॥४७॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के प्रति स्नेह रखने वाले उन विप्रादि ने यही निश्चय किया कि ॥४८॥ हम भले प्रकार ध्यान पूर्वक तप के द्वारा भगवान् सूर्य का आराधन करें और इन राजा की आयु के लिये प्रार्थना करें ॥४९॥

तत्रैकनिश्चयाःकार्यैकेचिद्गेहेचभास्करम् ।

सम्यग्घोषचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥५०

अपरेमीनिनोभूत्वाऋगजापेनतथाऽपरे ।
 यजुषामथसाम्नाचतोपर्याश्वक्रिरेर वम् ॥५१
 अपरेचनिराहारानदीपुलिनशापिन ।
 तपासिचक्रुरिच्छन्तोभास्कराराधनद्विजाः ॥५२
 अग्निहोत्रपराश्रान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् ।
 जेषुस्तत्रापरेतस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टय ॥५३
 इत्येवमतिनिर्ग्रन्धभास्कराराधनप्रति ।
 बहुप्रकारचक्रुस्तेततविधिमुपाश्रिता ॥५४
 तथानुयततातेषामास्कराराधनप्रति ।
 सुदामानामागन्धर्वंउपगम्येदमब्रवीत् ॥५५
 यद्याराधनमिष्टवोभास्करस्यद्विजातय ।
 तदेतत्क्रियतायेनभानुप्रीतिमुपैष्यति ॥५६

ऐसा निश्चय करके सब सूर्य की पूजा करने लगे, किसी ने अर्घ्य देकर
 और किसी ने अन्य विधि से सूर्य भगवान् का पूजन किया ॥५०॥ किसी ने
 मौनावलम्बन कर ऋक् मन्त्र से, किसी ने सामवेद के मन्त्रों से और किसी ने
 यजुर्वेद के विधान से भगवान् भास्कर को सन्तुष्ट किया ॥५१॥ कोई नदी तट
 पर निराहार रह कर और कोई कठिन तप करके सूर्य की प्रसन्न करने लग
 ॥५२॥ किसी ने अग्निहोत्र परायण होकर दिन रात्रि निरन्तर रविमूत का
 जप किया और कोई भगवान् सूर्य की ओर देखत हुए ही खड़े रहे ॥५३॥ इस
 प्रकार वे सब अपनी अपनी विधि से भास्कर की आराधना में निश्चय पूर्वक
 लग गये ॥५४॥ उन्हें इस प्रकार सूर्य के आराधन में दृढ़ता से लगे हुए देखकर
 एक मुदामा नामक गन्धर्व वही आया और उन आराधकों से बहने लगा ॥५५॥
 हे विप्रगण ! यदि सूर्य की ही आराधना आपका लक्ष्य है तो, इस प्रकार से
 आराधना करो जिससे वह प्रसन्न हो सकें ॥५६॥

तन्माद्गुधविगालाह्यवनसिद्धनिपेयितम् ।

यामत्पेमहाशंतेगम्यतातत्रबलधु ॥५७

तस्मिन्नाराधनंभानोःक्रियतांसुसमाहितैः ।
 सिद्धक्षेत्रंहितं तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥५८
 इतितेतद्वचश्च त्वागत्वातत्काननं द्विजाः ।
 ददृशुर्भास्वतस्तत्र पुण्यमायतनं शुभम् ॥५९
 तत्र ते नियताहारावर्णाविप्रादयो द्विज ।
 धूपपुष्पोपहाराढ्यांपूजांचक्रुरतन्द्रिताः ॥६०
 पुष्पानुलेपनाद्यंश्च धूपगन्धादिकंस्तथा ।
 जपहोमान्नदानाद्यैः पूजनं ते समाहिताः ।
 कुर्वन्तस्तुष्टुयुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तं द्विजातयः ॥६१

कायरूप महापर्वत में एक गुह विशाल नामक वन है, जो सिद्धों द्वारा सेवित है, तुम उसी वन में जाकर ॥५७॥ सावधान चित्त से सूर्य का आराधन करो, इससे आपके इच्छित कार्य की सिद्धि होती है, क्योंकि ऐसे कार्यों के अनुष्ठान में सिद्ध क्षेत्र ही अधिक फल देने वाला होता है ॥५८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! गन्धर्व की यह बात सुनकर सब आराधक ब्राह्मण उस वन में पहुँचे, वहाँ उन्हें भगवान् सूर्य का पवित्र मन्दिर दिखायी दिया ॥५९॥ ब्राह्मणादि सभी वर्गों ने वहाँ नियत आहार का अवलम्बन करके, प्रमाद रहित हो गन्ध-पुष्पादि के द्वारा सूर्य का पूजन किया ॥६०॥ हे विप्र ! गन्ध, पुष्प, अनुलेप, धूप, दीप, नैवेद्य पूर्वक जप, होमादि करते हुए सावधान चित्त से सभी आराधक ब्राह्मण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥६१॥

देवदानवयक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि ।
 तेजसाभ्यधिकं देवब्रजामशरणं रविम् ॥६२
 दिवि स्थितं च देवेशं चोत्तमन्तं समन्ततः ।
 वसुधामन्तरिक्षं च व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ॥६३
 आदित्यं भास्करं भानुसवितारं दिवाकरम् ।
 पूषणमर्यमाणां च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥६४

चतुर्गुणान्तवाताग्निदुष्प्रेक्ष्यप्रलयान्तगम् ।
 योगीश्वरभनन्तचरक्त पीतसितासितम् ॥६५
 ऋषीणामग्निहोत्रेपुयज्ञदेवेष्ववस्थितम् ।
 ब्रजामरारण्यदेवतेजोराशितमच्युतम् ।
 अक्षरपरमगुह्य मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६
 छन्दोभिरश्वरूपैश्चमकृष्य क्तं विहङ्गमम् ।
 उदयास्तमनेयुक्त सदामेरो प्रदक्षिणे ॥६७
 अनृतचरुतचैवपुण्यतीर्थपृथग्विधम् ।
 विश्वस्थितिमचिन्त्यचप्रपन्ना स्मप्रभारम् ॥६८

ब्राह्मणों ने कहा—देवता दैत्य, यक्ष और ज्योतिष-ग्रहों में अत्यधिक तेज सम्पन्न भगवान् भास्कर की शरण में हम आये हैं ॥६२॥ जो देवेश्वर आकाश में रह कर सभी दिशाओं को प्रकाशित तथा अपनी रश्मियों से सम्पूर्ण पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं ॥६३॥ जो आदित्य, भास्कर, भानु, मविनादेव, दिवाकर, पूषा, अयंमा, स्वभानु, दीप्त, दीधिति ॥६४॥ और योगीश्वर कहे जाते हैं और चतुर्गुणों के अन्त में दुष्प्रेक्ष्य कालाग्नि के समान होते हैं अथवा जो अनन्त, लाल, पील, श्वेत और वृष्णा हैं ॥६५॥ जो ऋषियों के अग्निहोत्र के समय यज्ञदेव के रूप में अवस्थित होते हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, अन्तर्ध्वष्ट मुक्तिद्वार रूप ब्रह्म हैं, जो एक बार युक्त हुए छन्द रूप अश्व पर आरूढ़ होकर आकाश में स्थित हैं, उदय और अस्त तक गमनशील और गुमेरु की प्रदक्षिणा में तदा तत्पर रहते हैं ॥६६-६७॥ जो अमत्य, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथक्-एक में विश्व में अत्रस्थित हैं, उन अदिनि-पुत्र अचिन्त्य स्वरूप आदिदेव भास्कर प्रभार की हमने शरण ग्रहण की है ॥६८॥

यो ब्रह्मायोमहादेवो यात्रिण्युयं प्रजापति ।
 वायुगवाशमापन्नपृथिवीगिरिसागरा ॥६९
 ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानरपत्यद्रुमोपधम् ।
 व्यक्ताशक्तपुभूनेपुधर्माधर्मप्रवर्तक ॥७०

ब्राह्मीमाहेश्वरीचैववैष्णवीचैवतेतनुः ।
 त्रिधायस्यस्वरूपन्तु भानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥७१
 यस्यसर्वमयस्येदमङ्ग भूतजगत्प्रभोः ।
 सनःप्रसीदतांभास्वाञ्जगतांयश्चजीवनम् ॥७२
 यस्यकमक्षरंरूपंप्रभामण्डलदुर्दृशम् ।
 द्वितीयमैन्दवंसौम्यसनोभास्वान्प्रसीदतु ॥७३
 ताभ्यांचतस्यरूपाभ्यामिदंविश्वंविनिमित्तम् ।
 अग्नीषोममयंभास्वान्सनोदेवःप्रसीदतु ॥७४
 इत्थंस्तुत्यातदाभक्त्यासम्यक्पूजाविधानतः ।
 तुतोषभगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥७५
 ततःसमण्डलादुच्च त्रिजबिंबसमप्रभः ।
 अबतीर्यददीतेभ्योदुर्दृशोदर्शनंरविः ॥७६
 ततस्तेस्पष्टरूपंतंसवितारमजजनाः ॥
 पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणमिरे ॥७७
 नमोनमस्तेस्तुसहस्ररश्मेसर्वस्यहेतुस्त्वमशेषकेतुः ।
 पातात्वमीडधोऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथायोगविदांप्रसीद ॥७८

जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथिवी, पर्वत और सागर हैं ॥६९॥ जो ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, वृक्ष, वनस्पति, औषधि स्वरूप है तथा जो व्यक्त और अव्यक्त भूतों के धर्म और अधर्म का प्रवर्तन करने वाले हैं ॥७०॥ तथा ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी के भेदसे जिनका स्वरूप तीन प्रकार का हुआ है, वह सूत्रेनारायण हम पर प्रसन्न हों ॥७१॥ जिन अनादि जगदीश्वर के अंक में विश्व के सभी पदार्थ स्थित हैं और जो विश्व के प्राणरूप हैं वह भगवान् भास्कर हम पर प्रसन्न हों ॥७२॥ जिनका प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्दृशा एवं अद्वितीय है और जिन के दिवा कर तथा सुशारु र दो रूप हैं, वह भास्कर हम पर प्रसन्न हों ॥७३॥ जिनके उन्हीं विश्वात् दो स्वरूपों से इस अग्निषोममय संसार की रचना हुई है, वही भगवान् प्रसन्न हों ॥७४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार स्तोत्र-पाठ पूर्वक

जब उन्होंने तीन महीने तक पूजन किया, तब भगवान् प्रसन्न हुए ॥७५॥
 तब स्वयं दुर्दश होकर भी उन्होंने आकाश मंडल में प्रकट होकर अपनी उदय-
 कालीन प्रभा सहित उन्हें दर्शन दिया ॥७६॥ उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन
 करके पुलकायमान हुए उन मनुष्यों ने भक्ति से विनम्र होकर उन अनादि
 सवितादेव को प्रणाम करते हुए कहा ॥७७॥ हे सहस्ररश्मे ! आपको नमस्कार
 है, आप सभी भूतो के कारण और अग्निल विश्व के पताकारूप हो, हे अग्नि
 यज्ञधाम ! आप ही सब यज्ञ के आश्रय और योगियों के ध्यान योग्य हो,
 आप हम पर प्रसन्न हों ॥७८॥

६२--राजा और प्रजा की आयु वृद्धि

ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ।
 प्रियतायदभिप्रेतमत्त प्राप्तु द्विजादय ॥१॥
 ततस्नेप्रणिपत्योर्चुर्विप्रक्षत्रादयोजना. ।
 समाध्वसमशीताशुमवलोक्यपुरःस्थितम् ॥२॥
 भगवन्यदिनोभक्त्याप्रमन्तस्तिमिरापह् ॥३॥
 दशवर्षमहन्नाणिततोनीजीवतानृप ।
 निरामयोजिताराति सुकोश स्थिरयीवन ॥४॥
 तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ।
 तेऽपिलब्धवरात्दृष्ट्वा सभाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥५॥
 यथावृत्त चेतस्मैनेरेन्द्रायन्यवेदयन् ।
 वग्लच्छ्वासहन्नाशो सकाशादग्निद्विज ॥६॥
 तच्छ्रुत्वाजतदृपेतस्यमापत्नीमानिनीद्विजा ।
 (प्रहर्षपरमयाताहर्षोद्गततनूरुहा)
 मचराजाचिरदध्योनाह्निचिञ्चनजनम् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर भगवान् गुरु ने प्रसन्न होकर उन सब

से कहा—हे ब्राह्मणो ! तुम मुझ से जो प्राप्त करना चाहते हो, वह मुझ से माँगो ॥१॥ तब उन ब्राह्मणों ने उनको अपने सामने देख कर उन्हें प्रणाम किया और उन वरदायक भगवान् से बोले ॥२॥ विप्र प्रजागण ने कहा—हे भगवन् हे अन्धकार का नाश करने वाले प्रभो ! यदि आप हमारी भक्ति के कारण हम पर प्रसन्न हुए हैं ॥३॥ हमारे महाराज राज्यवर्द्धन रोग-रहित, शत्रुओं के विजेता और स्थिर यौवन वाले होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहें ॥४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महा मुने ! भगवान् सूर्य ने उनसे 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये तब वे सभी ब्राह्मण वर प्राप्ति से प्रसन्न-चित्त होकर राजा के पास पहुँचे ॥५॥ हे ब्रह्मन् ! सहस्र रश्मि वाले भगवान् सूर्य से वर प्राप्त होने इत्यादि का सम्पूर्ण वृत्तान्त उन ब्राह्मणों ने राजा को बताया ॥६॥ उस वृत्तान्त को सुन कर राजमहिषी मानिनी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई, जिससे उसका देह पुलकित हो गया, परन्तु राजा भीन रह कर बहुत समय तक विचार करते रहे ॥७॥

ततःसामानिनीभूपंहर्षापूरितमानसा ।

दिष्ट्याऽऽयुषामहीपालवर्द्धस्वेत्याहृतंपतिम् ॥८

तथातयामुदाभर्त्तामानिन्याथसभाजितः ।

नाहकिचिन्महीपालचिन्ताजडमनाद्विज ॥९

सापुनःप्राहभर्त्तारंचिन्तयानमधोमुखम् ।

कस्मान्नहर्षंमभ्येपिपरमाभ्युदयेनृप ॥१०

दशवर्षसहस्राणिनीरुजःस्थयीवनः ।

भावीत्वमद्यप्रभृतिंकितथापिनत्तृष्यसे ॥११

किन्तुतत्कारणंब्रूहिथच्चिन्ताकृष्टमानसः ।

परमाभ्युदयेऽपित्वंसंप्राप्तेपृथिवीपते ॥१२

कथमभ्युदयोभद्रे किंसभाजयसेचमाम् ।

प्राप्तोदुःखसहस्राणांकिंसभाजनमिष्यते ॥

दशवर्षसहस्राणिजीविष्याम्यहमेककः ।

नत्वंतवविपत्तीमेकिन्नुःदुःखमविष्यति ॥१४

फिर मानिनो ने प्रमत्तचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! इस बड़ी हुई श्वाभु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हो ॥५॥ प्रसन्न चित्त वाली मानिनो के सत्कृत वचन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया ॥६॥ चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर मानिनो ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रमत्त क्यों नहीं हैं ? ॥१०॥ अब आप निरामय और स्थिर यौवन हो कर दण महत्त वर्ष नष्ट और जीवित रहेंगे फिर आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ॥११॥ हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता में व्यक्तुन हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ॥१२॥ राजा ने कहा—हे भद्रे ! मेरा कौन-सा भाग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस तिये कर रही हो ? सत्कृत्यो दसो को प्राप्त होकर भी मैं किम आनन्द का उपभोग करूँगा ? ॥१३॥ मैं एकाकी ही दण महत्त वर्ष जीवित रहूँगा, परन्तु तुम जीवित नहीं रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दुःख नहीं होगा ॥१४॥

पुत्रा-पीत्रान्प्रपीत्राञ्चनथान्वान्निष्त्वान्घयान् ।
 पश्यतोमेमृतान्दु सकिमरपहिभविध्यति ॥१५
 भृत्येषुचातिभक्तेषुमिश्रवर्गैतथाभृते ।
 भद्रेद्दु समपारमेभविष्यतितुसन्ततम् ॥१६
 यमंदर्थतपस्तत कृशंधंमनिसन्तर्त ।
 तैमरिष्यन्त्यहभोगीजीविष्यामीतिधिवकरम् ॥१७
 मेयमापद्वगाराहेप्राप्तानाम्युदयामम ।
 कथयामन्यसेनस्वयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ॥१८
 महाराजयथात्यत्वतथैतन्नात्रसशय ।
 मयापीरैश्चदापोऽयप्रीत्यानालोकितस्तव ॥१९
 एवगतेऽत्रकिवार्यनरनाथविचिन्त्यताम् ।
 नान्यथाभावियत्प्राहप्रमन्नोभगवाग्रवि ॥२०
 उपहारःकृत पीरै प्रीत्याभृत्यैश्चयोमम ।
 कथमोऽयाम्यहभोगान्वातेपामनिष्कृतिम् । २१

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दुःख भोगना पड़ेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नहीं है ? ॥१७॥ मेरी यह दश सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नहीं हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मतिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दुःख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियों ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नहीं दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियों और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख को भोगूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिगत्वानियतमानसः ।

(पौरलोकहितार्थचतोषयिष्यामिभास्करम् ।

यथापौराममकृतेवांन्धवाश्चसमन्ततः ।

अराधनायदेवेशतथाहमपिसंप्रतम्) ।

तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः ॥२२

दशवर्षसहस्रारिण्यथाहंस्थिरयौवनः ।

तस्यप्रसादाद्देवस्यजोविष्यामिनिरामयः ॥२३

तथायदिप्रजाःसर्वाभृत्यास्त्वंवसुताश्रमे ।

पुत्राःपौत्राःप्रपौत्राश्चसुतहृदश्चवरानने ॥२४

जीवन्त्येतंप्रसादं चकरोतिभगवाश्रविः ।

ततोऽहंभविताराज्येभोक्ष्येभोगांस्तथामुदा ॥२५

नचेदेवंकरोत्यर्कंस्तदाद्रौतत्रमानिनि ।

तपस्तप्स्येनिराहारयावज्जीवितसंचयः ॥२६

इत्युक्त्वासातदातेनतयेत्याहनराधिपम् ।
जगामतेनचसमसाऽपितधरणीधरम् ॥२७
सतदायतनगत्वाभार्ययासहपाथिवः ।
भानोराराधनचक्रेशुश्रूपांनिरतोद्विज ॥२८

इससे तो यही उचित है कि मैं अब प्रभृति पर्वत पर जाकर पुरवासियों के लिये धोर तप करूँ, जिस प्रकार उन्होंने मेरे हितार्थ चाराधन किया है, उसी प्रकार मैं भी उनके हितार्थ भागवान् सूर्य की चाराधना के उद्देश्य से निराहार रह कर तपस्या करूँगा ॥२७॥ जैसे उनकी कृपा से मैं स्थिर जीवन और रोग रहित होकर दस सठस वर्ष तक जीवित रहूँगा, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण प्रजा, भृत्य, तुम पुत्री, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और सभी सुहृदगणादि जीवित रह, यदि भगवान् भास्कर मुझ पर कृपा करेंगे तभी मैं प्रमत्त चित्त पूर्वक राज्य का भार वहन करता हुआ सुख भोग करूँगा ॥२३-२५॥ परन्तु, यदि भगवान् सूर्य ने ऐसी कृपा नहीं की तो, जब तक मेरा यह जीवन रहेगा, तब तक निराहार कर उमी पर्वत में तप करना रहूँगा ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज की बात सुन कर राजमहिषी भाविनी ने उनका अनुमोदन किया और वह अपने पति के साथ उमी पर्वत में चली गई ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! अपनी पत्नी सहित राजा उसी मंदिर में पहुँचे और तपस्या पूर्वक भगवान् सूर्य की उत्कट चाराधना में तत्पर हुए ॥२८॥

निराहाराशुशासाचययासीपृथिवीपतिः ।
तेपेनपन्तथेवोप्र शीतवातातपक्षमा ॥२९
तस्यपूजयतीभानु तप्यनञ्चनपोमहत् ।
भाश्रैसवत्सरेयात्ततत प्रीतोद्दिवावरः ॥३०
समन्तभृत्यपौरादिपुत्राणाचतृत्तैद्विज ।
ददीययाभिनपिनवद्विजवरोत्तम ॥३१
सद्व्यावरमनृपति ममभ्येत्वात्मन पुरम् ।
चवारमुदितोराज्यप्रजाधर्ममपालयन् ॥३२

ईजियज्ञान्सचवहुन्ददीदानान्यहर्निशम् ।

मानिन्यासहितोभोगान्वुभुजेचसधर्मवित् ॥३३

दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिःसह ।

भृत्यैःपौत्रैःप्रमुदितःसोऽभवत्स्थिरयौवनः ॥३४

तस्येतिचरितंदृष्ट्वाप्रमतिर्नामभार्गवः ।

विस्मयाकृष्टदहदयोगाथामेतामगायत् ॥ ५

जैसे निराहार रहने के कारण राजा दिनों दिन कृश होते जा रहे थे, वैसे ही रानी भी शीत, बायु, उष्यतादि के कष्टों को सहती हुई क्षीण देह होने लगी और तपस्या में लगी रही ॥२६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जब उन्होंने इस प्रकार भगवान् सूर्य की उपासना में एक वर्ष से अधिक काल व्यतीत कर दिया, तब भगवान् ने प्रसन्न होकर ॥३०॥ समस्त भृत्य, पुरजन और पुत्रादि के सहित बाला मनोवाञ्छित वर उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ वर प्राप्त करके राजा पत्नी के सहित अपने घर को लौटे और प्रसन्नचित्त से धर्मपूर्वक प्रजा का पालनादि करते हुए राज्य करने लगे ॥३२॥ वह धर्मिन् महाराज अपनी राजमहिषी के सहित अनेक यज्ञानुष्ठान करते और सत्पात्रों को दान देते हुए सुख भोगने लगे ॥३३॥ इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरवासी आदि के सहित स्थिर यौवन और प्रसन्न चित्तता लाभ करके दश सहस्र वर्ष व्यतीत किये ॥३४॥ उस समय भृगुवंशी महर्षि प्रमति ने उनका ऐसा चरित्र देख कर विस्मय युक्त होकर इस प्रकार गाथा कीर्तन की थी ॥३५॥

भानुभक्तेरहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः ।

आयुषोवर्द्धनेजातःस्वजनस्यतथात्मनः ॥३६

इतितेकथितंविप्रयत्पृष्टोऽहंत्वयोदितः ।

आदिदेवस्यमाहात्म्यमादित्यस्यविवस्वतः ॥३७

विप्रं तदस्त्रिलंश्रुत्वाभानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।

पठश्चमुच्यतेपापैःसप्तरात्रकृत्तैर्नरः ॥३८

अरोगीधनानाढ्यःकुलेमहतिधीमताम् ।

जायतेचमहाप्राज्ञोयश्चैतद्धारयेद्बुधः ॥३९

(यजतेचमहायज्ञःसमाप्तवरदक्षिणं ।
 श्रुत्वाचरितमेतद्विसमानलभतेफलम् ॥)
 मन्त्राश्चयेऽत्राभिहिताभास्वतोमुनिसत्तम ।
 जपःप्रत्येकमेतेपात्रिसध्यपातवापहः ॥४०॥
 समस्तमेतन्माहात्म्ययत्रचायतनेरवेः ।
 पठद्यतेतत्रभगवान्सान्निध्यनविमुच्यते ॥४१॥
 तस्मादेतत्त्वयाब्रह्मन्भानोमहात्म्यमुत्तमम् ।
 धार्यमनसिजाप्यन्महत्पुण्यमभीप्सता ॥४२॥
 सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीपयस्विनीगाप्रददातियोहि ।
 शृणोतिचैतन्महमात्मवाचनर समतयोःपुण्यफलद्विजग्न्य ॥४३॥

भगवान् भास्वर की कितनी आश्चर्यमय शक्ति है, जिसके प्रभाव से राजा राज्यत्रय ने अपनी और अपने आत्मीयजनों की आयु वृद्धि की ॥३६॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने आदि देव सूर्य के जिस माहात्म्य के विषय में प्रश्न किया था वह तुम्हारे प्रति कहा गया ॥३७॥ सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को ब्राह्मण के मुख से सुनने और पाठ करने वाले मनुष्य सप्तरात्र के विये हुए पापों से मुक्त होते हैं ॥३८॥ उन सूर्य के माहात्म्य को जो बुद्धि पूर्वक रखते हैं, वह धनी, नीरोग और महान् विद्वान् होकर जन्म लेते हैं ॥३९॥ तथा महान् दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुश्रुता होते और इस चरित्र को सुन कर समान फल को प्राप्त करते हैं, मूर्ख व्यक्ति, पाप कर्म करके भी यदि सूर्य के इस माहात्म्य का जप करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ जिस देव-मन्दिर में सूर्य के इस माहात्म्य का पाठ होता है, उसके सामीप्य से भगवान् नहीं हटते ॥४१॥ इमनिधे, हे ब्रह्मन् ! तुम भी महान् पुण्य की कामना में सूर्य के इस माहात्म्य को हृदय में धारण कर जप करो ॥४२॥ जो मनुष्य तीन में गीणों को मड़ाकर दूध वाली गी का दान करते और जो सयत्न वित्त में तीन दिन तक इस माहात्म्य को गुप्त है उन दोनों को ममान फल की प्राप्ति होनी है ॥४३॥

६६—सूर्य वंशानुक्रम

एवंप्रभावो भगवाननादिनिधनोरविः ।
यस्यत्वंक्रौष्टुके भक्त्या माहात्म्यं परिपृच्छसि ॥१॥
परमात्मासयोगिनां युजतां चैतसांलयम् ।
क्षेत्रज्ञः सांख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥२॥
सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेवसः ।
मनुस्तस्या भवत्पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥३॥
मन्वन्तराधिपो विप्रयस्य सप्तममन्तरम् ।
इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टो महाबलपराक्रमः ॥४॥
नरिष्यस्तोऽथ नाभागः पृषध्रो घृष्ट एव च ।
एते पुत्रामनोस्तस्य पृथग्राज्यस्यपालकाः ॥५॥
विख्यातकीर्त्तयः सर्वेशस्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमन्विच्छन्मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥६॥
मित्रावरुणयोरिष्टिचकारकृतिनां वरः ।
यत्र चापहुते होतुरपचागन्महामुने ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे क्रौष्टुकि ! तुमने जित भगवान् भास्कर का माहात्म्य भक्ति सहित पूछा था, वह भगवान् ऐसे प्रभाव वाले हैं ॥१॥ वह सयत्चित्त योगियों के ईश्वर, सांख्य योग वालों के क्षेत्रज्ञ श्रीर याज्ञिकों के यज्ञेश्वर हैं ॥२॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप सूर्याधिकार के वहन करने वाले लन भगवान् भास्कर के संशय रहित एक पुत्र 'मनु' नाम से हुआ ॥३॥ जिस मनु का सातवाँ मन्वन्तर इस समय चल रहा है, महाबली एवं पराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट ॥४॥ नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और घृष्ट नामक यह सभी मनु-पुत्र पृथक् पृथक् राज्यों के परिपालन करने ॥५॥ सभी प्रसिद्ध यज्ञ वाले, शास्त्रों में पारंगत और अस्त्र-विद्या के ज्ञाता हुए, उन मनु ने उसके पदचात् अत्यन्त विशिष्ट पुत्र की अभिलाषा से ॥६॥ मित्रावरुण का यजन किया, परन्तु वह यज्ञ होता के अपचार से अंगहीन हो गया ॥७॥

इलानामसमुत्पन्नामनो कन्यासुमध्यमा ।
 तादृष्ट्वा रुन्धकात्तत्रसमुत्पन्नात्तोमनु ॥८
 तुष्ट्वावमित्रावरुणोवाक्यचेदमुवाचह ।
 भवत्प्रमादान्ननयोविशिष्टोभेभवेदिति ॥९
 कृतेमसेत्समुत्पन्नात्तनयाममघोमता ।
 यदिप्रसन्नोवरदौतदियत्तनयामम ॥१०
 प्रसादाद्भवतोपुत्रोभवत्वतिगुणान्वितः ।
 तथेतिचाम्यामुक्तेतुदेवाम्यासंबकन्यका ॥११
 इलासमभवत्सद्य सुद्युम्नइतिविश्रुत ।
 पुनश्च श्वरकोपनमृगयामटतावने ॥१२

इस कारण इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, उस यज्ञ से उत्पन्न हुई कन्या को देव कर ॥८॥ मनु ने मित्रावरुण की स्तुति की और उनसे निवेदन किया कि आपकी कृपा से मुझे एक असाधारण पुत्र की प्राप्ति ॥९॥ इसी कामना से मैंने यह यज्ञ किया, जिससे इन कन्या की प्राप्ति हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो आपकी कृपा से मेरी यह कन्या ही ॥१०॥ अत्यन्त गुण सम्पन्न पुत्र हो जाय, इन पर दोनों देवताओं ने 'ऐसा ही हो' कहा और वह कन्या ॥११॥ उसी समय पुत्र होगई, जिसका नाम सुद्युम्न हुआ, यह मेधावी मनु पुत्र एक दिन वन में आसिद्ध के लिये गये और ईश्वर के क्रोधित होने से यह पुत्र स्त्री हो गया ॥१२॥

स्त्रीत्वमासादितेनमनुपुत्रेणघोमता ।
 पुरुषत्वमनामानचक्रवतिगमूजिम् ॥१३
 जनयामासतनयमत्रसोमसुताः सुधुः ।

॥१४

सुद्युम्नस्यत्रयःपुत्रास्तत्कलोविनियोगय ॥१५
 पुरुषत्वेमहावीर्यायज्विनपृथुलोजस ।
 पुरुषत्वेतुयेजातास्तस्यराज्ञश्चयमुता ॥१६

बुभुजुस्तेमहीमेतांधर्मेनियतचेतसः ।
 स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्यराज्ञःपुरूरवाः ॥१७
 नसलेभेमहीभाग्यतोबुधसुतोहिसः ।
 ततोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानंपुरोत्तमम् ।
 तस्मैदत्तं सराजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥१८

ऐसा होते ही चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया जो पुरूरवा नामक चक्रवर्ती राजा हुआ, उस पुत्र के उत्पन्न होने के पश्चात् अश्वमेध का अनुष्ठान करने से ॥१३-१४॥ उन सुद्युम्न को पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जब वे पुरुष राजा हुए तब उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥१५॥ तीन अत्यन्त धीर, यज्ञ करने वाले और विपुल तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, वे तीनों पुत्र ॥१६॥ राज्य को प्राप्त करके धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे और राजा जब स्त्री हुए थे, तब उनके जो पुरूरवा नामक पुत्र हुए थे ॥१७॥ वह बुध के पुत्र होने के कारण भू भाग प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु वसिष्ठ ऋषि की आज्ञा से उन्हें प्रतिष्ठान नामक एक श्रेष्ठ नगर दिया गया, जहाँ के वह राजा हुए ॥१८॥

१००—पृषध्रोपाख्यान

पृषध्राख्योमनोःपुत्रोमृगयामगमद्वनम् ।
 तत्रचक्रममाणोऽसीविपिनेनिर्जनेवने ॥१
 नाससादमृगं कश्चिद्भ्रानुदीर्घित्वापितः ।
 क्षुत्तृत्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्चक्रमन् ॥२
 सददर्शतदातत्रहोमधेनुमनोहराम् ।
 लतान्तदहृद्धिन्नार्वात्राह्वणस्याग्निहोत्रिणः ॥३
 समन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् ।
 पपातसापितद्वाणविभिन्तदृदयाभुवि ॥४

ततोऽग्निहोत्रिण पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः ।
 शप्तवान्सपितुर्दृष्ट्वा होमधेनु निपातिताम् ॥५॥
 गोपाल प्रेषित पुत्रो वा भ्रव्यो नामनामतः ।
 क्रोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ॥६॥
 चुकोपविगलत्स्वेदजललोलाविलक्षणः ।
 तक्रद्ध प्रेक्ष्य स नृप पृषधो मुनिदारकम् ॥७॥
 प्रसीदेति जगोक्स्माच्छूद्रवत्कुरूपे रूपम् ।
 नक्षत्रियो न वा वैश्य एव क्रोधमुपतिवै ।
 यथा त्वशूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मण कुले ॥८॥

मार्कण्डेय जी ने बरुणन किया कि किसी समय मनु के पुत्र राजा पृषध
 शिकार के लिये जगल म गये । वहाँ उनको शिकार योग्य पशु नहीं मिला और
 वे चलते-चलते भूख प्यास से अत्यन्त व्याकुल होगये ॥१-२॥ वहाँ उन्होंने किसी
 अग्निहोत्री ऋषि की छोटी गाय पेड़ो के भीतर छिपी देखी । राजा ने उसे
 जगली गवय समझ कर बाण चला दिया जिससे गाय का प्राणान्त होगया
 ॥३-४॥ जब उस अग्निहोत्री के पुत्र 'वाभ्रव्य' ने गौ को इस प्रकार मरकर
 पृथ्वी पर गिरते देखा तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और दारोद मे पसीना तथा
 नया से अश्रु बहाता हुआ राजा को शाप देने लगा ॥५-६॥ राजा ने उसकी
 ऐसी दशा देखकर कहा—क्रोध को छोड़ कर प्रसन्न होइये । इस प्रकार क्रोध
 करना तो शूद्र का लक्षण है । आप उत्तम ब्राह्मण कुलोत्पन्न होकर ऐसा शूद्र
 सदृश आचरण क्यों करते हैं ? इस प्रकार तो कोई क्षत्रिय या वैश्य भी क्रोध
 के बशो भूत नहीं होते ? ॥७-८॥

इति निर्मसितस्तेन मराज्ञामीलिन मुनः ।
 शशापतदुरात्मानशूद्र एव भविष्यसि ॥९॥
 प्रयास्यति क्षयब्रह्मन्यत्तेऽधीतगुरोर्मुखात् ।
 होमधेनुर्ममगुरोर्यदियद्विहितं तात्त्रया ॥१०॥
 एवशाप्तो नृप क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः ।
 प्रतिशापपरो विप्रतो यजग्राह्याणिना ॥११॥

सोऽपिराज्ञोविनाशायकोपंचक्रे द्विजोत्तमः ।
 तमभ्येत्यत्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ॥१२
 वत्सालमलमत्यर्थकोपेनातीव वैरिणा ।
 ऐहिकामुष्मिक्कहितः शमएव द्विजन्मनाम् ॥१२
 कोपस्तपोनाशयति क्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुषः ।
 क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धश्चार्थाञ्च हीयते ॥१४
 न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थं चाप्नोति रोषराः ।
 नालं सुखाय कामाग्निः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५

राजा के मुख से अपने लिये ऐसे भर्त्सनायुक्त वाक्य सुनकर वे 'मील' नायक ऋषि के पुत्र रोप में आगये और शाप दिया कि तुम 'शूद्र ही हो जाओगे और गाय का बध करने के कारण तुम्हारी पढ़ी हुई समस्त विद्या नष्ट हो जायगी ॥६--१०॥ इस शाप को सुनकर राजा भी बड़ा दुःखी और कोपित हुआ और ऋषि-बालक को प्रतिशाप देने के उद्देश्य से हाथ में जल लिया ।११। इस पर 'वाभ्रव्य' और भी क्रोध में आ गया और राजा को नष्ट करने के लिये दूसरा शाप देने को उद्यत हुआ । पर उसी समय उसके पिता वहाँ आ पहुँचे और उसे रोकते हुए समझाने लगे—पुत्र ! इस प्रकार का क्रोध अन्त में अपने लिये ही अहितकारी होता है । ब्राह्मण का धर्म तो शान्ति ही है और उसी से लोक तथा परलोक में उसका कल्याण होता है ॥१२-१३ यह क्रोध हर प्रकार से अनुचित है । इससे तपस्या का नाश, आयु का क्षय, ज्ञान का लोप, श्री धन का नाश होता है । क्रोध के वशीभूत होने वाला धर्म, अर्थ, काम सबसे बंचित हो जाता है और बहुत दुःख पाता है ॥१४-१५॥

यदिराज्ञाहताधेनुरियं त्रिजानिनासजा ।
 युक्तमत्र दयांकनुमात्मनोहितवोधिना ॥१६
 अथवाऽजानताधेनुरियं व्यापादितामम ।
 कत्कथं शापयोग्योऽयं दुष्टनास्य मनोयतः ॥१७
 आत्मनोहितमन्विच्छ्रवाधतेयोऽपरं नरः ।
 कर्तव्यामूढविज्ञाने दयातत्र दयालुभिः ॥१८

अज्ञानत कृतेदण्डपातयन्तिबुधायदि ।
 बुधेभ्यस्तमहमन्येवरमज्ञानिनोनरा ॥१६
 नाद्यशापस्त्वयादेय पार्थिवस्यास्यपुत्रक ।
 स्वकर्मणैवपतितागोरेपादु खमृत्युना ॥२०
 पृषध्रोऽपिमुने पुत्रप्रणम्यानम्रकन्वर ।
 प्रसीदेतिजगादोच्चै रज्ञानाद्वातितेतिच ॥२१
 भयागवयबुद्ध्यागौरवध्याघातितामुने ।
 अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वचनोमुने ॥२२

ऋषि ने फिर कहा—ह पुत्र अगर राजा ने गाय का वध जान कर किया है अपना हित चाहने वाले को इन पर दया ही करनी चाहिये । यदि यह कार्य अनजान में भूलवश हो गया तो शाप देने का कोई कारण हो ही नहीं सकता, क्योंकि मन में किसी प्रकार पाप की भावना नहीं होती ॥१६-१७॥ दयालु पुरुष तो उन ध्यक्तियों का भी अहित नहीं करते जो जान बूझकर उनके दुःख का कारण होत हैं, फिर भूल से हाने वाले अपराध पर दण्ड देना तो अज्ञानिया के नियम भी अनुचित है ॥१८-१९॥ मैं जानता हूँ कि अपने भगवत्पुत्र ही इस दुर्घटना में प्रसन्न हुई है, उसके नियमों राजा को शाप देना उचित नहीं ॥२०॥ राजा ने भी ऋषि पुत्र के सम्मुख मस्तक झुका कर प्रार्थना की— हे मुनि, श्रेष्ठ ! प्रसन्न होइये, मैंने भूल से ही इस घेनु पर बाण चलाया था । मैंने उसे जगती गवय ही अनुमान किया था, अतएव आप क्रोध को त्याग कर मुझे क्षमा करें ॥२१-२२॥

आजन्मनोमहीपालनभयाध्याहितमृषा ।
 क्रोधश्चाद्यमहाभागनान्ययामेकदाचन ॥२३
 तत्राहंमनशवनोमिशापवतुं नृपान्यथा ।
 यस्तेममुद्यत शापोद्वितीय सनिवर्तित ॥२४
 इत्तुक्तवन्ततयालमादायमपिनातत ।
 जगामस्वाश्रमनोऽपिपृषध्न नृदतामगात् ॥२५

ऋषि ने कहा—राजवृ ! मैंने आज तक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया इसलिये मेरे मुख से जो वचन निकल चुका वह अब मिट नहीं सकता । पर मैं आपको जो दूसरा क्षाप देने वाला था उससे अब विरत होता हूँ । ऋषि पुत्र का यह कथन सुनकर मुनि उसे आश्रम के भीतर लिवा ले गये और पृषध्र भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ॥२३-२४॥

१०१—नाभागोपाख्यान (१)

कारुषाःक्षत्रियाःशूराःकरुषस्याभवन्सुताः ।
 तेषुसप्तशतंवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रशः ॥१॥
 दिष्टपुत्रस्तुनाभागःस्थितःप्रथमयौवने ।
 ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥२॥
 तस्यांसंहृष्टमात्रायांमदनाक्षिप्तमानसः ।
 बभूवभूपतनयोनिःश्वासाक्षेपतत्परः ॥३॥
 तस्याःसगत्वाजनकंवब्रेतांवैश्यकन्यकाम् ।
 ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिनृपात्मजम् ॥४॥
 तंचाहसपितातस्याराजपुत्रं कृतांजलिः ।
 विभ्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतंवचः ॥५॥
 भवन्तोभूभुजोभृत्यावयं वःकरदायकाः ।
 कथंसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥६॥

मार्कण्डेयजी ने वर्णन किया कि करुष नामक राजा के वंशज कारुष क्षत्रिय हुए जिनकी संख्या पहले सात सौ थी फिर उनसे अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए । इसी वंश में दिष्ट नामक राजा के पुत्र 'नाभाग' ने युवावस्था में किसी समय एक परम सुन्दरी वैश्य कन्या को देखा । वह उसे देखते ही मोहासक्त होगया और वैश्य से कन्या का विवाह अपने साथ कर देने की प्रार्थना

करने लगा । इस पर वैश्य ने राजभय में भयभीत होकर हाथ जोड़ कर कहा कि आप राजा हैं और हम सबको भी आपकी प्रजा है, इसलिये आप ऐसे प्रथमान सम्बन्ध का प्रस्ताव क्यों करते हैं ? ॥१-६॥

माम्यमानुषदेहम्यकाममोहादिभिः कृतम् ।

तथापि काले तीरेव योज्यते मानुषवपुः ॥७

तथैव चोपवागयजायन्ते तस्मैतान्यपि ।

अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतामताम् ॥८

तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतायान्ति कालतः ।

योग्यान्ययोग्यतायान्ति कालवश्याहियोग्यता ॥९

आप्याय्यते यच्छरीरमाहागर्दिभरीप्सितौ ।

वाननात्त्वानथाभुक्त तदेव परिशिष्यते ॥१०

इत्थमसौ पाभिमता तनया दीयतान्वया ।

अन्यथामन्दरीरस्य विपत्तिरूपलक्ष्यते ॥११

परमन्त्रावयत्त्वचपरतन्त्रो महीभुजः ।

पित्रातेनाभ्यनुजातस्त्वगृहाण ददाम्यहम् ॥१२

राजपुत्र 'नाभाग' ने कहा कि सभी मनुष्यों के भीतर काम, क्रोध आदि प्रकृति के ही उत्पन्न क्रिया हैं । पर ये काम, क्रोध सबके बने रहने ही ऐसी बात नहीं है, किसी समय मयागवश वे उत्पन्न हो जाते हैं । ये काम, क्रोध विभिन्न जाति के व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के भावों में प्रकट होते हैं, पर उनका अभाव किसी में नहीं होता और वे किसी परिस्थिति में उचित और किसी में अनुचित बन जाते हैं । उनका बुरा या अच्छा कहा जाना काल के ही अधीन है । जिस प्रकार मोक्षन द्वारा शरीर की वृष्टि होती है, पर यदि उसको प्रथम में प्रहण किया जाता है तो वह उल्टा नानिकारक हो जाता है ॥७-१०॥ इसलिये मयागवश तुम्हारी कन्या के लिये मेरी अभिनाया हुई है तो तुम उसे मुझे दे दो, अन्यथा मेरा अन्न हो जायगा । इस पर वैश्य ने कहा कि मुझे गन्ध में अधीन रहना पड़ता है और आपको भी मटाराज के अनुकूल रहना है, इसलिये आप उसकी आज्ञा ले लें, मैं कन्या का विवाह कर दूँगा ॥११-१२॥

प्रष्टव्याःसर्वकार्येषुगुरवोगुरुव्रतिभिः ।
 नत्वीदृशेष्वकार्येषुगुरुणांवाक्यगोचरः ॥१३
 क्वमन्मथकथालापोगुरुणांश्रवणंक्वच ।
 विरुद्धमेतदन्यत्रप्रष्टव्यागुरवोनृभिः ॥१४
 एवमेतत्स्मरालापस्तवार्यपृच्छमागुरुम् ।
 अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः ॥१५
 इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत् ।
 तत्पित्रेसर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम् ॥१६
 ततस्तस्यपिताविप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् ।
 प्रवेश्यराजपुत्रं चयथाख्यानंन्यवेदयत् ॥१७
 निवेद्यचततःप्राहमुनीनेवंव्यवस्थिते ।
 यत्कतं व्यंतदादेष्टुमहंन्तिद्विजसत्तमाः ॥१८
 राजपुत्रानुरागस्तेयद्यस्यां वैश्यसन्तती ।
 तदस्तुधर्मएवैषकिन्तुन्यायक्रमेणसः ॥१९
 मूर्धाभिषिक्ततनयापाणिग्रहोत्सवःपुरा ।
 भवत्वनन्तरंचैयंतवभार्याभविष्यति ॥२०
 एवंनदोषोभवतितथेमामुपभुञ्जतः ।
 अन्यथाऽभ्येतितेजातिरुत्कृष्टावालकानयात् ॥२१

राजपुत्र ने कहा कि यद्यपि मनुष्यों को गुरुजनों की इच्छानुसार चलना चाहिये और सभी विषयों में उनकी आज्ञा लेनी चाहिये, पर यह विषय ऐसा है जिसे उनके सम्मुख प्रकट नहीं किया जा सकता । कहाँ तो गुरुजनों का पद और महत्त्व और कहाँ यह काम कथा का वर्णन, इन दोनों बातों में कोई मेल नहीं, इसलिये इस बात को उनके सामने नहीं कह सकता । वैश्य ने कहा— ठीक है, इस सम्बन्ध में गुरुजनों की आज्ञा लेना काम कथा होगी, पर यदि मैं इस सम्बन्ध में चर्चा करूँ तो वह काम-कथा नहीं मानी जायगी ॥१३-१५॥ इस बात पर राजकुमार निरुत्तर होगया और वैश्य ने सब वृत्तान्त राजा के समक्ष जाकर निवेदन किया । राजा ने अपने पुत्र तथा ऋचीक आदि धर्मतत्व

वेत्ताओं को सामने बुलाकर समस्त हाल कह सुनाया और पूछा कि इस विषय में आप क्या नियुक्त करते हैं ? श्रुतियों ने कहा—राजकुमार ! यदि आप वैश्य कन्या पर आसक्त होगये हैं तो इसमें कोई बड़ा अघम नहीं है, पर इसका न्यायोचित मार्ग यह है कि पहले आप किसी स्वजातीय कन्या का पाणिग्रहण करें, जो राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त हो सके, उसके पश्चात् इस वैश्य कन्या को भी अपनी पत्नी बनावें । इस प्रकार वैश्य-कन्या से विवाह करने से किसी प्रकार का दोष नहीं होगा । अन्यथा होन वर्ग की कन्या में सम्बन्ध हो जाने पर आपका भी उम्मी हीन जाति का होजाना पड़ेगा ॥१६-२१॥

इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेपामहात्मनाम् ।
 विनिष्क्रम्यगृहीत्वातामुद्यतासिरथाग्रवीत् ॥२२
 राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता ।
 यस्यसामर्थ्यमत्रास्तिसएतामोचयत्विति ॥२३
 तत सर्वैश्यस्तादृशगृहीतातनयाद्भुतम् ।
 ग्राहीतिपितरतस्यप्रययीशरणद्विज ॥२४
 ततस्तस्यनिताक्रुद्धादिदेशवलमहत् ।
 हन्यताहन्यतादुष्टानाभागोधर्मदूपक ॥२५
 ततस्तद्युधेसंन्यतेनभूभृत्सुतेनवे ।
 कृताश्रेणतदाश्रेणतत्प्राचुर्येणपातितम् ॥२६
 सश्रुत्वानिहतसंन्यराजपुत्रेणभूपति ।
 स्वयमेवययीयोद्घु स्वसंन्यपरिवारित ॥२७
 ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुज स्वसुतेनयत् ।
 राजपुत्रेणशस्त्रास्त्रैस्त्रिभिरातिशयित पिता ॥२८
 ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिभ्राट्सहसामुनि ।
 प्रत्युवाचमहीपालविरमस्वेतिमयुगात् ॥२९
 त्वत्पुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयमहात्मन ।
 तवापिर्वश्येनमहनयुद्ध धर्मवन्नृप ॥३०

यद्यपि इस प्रकार ऋषियों ने राजपुत्र को बहुत समझाया, पर यह मार्ग उसे पसन्द न आया और उसने बाहर आकर वैश्य-कन्या को पकड़ लिया और तलवार निकाल कर कहा कि—मैं इसके साथ बल पूर्वक राक्षस-विवाह करता हूँ जिसकी सामर्थ्य हो वह इसे मुझसे छुड़ाले ॥२२-२३॥ वैश्य यह देखकर भागा हुआ राजा के पास गया और 'रक्षा करो' यह कहकर पुकारने लगा । इस पर क्रोधित होकर राजा ने आज्ञा दी कि 'दस अधर्मी 'नाभाग' को शीघ्र ही मारो ।' राजा की आज्ञा पाकर सेना 'नाभाग' के साथ लड़ने लगी, पर उसने अस्त्र-शास्त्रों का प्रयोग करके शीघ्र ही उसे हरा दिया । सेना के पराभव का वृत्तान्त सुन कर राजा स्वयं उससे लड़ने आया और संघर्ष होने पर 'नाभाग' को दवा दिया । पर उसी समय आकाश मार्ग से नारद मुनि का वहाँ पर आगमन हुआ और उन्होंने राजा द्विष्ट से कहा—महाराज ! अब आप युद्ध बन्द कर दीजिये । आपका यह पुत्र अपने वर्ण से पतित होकर वैश्य होगया है, इसलिये उसके साथ आपका युद्ध करना धर्म संगत नहीं है ॥२४-३०॥

ब्राह्मण्याब्राह्मणःपूर्वकुर्वन्दारपरिग्रहम् ।

ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषुनहानिमुपगच्छति ॥३१

तथैवक्षत्रियसुतांक्षत्रियःपूर्वमुद्वहन् ।

इतरेत्ततोराजश्च्यवतेनस्वधर्मतः ॥३२

पूर्वं वैश्यस्तथावैश्यांपश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ।

नहीयतेवैश्यकुलादयन्त्यायःक्रमोदितः ॥३३

ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसवर्णापाणिसंग्रहम् ।

अकृत्वाज्यभवापाणोपतन्तिनृपसंग्रहात् ॥३४

यस्यायस्याहिहीनायाःकुरुतेपाणिसंग्रहम् ।

अकृत्वावर्णसयोगंसोऽपितद्वर्णभागभवेत् ॥३५

सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्रःसुमन्दधीः ।

नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ॥३६

वयमेतन्नजानीमःकारणानृपनन्दन ।

यथाभविष्यतीदंचतिवर्तरेणकर्मतः ॥३७

भारदजी ने कहा—शास्त्र का यह विधान है कि यदि ब्राह्मण पहले ब्राह्मण-स्त्री से विवाह करके उसके पश्चात् तीनों वर्णों में से किसी भी वर्ण की स्त्री को ग्रहण करे तो उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार क्षत्रिय धर्मग्रहण करने की बन्धा का पाणिग्रहण करके फिर वैश्य-शूद्र आदि की बन्धा से विवाह करे तो वह पतित नहीं होता। वैश्य भी अपने वर्ण की बन्धा से विवाह करने के पश्चात् शूद्र बन्धा से विवाह करले तो अपने वैश्य कुल से भ्रष्ट नहीं होता। पर किमी भी वर्ण का व्यक्ति यदि प्रथम अपने वर्ण की बन्धा से विवाह किये बिना दूसरे वर्ण की बन्धा से विवाह कर लेता है तो वह उसी हीन वर्ण का हो जाता है जिस वर्ण की वह बन्धा होती है। सर्व प्रथम सबर्णों की बन्धा से विवाह न करने के कारण वह पिता के उत्तराधिकार का पात्र भी नहीं माना जाता। इस नियम के अनुसार आपका यह मन्द-बुद्धि पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त होगया और आप क्षत्रिय हैं, इसमें आप दोनों का युद्ध उपयुक्त नहीं। आगे इसका क्या परिणाम होगा यह तो नहीं कहा जा सकता। पर अब आप युद्ध बन्द कर दें ॥३१-३७॥

१०२--नाभागोपाख्यान (२)

निवृत्तोसौनतोभूप सग्रामात्स्वसुतेनवं ।
 उपयमेचतावंदष्टतनयामाऽपित्तत्मुत ॥१
 तन सर्वेश्यनांप्राप्त ममुपेत्याहपार्थिवम् ।
 भूपालयन्मयाकार्म्यतत्समादिश्यतामम ॥२
 धर्माधिकरणेयुक्तावाभ्रव्यद्यान्तपस्विन ।
 यदस्यमंघर्मायनद्वदतुतथाचर ॥३
 तनस्तेमुनयस्तस्यपागुपाल्यतयाकृपिम् ।
 वाणिज्यचपरधर्ममाचचम्बु गभामद. ॥४
 तर्थावचक्रे समुनस्तस्वराजोययोदितम् ।
 तंधर्मवादिभिर्धर्मच्युनस्पनिजधर्मत ॥५

तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दनः ।
समात्राप्रहितोमच्छद्गोपालोभवपुत्रक ॥६
मात्रातथानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ।
राजर्षिमगमन्नीपंहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥७

इस प्रकार नारदजी के समझाने पर राजा ने युद्ध बन्द कर दिया और नाभाग भी वैश्य-कन्या से विवाह करके वैश्यत्व को प्राप्त होगया । फिर वह राजा के पास गया और पूछा—‘महाराज ! अब मैं क्या काम करके जीवन-निवाह करूँ उसका आदेश दें ।’ राजा ने कहा कि वाभ्रव्य आदि जो ऋषिगण धर्माधिकरण का निर्णय करते हैं, उनसे पूछ कर जैसा वह बतलावें तदनुसार आचरण करो । तब उन धर्माधिकारी मुनियों ने कहा कि—खेती, पशु-पालन और व्यापार ही वैश्य के लिये निहित धर्म है । राजपुत्र नाभाग ने इस निर्णय को स्वीकार किया और वैश्य कर्मों का आचरण करके निर्वाह करने लगा ॥१-५॥ यथा समय उसके भलन्दन नामक पुत्र हुआ । उसके बड़े होने पर माता ने आदेश दिया ‘पुत्र ! गोपाल होओ’ अर्थात् गो पालने का कार्य करो । पर ‘गो’ का अर्थ पृथ्वी भी होता है और भलन्दन ने उसी अर्थ को ग्रहण किया । वह हिमालय निवासी नीप नाम राजर्षि की सेवा में उपस्थित हुआ ॥६-७॥

तंसमेत्यचजग्राहृतस्यपादीयथाविधि ।
प्रणिपत्याहचैत्रैर्नराजर्षिसभलन्दनः ॥८
आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वंभवेतिव ।
मयाचपालनीयाक्षमातस्याःस्वीकरांकथम् ॥९
मयाहिगौःपालनीयासायदास्वीकृताभवेत् ।
आक्रान्तावलवद्भिःसादायादःपृथिवीमम ॥१०
तांयथाप्राप्नुयांपृथ्वीत्वत्प्रसादादहंविभो ।
तथादिशकरिष्यामितवाज्ञांप्रणतोऽस्मिते ॥११
ततःसनीपोराजर्षिस्तस्मैनिरवशेषतः ।
भलन्दायददौन्नह्यन्नस्त्रग्रामंमहात्मने ॥१२

प्राप्ताम्नविद्य सययोपितृव्यतनयान्द्विज ।

वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्ट समहात्मना ॥१३

अयाचतसराज्यार्धापितृपैतामहोचितत् ।

नेचाचुर्वैश्यपुत्रस्त्वकथभोक्ष्यसिमेदिनीम् ॥१४

भलन्दन ने राजपि नीप की यथा विधि वन्दना की और कहा कि मेरी माता ने मुझे 'गोपाल' होने का आदेश दिया है, इसलिये पृथ्वी पालन मेरा कर्तव्य है । पर इस समय पृथ्वी पर मेरे अन्य कुटुम्बियों ने अधिकार कर रखा है । इसलिये आप मेरा इस प्रकार भाग दशन करे जिससे मैं पृथ्वी को प्राप्त करके उस कर्तव्य को पूर्ण कर सकूँ । राजपि नीप उसकी शालीनता से सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उस सम्पूर्ण अस्त्र विद्या की शिक्षा दी । इस प्रकार अस्त्र-विद्या द्वारा शक्तिशाली बन कर अपने पितृव्य-पुत्र वसुरान् के पास गये और उनसे राज्य का आधा भाग देने को कहा । उन्होंने उत्तर दिया कि 'तुम वैश्य सन्तान हो इस राज्य शासन का अधिकार नहीं है।' ॥८-१४॥

ततस्तैर्युद्धमभवद्भूलन्दस्यात्मवशजै ।

वसुरातादिभिः क्रुद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥१५

सजित्वातानशेषास्तुशस्त्रविक्षतसैनिकान् ।

जहारपृथिवीतेपाधर्मयुद्धेनधर्मवित् ॥१६

सर्निजितारि मकलापृथ्वीराज्यतथापितु ।

निवेदयामामततन्मत्तत्पिताजागृहेनच ।

प्रत्युवाचसतपुत्रभार्यायाःपुरतस्तदा ॥१७

भलन्दराज्यमेतत्त्रियतापूर्वजं वृत्तम् ॥१८

अहनवृत्तवाघ्राज्यनामामध्यंयुतपुरा ।

वैश्यतातुपुरस्कृत्यनर्थवाज्ञाकरपितु ॥१९

वृत्वाऽप्रानिपितुरह्वैश्यकन्यापरिग्रहात् ।

नपुण्यलोकभ्राजायावदाभूतसप्लवम् ॥२०

उरनध्याज्ञानपुनस्तन्म्यपालयामिमहीयदि ।

नास्तिमोक्षस्तनोनूनममकल्पशतैरपि ॥२१

नचापियुक्तं त्वद्बाहुर्निर्जितं मम मानिनः ।

राज्यं भोक्तुमनीहस्यदुर्बलस्येव कस्यचित् ॥२२

राज्यं कुरुस्वयं पुत्रदायादेभ्यो विमुचवा ।

ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्नक्षितिपालनम् ॥२३

इस पर भलन्दन ने उनका युद्ध के लिये आह्वान किया और अस्त्रों के प्रयोग से उनकी सब सेना को घायल करके राज्य पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार भलन्दन के समस्त राज्य जीत कर पिता के चरणों में अर्पण किया, पर पिता उसे ग्रहण करने को तत्पर नहीं हुए । उन्होंने कहा—हे पुत्र ! पूर्वजों द्वारा शासित इस राज्य का उपभोग तुम्हीं करो । मैं राज्य नहीं कर सकता ऐसी बात नहीं है, पर मैंने पिता की आज्ञा को अस्वीकार करके वैश्य कन्या से विवाह किया और इसके लिये राज्य अधिकार को त्याग दिया । अगर अब मैं उस राज्य का पुनः अधिकार ग्रहण करूँगा तो यह पिता की आज्ञा का उल्लंघन होगा । इस मिथ्या व्यवहार के कारण मैं और मेरे पिता प्रलय काल पर्यन्त मुक्ति लाभ नहीं कर सकेंगे ॥१५—२१॥ वैसे भी मेरे जैसे निराकांक्षी व्यक्ति को तुम्हारे बाहुबल से जीता राज्य उपभोग करना उचित नहीं है । इसे तुम्हीं भोगो या कुटुम्बियों को ही वापस कर दो । मेरे लिये पिता की आज्ञा पालन करना ही हितकारी है ॥२२-२३॥

ततः प्रहस्यतद्भ्रातृभ्यामुत्प्रभानामभामिनी ।

प्रत्युवाचपतिभूपगृह्यतां राज्यमूर्जितम् ॥२४

नत्वं वैश्यो न च वाहं जाता वैश्यकुले नृप ।

क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा ॥२५

पूर्वमासीन्महीपालः सुदेव इति विश्रुतः ।

तस्याभूच्चसखाराज्ञो धूम्राश्वस्यसुतो नलः ॥२६

स तेन सख्या सहितो जगामाब्रवन्वनम् ।

पत्नीभिः ससमरन्तु माधवे मासि पार्थिव ॥२७

ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि वृभुजे तदा ।

भार्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥२८

तत पुष्परिणीतीरेददशांतिमनोरमाम् ।

पत्नीच्यवनपुत्रस्यप्रमते पार्थिवात्मजाम् ॥२६

सखातस्यनलोमतोजगृहेताचदुर्मति ।

पश्यतस्तस्यराज्ञश्चताततातेतिवादिनीम् ॥३०

इस वार्तान्ताप की सुनकर नाभाग की पत्नी मुप्रभा ने हँसते हुए कहा कि वास्तव में आप वंश्य नहीं हैं और मैं भी वंश्य नहीं हूँ, मेरा जन्म क्षत्रिय वंश में ही हुआ है । इसलिये आप खुशी से इस राज्य को ग्रहण कर सकते हैं । इसका रहस्य यह है कि मेरे पिता पूर्वकाल में सुदेव नाम के राजा थे और उनके मित्र राजा धूम्राश्व के पुत्र नल नाम के राजा थे । एक दिन राजा और उनके मित्र अपनी पत्नियों सहित आमों के वन में विहार करने गये । वहाँ वे भौंति भौंति के खान पीने की वस्तुएँ उपभोग करने लगे । इसके पश्चात् नल ने सरोवर के किनारे च्यवन पुत्र प्रमति की सुन्दरी पत्नी को देखा, जो किसी राजा की पुत्री थी । दुष्टमति नल ने उस रमणी को जाबर पकड़ लिया । इस पर वह 'रक्षा करो 'रक्षा करो' कहकर राजा के सम्मुख रोने लगी ॥२४-३०॥

आक्रन्दितनिगम्येवमतस्या प्रमति पतिः ।

आजगामत्वरायुक्त किमतदितिर्वैवदन् ॥३१

ततोददर्श राजानमुदेवतनसस्थितम् ।

गुहीताचतयापत्नोनतेनमुदुरात्मना ॥३२

तत सुदेवप्रमति प्राहायशास्यतामिति ।

त्वचशास्ताभवद्राज्येदुष्टश्रायनलोनृप ॥३३

तस्यार्तस्यवचःश्रुत्वासुदेवोनगौरवात् ।

प्राहवैश्योऽस्मिगच्छान्यक्ष त्रयश्चाणकारणात् ॥३४

तत मप्रमति क्रुद्धोऽग्नीतेजमानिदंहन्निव ।

प्रत्युनाचायराजानवैश्योऽस्मीत्यभिभाषिराम् ॥३५

एवमभ्युभवान्बैश्य क्षत्रिय क्षतरक्षणात् ।

क्षत्रियोर्वाय्यतेगम्रनात्तंशब्दोभवेदिति ।

सत्वनक्षत्रियोंभाषीवैश्यएवमुलाघम ॥३६

उपर से महर्षि प्रमति भी 'क्या हुआ ?' कहते हुए शीघ्रता पूर्वक वहाँ आये । प्रमति ने सुदेव से कहा कि आप इसे रोकिये क्योंकि आप ही यहाँ के शासक हैं और ऐसे कार्य को रोकना आपका कर्तव्य है । प्रमति के इस प्रकार के विनीत वचन सुनकर राजा सुदेव अपने मित्र की सम्मान रक्षा के विचार से बोले—'मैं तो वैश्य हूँ आप किसी क्षत्रिय के सम्मुख जाकर रक्षा को प्रार्थना कीजिये ।' सुदेव की इस तरह की बात सुनकर प्रमति को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा—'तथास्तु, तुम सचमुच वैश्य हो जाओगे, क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति तो अन्याय-पीड़ितों की रक्षा के लिये ही की गई है । क्षत्रिय इसी लिये शस्त्र धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति अन्याय से पीड़ित न हो । इस धर्म का पालन न करने से तुम क्षत्रिय नहीं रह सकते और वैश्य ही होगये ।'

॥३१-३६॥

१०३ कृपावती उपाख्यान

तस्मैदत्वाततःशापंनलंक्रुद्धोऽन्नवीद्विज ।
 प्रमतिर्भार्गवःकोपात्त्रैलोक्यंनिर्दहन्निव ॥१
 मदीन्मत्तोयतोभार्याभवानत्रममाश्रमे ।
 वलाद्गृह्णातिभस्मत्वतस्माद्ब्रजतुमाचिरम् ॥२
 तेनोदात्हतमात्रेचवाक्येर्तस्मिस्तदानलः ॥
 देहजेनाग्निनासद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥३
 दृष्ट्वाप्रभावतंतस्यसुदेवोविमदस्ततः ।
 प्रणामनम्रप्राहेदक्षभ्यतांक्षम्यतामिति ॥४
 यदुक्तवांस्त्वांभगवन्सुरापानमदाकुलम् ।
 तत्क्षम्यतांप्रसीदत्वंशापोऽयंविनिवर्त्यताम् ॥५
 एवंप्रसादितस्तेनप्रमतिःप्राहभार्गवः ।
 गतकोपानलेदग्धेनातीतेनचेतसा ॥६

नान्यथाभावितद्वाक्ययन्मयासमुदीरितम् ।
तथापितेकरिप्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहपरम् ॥७

इम प्रकार सुदेव को शाप देकर प्रमति ने अत्यन्त क्रोधित होकर नल मे कहा—कि “जब तूने उन्मत्त होकर मेरे आश्रम मे ही मेरी पत्नी को जल देंती पकड लिया तो तू तुरन्त भस्म होजा । यह वचन मुँहे स निक्लने ही नल के देह मे भयकर ज्वाला प्रकट हुई और वह तुरन्त भस्म हो गया । प्रमति का ऐसा प्रभाव देव कर सुदेव की मत्तना दूर भाग गई और वह बार बार प्रणाम करके कहने लगे ‘भगवान् ! क्षमा करा । मद्यपान के दूषित प्रभाव के कारण मैंने जो बच-भङ्ग की उमके लिये क्षमा प्रदान करें और शाप से मुझे मुक्त करें । राजा के इस प्रकार विनय करने और नल के नष्ट हो जाने से प्रमति का क्रोध शान्त हुआ और उन्हान कहा—जो वाक्य मेरे मुख से निकल चुके वे अब मिट नही सक्ते, ता शापकी प्रार्थना पर कुछ अनुग्रह कर सकता हूँ ॥१-७॥

भवितावैश्यजातीयोभवान्नास्त्यत्रसशय ।
भविताक्षत्रियोवश्यस्तस्मिन्नेवाशुजन्मनि ॥८
ग्रहीप्यतिबलात्वन्यायदातेक्षत्रमम्भव ।
तदात्वक्षत्रियोवश्य स्त्रगृहीतोभविष्यमि ॥९
एवमवैश्योभूपालमुदेवोऽम्मत्पिताभवत् ।
अह चयामहाभागतत्पर्वंश्रूयता त्वया ॥१०
मुरतोनामराजपि प्रागासीगद्वन्वमादने ।
तपस्वो नियताहारस्यक्तमङ्गोवनाश्रय ॥११
तत श्येनमुखभ्रष्टादृष्ट्वागारिकाभुवि ।
दृष्ट्वाऽमूजनितामूच्छ्रतिथानम्यमहात्मन . ॥१२
ततोमूच्छ्रविगानेऽहतस्योत्पन्नाशरीरत ।
समाहृष्ट्वाचजग्राहस्निह्यमानेनचेतमा ॥१३

यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ।

तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥१४

प्रमति ने कहा—आपको कुछ काल के लिये वैश्य तो अवश्य होना पड़ेगा पर जब कोई क्षत्रिय राजकुमार आपकी कन्या को बल पूर्वक पत्नी बनायेगा तो आप इसी जन्म में पुनः क्षत्रिय हो जायेंगे । इस प्रकार घटनावश मेरे पिता को वैश्य होना पड़ा था । मैं भी ऐसी ही अन्य घटना वश वैश्य के घर उत्पन्न हुई थी । कुछ काल पूर्व गन्धमादन पर्वत के समीप सुरथ नाम के राज-वन में रह कर तपस्या करते थे । एक दिन उन्होंने बाज के मुख पर पृथ्वी पर गिरी सारिका छटपटाते देखा तो वे दुःख के मारे मूर्छित हो गये । मूर्छा दूर होने पर मैं उन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुई । उन्होंने मुझे देख कर बड़ा स्नेह किया और कहा कि—इस कन्या का आर्वाभिव मेरे कृपाभिभूत होने से हुआ है, इस कारण इसका नाम ' कृपावती ' ही होगा ॥८-१४॥

ततोऽहमाश्रमे तस्यवर्धमानं दिवानिशम् ।

सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामिव नानिच ॥१५

ततो मुने रगस्त्यस्य भ्राता गस्त्य इति श्रुतः ।

सचिन्वन्कानने वन्यं सखीभिकोपितोऽशपत् ॥१६

यस्मान्मां वैश्य इत्याह भवती तेन तेशपे ।

वैश्याभविष्यसीत्युक्ते प्रसाद्योक्तो मया मुनिः ।

नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम ।

अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि ॥१७

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाद्दुष्टत्वमपि गच्छति ।

सुराविदु निपातेन पञ्जगव्यघटो यथा ॥१८

प्रणिपत्य ह्यनिष्टोऽपियत्स्वयाहं प्रसादितः ।

तस्मादनुग्रहं बाले शृणुष्व च करोम्यहम् ॥१९

वैश्ययो नौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ।

राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥२०

ततोभूय क्षत्रजातिप्राप्तात्वपतिनासह ।
 दिव्यानवाप्स्यसेभोगान्गच्छभीतिरर्पंतुते ॥२१
 एवशाप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वमहर्षिणा ।
 पिताचमेपूर्वमेवशाप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥२२
 एववैश्यानराजस्त्वनचवैश्य पितामम ।
 नत्वहिमयिससर्गादिदुष्टोदुष्यसेकथम् ॥२३

सुप्रभा ने कहा—' मैं उन्हीं राजाओं के आश्रम में रह कर पत्ने लगी थीर बड़ी होने पर समान वय की सखियों के साथ विचरण करने लगी । यहाँ एक दिन अगत्य मुनि के भ्राता पुष्प बोन रहे थे । उन्हें देख कर मेरी सखियों ने उन्हें चिढ़ाया, जिस पर क्रोधित होकर उन्होंने मुझे धाप दिया है कि "तुमने मुझको वैश्य कह कर चिढ़ाया है, इस लिये तू वैश्य की ही कन्या हो जायगी ।" इस शाप को मुन कर व्यथित होकर मैंने कहा—" हे महा-मुने ! मैंने तो आपसे कुछ भी बुरा नहीं कहा, अन्य सखियों के दोष के कारण मुझे शाप क्यों दते हैं ।" ऋषि ने कहा—जिस प्रकार पचगव्य से पूर्ण पवित्र घट में एक बूँद मुरा के पड जाने से दूषित हो जाता है उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टों के सग में रहने से दूषित हो जाता है । पर अब तेरी विनय मुन कर मैं तुझ पर यह अनुग्रह करता हूँ कि वैश्य वर्ण में उत्पन्न होने के पश्चात् जब तू अपने पुत्र को राज्य ग्रहण करने का उपदेश देगी तो तुझे अपनी पूर्व जाति का स्मरण हो जायगा और पति के सग क्षत्रियत्व को प्राप्त कर के दिव्य भोगों की अधिकारिणी होगी । इसलिये अब तू भय त्याग कर अपने आश्रम में निवास कर ॥१५॥२१॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार ऋषि के शाप के कारण मैं वैश्य योनि को प्राप्त हुई थी और मेरे पिता भी महर्षि प्रभृति के धाप वश वैश्य हो गये थे । यस्तुत आप व मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं पर इस कारण मेरे साथ सम्पर्क होने से आपका वैश्य होना भी निराधार है ॥१५-२३॥

१०३—भलन्दन वत्सप्रीति चरित्र

इतितस्यावचःश्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिवः ।

पुनःप्रोवाचधर्मज्ञस्तांपत्नींतमयंतथा ॥१

यन्मयापितुरादेशास्यक्तंराज्यंनतत्पुनः ।

ग्रहीष्यामिवृथोक्तेनकिमात्मकिलश्रययेत्वया ॥२

अहंतेसम्प्रदास्यामिकरवैश्यव्रतेस्थितः ।

भुङ्क्ष्वराज्यनशेषत्वमिच्छयावापरित्यज ॥३

इत्युक्तःसतदापित्राराजपुत्रोभलन्दनः ।

चकारराज्यधर्मैजतद्द्वारपरिग्रहम् ॥४

अव्याहृतंतस्यचक्रंपृथिव्यामभवद्विज ।

नचाधर्ममनोभूपास्तस्यसर्वेऽभवन्वशे ॥५

तेनेष्टोविधिवद्यज्ञःसम्यक्शास्तिवसुन्धराम् ।

सएवैकैर्भुवद्भूर्त्तापृथिव्यामरिशासनः ॥६

पत्नी और पुत्र की बात सुन कर नाभाग ने उत्तर दिया कि चाहे जो कुछ हो, पर जिस राज्य को मैंने पिता की आज्ञानुसार एक बार त्याग दिया, तो अब उसे फिर ग्रहण करके अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर सकता। अब तुम्हीं इस राज्य के अधिकारी बनो और चाहो तो दूसरों के लिये छोड़ दो, मैं तो वैश्य वृत्ति में रहकर राजा का कर देता रहूंगा। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर भलन्दन राज्य शासन करने लगे और यथा समय विवाह करके गृहस्थ बने। राजा भलन्दन बड़े प्रतापी थे और उनका रथ पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करता था, वे कभी अधर्ममार्ग पर अग्रसर नहीं हुए, इसलिये सब राजा उनके अनुगामी बन गये। वे राज्य धर्मानुसार यज्ञानुष्ठान करते और प्रजा का पूर्ण कर्तव्य परायणता से पालन करते थे और उन्हें सर्वत्र एक अद्वितीय शासक माना गया ॥१-६॥

अजायतसुतस्तस्यवत्प्रीतिस्तुनामतः ।

पितातिशयितोयेनगुणौघेनमहात्मना ॥७

तस्यापि भाष्योत्तौ नन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
 पतिव्रतामहाभागात्ताप्राप्तातेन शौर्यम् ।
 हत्वा पुरन्दररिपुं कुजुभदिति जेश्वरम् ॥८८
 भगवस्तेन सप्राप्तो कुजु भनिघनात्कथम् ॥
 एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥८९
 विदूरथो नाम नृप ह्यातकीर्तिरभूद्भुवि ।
 तस्य पुत्रद्वयजातमुनीति मुमतिस्तथा ॥९०
 एव दातुं वनपातो मृगयां विदूरथ ।
 ददर्श गतं सुमहद्भूमे मुं लामिवोद्गतम् ॥९१
 तदृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतदिति भैरवम् ।
 पातालविवरमन्येन तद्भूमे श्विरन्तनम् ॥९२
 चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजनेवने ।
 ब्राह्मणमुग्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥९३

मार्कण्डेयजी कहन लगे—महाराज भलन्दन के पुत्र बत्सप्रीति हुए जिन्होंने
 विदूरथ की बन्धा 'सौनका' में हुआ था और उन्होंने इन्द्र के यमु 'बुजुम्भ'
 नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर कौशुकी ने
 पूछा—“भगवन्! बत्सप्रीति का आख्यान बतलाइये कि उसके किस प्रकार
 बुजुम्भ से सौनका को छुड़ाया।” मार्कण्डेय जी ने कहा—विदूरथ एक बड़े
 प्रतापशाली और प्रसिद्ध नरेश थे। उनके मुनीति और मुमति नामक दो पुत्र
 थे। एक दिन राजा ने वन में शिकार के लिये भ्रमण करते हुए एक घण्टा
 गडा देखा। उन्होंने शिकार किया कि यह कैसे उत्पन्न हो गया। सम्भवतः
 यह पाताल लोक का मार्ग है। उसी समय यहीं उनको मुग्रत नाम के एक
 तपस्वी ब्राह्मण दिखाई दिया ॥७-१३॥

सतपप्रच्यवनृप विमेतदिति विस्मित ।
 प्रतिभोरमवनेर्दक्षितातमंतदरम् ॥१४

किञ्चवेत्सिमहीपालवागर्थस्त्वंहिमेमतः ।

ज्ञेयंसर्वनरेन्द्रेणवर्ततेयन्महीतले ॥१५

दानवःसुमहावीर्योवसत्युग्रोरसातले ।

सजृम्भयत्तित्पुत्रींकुजृम्भःप्रोच्यतेततः ॥१६

क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्रत्नभूतंमहीतले ।

त्रिदिवेवानरपपेत्कथंवेत्तिनोभवान् ॥१७

सुनन्दंनाममुशलंत्वष्ट्रायन्निमित्तंपुरा ।

तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरगोरिपून् ॥१८

पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्तिवसुधामिमान् ।

ततोऽसुराणांसर्वेषांद्वाराणिकुरुतेऽसुरः ॥१९

तेनभिष्ठात्रवसुधासुनन्दमुशलेनतु ।

भोक्ष्यतेत्रसुधामेतांतमजित्वकथंभवान् ॥२०

यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रीदेवानामुपरोधकः ।

आप्याययत्तदैतेयान्सवलीमुशलायुधः ॥२१

राजा ने उनका वह गढ़ा दिखा कर पूछा कि यह क्या है ? तपस्वी ने कहा कि क्या आप इसे नहीं जानते ? राजा को तो ऐसी विशेष बातों का पता अवश्य रखना चाहिये । अब मैं आपको इसका सब वृत्तान्त बतलाता हूँ । रसातल में एक बहुत बलवान् दैत्य रहता है । जिसको 'कुजृम्भ' कहते हैं, क्यों कि वह समस्त पृथ्वी को जंभाई लिवाता है । पृथ्वी और स्वर्ग के प्राणी-मात्र, जंभाई लेना उसी के कारण होता है । प्राचीन समय में विश्वकर्मा ने 'सुनन्द' नाम का जो 'मूसल' (अस्त्र) बनाया था यह दुष्ट राक्षस उसी को लेकर युद्ध में शत्रुओं को मारता है और पृथ्वी को भेव कर रसातल का मार्ग भी बना देता है । जिससे अन्य दानव भीतर जा सकें । उस सुनन्द मूसल से ही उसने यह विवर बना दिया है । वह शक्तिशाली दैत्य उस 'मूसल' के द्वारा अजेय बन कर यज्ञ और देवताओं को नष्ट करता रहता है और दैत्यों की मनोवांछा पूर्ण करता है ॥१४-२१॥

यद्यग्निघातयस्येनपातालान्तरगोचरम् ।
 तत नमस्तवमुधामतिस्त्रपरमेश्वर ॥२२
 मुशलन्तस्यवलिन सौनन्द प्रोच्यतेजनै ।
 तथावलायलञ्चैवतवदन्तिविचक्षणा ॥२३
 तत्तु निर्वीर्य्यतायातिस्पृष्ट योपितानृप ।
 तस्मिन्दिनेद्वितीऽह्निवीर्य्यवत्तदुदीर्य्यते ॥२४
 नसवेत्तिदुराचार प्रभावमुशलस्यतम् ।
 योपित्कराश्रमस्पर्शदोषवीर्य्यविशातनम् ॥२५
 एवतम्यवलभूपदानवस्यदुरात्मन ।
 मुश नस्यचत्तेप्रोक्त यद्यत्त तत्समाचर ॥२६
 आसत्रमेतद्भूवत पुरस्यपृथिवीपते ।
 कृततेनमहारघ्न निश्चिन्त विभवान्वृथा ॥२७
 इत्युक्त्वातुगतेतस्मिन्पुरगतवामहीपति ।
 मन्त्रयामाममन्त्रज्ञं पुरमध्येतुमन्त्रिभिः ॥२८

अर्थात् ने फिर कहा—आप जब रमातल में रहने वाले इस दानव पर विजय प्राप्त कर सकेंगे तभी पृथ्वी के सच्चे अधीश्वर बन सकेंगे । सर्व साधारण में इन भूयन का नाम 'मौनन्द' प्रसिद्ध है और जानकार व्यक्ति उमक गम्बध में कहते हैं कि जिस दिन वह मूसल स्त्री के हाथ से छू निघा जाय उस दिन उसकी शक्ति जाती रहती है, पर दूसरे दिन वह पूर्ववत् ही जाता है । वह दानव मूसल की यह विशेषता और स्त्री के हाथ से छू जाने पर उमकी शक्ति नष्ट हो जाने की बात गद्दी जानता । अब मैं ने उन दुष्ट दानव का और भूयन का मन रहस्य आपको बतला दिया । आपका कर्तव्य है कि इस विषय में निश्चिन्त न रह कर दैत्य को नष्ट करने का उपाय करें क्योंकि उमने यह पानान मार्ग आपके नगर के समीप ही बताया है ॥२२-२८॥

यथाश्रुत्तमगोपन्तत्प्रययामाममन्त्रिणाम् ।
 मुशलन्यप्रभावाच्चवीर्य्यशाननमेवच ॥२९

तंमन्त्रं क्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूमृता ।
 तत्पाश्वर्वातिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती ॥३०
 ततःकतिपयाहेतुतंकन्यांवयसान्विताम् ।
 जहारोपवनाहं त्यःकुजृम्भःससखीवृताम् ॥३१
 तच्छ्रुत्वासमहीपालःक्रोधपथ्याकुलेक्षणाः ।
 पुत्रावुयाचत्वरितंगच्छतंवनकोविदौ ॥३२
 निर्विन्ध्यायास्तटेगर्तस्तेनगत्वारसातलम् ।
 सहन्यतांयोऽपहर्तामुदावत्याःसुदुर्मतिः ॥३३
 ततस्तौतत्सुतौप्राप्यतंगर्तं तत्पदानुगौ ।
 युयुधातेकुजृम्भेरास्वसैन्येनातिकोपितौ ॥३४
 ततःपरिघनिस्त्रिशशक्तिशूलपरश्वधैः ।
 वारणैश्चाविरतंयुद्धंतेषामासीत्सुदारुणम् ॥३५
 ततोमायाबलवतातेनदैत्येनतावुभौ ।
 राजपुत्रौररोबद्धौनिहताशेषसैनिकौ ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगर में वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियों से इस विषय में सलाह करने लगे । उन्होंने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियों को बतलाई । उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वहीं पर बैठी सब बातें सुन रही थी । इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियों के साथ उपवन में गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड़ कर ले गया । जब यह खबर राजा को मिली तो वे बड़े क्रोधित हुए और अपने दोनों पुत्रों को बुला कर कहा कि तुम दोनों वन-प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्धा नदी के तटवर्ती पाताल विवर में होकर कुजृम्भ दानव को मारो, क्योंकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है । राजा के आदेशानुसार दोनों राजपुत्र उस विवर पर पहुँचे और वहाँ दानव के पैरों के चिन्ह देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये । तब राजपुत्रों की सेना का दानव की सेना के साथ घोर

युद्ध हुआ जिसमें पण्डित, निस्त्रिंशं, शक्ति, शूल, परमा धीर बाणो से आघात
 किये जाने लगे । पर दैत्य सेना ने माया बल से दोनों राजपुत्रों और उनकी
 सेना को बाँध लिया ॥२६-३६॥

तन्नुत्वासमहीपाल प्राहेद सर्वसैनिकान् ।
 वद्धपुत्र परामातिमुपेतोमुनिसत्तम ॥३७
 यस्तनिहत्यदं तेयमोचयिष्यतिभेसुताम् ।
 तस्याहसप्रदास्यामिताभेवायतलीचनाम् ॥३८
 इत्येवधोपयाचक्रे सराजास्वपुरेतदा ।
 निराश पुत्रतनयाबन्धमोक्षायवैमुने ॥३९
 तत शुश्राववत्सप्रीभंलन्दनसुतोद्भित्तु ।
 आघोष्यमाणबलवान्कृतास्त्र शौर्य्यंसयुतः ॥४०
 सचागम्याभिवाद्यंनप्राहपार्थिवसत्तमम् ।
 विनयावनतोभूत्वापितुमिन्नमनुत्तमम् ॥४१
 आज्ञापयाशुमामेवतनयौमोचयामिते ।
 तवैवतेजसात्बन्तुदैत्यहितनयाश्रते ॥४२

जब राजा विदूरथ ने अपने दोनों पुत्रों के बाधे जाने का समाचार
 पाया तो वे बड़े दुःखी हुये और अपने सेनाध्यक्षों से उन्होंने कहा कि जो कोई
 दैत्य को जीत कर मेरे पुत्रों तथा बन्धुओं को लावेगा उसके माथ हो मैं अपनी
 बन्धु का विवाह कर दूँगा । राजा इस विषय में बड़े निराश हो गये थे और
 इमनिने उन्होंने उक्त घोषणा का टिठोरा अपने राज्य में पिटवा दिया । यह
 समाचार मलन्दन के पुत्र वरतप्री को भी मिला और उसने अपने पिता के मित्र
 राजा विदूरथ के पास पहुँच कर विनय-पूर्वक कहा कि 'यदि आप आता हैं
 तो मैं आपके प्रताप में उस दैत्य को मार कर कन्या तथा पुत्रों को छुड़ा कर
 लाऊँ ॥३७-४२॥

मतमुदापरिष्वज्यप्रियसख्ययुरथात्मजम् ।
 गम्भताभितिससिद्धचं चत्सेत्याहसपार्थिव ॥४३

स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयद्ये वंकुस्तेविधिम् ।
 वत्संतत्क्रियतामाशुयद्युत्साहिमनस्तव ॥४४
 ततःसखङ्गसधनुवंद्वगोधाङ्गलित्राणवान् ।
 जगामवीरःपातालंतेनगर्तेनसत्वरः ॥४५
 तजोज्यास्वनमंत्युग्रसचक्रेपार्थिव(त्मजः ।
 येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६
 ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वरः ।
 आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारितः ॥४७
 ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ।
 ससैन्यस्यससैन्येनवलिनोवलशालिनः ॥४८
 दिनानित्रीणिशयदाथीघियस्तेनदानव ।
 ततःकोपपरीतात्सामुसलाभ्यधावत ॥४९

महाराज विद्वरथ ने मिनापुत्र वत्सप्री का हार्दिक स्वागत करते हुए—
 “हे वत्स ! यदि तू इस कार्य को कर सकोगे तो मैं तुम्हारा मित्र पुत्र होना
 सार्थक समझूँगा । अतएव यदि तुम्हारे मन में इसके लिये पूर्ण उत्साह हो
 तो शीघ्रातिशीघ्र इसे पूरा करने का प्रयत्न करो । तदनन्तर महावीर वत्सप्री
 खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलीत्राण धारण करके शीघ्रतापूर्वक उस विद्वर
 में धुसे और वहाँ पहुँच कर अपने शक्तिशाली धनुष की प्रत्यंवा की टंकार
 भरी जिससे वह समस्त विद्वर महाशब्द से परिपूर्ण हो गया । उस टंकार के
 घोर रव को सुन कर दानव श्रेष्ठ कृजम्भ क्रोध से भर गया और अपनी सेना
 को लेकर लड़ने के लिये तैयार हो गया । राज कुमार वत्सप्री और कृजम्भ का
 युद्ध तीन दिन तक होता रहा, पर तब भी वह वत्सप्री को जीत न सका ।
 तब वह मूसल को लेने के लिए अपने महल में गया ॥४३-४९॥

गन्धैर्मल्लिप्रैस्तथाधूपैःपूजमानःसतिष्ठति ।
 अन्तःपुरेमहाभागप्रजापतिव्रिनिर्मितः ॥५०
 ततोविज्ञातमुशलप्रभावासामुदावती ।
 पस्पर्शमुशलश्रेष्ठमत्तनम्रशिरोधरा ॥५१

पुनर्वावत्सगृह्णातिमुशलतमहासुर ।
 तावरसावन्दनध्याजात्पस्पशानिकश शुभा ॥५२
 तत मगत्वायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ।
 व्यर्थामुशलपातास्तेसजग्मुस्तेपुशत्रुषु ॥५३
 परमास्त्र तुनिर्वीर्यसौनन्देमुशलेमुने ।
 अस्त्रं शस्त्रं श्रद्धं तेय सोयुध्यतरणारिणा ॥५४
 शस्त्राम्त्रं नंसमस्तस्परराजपुत्रस्यसोऽसुरः ।
 मुशलेनवलन्तस्यतच्चतन्व्यानिराकृतम् ॥५५

राजाविदूरथ की कन्या मुदावती जो दानव के महल में बँध थी इस मूमल के विषय में सब रहस्य अपने पिता से मुन चुकी थी । इसलिये, उसने उस मूमल को प्रणाम करके उसे छू लिया । जब कृष्ण उस मूमल को ले जाने लगा तब तब मुदावती ने पूजा के बहाने उसे बार-बार छुआ जब दानव-पति उस मूमल को देख कर युद्ध क्षेत्र में लड़ने लगा तो उसका प्रहार बार-बार असफल होने लगा, क्योंकि उसकी शक्ति स्त्री के स्पर्श के कारण नष्ट हो चुकी थी । यह देख कर दानव अस्त्र-शस्त्र द्वारा युद्ध करने लगा । पर अस्त्र युद्ध में बरमशी दानव की अपेक्षा अधिक निपुण था । उसको जिस मूमल का भरोसा था वह अब चतुराई से व्यर्थ कर दिया गया था ॥५०-५५॥

तत पराजित्यमभूपमूनु रस्त्राणिशस्त्राणिचदानवस्य ।
 चकारनद्योविरथतनश्चमचर्षप्रङ्ग पुनरप्यधावत् ॥५६
 तमापन्तरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोपत्रिदशेन्द्रशत्रुम् ।
 शस्त्रेणवह्नेभु विराजपुत्राजधान कालानलसप्रभेण ॥५७
 सपावकास्त्रेणदृष्टिभृशतत्याजदेहत्रिदशारिरात्पनः ।
 वभूवमद्यश्महोरगागारमातलान्तेपुमहानथोत्मव ॥५८
 ततोपतत्पुष्पवृष्टिमंहीषानमुतोपरि ।
 जगुगन्धर्वपतयादेववाद्यानिमस्वनु ॥५९
 मचापिराजपुत्रस्तह्न्वातो नृपतेमुनी ।
 मोक्षयामासन्तदङ्गीतान्त्सदन्वामुदावतीम् ॥६०

तच्चापिमुशलंतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ।
जग्राहनागाधिपतिरन्तःशेषसंज्ञितः ॥६१
तस्याश्चपरितुष्टोऽसौशेषःसर्वोरगेश्वरः ।
मुदावत्यामुदाव्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥६२
सुनन्दमुशलस्पर्शयच्चकारपुनःपुनः ।
योषित्करतलस्पर्शप्रभावजातिशोभना ॥६३
मुदावत्यास्ततोनामनागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामितिसानन्दसौनन्दगुणजं द्विज ॥६४

जब वत्सप्री ने दानवराज के सब अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करके उसके रथ को भी नष्ट कर दिया तो वह तलवार, ढाल लेकर वत्सप्री से युद्ध करने के लिये बड़े वेग से दौड़ा। पर वत्सप्री ने उसे बीच में ही कालाग्नि के समान सुप्रकाशित आग्नेयास्त्र से मार दिया ॥५६-५७॥ यह कुजृम्भ देवताओं तथा पातालवासी नागों के लिये बड़ा कष्टकारक थी, इससे उसके मरते ही नागगण महान् उत्सव करने लगे। इस समय चारों ओर से राजपुत्र वत्सप्री पर पुष्पवर्षा होने लगी, गन्धर्व गायन करने लगे श्री-देवगण तरह तरह के बाध वजाने लगे। वत्सप्री ने दानव की कैद से राजा विदूरथ के दोनों पुत्र सुनीति तथा सुनति और कन्या मुदावती को छुड़ाया। कुजृम्भ का अन्त हो जाने पर उसके मूसल नागराज अनन्त ने ग्रहण किया और वे राजकन्या मुदावती की चतुराई को जान कर बड़े प्रसन्न हुए। उसी मूसल को बार-बार छूकर उसकी शक्ति को मिटा दिया था और इस प्रकार कुजृम्भ का नाश कराया था। उस मूसल का नाम सौनन्द होने से नागराज ने मुदावती का नाम 'सुनन्दा' रख दिया ॥५८-६४॥

सचापिगजपुत्रस्तांभ्रतृभ्यांसहितांपितुः ।
समीपमानिनायाशुप्रणिपत्याहचैवतम् ॥६५
आनीतीतनयीताततथैवेयंमुदावती ।
तवाज्ञयामयान्यद्यत्कर्तव्यंतत्समादिश ॥६६

तत प्रहर्षसपूर्णं हृदय समहीपति ।
 साधुसाधिवत्यथाहोर्च्चैर्वत्सवत्सेतिशोभनम् ॥६७
 सभाजितोऽस्मिन्निदर्शवत्साहकारणस्त्रिभि ।
 त्वजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातित ।
 आगता यक्षता यत्रयच्चापत्यानिमेपुन ।
 तद्गृहाणाद्यग्नेऽह्निपाणिमस्यामयोदितम् ॥६९
 त्वराजपुत्रचार्वङ्ग्या कन्यायादुहितुर्मम ।
 मुदावत्यामुदायुक्तःसत्यवाक्यकुरूप्वमाम् ॥७०

तत्पश्चात् राजकुमार वत्सप्री ने दोनों राजकुमारों तथा कन्या को अपने साथ लाकर राजा विदूरथ की सेवा में उपस्थित किया और उनको प्रणाम करके निवेदन किया—'महाराज, आपकी आज्ञानुसार आपके दोनों पुत्रों तथा कन्या मुदावती को कृजम्भ को मार कर छुड़ा लाया हूँ। अब जो अन्य कोई कार्य हो तो वैसी आज्ञा दें ॥६५-६६॥ यह सुन कर राजा बड़े प्रसन्न और सतृप्त हुए और बारम्बार वत्सप्री की सराहना करके उसे धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा—आज मर लिय बड़ी प्रसन्नता का दिन है क्योंकि तीन कारणों से मैं देवताओं द्वारा भी प्रशंसा का अधिकारी बन गया हूँ। प्रथम तो तुम को जमाता के रूप में प्राप्त किया, दूसरे ऐसा दुर्घटन नष्ट मारा गया और तीसरे मेरे पुत्र और कन्या सकुशल मुझे प्राप्त हो गये। इसलिये अब मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी कन्या का तुम्हें देता हूँ। तुम उनका पाणिग्रहण करो ॥६७-७०॥

तत्सम्याजामयाकार्यायिद्व्यवोपिकरोमिऽत् ।
 त्वमेवतातजानीपेनैवानाधिकृतावयम् ॥७१
 ततस्तयो मराजेन्द्रश्चक्रैर्वाहिकक्रमम् ।
 मुदायत्याश्चदुहितुर्भलन्दनसुतस्यर्व ॥७२
 तत महतयारमेवत्सप्रीनंबयोवन ।
 रमणीयपुदेशेषुप्रासादशिखरेषुच ॥७३
 कालेनगच्छनाद्भ्रुवित्तातस्यभलन्दन ।
 वनजगामत्सप्री सबभूवमर्हीपति ॥७४

इयाजयक्षान्सततंप्रजाधर्मेणपालयन् ।
 पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ॥७५
 ववृधुर्विषयेतस्यनचाभूद्वर्णसङ्करः ।
 नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीञ्चकस्यचित् ।
 नोपसर्गभयञ्चैवतस्मिञ्छासतिभूपती ॥७६

राजपुत्र वत्सप्री ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आप जानते ही है कि मैं गुरुजनों की आज्ञा पालन की सदैव तत्पर रहा हूँ । तब राजा विदूरथ ने वत्सप्री तथा मुदावती का विवाह-संस्कार बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया । ये दोनों नवयुवा पति-पत्नी रमणीय स्थानों और महलों में प्रेमपूर्वक विहार करने लगे । कुछ समय पश्चात् वत्सप्री के पिता भलन्दन अधिक वृद्ध हो जाने से पुत्र को राज्य देकर वन को चले गये । वत्सप्री ने राज्य का संचालन और प्रजा का पालन बड़ी योग्यता से किया जिससे समस्त प्रजाजन निरन्तर समृद्धिशाली और सुखी होने लगे । उनके राज्य में कोई वरसंकर नहीं होते थे और हिंसक जन्तु, दुष्ट लोगों, ठग, धूर्त आदि का भय जाता रहा ॥७१-७६॥

१०४—खनित्र चरित्र (१)

तस्यतस्यांसुनन्दायांपूत्राद्वादशजज्ञिरे ।
 प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रोविक्रमःक्रमः ॥१
 वलीवलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रमः ।
 सुनयश्चमहाभागाःसर्वसंग्रामजित्तमाः ॥२
 तेषांज्येष्ठोमहावीर्यःप्रांचुरासीन्नराधिपः ।
 इतरेभृत्यवत्तस्यवभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥३
 तस्थयजेद्विजत्यक्तंरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ।
 न्यूनवर्णविसृष्टंश्चसत्यनामावसुन्धरा ॥४

सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजा पुत्रानिवीरसान् ।
 योऽभूद्धनत्रयकोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥५॥
 क्रतवः शतसहस्रास्तेतेपासख्यानविद्यते ।
 अमुताद्येनकाटीभिनचपद्यादिभिर्मुने ॥६॥

माकण्डेय जी न ब्रह्मा—सूयवशात्पुत्र महाराज बल्यश्री के वारह पुत्र हुए थे, जिनके नाम प्राणु प्रवीर शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बलाक, चाण्ड, प्रवण्ड, सुविक्रम और मुनय हुए यह सब अत्यन्त भाग्यशाली और युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१-२॥ उनमें सबसे प्राणु राजा हुए और अन्य ग्यारह भाई उनके अधीन भृत्य व समान रहने लगे ॥३॥ उनके यज्ञ करने के समय में ब्राह्मणा तथा अन्य जाति के मनुष्यों ने भी धन का त्याग किया था, इसीलिये पृथिवी का नाम वसुधरा पडा ॥४॥ उन्होंने अपने पुत्र के समान ही प्रजा का पालन किया तथा उनका राज-शोष में जो धन एकत्र होता था, उसी धन के द्वारा सभी बमरय यजानुष्ठान सम्पन्न हुए थे । उन यज्ञों की अमुत, कराड अमदा पद्य आदि सख्या में गणना सम्भव नहीं है ॥५-६॥

प्रजानिम्नम्यपुत्राऽनृद्यम्ययज्ञशतक्रतु ।
 अत्राप्यतृप्तिमत्पुत्रायज्ञभागे सुरैर्मह ॥७॥
 दानदानामुवीथ्रिणाजधाननवतीर्नव ।
 बलचबलिनाश्रेष्टो जम्भचामुग्मत्तमम् ॥८॥
 अन्याश्चसुमहावीर्यानाजधानामरद्विप ।
 प्रजानिम्नतया पचगनित्रप्रमुष्णामुने ॥९॥
 तेषापनित्रोराजामूत्रस्यातानिजविक्रमे ।
 मशान्त सत्यरावद्धूर मवप्राणिहितरत ॥१०॥
 श्वघर्माभिरतो नित्यं नृद्धसेवीवहृभुत ।
 वाग्मीविनयमपन्न कृतास्थोऽप्यविवक्ष्यत ॥११॥
 सर्वतोत्रप्रियो नित्यमुत्रार्चतद्रक्षितिशम् ।
 नन्दन्नुमर्धभूतानिम्निहान्नुत्रिजनेऽपि ॥१२॥

स्वस्त्यस्तुसर्गभूतेषुनिरातङ्कानिसन्तुच ।

माव्याधिरस्तुभूतानामाधयोर्भवन्तुच ॥१३

उन राजा प्रांशु के प्रजाति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उनके यज्ञ में देवताओं के सहित इन्द्र यज्ञ भाग प्राप्त कर तृप्त हुए थे और उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी बल और जम्भ नामक दैत्यों तथा अन्य देव-शत्रु असुरों का वध किया था, उस राजा प्रजाति के खनित्र इत्यादि नाम वाले पाँच पुत्र हुए थे ॥७-९॥ उन पाँचों में खनित्र ही अपने बल, वीर्य से प्रसिद्ध राजा हुए, यह शान्त सत्य-वक्ता, वीर, सब जीवों का हित चिन्तन करने वाले ॥१०॥ अपने धर्म में परायण, वृद्धजनों की सेवा करने वाले, अनेक शास्त्रों के देखने वाले, वाग्मी, अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता, विनयशील, अहङ्कार-हीन ॥११॥ तथा सर्व लोकप्रिय थे, वह सदैव कहते रहते—सभी जीव आनन्दित रहें, विजन स्थान में स्नेह युक्त हों, सभी जीवों का कल्याण हो, सब निर्भय हों, सब की पीड़ा नष्ट हो और मनोव्यथा किसी की भी न हो ॥१२-१३॥

मैत्रीमशेषभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ।

शिवमस्तुद्विजातीनांप्रीतिरस्तुपरस्परम् ॥१४

समृद्धिःसर्ववर्णानांसिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ।

भोलोकाःसर्गभूतेषुशिवावोऽस्तुसदामतिः ॥१५

यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वादा ।

तथासमस्तभूतेषुवर्त्सुर्ध्वंहितवृद्धयः ॥१६

एतद्वोहितमत्यन्तकोवाकस्थापराध्यते ।

यत्करोत्यहितकिंचित्कस्यचिन्मूढमानसः ॥१७

तंसमभ्येतितन्नयूनंकर्तृगामिफलयतुः ।

इतिमत्वासमस्तेषुभोलोकाहितवृद्धयः ॥१८

सन्तुमालौकिकंपापलोकाःप्राप्स्यथशैवुधाः ।

योमेऽद्यस्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदाभुवि ॥१९

सभी प्राणी सबसे मित्रता प्रकट करें, ब्राह्मणों का कल्याण, पार-स्परिक स्नेह ॥१४॥ सभी वर्णों की समृद्धि और सभी कर्मों की सिद्धि हो,

हे मनुष्यो ! तुम्हारी मङ्गलमयी बुद्धि सदैव सब प्राणियों के हित में लगी रहे ॥१५॥ जैसे तुम अपनी और अपने पुत्र की शुभ कामना सदा किया करते हो, वैसे ही समस्त प्राणियों के हित की कामना करो ॥१६॥ इसी में तुम्हारा अत्यन्त हित निहित है, वीन किमके प्रति अपराधी है ? जो मन्द बुद्धि मनुष्य किसी का अहित करता है ॥१७॥ उनमें उन्नी का अहित होता है क्योंकि कर्म के फल का भोगने वाला कर्मकर्ता ही है, ऐसा विचार करके सभी प्राणियों के हित में अपनी बुद्धि को रखो ॥१८॥ हे जानियो ! लौकिक पाप में प्रवृत्त मत होना, इसीमें तुम्हें पुण्यलोक प्राप्त हो सकते हैं, मुझमें स्नेह रखने वाले मनुष्य का भ्रमण्डल में सर्वत्र ही बल्याण हो और जो मेरे प्रति द्वेष करे, उसका भी बल्याण हो ॥१९॥

यश्चमाद्वेष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ।

एवस्वरूपपुत्रोऽभूत्तन्निवस्तुस्यभूपते ॥२०

समस्तगुणसम्पन्नःश्रीमानवजदलेक्षणः ।

तेनतेभ्रातरप्रोत्यापृथग्नाज्येपुयोजिताः ॥२१

स्वयचपृथिवीमतावभुजेसागराम्बराम् ।

प्रान्यातनधृतशौरिदक्षिणस्यामुदावसु ॥२२

दिशिप्रतीचरामुनयउत्तरम्यामहाग्या ।

तेपातस्यचभूपस्यपृथग्गोत्रापुरोहिताः ॥२३

यभूवुमुनयश्चैवमन्त्रिवशक्रमागताः ।

शौरैरत्रिकुलोद्भूतसुहोत्रोनामनीद्विज ॥२४

उदावसोवुशावर्तोऽगौतमान्वयजोऽभवत् ।

वाश्यपप्रमतिर्नामिमुनयस्यपुरोहितः ॥२५

महारथस्यपानिष्टपुरोधाऽभून्महीभृतः ।

बुभुजुस्तेस्वरोग्यानिचत्वारोऽपिनराधिपाः ॥२६

गनित्रश्चाधिपन्तेपामसोपयमुयाधिपः ।

तेपुभ्रातृशोषेपुगनित्रममहापतिः ॥२७

प्रजासुखसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहितः ।

एकदामन्त्रिणाशौरिःसप्रोक्तोविश्ववेदिना ॥२८

वे राजपुत्र खनित्र इस प्रकार की कामना वाले थे, उन्होंने अपने सब भाइयों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर ॥२०-२१॥ स्वयं भी समुद्र तक इस पृथिवी का पालन करते रहे, शौरि को पूर्व प्रदेश में, उदावसु को दक्षिण में ॥२२॥ सुनय को पश्चिम में और महारथ को उत्तर प्रदेश में बसाया और पृथक् राजा के पृथक् गोत्र के पुरोहित हुए ॥२३॥ खनित्र और उनके भाइयों के मन्त्रिवंश के क्रम से उपलब्ध पृथक् गोत्र वाले जो पुरोहित थे, उसी के अनुसार शौरि के अग्नि-वंशोत्पन्न सुहोत्र ऋषि, उदावसु के गीतम वंशोत्पन्न कुशावर्त्त, सुनय के कश्यप गोत्रीय प्रमति तथा महारथ के वसिष्ठजी पुरोहित थे, इस प्रकार चारों भाई राजा होकर राज्य करते थे ॥२४-२६॥ सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी खनित्र उनके अधीश्वर हुए, राजा खनित्र सभी भाइयों और प्रजा के प्रति पुत्र के समान व्यवहार करते थे, एक दिन राजा शौरि से उनके मन्त्री विश्ववेदी ने कहा ॥२७-२८॥

विविक्तेपृथिवीपालकिञ्चिद्वक्तव्यमस्तितनः ।

यस्येयंपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥२९

सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ।

इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥३०

तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः ।

कालेनह्लासमासाद्यपुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१

कृध्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ।

नोद्धारंकुस्तेभ्राताभ्रातृस्नेहवलापणः ॥३२

स्नेहःकःपृथिवीपालपरयोभ्रातृपुत्रयोः ।

तत्पुत्रयोःपरतरामतिर्भवतिपार्थिव ॥३३

तत्पुत्रःकेनेकाव्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ।

अथवायेनतेनैवसतोपंकुस्तेनृपः ॥३४

क्रियतेनत्किमर्थन्तुभूर्पर्मत्रिपरिग्रह ।

भुज्यतेसबलराज्यमयातेमत्रिणासता ॥३५

हे राजन् ! मुझे इय एकांत के समय में कुछ निवेदन करना है, यह सब पृथिवी और राजागण जिनके अधीन हैं ॥२६॥ वह तथा उन्नी के वतपर राजा होते हैं उनके भ्राय भाई पहिल थोड़े से राज्य के अधिकारी होते हैं ॥३०॥ फिर उनके पुत्र उनसे भी थोड़े और पौत्र तो पुत्रों की अपेक्षा भी अल्प राज्य के अधिकारी होते हैं, समय पाकर क्रमांतर से पीढी प्रति पीढी राज्य के धर्तृ-पटते धन्त म ॥३१॥ उस वध के लोग कृषि कर्म से जीविका चलाते हैं हे राजन् ! भाई क स्नेह म बंधा हुआ भाई कभी भी अपने भाई का उदार नहीं करता ॥३२॥ फिर दाना भाइयो की सन्तान भी एक दूसरे को पराया ही मानते लगती है उनके भी जब सन्तान होती है, तो वे और भी दूर होती जाती हैं ॥३३॥ उनके मन म अपनी सन्तति के मुख की ही चिन्ता रहती है, यदि राजागण सतोप का ही अवलम्बन करें ॥३४॥ तो मंत्रियों की नियुक्ति क्यों करें ? मेरे जैसे मन्त्री के हाते हुए आप सम्पूर्ण राज्य का सुख भोग करेंगे हैं ॥३५॥

तर्किमृधाधारयसेसतोऽबुहतेयदि ।

कार्यनिष्पादकं राज्यकरणकतुं रिप्यते ॥३६

राज्यलब्धुश्चतकार्यत्वाकर्त्ताकरणवयम् ।

सोऽस्माभि करणंराज्यपितृपंतामहकुर ।

पुनप्रदामविप्याम परलोकेनतेवयम् ॥३७

ज्येष्ठोभ्रातामहीपालोवयतस्यानुजायत ।

तत समु क्तं पृथिवीवयन्वाल्पवमु धराम् ॥३८

यपन्तुभ्रातर पचपृथ्वीवैकामहामते ।

अतोऽन्या पृथगंश्वर्यंयद्य कृत्स्नमविप्यति ॥३९

एवमेतद्भूतक्षेत्रयद्येवावमुधानृप ।

तात्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठ शास्तुयथाभवान् ॥४०

सर्वाधिपत्यःसर्वेभ्योभवत्वमखिलेश्वरः ।

यतन्तेचयथाहंतेतेषामपिहिमन्त्रिणः ॥४१

मैं चेष्टा करने को प्रस्तुत हूँ तो आप संतोष को व्यर्थ ही क्यों धारण किये हुए हैं ? राज्य को निष्पादन कर देना मन्त्री का कर्तव्य है ॥३६॥ परन्तु उस राज्य प्राप्ति के कार्य में मैं कारण हूँगा और आप कर्ता होंगे, इसलिये कारण के द्वारा अपने पैतृक राज्य पर अधिकार करिये, हम तो इसी लोक में आपके लिये फल देने वाले हैं, परलोक में नहीं ॥३७॥ राजा बोले—पृथिवी का पालन करने वाले राजा हमारे बड़े भाई हैं, इसीलिये वे समस्त पृथिवी का राज्य करते हैं और हम थोड़ी पृथिवी को भोगते हैं ॥३८॥ हम पाँच भाई हैं और पृथिवी एक ही है. इसलिए पृथिवी के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को हम सब पृथक् रूप से किस प्रकार भोग सकते हैं ? ॥३९॥ इस पर विश्ववेदी ने कहा—हे राजन् ! आपका वचन सत्य है परन्तु यदि पृथिवी एक ही है तो इस पर आप ही अधिकार करिये और सबके अधीश्वर होकर इस पृथिवी को भोगिये ॥४०॥ सम्पूर्ण आधिपत्य को प्राप्त होकर सब भाइयों में आप ही सबके स्वामी बनिये, मेरे द्वारा नियुक्त अन्य मन्त्रिण भी ऐसी ही चेष्टा कर रहे हैं ॥४१॥

ज्येष्ठोराजायथाप्रीत्याभजतेऽस्मान्सुतानिव ।

कथं तस्य करिष्यामिममत्वं जगतीं गतम् ॥४२

राज्ये स्थितः पूजयेथाज्येष्ठं भूपाहं र्गर्धनैः ।

कनिष्ठज्येष्ठताकेयं राज्यं प्राथयतां नृणाम् ॥४३

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजातेन सत्तम ।

विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातृ ननयद्वशम् ॥४४

तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु ।

नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥४५

विभेदतस्य निभृतान् सामदानादिभिस्तथा ।

चक्रे च परमोद्योगं निजदंडप्रभावने ॥४६

राजा बोले—बड़े भाई पुत्र के समान सबका परिपालन कर रहे हैं, फिर उनके राज्याधिकार में मुझे ममत्व क्यों करना चाहिये ? ॥४२॥ विश्ववेदी

ने कहा—फिर तो आप राज्याधिकार पूर्वक विभिन्न प्रकार के सत्कारों द्वारा उनका पूजन करिये, वैसे राज्य की कामना वाले पुरुष के लिए छोटे बड़े का विचार करना व्यर्थ ही है ॥४३॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा द्वारा विश्व-वेदी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर विश्ववेदी ने उनके अन्य भाइयों को अपने वश में किया ॥४४॥ तथा उनके पुरोहितों को अपने लिये शान्ति कर्म और छनित्र के प्रति आभिचारिक कर्म करने के लिये नियुक्त किया ॥४५॥ तथा छनित्र के विश्वासपात्र भृत्यों को भी सामदानादि की नीति से अपने वश में करने का यत्न करन लगा ॥४६॥

आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिबुवंताम् ।

पुरेऽथमाचनुर्णाचजजेवृत्त्याचतुष्टयम् ॥४७

विकरालमहावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ।

समुद्यतमहाशूलप्रभूनमतिदारुणम् ॥४८

तयस्तदागतन्तत्रचनित्रोयत्रपाथिवः ।

निरस्तचाप्यदुष्टम्यतस्यपुण्यचयेनतत् ॥४९

वृत्त्याचतुष्टयन्तपुनिपपातदुर्गात्मसु ।

पुरोहितपुभूपानातथागैविश्ववेदिनि ॥५०

ततानिहन्त्यानिदग्धा वृत्त्ययातेपुरोहिता ।

विश्ववेदीतथामन्त्रीसशोरेर्दुष्टमन्त्रद् ॥५१

जब पुरोहितों ने अत्यन्त उग्र अभिचार कर्म किया, तब चार कृत्यावै उत्पन्न होगई ॥४७॥ वह सभी विकराल शरीर वाली अत्यन्त भयानक प्रतीत होनी थीं, उनके हाथों में महाशूल स्थित थे और वे अत्यन्त विकराल तथा दारुण थीं ॥४८॥ हमने पदवात् के चारों कृत्यावै राजा छनित्र के पास पहुँचीं, परन्तु पाप-रहित राजा के पुण्य प्रभाव से तेजहीन होकर ॥४९॥ उन दुर्गात्मा पुरो-हितों और विश्ववेदी के पास हा लौटकर आगई ॥५०॥ देने वाला वह दुष्ट मन्त्री विश्ववेदी, यह सभी उन लौठी कृत्यावै के द्वारा मारे जाकर भस्मीभूत होगये ॥५१॥

१०५—खनित्र चरित्र (२)

ततःसमस्तलोकस्यविस्मयःसोऽभवन्महान् ।
यदेककालंनेशुस्तेपृथक्पुरनिवासिनः ॥१
ततःशुश्रावनिघनंयातान्भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणञ्चतथाभ्रातुर्दग्धांतंविश्वेदिनम् ॥२
किमेतदितिसोऽतीवविस्मितोमुनिसत्तम ।
खनित्रोऽभून्महाराजोनाजानात्तच्चकारणम् ॥३
ततोवसिष्ठंप्रच्छसराजागृहमागतम् ।
यत्कारणविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥४
तेनपृष्टस्तदाप्राह्यथावृत्तंमहामुनिः ।
यच्छौरिर्मन्त्रिणाप्रोक्तंयच्चशौरिहवाचतम् ॥५
यथाचानुष्ठितन्तेनभ्रातृणांभेदकारिणौ ।
मन्त्रिणातेनदुष्टेनयच्चक्रुश्चपुरोहिताः ॥६
यन्निमित्तंविनेशुस्तेभ्रपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्यराज्ञःशत्रावपिदयावतः ॥७

भाकण्डेयजी ने कहा—उस समय सभी को यह विस्मय हुआ कि यह पृथक्-पृथक् नगर में निवास करने वाले होकर भी एक ही समय में किस प्रकार मष्ट होगये ? ॥१॥ हे मुनिचर ! तदुपरान्त राजा खनित्र ने अपने भाई के पुरोहित और मन्त्री विश्ववेदी का मृत्यु समाचार सुना तो ॥२॥ इसका कारण न समझ कर 'ऐसा क्यों हुआ' इस प्रकार विस्मय युक्त विचार करने लगे ॥३॥ फिर जब वसिष्ठजी घर पर आये तब उनसे राजा ने अपने भाई के मन्त्री और पुरोहितों के इस प्रकार मरने का कारण पूछा ॥४॥ महामुनि वसिष्ठ से पूछने पर उन्होंने शौरि और उनके मन्त्री के मध्य जो वार्ता हुई थी ॥५॥ तथा उस दुष्ट मन्त्री ने भाइयों में फूट डालने के लिए जो कार्य किये थे और पुरोहितों ने जिस कर्म का अनुष्ठान किया था ॥६॥ तथा शत्रुओं पर भी दया करने वाले

वह पुरोहित निरपराध के अपकार में तत्पर होकर स्वयं ही नाश को प्राप्त होगये थे, वह सब वृत्तान्त आद्योपांत राजा इन्द्रिय को सुना दिया ॥३॥

सतच्छ्रुत्वान्तो राजा हाह्नोऽस्मीति वैवदन् ।

निनिन्दात्मानमत्यर्थवसिष्ठस्याग्रतो द्विज ॥८

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमरुपभाग्यमशोभनम् ।

दैवदोषकृतपापसर्वालोकविगर्हितम् ॥९

मत्रिमित्तविनष्टतत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।

मत्तकोऽन्यपापतरो भविष्यति पुमान्भुवि ॥१०

नाभविष्यदिपुमानहमत्रमहीतले ।

तनस्नेन विनश्यदुममभ्रातृपुरोहिता ॥११

धिप्राज्याधिपत्रमेजन्मभूभुजामहताकुले ।

कारणत्वगतार्याऽह्विनाशम्यद्विजन्मनाम् ।

कुर्वन्तस्वामिनामथ भ्रातृणाममयाजवा ।

नाशययुनदुष्टान्तदुष्टोऽहनाशकारणे ॥१२

विवरो भिव्रगच्छामिनाम्यो मत्तो हि पापकृत् ।

पृथिव्यामस्ति हेतुत् द्विजनाशस्य योगत ॥१४

यह वृत्तान्त सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित होकर वसिष्ठजी के समक्ष ही अपन को धिक्कारन लग ॥८॥ राजा ने कहा—मैं कितना मद भाग्य धमकिन पुण्य वाचा तथा शाभा रहित हूँ कि दैव भी मेरे अनुकूल नहीं है, मैं लोक में किन्दा का पाप और पापी हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है ॥९॥ क्योंकि मेरे ही कारण चार ब्राह्मणों की मृत्यु हुई है, इसलिये इस पृथिवी पर मुझे बढार धर्म कौन पापी हो सकता है ? ॥१०॥ यदि मैं इस पृथिवी पर पुरा के शरीर में उत्पन्न न हुआ होता तो मेरे भाइयों के पुरोहित नाश को प्राप्त न हुए होते ॥११॥ उन ब्राह्मणों के नाश का कारण मैं ही हूँ, इसलिये मेरे इस राज्य को घोर महान् राज-वध में जन्म लेने को धिक्कार है ॥१२॥ मेरे भाइयों की प्रतीवन मिट्टि के लिये कर्म करके जो ब्राह्मण नाश को प्राप्त हुए हैं, उनमें वे स्वयं दोषी नहीं थे, उनके नष्ट होने का कारण मैं ही था, इन्द्रिय

दोषी भी मैं ही हुआ ॥१३॥ अब मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे कहाँ जाना चाहिये? ब्रह्महत्या का कारण होने से मेरे समान पापी इस भूमरडल पर अन्य कोई नहीं है ॥१४॥

इत्थमुद्विग्नहृदयःखनित्रःपृथिवीपतिः ।

वनंयियासुःपुत्रस्यकृतवानभिषेचनम् ॥१५

अभिषिच्यसुतंराज्येक्षुपसंज्ञंमहीपतिः ।

भार्याभिस्तिसृभिःसार्धतपसेसवनंययौ ॥१६

तत्रागत्वातपस्तेपेवानप्रस्थविधानवित् ।

शतानित्रीशिबर्षाणांसाहार्दानिनृपसत्तमः ॥१७

तपसाक्षीरादेहस्तुराजवर्योद्विजोत्तम ।

निगृह्यसर्वस्रोतांसितत्याजासून्वनेचरः ॥१८

ततःपुर्यान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।

अश्रमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्यायेनराधिपैः ॥१९

भार्याश्चित्तस्यतास्तिन्नःसमन्तेनैवतत्युजुः ।

प्राणानवापुःसालोक्यतेनैवसुमहात्मना ॥२०

एतत्खनित्रचरितंक्षुतंकल्मषनाशनम् ।

पठताञ्चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥२१

राजा खनित्र ने इस प्रकार उद्विग्न चित्त से वनवासी होने की इच्छा करके अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया ॥१५॥ क्षुप नामक पुत्र को राज्य देकर स्वयं अपनी तीन पत्नियों को साथ लेकर तप करने के लिये वन में गये ॥१६॥ और वन में वास करते हुए वानप्रस्थी रहकर साढ़े तीन सौ वर्ष तक उन्होंने तप किया ॥१७॥ फिर हे द्विज श्रेष्ठ ! उन वनवासी राजा ने तप के द्वारा कृश शरीर होने पर सब स्रोतों के निरोध पूर्वक प्राण का परित्याग कर दिया ॥१८॥ अन्यान्य राजागण सैकड़ों अश्रमेय यज्ञों को करके भी जिस लोक को नहीं पा सकते उस सर्व अभीष्ट देने वाले अक्षय पुरण लोक को राजा खनित्र ने प्राप्त किया ॥१९॥ उनकी तीनों पत्नियाँ भी उनका अनुगमन करके उन्हीं के साथ समान गति को प्राप्त हुईं हे महाभाग ! इस प्रकार खनित्र के चरित्र को

कुम्भारे प्रति कहा है, इमके पदने या मुने से पारो का नाम होता है, अब धुप का चरित्र कहना हूँ उम श्रमण वग ॥२१॥

१०६—विंश चरित्र

धुप खनित्रपुत्रस्तुपाप्यराज्ययथापिता ।
 तथैवपालयामासप्रजाधर्मैरञ्जयन् ॥१॥
 सदानशीलोयष्टाचयज्ञानामवनीपति ।
 समःसत्रीचमिनेचव्यवहारादिवर्त्मनि ॥२॥
 एकदासमहीपालानिजस्थानगतोमुने ।
 सूतंरुक्तौयथापूर्वशुपाराजातथाऽभवत् ॥३॥
 ब्रह्मणस्तनय पूर्वधुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ।
 यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्यैवचेष्टिनम् ॥४॥
 श्चातुभिच्छामिचरितक्षुपम्यमुमहात्मन ।
 यदितादृङ्भयाशक्य चेष्टितु तत्कराम्यहम् ॥५॥
 सचकाराकरान्भूपराजागात्राह्यणान्पुरा ।
 पञ्चशेनदृताचोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥६॥
 तेषामहात् नाराज्ञानोऽनुयाम्यनिमद्विध ।
 तयाप्युत्कृष्टचेतानचेष्टामूद्यमवान्भवत् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—राज्य में अभिषिक्त हुए खनित्र पुत्र धुप प्रजा की प्रशान्त करते हुए अपने पिता के समान ही प्रजा का पालन धर्म पूर्यक करने लगे ॥१॥ यह राजा धुप भी अपने पिता के समान यज्ञकर्त्ता, दाता और शत्रु-मित्र सभी के साथ समान व्यवहार करने वाले हुए ॥२॥ इस समय की बात है कि मूर्खों ने राज्य निहामन में प्रतिष्ठित राजा धुप से कहा—आप अपने पूर्व-वर्ती धुप राजा की प्रति मूर्ति जैसे ही हैं ॥३॥ पुराकाल में प्रह्लाद के पुत्र धुप ने पृथिवी पर राज्य किया था, उनका जैसा चरित्र तथा जैसी चेष्टा थी, वैसे

ही सब बातें आपमें हैं ॥४॥ राजा बोले—मैं उन महात्मा का क्षुप का चरित्र सुनना चाहता हूँ यदि मैं भी उनके जैसा ही आचरण कर सकूँ तो वैसा ही प्रयत्न करूँगा ॥५॥ सूत बोले—हे महाराज ! वह राजा क्षुप गौ-ब्राह्मण से कर प्राप्त नहीं करते थे तथा छूटे अंश से यज्ञों का अनुष्ठान करते थे ॥६॥ राजा बोले—मेरा जैसा मनुष्य उनके कार्यों का अनुकरण कैसे कर सकता है ? फिर भी ऐसे महात्माओं के उत्कृष्ट आचरण पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये ॥७॥

तच्छ्रूयतांप्रतिज्ञायाम्प्रतक्रियतेमया ।

क्षुपस्यानुकरिष्यामिमहाराजस्यचेष्टिनम् ॥८॥

त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ।

पृथिव्यांचतुरन्तार्यांप्रतिज्ञेयंकृतामया ॥९॥

यच्चगोब्राह्मणाःपूर्वमददन्भूभृतेकरम् ।

तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम् ॥१०॥

इतिप्रतिज्ञायवचःक्षुपस्तत्कृतवांस्तथा ।

सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजच्चजतांवरः ॥११॥

गोब्राह्मणाःपुराराजामददद्यच्चगैकरम् ।

तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥१२॥

तस्यपुत्रोऽभवद्वीरःप्रमथायामनिन्दितः ।

यस्यप्रतापगौर्याभ्यांकृतावश्यामहीभृतः ॥१३॥

तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ।

त्रिविंशंतनयंतस्यांजनयामाससप्रभुः ॥१४॥

इसलिये मैं इस समय प्रण कर रहा हूँ उसे श्रवण करो, मैं उन महाराज क्षुप के कार्य का राज से अनुकरण करूँगा ॥८॥ मैं चारों वर्ण और पृथिवी के प्रति यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कृपि आने वाले, वर्तमान और व्यतीत होने वाले समय में तीन-तीन यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा ॥९॥ तथा पहिले जिस-जिस समय में राजाओं ने ब्राह्मणों से जो कर लिया है, उसे मैं उनको लौटा दूँगा ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ राजा क्षुप ने ऐसी प्रतिज्ञा करके उसकी रक्षा की अर्थात् कृपि की उपस्थिति के समय तीन यज्ञानुष्ठान

किय ॥११॥ तथा पहिले राजाओं को गो और ब्राह्मणों ने जितना कर दिया था, उतना धन उनको दे दिया ॥१२॥ उनकी प्रमथा नाम की भार्या हुई उसके गर्भ में एक अग्न्यन्त सुन्दर और बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, उस पुत्र ने अपनी शूरता और पराक्रम से सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था ॥१३॥ उनकी भार्या विदमं देश के राजा की पुत्री नन्दिनी हुई, उसके गर्भ से विविश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥

विविदेशासतिमहीमहीपालेमहीजसि ।

महीतलमभूच्छाप्तनिरन्तरतयानर् ॥१५

ववपंबालेपर्जन्योमहीसस्यवतीतथा ।

सुफ्रानिचसस्यानिरसवन्तिफलानिच ॥१६

तत्प्रतापेनपिबोभयमापुमंहामुने ।

स्वास्थ्य जन मुहुर्द्वर्गोमुदमापसुपूजितः ॥१८

इष्टानिपज्ञान्मुवहूंसम्यक्मम्पाल्यमेदिनीम् ।

सशामेनिघनप्राप्यशक्लोनमितोगत ॥१९

राजा विविश के राज्यकाल में पृथिवी पर इतनी प्रजा थी कि वहाँ भी स्थान शेष नहीं था ॥१५॥ उस काल में मेघ यथा समय वृष्टि करते थे और पृथिवी भी अन्न में परिपूर्ण रहती थी, सभी अनाज फल से युक्त और सभी फल रस में युक्त थे ॥१६॥ रस में पोषक तत्व होते थे, उनसे होने वाली पुष्टि से मनुष्य उन्नत नहीं होता था, बहुत धनवान् होकर भी मनुष्यों में मिथ्यामद नहीं था ॥१७॥ प्रायः उनके बल से सदा शयभीत तथा अस्वस्थ रहते थे, मुहुर्द्वों को गदा गन्धोप रहता था ॥१८॥ इस प्रकार उस राजा विविश ने अनेकानेक यज्ञ किये और भक्त प्रजा का परिपालन किया, अन्त में युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक को गये थे ॥१९॥

१०७—खनित्र चरित्र (३)

तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः ।
यस्ययज्ञेष्वगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः ॥१
खनीनेत्रसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ।
तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससागरा ॥२
दत्त्वाचसकलांपृथ्वीं ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ।
तपसाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनयः ॥३
यतश्चप्राप्यवित्तद्विमतुलांदातृसत्तमात् ।
जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यराज्ञःप्रतिग्रहम् ॥४
सप्तषष्टिसहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ।
सप्तषष्ट्ययोज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥५
अपुत्रःसमहीपालोमृगयामुपचक्रमे ।
पुत्रार्थपितृयज्ञायमांसकामोमहामुने ॥६
अश्वारूढोविनासैन्यमेकएवमहावने ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणोवाणखङ्गधनुर्धरः ॥७

मार्करण्डेयजी ने कहा—राजा विविश के पुत्र खनी नेत्र हुए, वे महाबली और पराक्रमी थे, उनके यज्ञानुष्ठान को देखकर विस्मय को प्राप्त हुए गन्धर्वों ने उनकी याथा का इस प्रकार कीर्तन किया था ॥१॥ इस पृथिवी पर खनी नेत्र के समान कोई यज्ञकर्त्ता नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने दश सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया और समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया ॥२॥ उन राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणों को सब पृथ्वी दे दी थी और फिर तप के द्वारा धन लाभ करके उस पृथ्वी को छोड़ा लिया था ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! उन दानियों में श्रेष्ठ राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणों ने विपुल द्रव्य प्राप्त करके, पुनः अन्य किसी से दान ग्रहण नहीं किया था ॥४॥ उन्होंने तिहत्तर हजार सरसठ यज्ञों का अनुष्ठान किया और सभी यज्ञों में विपुल धन की दक्षिणा दी ॥५॥ एक समय की बात है कि खनी नेत्र ने पुत्र की कामना से पितृ-यज्ञ के अनुष्ठान की इच्छा की, उस

समय अनुष्ठान के निमित्त मृग के निय धनुष बाण आदि धारण कर और प्रभा-
रुड होकर वन में आसिट के लिये गये ॥६-७॥

तवाहयन्ततुरगमन्यतो गहनाद्दनात् ।

विनिष्क्रम्य मृगं प्राहमाहृत्वा भिमतकुरु ॥८॥

अन्ये मृगा पलायन्ते महाभीत्या विलोकय माम् ।

कथमात्मप्रदानत्वमृत्यवे कर्तुं मिच्छसि ॥९॥

अपुत्राऽहमहाराज वृथा जन्मप्रयोजनम् ।

विचार्यन्नपश्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥१०॥

अथाम्येत्तं मृगं प्राहृतमन्यावसुधाधिपम् ।

मृगस्य तस्य प्रन्यक्षमलमतनपार्थिव ॥११॥

घातयस्व तिमामासैममकमममाचर ।

यथावृताथ तातस्यान्ममचाप्सु पकारितत् ॥१२॥

पुत्राय त्वमहाराज स्वर्षितृन्याऽटुमिच्छसि ।

अपुत्रस्यास्य मामेतेन नप्यसवाच्छिन्नमथम् ॥१३॥

यादृक्कमविनिष्पाद्य तादृद्रव्यमुपाहरेत् ।

दुर्गन्धोनमुगन्धानागन्धजानविनिर्णय ॥१४॥

जब उन्होंने एक बाँस दूधर प्रेम में जाने के लिये अपने शत्रु का
दीक्षाया, तभी एक मृग ने एक शत्रु में निकल कर उनसे कहा—हे राजन् !
मेरा वध करके अपनी इच्छित वध करिये ॥८॥ राजा बोले—घोर तभी मृग
ता मुझे देखते ही भाग जाते हैं परन्तु तुम मर्ग के लिये क्यों इच्छा कर रहे
हो ? ॥९॥ मृग ने कहा—हे राजन् ! मैं पुत्रहीन हूँ, इसलिये जीवित रहता
व्यय समझता हूँ ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी एक अन्य मृग वहाँ
आकर पहिले मृग के शी सामने राजा से बोला—हे राजन् ! इस मृग का वध
करा क्यों ? ॥११॥ शत्रु मरा वध करके अपने वध का सम्पादन करते तो
आपका शरीर मिट्टी होगा और मर्ग ना उपरार होगा ॥१२॥ हे राजन् !
शत्रु पुत्र की कामना से जो पितृ वध करता चाहते हैं उनको मिट्टी इस पृथ-
लोन के भाग से कौन हासिल करेगा ? ॥१३॥ जो जर्म जिन प्रकार का हो, वगैरे

लिये वैसा ही द्रव्य ग्रहण करना चाहिये, भला कभी दुर्गन्ध से सुगन्ध की पूर्ति हो सकती है ? ॥१४॥

वैराग्यकारणंप्रोक्तमनेनापुत्रतामम ।
 कथ्यतांप्राणसत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ॥१५
 वहवोमेसुताभूपबह्वचोदुहितरस्तथा ।
 यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ॥१६
 सर्वसाध्यानरेन्द्रेभ्यमृगजातिःसुकातरा ।
 तेष्वपत्येषुमेचातिममत्वंतेनदुःखितः ॥१७
 मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योविभेम्यहम् ।
 विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यःश्वशृगालादपिप्रभो ॥१८
 सोऽहंनिमित्तबन्धूनामिभांशून्यांवसुन्धराम् ।
 नृसिहादिभयात्सर्वामिच्छामिसुनृशंसकृत् ॥१९
 तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजावितुरगादिकाः ।
 तांस्तेषांपोषणायाहमिच्छामिनिघनंगतान् ॥२०
 निष्क्रान्तेषुतत्स्तेषुममापत्येषुवैपृथक् ।
 भवन्तिचिन्ताःशतशोममत्वादृतचेतसः ॥२१

राजा बोले—उस प्रथम मृग ने पुत्रहीनता को ही अपने वैराग्य का कारण बताया है, परन्तु तुमको वैराग्य किसलिये हुआ है, जो अपना प्राण देने को तत्पर हुए हो ? ॥१५॥ मृग ने कहा—हे राजन् ! मेरे पुत्र पुत्रियों की अधिकता है, उन्हीं की चिन्ता से मैं दुःखरूपी अग्नि में जलता रहता हूँ ॥१६॥ यह मृग जाति सभी के वश में हो जाती है, मुझे अपनी संतान के प्रति अत्यन्त मोह है, इसीलिये मैं सदा ही दुःखित रहता हूँ ॥१७॥ हे राजन् ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक तथा सभी प्राणियों में अत्यन्त हीन श्वान और गीदड़ आदि से भी भयभीत रहता हूँ ॥१८॥ मैं सदा यही कामना करता हूँ कि इन मनुष्य सिंहादि के डर से यह पृथिवी मुक्त हो जाय और मैं भी विघ्न रहित हो जाऊँ ॥१९॥ गौ, बकरी, अश्व आदि पशु जब इस पृथिवी के सम्पूर्ण तृण को खा जायेंगे तब मेरे पुत्र-पुत्री आदि क्या खाकर जीवन धारण करेंगे, इसीलिये मुझे अपनी

सतान के पोपणार्थ में नृगु याने वाले जीवों के मरने की वामना करता रहता है ॥२०॥ जब मेरे पुत्र-पुत्री पृथक् पृथक् रूप में गमन करते हैं, तब उनके मनेह के कारण मेरे हृदय में संकटो विन्ताएँ उपस्थित हो जाती हैं ॥२१॥

विद्वटपाशकिवञ्च वागुराविमुतोमम ।

प्राप्तश्चरन्वनेकिवानृसिहादिवशगतः ॥२२

प्राप्तोऽयमेकःसप्राप्तास्तेवस्थाकीदृशीमम ।

साम्प्रततेचिरायतेयेगता सुमहावनम् ॥२३

दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाम्याशमहन्तानात्मजान्नुप ।

ईपदुच्छ्रमिति क्षेममिच्छामिरजनीपुन ॥२४

प्रभातेदिवमझेमस्तगेऽर्कनिशामपि ।

वाद्याभ्यहव दाक्षेमसर्वंवातभविष्यति ॥२५

एततेनयितभूपमहोद्वेगस्यकारणम् ।

अतप्रमादकृन्मेवाणोऽयपात्यतामपि ॥२६

इतिदुसशताविष्टप्राणाद्गहंत्यजामियत ।

तत्कारगुनिबोधत्वप्रवतोममपार्थिव ॥२७

अमूर्यानामतेलावायान्गच्छन्त्यात्मघातकाः ।

यज्ञोपयुक्तापदावमम्प्रयान्त्युच्छिन्नीप्रभो ॥२८

कभी-कभी उगता है कि कोई पुत्र किनी कठोर पास में बैठा है अथवा

वय मा गिहादि के हाग माग गया है ॥२२॥ यदि एक आजाता है तो दूसरे की चिन्ता रहनी है, जो वन में चरने के लिये गये हैं, वह वही वंभी दण्ड में होंगे यह मुझे ज्ञात नहीं है ॥२३॥ हे गजन् ! जब वह नव मेरे पास आ रहे हैं, तब उन्हें देखकर कुछ गताप होता है, परन्तु उस समय भी समस्त राशि मगन पूर्वक व्यनीत हो, यही चिन्ता करता रहता है ॥२४॥ प्रातःकाल हीन पर दिन भर की मगन वामना और गूर्याम्न होने पर राशि के मंगन पूर्वक व्यनीत होने की चिन्ता करता हुआ यही गोवना रहता है कि यह हर मन्त्र विरागद अवस्था में रहे ॥२५॥ हे गजन् ! मेरे उठने का यही कारण है जो मैंने आवसे वग है अब पाप कृपा करने मुझ पर वाण चगाइये ॥२६॥

राजन् ! मैं जिस लिये सैकड़ों दुःखों से दुःखित हृदय हुआ अपने प्राण त्याग की कामना कर रहा हूँ उसे आप यथार्थ समझिये ॥२७॥ हे प्रभो ! आत्मघात करने वालों को असूर्य नामक नरक की प्राप्ति होती है और यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुए पशुओं को सद्गति की प्राप्ति होती है ॥२८॥

अग्निःपशुरभत्पूर्वपशुरासीज्जलाधिपः ।

भास्वानथोच्छ्रिताःप्राप्तायज्ञेनिष्ठामुपागताः ॥२९

तन्ममैतांकृपांकृत्वानयमामुच्छ्रितिनृप ।

अत्मनश्चेत्पितृकामपुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥३०

राजेन्द्रनैषहन्तव्योधन्योऽयंसुकृतीमृगः ।

बहवस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥३१

एकदेहभवंयस्यदुःखंघन्यःसर्वभवान् ।

बहूनियस्यदेहानितस्यदुःखान्यनेकधा ॥३२

एकोयदाहमासंतुप्रावतदादेहजंमम ।

दुःखमासीन्ममत्वेतुभाय्यायास्तदभूद्विधा ॥३३

यदाजातान्यपत्यानितदायादन्तितानिव ।

तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥३४

नकृतार्थोभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भवः ।

इहदुःखायमत्सूतिपरत्रचत्रिरोधिनी ॥३५

यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमितत् ।

चिन्त्यामिचसंभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥३६

पुराकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य भी पशु होकर यज्ञार्थ वियुक्त हुए थे, इसीलिये उनको सद्गति की प्राप्ति हुई थी ॥२९॥ हे राजन् ! इसीलिये मुझ पर कृपा करके आप मुझे सद्गति को प्राप्त कराइये, ऐसा करके आप अपने इच्छित पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥३०॥ प्रथम मृग ने कहा—हे राजन् ! यह मृग अधिक संतान वाला तो स्वयं ही सुकर्मवान् होता है, इसलिये मुझ पुत्रहीन का ही वध करिये ॥३१॥ इस पर दूसरे मृग ने कहा—एक शरीर वाले को एक ही दुःख होता है, वह तुम्हारे समान घन्य ही है, परन्तु अधिक देह वाले को

अनेकानेक दुष्टों की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जब मैं भी एक था, तब मुझे भी एक देह का ही दुःख था, परन्तु जब पत्नी हुई, तब स्नेह के कारण इसकी दो भागों में विभक्त हुई ॥३३॥ फिर जितनी मनान हाती गई, उतने ही भागों में दुःख बढ़ना गया, इस प्रकार मुझे अनन्त देहों के कारण अनेक दुष्टों की प्राप्ति हुई है ॥३४॥ जब तुम्हें अधिक दुःख नहीं है तब क्या तुम धन्य नहीं हो ? मुझे तो मेरी यह मनान इस लोक में दुःख का कारण और परलोक में भी अहितकर है ॥३५॥ मैं अपनी मति के पोषण और रक्षण जो प्रयत्न अथवा चिन्ता करता हूँ, वह सभी मेरी नरक प्राप्ति का माध्यम रूप ही है ॥३६॥

नवेधिविसन्ततिमान्पन्योऽपुत्रोऽनृषिभृगु ।

पुत्रार्थंत्रायमारम्भोममदात्वायतेमनः ॥३७

दुःखायमन्तति सत्यमेहिकामुष्मिकायतत् ।

तथाप्यतनयान्त्रान्तिष्ठणानीनिश्रुतमया ॥३८

सोऽह्यतिप्यपुत्रार्थंमृतेप्राणिवधमृग ।

तपसैवप्रचण्डेनयथापूर्वमहोपति ॥३९

राजा बाले—हृ मृग ! पुत्रहीन और पुत्रवात् इन दोनों में किसका जीवन सपन है यह मुझे ज्ञान नहीं है, मैं पुत्र प्राप्ति के कार्य में प्रयत्नवात् हूँ, परन्तु मेरा मन अत्यन्त चञ्चलता को प्राप्त हो रहा है ॥३७॥ यद्यपि इहलोक और परलोक में मनान के कारण ही दुष्टों की प्राप्ति होती है, परन्तु ऐसा सुना जाता है कि पुत्रहीन पुण्य ऋण-मुक्त नहीं होता ॥३८॥ इसलिये हृ मृग ! मैं जीवहत्या किए बिना ही, पूषकालीन भूषालो के समान घोर तप करके ही पुत्र लाभ का प्रयत्न करूँगा । ३९॥

१०८—परन्धम चरित्र

सत मनृषतिगंर्याशोभतीपापनाशिनीम् ।

तत्रतदाय नियतोभर्तवादेवपुगन्दरम् ॥१

तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः ।
 तुष्टावप्रयतःशक्रमपत्यार्थमहीपतिः ॥२॥
 तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वरः ।
 तुतोषभगवानिन्द्रःप्राहृचैनंमहामुने ॥३॥
 अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ।
 परितुष्टोऽस्मितेभूपन्नियतांभवेतांवरः ॥४॥
 अपुत्रस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतांवरः ।
 सदाचाव्याहृतैश्वर्योधर्मकृद्धर्मवित्कृती ॥५॥
 तथेतिचोक्तःशक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ।
 प्रजापालयितुंभूपञ्चाजंगामनिजंपुरम् ॥६॥
 तत्रास्यकुर्वतोयज्ञसंम्यक्पालयतःप्रजाः ।
 अजायतसुतोविप्रतदाशक्रप्रसादतः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर राजा खनीनेत्र ने पापों को नष्ट करने वाली गोमती के किनारे पहुँच कर जितेन्द्रिय रहते हुए पुरन्दरदेव का स्तवन किया ॥१॥ हे मुने ! राजा ने जब देह, मन और वचन से संयत होकर पुत्र की इच्छा से देवेन्द्र की स्तुति की, तब भगवान् पुरन्दर ने उनकी भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर कहा ॥२-३॥ हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या, भक्ति और स्तुति से मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुम मुझे वर माँगो ॥४॥ राजा बोले— हे प्रभो ! मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे सभी शस्त्रधारियों से बढ़कर, बाधा रहित और ऐश्वर्यवान् धर्म के जानने वाला एक पुत्र हो ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— इन्द्र ने 'ऐसा ही हो' कहकर जब राजा की प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा अपने नगर में लौट आये ॥६॥ वहाँ प्रजा पालन में तत्परता पूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान करने पर इन्द्र की कृपा से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥७॥

तस्यनामपिताचक्रैवलाश्वइतिभूपतिः ।
 अस्त्रधामशेषंचप्राहयामासतंसुतम् ॥८॥
 पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृपः ।
 सबलाश्वोवशनिन्येभुविसर्वमहीक्षितः ॥९॥

वरचद्रापयामासमारगहृगपूर्वकम् ।
 ससर्वंभूमिपाद्मराजापालयामासचप्रजा ॥१०॥
 अर्थाखिलनरेन्द्रास्तेद्राघादास्तस्मद्दुर्मदा ।
 नचाम्युत्थायमतततेचास्मैप्रददु करान् ॥११॥
 व्युत्थिता स्वैपूराष्ट्रेपुनसन्तोपपरास्तत ।
 भुवतस्यनरेन्द्रस्यजगृह्णस्तेनराधिपा ॥१२॥
 सगृहीत्वास्वक राज्यपृथिवीशावलान्मुने ।
 तस्योभ्यनगरेभूर्पविरोधोवहुभि कृत ॥१३॥
 समेत्यमुमहावीर्या समाधनघनास्तत ।
 रुद्रघुम्तमहीपालपुरेतननरेश्वरा ॥१४॥

पिना ने उतका नाम बलाश्व रता और उसे सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र की
 शिक्षा दी ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! वह बलाश्व अपने पिता के मरणोपरान्त, पृथिवी
 के सब राजाओं को जीतकर सम्राट बन गया ॥११॥ वह उन राजाओं से सार
 रूप कर को लेकर भये प्रकार प्रजा का पालन करने लगे ॥१०॥ फिर समय
 प्राप्त कर उन राजाओं और जाति वालों ने राजा का अभ्युत्थान न होत देने
 के निमित्त कर दत्ता रोक दिया ॥११॥ तब वह राजागण बलाश्व के अधीनता
 से मुक्त होकर ही सतुष्ट न हुए बल्कि उन्होंने राजा बलाश्व की भूमि भी छीन
 ली ॥१२॥ राजा बलाश्व अपने शत्रुओं से युद्ध करते करते इतने बलहीन होगये
 कि उनके पास अपना राज्य मात्र ही रह गया और वह अपनी राजधानी में ही
 रहने लगे ॥१३॥ इसके पश्चात् उन धन साधन सम्पन्न राजाओं ने इन राजा
 बलाश्व को उनके नगर में ही घेर लिया ॥१४॥

पुररोधेनतेनाथकुपितममहीपति ।
 स्वल्पतोशोल्पदण्डश्रवैकनव्यपरमगत ॥१५॥
 अपश्यमान शरणमयनाद्विजसत्तम ।
 वरोमुत्ताग्र वृत्वानिगन्धामातमानस ॥१६॥
 तनोऽभ्यहस्तपिरवान्मुग्धानिरासमाहता ।
 निजंमु गतशोयाधारथनागतुरङ्गमा ॥१७॥

ततःक्षरौनतत्सर्वनगरंतस्यभूपतेः ।
 व्याप्तमासीद्वलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥१८
 अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ।
 निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः ॥१९
 जित्वाचवशमानीयचकारकरदान्पुनः ।
 यथापूर्वमहाभागमहाभाग्योनरेश्वरः ॥२०
 धुतयोःकरयोर्जज्ञेयतस्तस्थारिदाहृदम् ।
 बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्चोऽभिधीयते ॥२१
 सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रःसर्वजन्तुषु ।
 करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥२२
 सम्प्राप्तस्यपरामार्त्तिददावरिविनाशनम् ।
 बलन्धर्मेश्चाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥२३

नगर के धिर जाने से बलाश्व को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु वह अल्पकोष
 श्रीर अल्प दण्ड व्यवस्था वाले होने के कारण ॥१५॥ रक्षा का कोई अन्य
 उपाय न देखकर अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक मुख को दोनों हाथों से ढक कर
 दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे ॥१६॥ ऐसा करने से उनके मुख की वायु के साथ
 ही सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और अश्व निकल पड़े ॥१७॥ हे मुने ! क्षरा भर
 में ही इस प्रकार अत्यन्त बल युक्त सेनाओं के द्वारा राजा बलाश्व का सम्पूर्ण
 नगर व्याप्त होगया ॥१८॥ तब उन राजा बलाश्व ने अपनी उस महान् सेना
 के सहित नगर से बाहर आकर युद्ध किया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त की
 ॥१९॥ और उन सबको अपने अधीन करके उन्हें पुनः करदाता बनाया, इस
 प्रकार वह पुनः सीभाग्यशाली हुए ॥२०॥ बलाश्व के कांपते हाथों से जो सेना
 उत्पन्न हुई उसके कारण राजा बलाश्व की प्रसिद्धि 'करन्धम' नाम से हुई ॥२१॥
 करन्धम त्रैलोक्य में प्रसिद्ध, धर्मतिगा तथा सब प्राणियों के प्रति सख्य भाव
 वाले थे ॥२२॥ वह राजा स्वयं बल प्राप्त करके परम मार्त्त हुए प्राणियों के
 शत्रुओं या दुःखों का नाश करने वाले हुए ॥२३॥

१०६—अवीक्षित चरित्र (?)

वीर्यचन्द्रसुतामुभ्रुर्वीरानामगुभवता ।

स्वयवरेसाजगृहेमहाराजकरन्धमम् ॥१॥

तस्यापुत्रसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ।

अविक्षितमितिख्यातिमुपेतजगतीतले ॥२॥

जातेतस्मिन्मुतेराजासदैवज्ञानपृच्छन् ।

क्वचित्प्रसास्तनदाप्रेसास्तलग्नेमुतोमम ॥३॥

क्वच्चिच्चालोवितजन्मममपुत्रस्यसोमने ।

ग्रहेक्वच्चिन्नदुष्टानाग्रहाणाहृत्पथगतम् ॥४॥

इत्युक्त्वास्तेनदैवज्ञास्तमूचुर्नृपतितत ।

सस्तेमूहूर्तेनक्षत्रलग्नेचैवमुतस्तव ॥५॥

समुत्पन्नामहावीर्योमहाभागामहाबल ।

भविष्यतिमहाराजमहाराजस्तवात्मज ॥६॥

अवंधतेमदेवानागुरुंशुक्रश्चमत्तम ।

सोमश्चतुर्थस्तनपतवनममवंधत ॥७॥

उपान्तसस्थितश्चैवसोमपुत्राप्यवंधत ।

नावंधनेममवितानभोमोनशनश्चर ॥८॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज करन्धम ने स्वयवर में वीर्यचन्द्र नरेश

की कन्या गुभवता वीरा का पालिषद्गण किया था । वीरा के गर्भ में महाराज करन्धम के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका अवधिगत नाम सोम के प्रतिष्ठा है । उसके जन्म लेने पर राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर कहा कि मेरे पुत्र ने प्रसन्न सन्न और शुभ नशत्र में तो जन्म लिया है ? इसके लग्न स्थान में शुभ ग्रहों की दृष्टि है ? किसी दुष्ट ग्रह की दृष्टि तो नहीं पड़ी ? राजा के प्रश्न सुनकर ज्योतिषियों ने गणना करके बतलाया कि 'महाराज उत्तम मुहूर्त, शुभ नशत्र और श्रेष्ठ लग्न में उत्पन्न हुआ है । इसलिये बड़े भाग्यशाली, बड़े पराक्रमी, प्रसन्न शक्तिशाली वृत्ति होंगे । इनकी वृत्तली में बृहस्पति तथा शुक सप्तम

है और सप्तम घर पर देखते हैं । चौथे घर को चन्द्रमा देख रहा है और ग्यारहवें पर बुध की दृष्टि है । रवि मंगल तथा शनिश्चर जैसे क्रूर ग्रहों की दृष्टि नहीं है ॥१-८॥

तवपुत्रं महाराजधन्योऽयंतनयस्तव ।
 सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतो भविष्यति ॥६
 इति देवज्ञवचनं तिशम्य वसुधाधिपः ।
 हर्षपूर्णा मनाः प्राहनिजस्थानगतस्तदा ॥१०
 अवैक्षते मदेवानां गुरुः सोमः सितो बुधः ।
 नावैक्षते नमादित्यो नाकं सूनुर्न भूमिजः ॥११
 अवैक्षते तियत्प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः ।
 अविक्षते तितेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति ॥१२
 अविक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः ।
 अस्त्रग्राममशेषं सकरवपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३
 सरूपेणातिभिपजौ देवानां पाथिवात्मजः ।
 बुद्ध्या वाचस्पतिकान्त्याशशाङ्कतेजसारविम् ॥१४
 धैर्येणाब्धितथोर्वीचसहिष्णुत्वेन वीर्यवान् ।
 शौर्येणानसमस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ॥१५

इसलिये महाराज ! आपके पुत्र बड़े मान्य, भाग्यवान् और वैभवशाली होंगे । यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहने लगे कि आपके कथनानुसार 'बृहस्पति और बुध पुत्र को अवलोकन करते हैं, पर रवि, मंगल, शनि की इन पर दृष्टि नहीं है ।' आपने बार-बार 'अवैक्षत' शब्द कहा है, इसलिये इसका नाम अवीक्षित रख दिया जाय । मार्कण्डेय जी बोले—बड़ा होने पर राजकुमार अवीक्षित ने वेद-वेदांग की शिक्षा प्राप्त करके करवपुत्र से अस्त्र विद्या का पूर्ण रूप से अभ्यास किया । यह राजपुर परम रूपवान्, बुद्धिमान्, कान्तिमान् और तेजस्वी था । वह समुद्र के समान वीर्यशाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु भी था । उस समय उसकी तुलना का कोई और व्यक्ति नहीं मिलता था ॥६-१५॥

स्वयवरेतजगृहेहेमघमतिमजावरा ।
मुदेवतनयागौरीसुभद्रावलिन सुता ॥१६

सीलावती तीरसुतावीरभद्रसुतानिभा ।
भीमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुदती ॥१७

याश्च ननाभिनन्दन्तिस्वयवरवृत्तक्षणा ।
ताश्चापिसवलाद्वीरोजप्राहनृपते सुत ॥१८

निरागृत्पनृपान्मर्वास्तासापितृकुलानिच ।
स्वयहिवीर्यमाश्रित्यवलवान्सबलोद्धत ॥१९

एकदानुविशालस्यविशालाधिपते सुताम् ।
वशालिनीसमुदतीस्वयवरवृत्तक्षणा ॥२०

परिभूयात्त्रिलान्भूपान्स्वच्छद्यानृतस्तया ।
बलाज्जप्राहृप्रपययान्यावलगीवत ॥२१

घर्म की कन्या वरा मुदेव की कन्या गौरी, बलि की पुत्री सुभद्रा, धीरभद्र की निभा धीर-पुत्री सीलावती भीम पुत्री मायवती ने उन्हें स्वयवर म वरण दिया था । और भी घनेक कन्याओं को जिन्होंने उनको वरण नहीं दिया था वह शक्ति से दण्ड करके ल धाय थे । एकबार विशाल राजा की कन्या मुदती ने स्वयवर म उनका वरण नहीं किया । इस पर उन्होंने बल के यम से सब राजाओं को पराजित कर उम भी अन्य कन्याओं की भक्ति वर-पूर्वक दहण किया ॥१६-२१॥

ततस्तभूभृत मर्वेजहुदास्तेनमानिना ।
निरागृता मुनिविष्णवा प्राचुरन्योन्यमापुत्रा ॥२२

क्षमतावचनामनामवस्माद्धनशानिनाम् ।
यहूनामेववर्णानाजन्मनिम्नामहीभृताम् ॥२३

धामियोय दातात्प्राणवध्यमानस्यदुमर्द ।
वरातितस्यतन्नामवृष्यवान्येहिविभ्रति ॥२४

घात्मनोपिधतप्राणदुष्टादस्मादपुर्वताम् ।
भरनाशप्रियकृतेजातानाकीदशीमति ॥२५

उच्चार्यतेस्तुतिर्यावःसूतमागधवन्दिभिः ।
 सासत्यामानृथावीरामवत्वरिविनाशनात् ॥२६
 चरतांसातथैषाभूपाश्रारैर्दिगन्तरे ।
 पौरुषाश्रयिणःसर्वेविशिष्टकुलसम्भवाः ॥२७
 विभेतिकोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमरः ।
 विचिन्त्यैतन्नहातव्यंपौरुषंशस्त्रवृत्तिभिः ॥२८
 एतन्निशम्यतेभूपाविस्पष्टामर्षपूरिताः ।
 उच्युःपरस्परंसर्वसमुत्तस्थुश्चसायुधाः ॥२९
 केचिद्रथानारुरुहुःकेचिन्नागांस्तथाहयान् ।
 अन्येऽमर्षंपराधीनास्तमुपेताःपदातयः ॥३०

इस पर वे राजा बारम्बार पराजय होने से दुखी होकर परस्पर कहने लगे कि इतने राजाओं के इस स्थान पर एकत्रित होने पर भी इस अकेले ने बलपूर्वक इस कन्या को ग्रहण कर लिया और तुम सब देखते रह गये यह धिक्कारने योग्य बात है । दुर्मद मनुष्य के आघात करने पर भी अन्य की रक्षा-रूप कर्तव्य-पालन में तत्पर रहती है वही वास्तविक क्षत्रिय है अग्यथा क्षत्रिय का नाम धारण करना व्यर्थ है । २२-२४॥ पर तुमतो दूसरे की बया अपनी रक्षा का उद्योग भी नहीं कर पाते । क्षत्रिय कहलाने पर भी यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? सूत, मागध, वन्दीगण तुम्हारी शूर वीरता की जो प्रशंसा करते हैं उसे असत्य सिद्ध मत करो वरन् शत्रु का पराभव करके उसे यथार्थ सिद्ध करके दिखलाओ । तुम संसार में 'भूष' के नाम से प्रसिद्ध हो इसे वृथा मत होने दो । तुम सवने श्रेष्ठ कुलों में जन्म लिया है और तुम सभी वीरता और पशकम में प्रसिद्ध हो ॥२५-२७॥ वीर पुरुष मृत्यु का भय कब करते हैं और युद्ध से विमुक्त होने वाला कौन अमर होता है ? इन सब बातों पर विचार कर क्षत्रिय नाम-धारी को कभी पौरुष का त्याग नहीं करना चाहिये । ऐसे उत्तेजना पूर्ण वचनों को सुनकर राजागण क्रोध से भर गये और आपस में उत्साहपूर्वक वातलाप करके हथियार लेकर तैयार हो गये । कोई रथ पर, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर खनार हो गये और कोई पैदल ही अवीक्षित के समीप गये ॥२८-३०॥

११०—अवीक्षित चरित्र (२)

इतिसग्राममज्जास्ते भूषामूपसुनस्तथा ।
 निराहृता सुबहुनास्तत्कालश्चाप्यविशिता ॥१
 ततोवभूवसग्रामस्तस्यतं सहदारुण ।
 एकस्यबहुभिर्भूषंभूपुत्रवरमुंने ॥२
 तसिसिद्धाक्तिगदाबाणपाणयस्तमुदुमंदा ।
 प्रमिधन्तोमुयुधिरेतं समस्तरसावपि ॥३
 सतान्छरदातंस्त्र्यं विभेदनृपनन्दन ।
 कृताश्रोवन्वान्वाणंस्तेचतविभिदु सितं ॥४
 वस्यसिद्धिच्छिद्रदेवाहुमन्यस्यचशिरोधराम् ।
 तदिविव्याघचैवान्यवक्षस्यताडयत् ॥५
 परञ्चिच्छेदकरिरास्तुरगस्यतयानिर ।
 ग्धस्येपान्तर्धंवाश्वाप्रयस्यान्यस्यसारथिम् ॥६
 बाणानापततश्चकेद्विधाबाणंस्तथाद्विषाम् ।
 चिच्छेदान्यस्गराङ्गश्चधनुरन्यस्यलापवात् ॥७
 तनुभेदहृतेतेननाशान्योनृपात्मज ।
 प्रविशिताहन्श्चान्य पदाति प्रजहौरणम् ॥८

मार्कण्डेय जी कहने लग—उस भवभर पर अवोक्षित द्वारा पराजित हुए व कितन ही राजा एक साथ मिल कर भयकर सग्राम करने लगे । वे गद्ग, शक्ति, गदा, बाणों आदि से आघात करने लगे और अवोक्षित भी अनेक ही उनके साथ युद्ध करने लगा । प्रमिद्धवीर नन्दन ने मैकहा बाणों से अवोक्षित पर आघात किया और उसने तीक्ष्ण बाणों से उनको विद्ध दिया । अवोक्षित न किमी की भुजा, किमी का मस्तक काट दिया और किमी का हृदय छेदकर दातों पर आघात किया । किमी के हाथी की सूँठ काट डाली, किमी का पोदा मार दिया किमी के रथ के सारथी को मार दिया । उन्होंने सातुषो के

शत-शत बाणों को बीच में ही दो खरब करके गिरा दिया, किसी के खड्ग और किसी का घनुष काट डाला कोई वीर कवच के कट जाने से मारा गया और कोई पैदल युद्ध करने वाला घायल होकर युद्ध क्षेत्र से हट गया ॥१-५॥

इत्याकुलीकृतेतस्मिन्समग्रे राजमण्डले ।

तस्थुःसप्तशतवीरामररोकृतनिश्चयाः ॥६

आभिजात्यवयःशौर्यलज्जाभारसमन्विताः ।

निर्जितेसकलेसैन्यपलायनपरायणे ॥१०

तैःसमेत्यमहोपालैःसतुपुत्रोमहीभृतः ।

युयुधेधर्मयुद्धेनतेनतनातिकोपितः ॥११

विच्छिन्नयन्त्रकवचान्सतानपिमहाबलः ।

कर्त्तुं व्यवस्थितस्तेचततःक्रुद्धा महामुने ॥१२

धर्ममुत्सृज्ययुयुधुयुं ध्यमानेनधर्मतः ।

नरेन्द्रपुत्राप्रस्वेदजलविलभानताःसमम् ॥१३

विव्याधकश्चिद्वाणैर्घैःकश्चिच्छेदकामुं कम् ।

ध्वजमस्यापरोदारैश्छित्त्वाभूमावपातयत् ॥१४

जघ्नुरन्येतथैवास्वान्बभञ्जुश्चापरैरथम् ।

गदापातेनाथचान्येवारैःपृष्टमताडयन् ॥१५

जब अवीक्षित ने इप तरह समस्त राजाओं को व्याकुल कर दिया और उनकी सेना भाग ने लगी तो सात सौ वीर अपने वंश, कीर्ति और वीरता का विचार करके मरने का भय त्याग कर युद्ध में तत्पर हुए । अवीक्षित भी अत्यन्त क्रोधित हो उनके साथ धर्म-युद्ध करने लगा । जब वह उनके अश्वों और कवच आदि काटने लगा, तब, वे पसीने से लथपथ राजा गए धर्म विरुद्ध साथ मिलकर उन पर अश्वों का आघात करने लगे । किसी ने शरीर में बाण मारे, किसी ने घनुष को तोड़ दिया, किसी ने ध्वजा को काट डाला, किसी ने घोड़ों को मार दिया, किसी के रथ को तोड़ा किसी ने पीछे से शस्त्र का आघात किया ॥६-१५॥

छिन्नेधनुषिसक्रोध सतदानृपते सुत ।
 जग्राहामितथाचर्मतदप्यन्योन्यपातयत् ॥१६
 च्छिन्नासिचर्मजग्राहमगदागदिनावर ।
 तामप्यन्य क्षुभ्रेणविच्छेदवृत्तहस्तवत् ॥१७
 अन्येशरमहेश्वर एततेनान्येनराधिपा ।
 विव्यधु बोष्टनीवृत्त्यधर्मयुद्धपराङ्मुखा ॥१८
 सांगह्येन पपातोव्यमिवावहृभिरदित ।
 राजपुत्रामहाभागावबन्धुस्तेचततत ॥१९
 तमयमंगतेमवैगृहीत्वानृपते सुतम् ।
 विशालेनसमराज्ञार्जुनविद्यु पुरम् ॥२०
 तदृष्टा प्रमुदितावद्ध समादायनृपात्मजम् ।
 स्वयंपराचमान्यान्यस्तातनतत पुर ॥२१

धनुष क बट जान पर क्राधित हावर शरीरित ढाल तलवार लेवर
 युद्ध करन लगा पर पर धनुष वीर न उस भी बाट गिराया । इम पर गदा
 लवर सायाम म प्रवृत्त हुमा ता एक अन्य न गदा बा भी बाट दिया । इसके
 परचात् उन धम विमुग राजाओ न उन शरवहीन को घेर कर हजारो और
 लैकडा बाय मार । उनस विद्ध होवर जब वह व्याकुल होवर गिर गया तब
 सब ने मिल कर उन बाय दिया और उन लवर विशाल राजा के नगर
 वैशितपुर म उपस्थित हुए और बन्धनयुक्त राजकुमार शरीरित को विशाल
 नृप क सामने सडा किया ॥१६-२१॥

पुन पुनश्चापयोक्तातथापिचपुरोधसा ।
 शालन्वता मनिवरापस्तेगजमुराचते ॥२२
 यदासामानितीवृश्चिन्नजग्राहुरमुने ।
 तदापप्रच्छदंघ्न विनाहार्थनरेदर ॥२३
 विनिष्टनभेनम्पाविवाहायदिनवद ।
 शर्यतदीदृक्मजातयुद्ध विद्यापपादवम् ॥२४

इतिपृष्ठोनरेन्द्रेणसर्ववज्ञोविमृश्यतत् ।
 दुर्मनाःप्राह्विज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५॥
 भविष्यन्त्यपराणीहृदिनानिपृथिवीपते ।
 प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
 करिष्यसिदिवाहंत्वंतेषुप्राप्तेषुमानद ।
 अलमेतेनयत्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७॥

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितों ने उस स्वयंवर कन्या से कहा विवाह इन राजाओं में से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप में स्वीकार नहीं किया । तब राजा ने इस सम्बन्ध में ज्योतिषियों की सम्मति मांगी । उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इससे अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त ढूँढ लीजें । राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध में विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होंने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा । उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमें जो यह महाविघ्न पड़ गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःशुश्रावतंबद्धतनयंसकरन्धमः ।
 तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृतः ॥१॥
 तमधर्मोएतनयंबद्धश्चत्वामहीपतिः ।
 सामन्तैःपृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
 केचिद्दुर्महीपालावध्याःसर्वेमहीभृतः ।
 यैरेकःसंयुगेबद्धःसमस्तैस्तैरधर्मतः ॥३॥
 युज्यतांदाहिनीशीघ्रमूर्चुरन्येकिमास्यते ।
 विशालोवध्रतांदुष्टस्तत्रयेऽन्येसमागताः ॥४॥

अन्येनयोर्बुधर्मोऽप्रत्यक्त पूर्वमहीक्षिता ।

अन्यायेनप्रलाद्येनगृहीतातमवाह्यती ॥५

स्वयवरेप्त्रशेषेपुतेनराजमुतास्तदा ।

खिनीवृत्तास्तत सर्वमभित्यसवरीवृत्त ॥६

माकण्डेयजी कहने लगे—जब राजकुमार अवीक्षित के बाँध लिये जाने का समाचार महाराज करधम और राजमहिषी वीरा को मिला तो वे बहुत विन्नित होकर अपने सामन्ता और मन्त्रियों से सलाह करने लगे । किसी ने कहा कि जिन बहूत से राजाओं ने मित्रवर अकेले वीर को अधर्म युद्ध में पराजित करके बाँध लिया है व सय मार देने योग्य हैं । दूसरे न सम्मति दी कि अब निश्चिन्त क्यों बैठें हा, अब तुरन्त विशाल राज और वहाँ एकत्रित अन्य राजाओं पर आक्रमण करके उन सब को बाँध लेना चाहिये । किसी किसी ने यह भी कहा कि इस अवसर पर राजकुमार न भी बरण करने को अनिच्छुता राज-अन्या को बेलपूर्वक ग्रहण करके धम विरुद्ध काय किया है । उन्होंने पत्रों भी कई स्वयवरा म ऐसा ही कार्य करके अन्य राजपुत्रों से सन्तुना मोन ले ली है और इसी कारण उन सब ने मित्र कर वह पराजित किया है ॥१-६॥

तेपाभेतद्वच श्रुत्वावीरावीरप्रजावती ।

वीरगोत्रसमुद्भूतावीरपत्नीप्रहृषिता ॥७

उवाचभर्तुं प्रत्यक्षमन्येपानमहीक्षिताम् ।

भद्रवृत्तभद्रभुजाममपुत्रेणपार्थिवा ॥८

गृहीतायद्वलात्कन्याजित्वासवंमहीक्षित ।

तदयंमुष्यमानोऽप्यवद्धएकोनघमतः ॥९

तदप्यस्मत्सुतस्याजोमन्येनापचयदप्रदम् ।

एतदयत्रिपौरप्ययदमप्यंयशान्नर ॥१०

नीतिनगणमत्येवजिषामुरिक्केसरी ।

स्वयवरायविन्यस्ताममपुत्रेणकन्यका ॥११

बद्धोऽगृहीताभूपानापस्यताभतिमानिनाम् ।

ववशान्नियकृतेजन्मकन्याश्चाहीनसेविता ॥१२

वलादेवसमादत्ते क्षत्रियोवलिनांपुरः ।

लोहशृङ्खलबद्धावानवशंयान्तिकातराः ॥१३

प्रसह्यकारिणोयान्तिराजानोधर्मशालिनः ।

तदलन्दौर्मनस्येनश्लाघ्यमेवास्यवन्धनम् ॥१४

इस प्रकार की बात सुन कर अवीक्षित की माता वीर वशीय वीरा देवी बहुत प्रसन्न हो कर महाराज कर्ण्वम तथा अन्य सामन्तों के सामने कहने लगी कि मेरे पुत्र ने यदि सब राजाओं को हरा कर कन्या को बल पूर्वक ग्रहण किया तो यह कार्य प्रशंसा योग्य ही है । इसके फलस्वरूप वह अधर्मयुद्ध में बाँध लिया गया तो इसमें भी मेरी सम्मति में उसकी कोई हानि नहीं हुई । पुरुषार्थी का तो यही कर्त्तव्य है कि वह अधर्म से मारने की इच्छा रखने वालों से भी भयभीत न हो और सिंह के समान सब का मुकाबला करता रहे । अगर मेरे पुत्र ने अनेक स्वयंवरों में सम्मानित राजागरों के सम्मुख कन्याओं को बलपूर्वक ग्रहण किया तो इसे भी मैं क्षत्रियोचित कार्य ही मानती हूँ । तुच्छ व्यक्तियों के समान किसी वस्तु को माँगने की अपेक्षा उसे और शक्ति प्रकट करके ग्रहण करना श्लाघनीय ही है । क्षत्रियों की शोभा तो इसी में है कि वह बलवानों के सम्मुख भी अपना पराक्रम दिखलाकर बलपूर्वक ग्रहण करे इस प्रकार के कार्य में अगर जंजीर से बाँध भी लिया जाय, तो भी वह भयभीत होकर किसी की वश्यता स्वीकार नहीं करता । यदि मनुष्य निडर हो कर पूर्ण दिखलाने के बाद बन्धन ग्रस्त भी हो जाय तो मैं इसमें कोई बुराई नहीं समझती, वरन् मैं तो ऐसी पराजय को भी प्रशंसा का कारण मानती हूँ ॥७-१४॥

युष्माकमपियेपूर्वकृतवारीणांनिपातनम् ।

तृत्वैवपृथिवीशानांपृथ्वीपुत्रादिकंवसु ॥१५

भार्यावीर्यनिमित्तानिततोयातातिगौरवम् ॥

तत्स्वर्य्यतारणायाशुस्यन्दनान्यधिरोहत ॥१६

सज्जीकुरुतनागाश्वमचिरेणससारथिम् ।

मन्यध्वंकिमहीपालैर्वह्निभिःसहविग्रहम् ॥१७

प्रभूताएवतोपायशू-स्याल्प-शोक्रिना ।
 कस्यनाल्पोपसामर्थ्यनरेन्द्रादिपुजायते ॥१८
 येभ्योनविद्यतेभीतिविक्रान्तस्यापिशत्रुपु ।
 वप्ररोचतेनिशूर सतमासीवदिवाकर ॥१९
 इदामुद्धपिनोराजाऽनयापत्न्याकरन्धम ।
 चकारसवलोक्योगहन्तु पुत्राहितान्मुने ॥२०
 सनन्तस्यसमभूपैर्विशालेनचसङ्कर ।
 बभूववद्धपुत्रस्यतैरशेषैर्महामुने ॥२१

बीग ने कहा कि आपके पूवजो ने भी इसी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उनके राज्य, कोप और पुत्र प्रादि पर अविचार किया था । राजा लोग पृथ्वी, धन, भार्या प्रादि समानता वालो मे ही छीन कर इकट्ठी करते हैं और उनके लिये आपगत सहना भी इलापनोय मानते हैं । इसलिये आप शीघ्र रथ, हाथी, घोडो को सजाकर युद्ध के लिये तैयार हो । बीरगण छोटे युद्ध मे भी अपनी पूरी वीरता दिखला कर गौरव प्राप्त करते हैं । तो फिर ऐसे स मान्य राजाओं पर आक्रमण करने मे आप लोगो को क्या भय हो सकता है ? सूर्य जिन प्रकार गमस्त दिशाओं के अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार जो धूरवीर हर प्रकार के शत्रु को पराजित करने के लिये तैयार रहता है, वही सच्चा बहादुर है । माकण्डेय जी ने कहा कि राज मन्थी द्वाग इम प्रकार उत्साह और प्रेरणा दिलाये जाने पर महाराज करन्धम सूर्यन पुत्र के शत्रुओं पर आक्रमण करने को रवाना हो गये और शीघ्र ही विशाल राजा नगर के समीप पहुच कर वही एतन्निव सब राजाओं से युद्ध करने लगे ॥१५-२१॥

दिनत्रयमभूद्युद्ध तेनराजासमतदा ।
 परन्धमेनभूपानांविश लस्यानुकुचंताम् ॥२२
 यदापराजितप्रायनत्सर्वभूगमण्डलम् ।
 तदाविशालोऽर्ष्यकर करन्धममुपरिधत । ॥२३

करन्धमोऽपिसंप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजितः ।
 विमुक्तो तनयेतन्ननिशांतांसुखमावसत् ॥२४
 तांचकन्यामुपादायविशालंसमुपस्थितम् ।
 अविक्षितप्राह्विप्रर्षेविवाहार्थपितुःपुरः ॥२५
 नाहमेतां प्रहीष्यामिनचान्यायोषितं नृप ।
 परैर्यस्यानिरीक्षन्त्याःसंग्रामेऽहंपराजितः ॥२६
 अन्यस्मैसंप्रयच्छेमामियञ्चान्यंवृणोतुतम् ।
 अखण्डितयशोवीर्योयःपरैर्नापमानितः ॥२७

विशाल राजा तथा उसके साथी राजाओं से करन्धम का युद्ध तीन दिन तक चलता रहा और अन्त में वे सब पूर्णतः पराजित हो गये । तब विशालराज पूजा सामग्री लेकर करन्धम के सामने उपस्थित हुए । करन्धम ने इस पर शत्रु-भाव त्याग दिया और राजा द्वारा पूजित होकर तथा पुत्र को छुड़ा कर उस दिन वहीं ठहरे । जब विशालराज अपनी कन्या का विवाह अवीक्षित से करने को प्रस्तुत हुए तो उसने इमे अस्वीकार कर दिया और पिता के सामने ही कहा कि—हे महाराज ! जिस कन्या के सामने मैं शत्रुओं से परास्त होगया उसको तो कभी ग्रहण कर ही नहीं सकता, साथ ही अब किसी अन्य कन्या से भी विवाह नहीं करूँगा । आप इसका विवाह किसी ऐसे वीर-से कीजिये जो कभी शत्रुओं से पराजित न हुआ हो और जिसका यश अखंडित बना हो ॥२२-२७॥

परैःपराजितोऽहंयत्कातरेयंयथाऽबला ।
 किमत्रमानुषत्वंमेनैतस्याममचान्तरम् ॥२८
 स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रासदाऽबला ।
 नरोऽपिपरतन्त्रोयस्तस्यकीदृङ्मनुष्यता ॥२९
 सोऽहमस्यामुखभूयोदृष्टंदर्शयिताकथम् ।
 योऽहमस्याःपुरोभूमौपरैर्भूपैःखिलीकृतः ॥३०
 इत्युक्ते तेनतनयामुवाचजगतीपतिः ।
 श्रुतत्तेवचनंवत्सेवदतोऽस्यमहात्मनः ॥३१

वयवासंप्रयच्छामोयस्मिस्तस्मिस्तवावृति ।
 एतयोर्ह्येकमातिष्ठमार्गयो रुचिरानने ॥३२
 पराजितोऽप्यवहुभिनंसम्भवसम्यगाचरन् ।
 सग्रामेतद्यशोवीर्य्यद्धानिकारिणपाथिव ॥३३
 एकोवहूनायुद्धायगजानामिवकैसरी ।
 यत्सम्यित परशोऽर्थतेनास्यप्रकटीकृतम् ॥३४
 नकेवलमयतम्योयुद्धे तेऽप्यखिलाजिताः ।
 बहुशोऽनेनयत्नेनविक्रमोऽपिप्रकाशितः ॥३५
 शौर्य्येविक्रममयुक्तमिमसर्वमहीक्षितः ।
 धर्मयुद्धमघमेणजितव्रतोऽप्रकाश्रपा ॥३६

अवीक्षित ने कहा— हे राजन् ! जब मैं इमके सामने एक बात अरु अरु
 के सामने शत्रुओं द्वारा बन्धन ग्रस्त होगया तो मेरा पुरुषत्व ही क्या रहा ?
 अतएव अब मुझ में और इस कन्या में कोई भेद नहीं रहा । पुरुष का मुख्य
 लक्षण तो स्वाधीन होना है और नारियाँ सर्वव्यपगधीन मानी गई हैं । इस-
 लिये पुरुष होकर जो पराधीन होयया उमका शौर्य कहाँ रहा ? जिसके सामने
 मैं समस्त राजाओं से पराजित होगया हूँ उमकी भयना मुँह किम साहस से
 दिखाऊँगा ? महीपान विशाल ने अवीक्षित के वचन सुनकर कन्या से कहा कि
 तुमने राजकुमार की बात सुनी । अब तुम्हारी इच्छा ही तो किसी भी राजा
 की स्वेच्छा पूर्वक वरण करवा अन्यथा पिता के वर्तव्य का ध्यान रखता हुआ
 मैं जिसके योग्य समझूँ उमके साथ तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार कर दूँ । इन
 दोनों बातों में से तुमको जो स्वीकार हो वह कहो ॥३८-३९॥ कन्या ने कहा—
 भिनाबी ! इन राजकुमार ने बहुत से वीरों के साथ संग्राम किया और फिर भी
 पूर्णत पराजित नहीं हो सके । इन्होंने जो अनेक ही इन राजाओं के साथ
 घोर युद्ध किया इनमें ही इनका सर्वोत्कृष्ट शौर्य प्रकट होगया । केवल युद्ध में
 निर्भीक भाव से स्थित ही नहीं रहे वरन् समस्त राजाओं की इन्होंने अनेक बार
 हराया भी । फिर इन घमें युद्ध के नियम का पालन करने वाले की अनेक

राजाओं ने मिलकर अधर्म युद्ध में हथिया, इसमें मुझे लज्जा की कोई बात नहीं जान पड़ती ॥३३-३६॥

नचापिरूपमात्रेऽहंलोभमस्यगतापितः ।
 शौर्यविक्रमधैर्याणिहरन्त्यस्यमनोमम ॥३७
 तत्किमुक्तेनबहुनायाच्यतांमत्कृतेनृपः ।
 त्वयामहानुभावोऽयंनान्योमेभक्षितापतिः ॥३८
 राजपुत्रसुताप्राहमर्मतच्छोभनंवचः ।
 एवंचंवत्वयातुल्यःकुमारोममहीतले ॥३९
 अविस्वादितेशौर्यमतीवचपराक्रमः ।
 पावयास्मत्कुलंवीरदुहितुर्मपरिग्रहात् ॥४०
 नाहमेताग्रहीष्यामिनचान्यांयोषितंनृप ।
 आत्मन्येवहिमेबुद्धिःस्त्रीमयीमनुजेश्वर ॥४१
 ततःकरन्धमःप्राहपुत्रेयंगृह्यतांत्वया ।
 विशालतनयासुभ्रूस्त्वयिहादंवतीदृढम् ॥४२
 नाशाभङ्गःकदाचित्सेकृतःपूर्वमयाप्रभो ।
 तथाऽऽज्ञापयमांतातयथाज्ञांकरवाणिते ॥४३

कन्या ने कहा—मैं इनके रूप को देखकर ही विवश होयत नहीं हुई हूँ चरन् इनके शौर्य तथा पराक्रम ने मेरे मन में घर कर लिया है । इसलिये पिताजी ! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं कभी अन्य किसी को बरण नहीं करूँगी । आप इनको ही मेरे लिये समझाइये । इस पर राजा विशाल ने अवीक्षित से कहा—राजकुमार ! मेरी कन्या ने जो कुछ कहा वह विल्कुल ठीक ही है । तुम्हारे समान राजकुमार मुझे कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता । तुम्हारी वीरता में कुछ भी सन्देह नहीं और तुम्हारा पराक्रम भी प्रत्यक्ष ही है, इसलिये तुम्हारे द्वारा मेरी कन्या का पाणिग्रहण किये जाने से मेरा कुल पवित्र होगा । यह सुनकर अवीक्षित ने कहा—“राजन् ! अब मैं इसे अथवा किसी भी अन्य स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि मैं अब अपने को स्त्री ही समझता हूँ ।” तब महाराज करन्धम ने भी अपने पुत्र को समझाया कि तुम

इस बन्धा का पाणिग्रहण करो, क्योंकि इसको तुम्हारे प्रति हार्दिक अनुगत उत्पन्न होगया है। प्रबोधित ने उत्तर दिया—पिताजी ! मैंने आज तक कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। इसलिये आप मुझे ऐसी कोई आज्ञा न दें जिसे पालन करने में समय न होऊँ ॥३७-४२॥

अत्प्रमत्तनिश्चितमतीवस्मिन्नाजद्युतेगुताम् ।
 तामुवाचविशालोऽपिव्याबुलोऽनृत्तमानस ॥४४
 निवर्त्यतामन पुत्रिएनस्मात्प्रयोजनात् ।
 अन्यदरयभर्तारिसन्त्यनकेनृपात्मजा ॥४५
 वरवृणांमहतातमामपयदितच्छ्रुति ।
 तपसाऽन्योनमेभताजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥४६
 तत करन्धमोराजाविशालेनसममुदा ।
 स्थित्वादिनत्रयनत्रनिजमभ्याययोपुरम् ॥४७
 अविदितोपितनैवपित्रान्यैश्चनराधिप्य ।
 निदशनै पुरागृत्तं सान्तिवताऽभ्यागमत्पुरम् ॥४८

जब विशाल राजा ने देखा कि अज्ञात ने विवाह न करने का दृढ निश्चय कर लिया है तो उसने अपनी पुत्री से कहा कि जब इस राजपुत्र की ऐसी भावना होगई है तो अब तू इस विचार को त्याग कर किसी अन्य राजपुत्र का वरण करले। बन्धा ने उत्तर दिया—पिताजी ! यदि ये राजपुत्र विवाहार्थी नहीं होते तो मग निश्चय भी यही है कि इस जन्म में मरने पति 'तपस्या' के अतिरिक्त और कोई न होगा। मार्कण्डेय जी कहते गये—राजा करन्धम तीन दिन तक विशाल राजा के पट्टी घनिष्ठ मत्कार पत्रण करके अपनी राजरानी को क्षयम करने गये और उनका तथा अन्य सामन्तों के समभाने से प्रबोधित भी उनके साथ चले गये ॥४८-४८॥

मापिबन्धाननगत्वानिमृष्टानिज्जान्धवे ।
 तपन्तपनिःहानावैराग्यपरमास्थिता ॥४९
 निराहारायदाभानुमागधयमवस्थिता ।
 सप्रापपरमामातिक्रुशाधमनिसन्तता ॥५०

मन्दोत्साहाति नन्वङ्गीमुमूषुं रपिवाजिका ।
 देहत्यागायसाचक्रे तदा बुद्धि नृपात्मजा ॥५१
 आत्मत्यागायतांजात्वाकृतबुद्धिसुरास्ततः ।
 समेत्यप्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिकम् ॥५२
 समुपेत्यसतांप्राहदूतोऽहंपार्थिवात्मजे ।
 प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यंशत्कार्यतन्निशामय ॥५३
 नभवत्यापरित्याज्यज्ञरीरमनिदुर्लभम् ।
 त्वंभविष्यसिकल्याणिजननीचक्रवर्तिनः ॥५४
 पुत्रेणचमहाभागेभोक्तव्यानिहतारिणा ।
 श्रव्याहताज्ञेनचिरंसप्तद्वीपवतीमही ॥५५
 हन्तव्यस्तेनतरुजिद्देवानांपुरतोरिपुः ।
 अयंशंकुस्तथाक्रूरोधर्मस्थाप्यास्ततःप्रजाः ॥५६
 पश्यपालनीयमखिलंचातुर्वर्ण्यस्वधर्मतः ।
 हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छायेचान्येषुष्टचेष्टिताः ॥५७
 यष्टव्यंविधैर्यज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ।
 वाजिमेघादिभिर्भद्रैषट्सहस्रंश्चसंख्यया ॥५८

उधर वह विशाल राजा की कन्या भी परिवार वालों से विदा ले वन में निवास करती हुई बड़े संयम-नियम के साथ तपस्या करने लगी । इस प्रकार तीन महीने तक निराहार रहने से वह अत्यन्त दुर्बल होगई और उसके शरीर की नसें दिखलाई पड़ने लगीं । अपने शरीर की ऐसी दशा देखकर उस कन्या ने निराश हो प्राण त्याग का निश्चय किया । जब देवताओं ने उसको ऐसा कार्य करते देखा तो उन्होंने एक देवदूत उसके पास भेजा, जिसने उम तपोवन में आकर कहा—हे राजकुमारी ! मैं देवताओं का दूत हूँ । उन्होंने कहलाया है कि यह दुर्लभ शरीर सहज में नहीं मिलता तुम प्राण त्याग मत करो, तुम आगे चलकर एक चक्रवर्ती राजा की जननी बनोगी । हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र अपने बाहुबल से समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अनेक वर्षों तक समस्त पृथ्वी का अधीश्वर बना रहेगा । वह देवगर्भों के शत्रु तरुजित् और

अप शत्रु को भी मारकर उनका शिकारी होगा । वह प्रजा को धर्मावरण के लिए प्रेरित करेगा, चानुबंध्य धर्म को प्रतिष्ठित करेगा और म्लेच्छ, दस्यु आदि दुष्टों को नष्ट करके प्रजा को सुखी करेगा । वह बड़ी दक्षिणा वाले धर्ममेध और अन्य प्रकार के छह हजार यज्ञ करेगा ॥४६-५८॥

तदृष्ट्वासास्तीरक्षस्थदिव्यस्त्रगनुलेपनम् ।

देवदूतमुवाचेदराजपुत्रीततोमृदु ॥५६

सत्यत्वमागत स्वर्गाद्देवदूतोनसशय ।

किन्तुभर्त्राविनापुत्रसकथममविष्यति ॥६०

अर्वाक्षितमृतेभर्त्ताममनान्योऽत्रजन्मनि ।

भवितेतिप्रतिज्ञातमयेतत्सन्निधौपितु ॥६१

सधनेच्छतिमाप्रोक्तौर्मापित्राजनकेनच ।

वरन्धमेनाथसम्यग्याञ्चिनश्चमयातथा ॥६२

किमनेनमहाभामेबहूनोक्तेननेमुत ।

समुत्पत्स्यनिमात्याक्षीम्बमात्मानमधर्मत ॥६३

कथंवकाननेतिष्ठननुधीगाचपोपय ।

तपप्रभावादेतत्तमवर्षमाधुभविष्यति ॥६३

इत्युक्त्वादेवदूतोऽप्रीयथागतमगच्छत ।

चकारानुदिनमुभ्रूमात्पात्पतनुपोपगम् ॥६५

मार्कण्डेय जी कहने लगे—एक राज्य कन्या उम दिव्य विद्या से युक्त देवदूत को आकाश में देखकर मीठा वाणी से कहने लगी—आप स्वर्ग के देवदूत हैं और इस कारण आगरी वाले धर्मत्य नहीं हो सकतीं पर पति के बिना मेरे पुत्र किस प्रकार होगा ? मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि अवीक्षण के अतिरिक्त मैं किसी और को धरम नहीं करूँगी और उन्होंने मेरे पिता, धरने पिता तथा मेरे अनुशील की भी स्पष्ट समझोकार करके विवाह न करने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया है । देवदूत ने कहा—देवगण का कथन भ्रम्यथा नहीं हो सकता, निःसन्देह तुमको पुत्र उत्पन्न होगा । इसविषये तुम इस आशम-दृष्ट्या स्त्री पाप के विचार को त्याग कर इस धन में रहकर ही धरती देह की रक्षा करो । तपस्या

के प्रभाव से तुम्हारे सभी मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे । इस प्रकार विशाल राजा की कन्या को समझा कर देवदूत अपने स्थान को चला गया और वह भी आहार ग्रहण करके शरीर का पोषण करने लगी ॥५९-६५॥

११२—अवीक्षित चरित्र (४)

अथसाऽविक्षितोमातावीरावीरप्रजावती ।
 पुण्येऽह्निसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥१
 पुत्राहमभ्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना ।
 उपवासकरिष्यामिदुष्करोऽयंकिमिच्छकः ॥२
 सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ।
 प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रतस्तत्रयताम्यहम् ॥३
 द्रव्यस्याद्धमहाकोशात्तवदास्याम्यहंपितुः ।
 धनतेपितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मितेनच ॥४
 क्लेशसाध्योमदात्तःसहिश्रेयोभविष्यति ।
 साध्योभवेद्व्यायदितेकश्चिद्रवबलपराक्रमैः ॥५
 सतेऽसाध्योह्यन्यथावादुःखसाध्योभविष्यति ।
 तद्वंप्रतिज्ञांकुरुषेयदिपुत्रात्रचैवते ।
 तदैतदहमावाप्स्येकथ्यतांयन्मतंतव ॥६

मार्कण्डेय जी कहने लगे—किसी समय अवीक्षित-क्रीभाना वीरादेवी ने अपने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा ! मैं 'किमिच्छित' नाम का दुष्कर व्रत करना चाहती हूँ और तुम्हारे पिताने उसकी आज्ञा देदी है । यह व्रत तुम्हारे पिता, मेरे और तुम्हारे सहयोग से पूर्ण हो सकता है, इसलिये जब तुम उसकी प्रतिज्ञा कर लोगे तभी मैं उसे आरम्भ करूँगी । इस व्रत में मुझे राज्यकोष का आधा धन दान करना है और इसके लिये तुम्हारे पिता ने स्वीकृति देदी है । शरीर के कष्ट का सहन करना मेरा काम है, उसे मैं भली प्रकार सम्पन्न करूँगी

धीर जल तथा पराक्रम मे होने वाला जितना कार्य है वह तुम्हारे अधीन है । वह कार्य सुनाध्य, दुःखमाध्य और प्रमाध्य भी हो सकता । इसलिये तुम समस्त कार्यों की पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो तो मैं इस व्रत को आरम्भ करूँ । इस लिये तुम्हारा जैसा विचार हो वह स्पष्ट कहो ॥१-६॥

वित्तमेपितुः शयत्तमत्स्वामित्वननत्रवं ।

यन्मच्छरीरनिष्पाद्य तत्स्वरिप्येत्वयादितम् ॥७

किमिच्छन्नव्रतमार्तनिश्चिन्ताभवनिर्व्यथा ।

राज्ञापित्राऽभ्यनुज्ञातयदिविन्श्वरेणमे ॥८

सत साराजमहिषीतद्व्रतममुपोषिता ।

यथोक्त साऽवरात्पूजाराजराजस्यमयता ॥९

निधीनामप्यशेषागानिधिपालगणस्यच ।

लक्ष्म्याश्चपरयाभवन्यायतवाववायमानसा ॥१०

विविक्ततुगृहस्थोऽयमथराजावगन्धम ।

आसीनउक्त सन्निवेनीतिशास्यविशारदं ॥११

राजन्यय परिगन्तवन्वेतच्छ्यामनामहीम् ।

एवस्तेनयोऽविक्षित्यक्तदाग्परिग्रह ॥१२

अपुत्रसञ्चतनिष्ठायदाभूपगमिष्यति ।

तदारिपक्षपृथिवीनिश्चितनवयाम्यति ॥१३

वसक्षयम्ने नविनापिनृपिष्णादवक्षय ।

एतन्महत् परिभयत्रियाहान्याभविष्यति ॥१४

तस्मात्कुरन्तथानूपयथातनय पुन ।

परातिमननबुद्धिपितृगामुपकारिणीम् ॥१५

शबीन्दिन ने कहा— राज्य महार का धन तो विराजी का ही है, उसके लिये कुछ भी कहना नहीं है मरे गयेर स होने वाले कार्यों के लिये मैं आपकी धाना की हर तरह स पालन करने का प्रस्तुत हूँ । यदि विराजी, धन व्यय करने की प्रस्तुत है या धान निरिच्छत होकर प्रसन्नतापूर्वक 'किमिच्छन्न' व्रत का धन्यमान करिये । मार्कण्डेयजी कहने लग—तत्परन्तान् अजमहिषी धीरा देवी ने

बड़े उत्साह पूर्वक उस व्रत को आरम्भ किया और उपवास रखकर काम, मन, बचन से पूर्ण संयम करते हुए शास्त्र विधि से निधि समूह, निधिपालगण और लक्ष्मी देवी का पूजन करने लगी। इस अवसर पर महाराज करन्धम अपने सुयोग्य मन्त्रियों के साथ मंत्रणागृह में बैठ कर सब व्यवस्था करते रहते थे। उस समय मंत्रियों ने राजा से कहा—हे महाराज ! राज्य का पालन करते हुए आपकी अवस्था पूर्ण हो चली है और आपके एकमात्र पुत्र ने स्त्री-सम्पर्क त्याग कर कोई सन्तान उत्पन्न नहीं की है। यदि वे आजन्म इसी प्रकार ब्रह्मचारी बने रहे तो अन्त में आपका यह राज्य शत्रुओं के अधिकार में चला जायगा। इस प्रकार आपका वंश क्षय होकर पितरों का श्राद्ध और तर्पण बन्द हो जायगा। इस प्रकार सब क्रियाओं के रुक जाने पर शत्रुओं का भय उपस्थित होगा। इसलिये जैसे भी सम्भव हो आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे आपका पुत्र गृहस्थ आश्रम स्वीकार करके पितरों के श्राद्ध और तर्पण को स्थिर रख सके ॥७-१५॥

एतस्मिन्नन्तरेऽशब्दं शुश्रावजगतीपतिः ।

पुरोहितस्य वीरायागदतो ह्यर्थिनं प्रति ॥१६

कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य कित्साध्यतामिति ।

करन्धमस्य महिषी किमिच्छति कमुपोषिता ॥१७

राजपुत्रोऽप्यविक्षित्त्वा त्वापौरोहितं वचः ।

प्रत्युवाचार्थिनः भवन्वाजद्वारमुपागतान् ॥१८

मया साध्यं शरीरेण्यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ।

मम माता महाभागा किमिच्छति कमुपोषिता ॥१९

शृणु वन्तु मेऽर्थिनः सर्वे प्रतिज्ञातं मया तदा ।

किमिच्छति ददाम्येष क्रियमाणे किमिच्छति के ॥२०

ततो राजानि शर्म्ये तद्वाक्यं पुत्रमुखाच्छ्रुतम् ।

तमुत्पत्या ब्रवीत्पुत्रमहमर्थी प्रयच्छमे ॥२१

दातव्यं यन्मया तात भवते तद्ब्रवीहि माम् ।

कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यमेव वा ॥२२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—उगी समय राजा के बानों के पुरोहितों के ये दावद घाये कि “वाम्भम की राजमहिषी ‘त्रिमिच्छक’ व्रत करती है—तुम क्या इच्छा करते हो ? जिसका जो बठिन कार्य पूरा किया जाने को हो वह उसके सम्मुख कहो ।” राजपुत्र अश्विमेध ने भी पुरोहितों के इन बचनों का सुना घोर तब वह भी द्वार पर आकर कहने लगे—“हे अश्विमेध ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरी भाग्यवती माता जो ‘त्रिमिच्छक’ व्रत कर रही है, उसके सम्बन्ध में मैं भी प्रत्येक कार्य, जो कुछ मेरे शरीर से सम्भव है, पूरा करने को प्रस्तुत हूँ । जब राजा वाम्भम ने अश्विमेध को इस प्रकार कहते सुना तो उसने अश्विमेध के मामने जाकर कहा—“पुत्र ! मैं भी अर्थों हूँ, मेरी अभिलाषा को भी पूर्ण करो ।” अश्विमेध ने कहा—पिताजी ! मैं आपको क्या दूँ ? आप जो चाहते हों उनकी आज्ञा दें वह कार्य कौन भी दुःसाध्य या असाध्य भी क्यों न हो मैं उसे पूरा करूँगा ॥१६-२१॥

यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वददासिचत्रिमिच्छकम् ।

पौत्रस्यदर्शयमुखममोत्सङ्गतस्यतत् ॥२३

अहन्तर्बंरुस्तनयोब्रह्मचर्य्यचमेनृप ।

नमेपुत्रोःस्तिपौत्रश्चदशयामिवथमुखम् ॥२४

पापायब्रह्मचर्य्यन्तेयदिदधाम्यन्तेत्वया ।

तस्मात्त्वमोचयात्मानमपौत्रचदर्शय ॥२५

त्रिपमस्यान्महाराजयदन्यत्तत्तमादिश ।

यैराग्येणमयात्यक्तमश्रीसभोगस्तथास्तुमः ॥२६

बहुभियुंध्यमानानादृष्टोर्बंवरिणाजय ।

तत्रापियदिवराग्यमुपैपितदपण्डित ॥२७

त्रिवानोब्रह्मनोक्तंनब्रह्मचर्य्यपरित्यज ।

मातुस्त्वमिच्छयाववत्रपौत्रस्यममदर्शय ॥२८

राजा ने कहा—“अगर तुमने त्रिमिच्छक व्रत में दान करने की प्रतिज्ञा अथवा मुख की है तो मुझे पौत्र का मुख दिखाओ ।” अश्विमेध ने उत्तर दिया—पिताजी ! आपका एकमात्र पुत्र तो मैं ही हूँ और मैंने रात्रि के लिये ब्रह्मचर्य

पालन का निश्चय किया है और मेरे कोई पुत्र नहीं है। इस कारण आपको पौत्र का मुख कैसे दिखा सकता हूँ ?” महाराज करन्धम ने कहा—“तुमने जो ब्रह्मचर्य धारण किया है वह नीति विरुद्ध पाप कार्य है। इसलिये उसे त्याग कर मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।” अवीक्षित ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग मेरे मन के बहुत विरुद्ध है। मैंने वैराग्य भावना से स्त्री-सम्पर्क का त्याग किया है, अतएव आप मुझे ऐसी आज्ञा दें जिससे मेरा व्रत खंडित न हो। राजा ने कहा—“तुमने बड़ी-बड़ी सेनाओं सहित प्रबल बैरियों को हराया है, इस पर भी तुम वैराग्य धारण करते हो तो कोई तुमको बुद्धिमान् नहीं कह सकता। कुछ भी हो, इस विषय में अधिक विवाद न करके अपनी माता के व्रत का पालन करने के लिये मुझे पौत्र का मुख दिखाओ ॥२३४२८॥

यदासबहुशस्तेनप्रोक्तःपुत्रेणार्थिवः ।

नान्यत्प्रार्थयतीकिञ्चित्तदापुत्रोऽन्नवीत्पुनः ॥२६

दत्त्वाकिमिच्छकतुभ्यंप्राप्तोऽर्हतातसञ्कटम् ।

तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ॥३०

स्त्रियाःसमक्षविजित.पतितोधरणीतले ।

स्त्रीपतिर्भविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥३१

तथापिक्विकरोम्येषसत्यपाशवङ्गतः ।

करिष्यामियथाऽऽत्थत्वंभुज्यतांनिजशासनम् ॥३२

मार्कण्डेय जी कहने लगे—“यद्यपि अवीक्षित ने बार-बार अपनी कठिनाई बतलाई और राजा से कोई दूसरी बात माँग लेने को कहा—पर जब वे न माने तो उसने कहा—“पिताजी ! मैं ‘किमिच्छक’ व्रत के लिये इच्छानुसार दान देने की प्रतिज्ञा करके सञ्कट में पड़ गया हूँ इसलिए निर्लज्ज होकर फिर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। अन्यथा सच्ची बात तो यह है कि जब मैं स्त्री के सामने पराजित होकर पृथिवी में गिर गया तो अब मैं स्त्री और वह पति के समान होगी, वास्तव में यह मेरे लिये बड़ा कठिन कार्य है। तोभी जब मैं आपसे प्रतीज्ञा-बन्धन में बँध गया हूँ, तो आपने जो कहा है उसे अवश्य

करेंगा । चाप धनु दण विषय में निश्चित हो जाये और अपना राज्य-नायं
यथापूर्व करते रहें ॥२६-३२॥

११३—असीक्षित चरित्र (५)

कदाचिद्राजपुत्रोऽनीमृगयामचरद्वने ।
मृगान्विध्यन्वराहाश्रुदार्दूनादीश्रुद द्विण ॥१॥
शुभावसहसाशब्द आहिआहोतियोपित ।
विक्रोशन्त्या मुग्रहृगोभयगदगदमुञ्चकं ॥२॥
माभैर्मा भैरितिवदप्राजपुत्र सवेगित ।
चोदयामासतुरगमत शब्द समागत ॥३॥
ततश्चमापिनुकोनन्यवाविजनेवने ।
शृहीतादनूपुत्रेण दृढकेशेनमानिनी ॥४॥
करन्धममुतस्याहभार्याचाहमविक्षित ।
हरत्यनार्थीविपिनेपृथिवीसस्यधीमत ॥५॥
यस्यमर्वेमहीपालास्तयागन्धवंगुह्यका ।
नममर्या पुर स्थातु तन्मभार्याहितास्म्यहम् ॥६॥
यन्ममृत्योरिवक्रोध शक्रस्येवपराक्रम ।
वरन्धममुतस्येपानम्यभार्याहितास्म्यहम् ॥७॥

भावंदेव जो कहने लगे—कुछ समय पश्चात् राजपुत्र असीक्षित वन
में निकार के लिये गये थे और मृग, बरह, सिंह आदि को बाणों द्वारा मार
रहे थे । एकस्मिन् उन्होंने किसी उच्च स्वर से रोती हुई स्त्री का 'आहि-आहि'
काज सुना । उसे सुनते ही असीक्षित ने 'भय नहीं' 'भय नहीं' कहते हुये उसी
घोर धोका धोकापा । उन्होंने सुना कि दानव द्वारा प्रस्त वह युवती बन्या वह
बनो है कि 'मैं महाराज करन्धम के पुत्र असीक्षित की पत्नी हूँ, यह पापी दानव
मुझे वनपूर्वक पकड रहा है । त्रिनके सामन कोई भी राजा और गुह्यक, गन्धवं

आदि देवगण भी शत्रुभाव से नहीं ठहरते हैं, मैं उनकी ही पत्नी होकर हरण की जा रहा हूँ। जिनके क्रोध में पड़कर कोई बचकर नहीं जा सकता और जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं, उन महाराज करन्धम के पुत्र की भार्या को यह पापी हरण कर रहा है ॥१-७॥

इत्याकर्ष्यमहीपालतनयःसशरासनी ।
 चिन्तयामासकिमिदंममभार्यात्रिकानने ॥८
 मायेयरक्षसानूनंदुष्टानांकाननौकसाम् ।
 अथवागतएवाहंसर्व वेत्स्यामिकारणम् ॥९
 त्वरितःसततोगत्वाहदर्शातिमनोरमाम् ।
 कान्तेकन्यकामेकांसर्वालङ्कारभूषिताम् ॥१०
 गृहीतांदनुपुत्रेणदृढकेशेनदंडिना ।
 ग्राहित्राहीतिकरुणाविक्रोशन्तीपुनःपुनः ॥११
 माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंबदन् ।
 शासतीमांमहीदुष्टःकोदूयेतकरंधमे ॥१२
 यस्यप्रतापावनताभुविसर्वमहीक्षितः ।
 ततस्तमागतंदृष्ट्वागृहीतवरकामुकम् ॥१३
 मांत्राहीत्याहृतन्वङ्गीहृतास्म्येषेतिचासकृत् ।
 राज्ञःकरन्धमस्याहंस्तुषाभार्याप्यविक्षितः ।
 हृतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाऽजाथवद्वने ॥१४

मार्कण्डेयजी कहने लगे—अधीक्षित इन शब्दों को सुनकर विचार करने लगा कि इस वन में मेरी पत्नी कहीं से आयी। हो न हो यह राक्षसों की माया है। तोभी जब आगे बढ़ कर उन्होंने देखा कि दृढकेश नामक दानव अनेक आभूषणों से युक्त एक अत्यन्त मनोहर कन्या को पकड़ रहा है और वह बार-बार 'ग्राहि-ग्राहि' कहकर रो रही है तो उन्होंने कन्या से कहा—'डरो मत।' फिर वे उस दानव से बोले—अब तेरी मृत्यु आ चुकी है, महाराज करन्धम के शासन-काल में कौन इस प्रकार अत्याचार कर सकता है। जिन महाराज करन्धम के सम्मुख पृथ्वी के समस्त नृपतिगण मस्तक झुकाते हैं, उनके शासन

मे कोई दुष्ट जीवन नहीं रह सकता । उस गमय उन प्रचण्ड घनुष धारण किसे
 हृये राजकुमारो को वहाँ भाया देखकर वह कुमारी बार बार कहने लगी—
 'मेरी रक्षा करो—यह दुष्ट मुझे अपहरण कर रहा है । मैं करन्यम पुत्र प्रदी-
 क्षित की भार्या हूँ और सनाथ होकर भी इस समय सनाथ के समान हरण की
 जा रही हूँ ॥८—१५॥

ततोविममृशेवावयमविक्षितसतथोदितम् ।

कथमेपाहिमेभार्यास्नुपातातस्यवाक्यम् ॥१५

अथवामोचयाम्येतातन्वीवेत्स्यामितत्पुन ।

क्षत्रियैर्घाव्यंतेशान्त्रमात्तानात्राणकारणात् ॥१६

तत क्रुद्धोऽप्रवीद्वीरोदानवतमृदुमंतिम् ।

जीवन्गच्छविमुच्येनामन्ययानभविष्यसि ॥१७

तत सताविहापोऽदंण्डमुत्क्षिप्यदानव ।

तमप्यधावत्सोऽप्येनशरवर्षैरवाक्रिरत ॥१८

सवाय्यंमाणोवाणोर्षदानवोऽतिमदान्वित ।

राजपुत्रायचिक्षेपदण्डशकुशतावृतम् ॥१९

तमापतन्तच्चिच्छेदशरैर्भूममुत्तस्ततः ।

सोऽप्यासन्न गृहीत्वोच्चद्रुममाज्जीव्यवस्थितः ॥२०

सृजत शरवर्षाणितचिक्षेपततोद्रुमम् ।

सचततिलशश्रुक्रोभल्लैर्वाभूमुं कमोचितैः ॥२१

ततश्चिक्षेपचशिलाराजपुत्रायदानव ।

सापिमोघापपातोव्यामुज्जन्नातेनलाघवात् ॥२२

राजपुत्रायकुपितोयच्चिक्षेपदानवः ।

तत्तच्चिच्छेदवाणोर्षभूमृत्सूनु सलीलया ॥२३

मार्कण्डेयजी कहने लगे—राजकुमार भविक्षित वन्मा के इन वचनों को
 सुनकर विचार करने लगे कि यह वन्मा अपने को मेरी पत्नी और महाराज
 करन्यम की पुत्र वधु किस प्रकार कहती है ? जो कुछ भी हो पहले हमकी रक्षा
 करो, फिर सब बात माँग लें जायगी, क्योंकि दुष्टी और अत्याचार पीड़ित

व्यक्तियों की रक्षा के लिए ही क्षत्रीगण दृष्ट धारण करते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस दुष्ट दानव से कहा यदि तुझे अपनी जान बचानी हो तो यहाँ से शीघ्र भाग कर चला जा, अन्यथा मैं तुझे अभी यमालय पहुँचाता हूँ। राजपुत्र की बात सुनकर वह उस कन्या को छोड़ दण्ड हाथ में ले उन्हें मारने बीड़ा। अवीक्षित ने उसे बीच में ही बाणों से रोक दिया। दानव ने उन बाणों को रोक कर बड़े अहङ्कार के साथ राजपुत्र पर दण्ड को फेंक कर मारा, पर उन्होंने उसे बाणों से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब दानव एक बड़ा वृक्ष उखाड़ कर मारने को चला, पर अवीक्षित ने बाणों द्वारा उसे भी झरझर कर डाला। तत्पश्चात् वह बड़े-बड़े शिलाखण्ड लेकर उनके ऊपर फेंकने लगा, पर राजकुमार ने उन सबको बाणों द्वारा व्यर्थ कर दिया। उसने मारने के लिये जो कुछ चलाया उसे अवीक्षित ने सहज में काट डाला।

॥१५-२३॥

ततोविच्छिन्नदंडीसाविच्छिन्नसकलायुधः ।

मुष्टिमुद्यम्यसक्रोधोराजपुत्रमधावत् ॥२४

तस्यापततएवासौकरन्ध्रमसुतःशिरः ।

छित्त्वावेतसपत्रेणपातयामासवैभुवि ॥२५

तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ।

करन्ध्रमसुतःसर्वैःसाधुसाधिवतिभाषितः ॥२६

वरंवृणीवेतितदादेवैरुक्तो नृपात्मजः ।

वत्रेपुत्रंमहावीर्यपितुःप्रियचिकीर्षया ॥२७

भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्तीमहाबलः ।

अस्यामेवहिकन्यार्यामोक्षितायांत्वयानघ ॥२८

पित्राहंसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ।

राजभिर्निजितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ॥२९

साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेःसुता ।

तयाचमत्कृतेत्यक्तोमामृतेनरसङ्गमः ॥३०

तत्त्वथतामपास्याद्यविशालतनयामहम् ।

नृपमात्मावस्थियामिन्नग्न्यनारीपरिग्रहम् ॥३१

इन पर वह क्रोध से भर गया और धूम उठा कर प्रचण्ड वेग से राजपुत्र पर कपटा पर उन्होने एक बराल धारण ऐसा छोड़ा कि उसका मस्तक बट कर पृथ्वी पर गिर गया । उस महादुष्ट दानव को इस प्रकार भरा हुआ दण्ड कर देवगण 'साधु-साधु' कह उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि तुम्हारी जो अभिलाषा हो वही कर माँगो । अश्विदत्त ने अपने पिता द्वारा इन्द्र-पुत्र माँग का स्मरण करके एक पराक्रमी पुत्र की प्रार्थना की । देवगण बोले—ह निष्पाप ! जिस कन्या को तुमने दानव से रक्षा की है उसी का गम मे तुम का एक महावीर चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा । राजपुत्र ने कहा— मैं पिता के सम्भुव प्रतिज्ञा करने के कारण ही पुत्र की कामना कर रहा हूँ अन्यथा स्वयंवर के अवसर पर युद्ध में हार कर मैंने स्त्री का विचार सबथा त्याग कर दिया था । जब मैंने विशाल राजा की कन्या के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया था तब से उस कन्या ने भी मेरे प्रतिरिक्त और किसी को धरम न करने की प्रतिज्ञा कर्णी थी । अब मैं उस कन्या को छोड़ कर अन्य नारी को किम प्रकार ग्रहण कर सकता हूँ ॥२५-३१॥

इयमेवहितेभार्यास्लाघ्यतेपात्वमासदा ।

विशालस्यमुतामुभ्रुस्त्वत्कृतेयाऽऽथितातप ॥३२

अस्य मुत्पत्स्यतवीर ममद्वीपप्रसाधक ।

यष्टापनमहभ्राणाचक्रवर्तीमुत्तव ॥३३

इत्युत्तार्य्यययुर्देवा करन्वमसुतद्विज ।

सोऽप्याह ता तदापत्नीकथ्यतामीरुक्तिरिदम् ॥३४

माचास्मैव थयामामत्यक्ताहभवतायदा ।

त्पक्तन्धुजनाऽऽप्यनिर्वेदात्ममुपागता ॥३५

अत्राहनपमावीरक्षीणप्रयत्नसेवरम् ।

त्यक्तुनामामभन्म्येत्यदेवदूनेनवारिता ॥३६

भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्त्तीमहाबलः ।

प्रीणयिष्यतियोदेवानसुरांश्चहनिष्यति ॥३७ ।

इतिदेवाज्ञयातेनदेवदूतेनवारिता ।

नसंत्यक्तवतीदेहंत्वत्सङ्गममनोरथा ॥३८

देवों ने कहा—“यह बड़ी विशाल नृप की कन्या है । जिसकी तुम प्रशंसा कर रहे हो और जो तुम्हारे लिए बनवासिनी होकर तपस्या कर रही है । इसी के गर्भ से तुम को एक ऐसा पुत्र जन्म ग्रहण करेगा जो सातों द्वीपों का शासन, सहस्रों यज्ञों का करने वाला होगा ।” जब देवगण यह कह कर अन्तर्धान हो गये तो राजकुमार ने पत्नी से पूछा—“तुम इस विपत्ति में किस प्रकार फंस गई” वह कहने लगी—“जब आप भेरे पिता के नगर से मुझे छोड़ कर चले आये तब मैं भी दुःखित चित्त से परिवार वालों को त्याग वन में रहने चली आई । यहाँ पर निराहार तपस्या करने से जब मैं अत्यन्त दुर्बल हो गई और निराश होकर देह त्याग का विचार करने लगी तो एक देवदूत ने आकर मुझे ऐसा कहा—“तुम्हारे गर्भ से एक महा पराक्रमी पुत्र जन्म लेगा, जो असुरों को मार कर देवताओं का कृपापात्र बनेगा, इसलिये तुम इस प्रकार आत्मघात मत करो । इस प्रकार आशान्वित हो कर मैंने जीवन त्याग करने का विचार छोड़ दिया ॥३२-३८॥

परश्वश्रमहाभागस्नातुं गङ्गां हृदंगता ।

अवतीर्णाविकृष्टास्मिदृद्धनागेनकेनचित् ॥३९

ततोरसतलं नीतातेन तत्र च मे पुरः ।

नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥४०

तुष्टुवुर्मासमभ्येत्यमामन्येऽपूजयंस्तथा ।

यथाचिरेसविनयं नागामामङ्गनास्तथा ॥४१

प्रसादं कुरु सर्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया ।

अपराधमुपेतानां संनिवार्यो वधोन्मुखः ॥४२

अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।

तन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥४३

१०११ चममाप्रोक्ते दिने पातातभूः ॥
 भूपिनाहृतथाभुवैवेन्धवासोभिरत्तमं ॥४८८
 समानीतातथातोषमिमन्नेनातिलाक्षिना ।
 पुरामवावात्तमतीपूर्ववद्रूपशालिनी ॥४८९
 इतिरूपवतीदृष्टासर्वाण्ड्वारभूपिनाम् ।
 जग्राहदृष्टकेयाऽयहतुं काम मुदुमति ॥४९०
 भूमिहाहृषन्नेनाहराजपुत्रविमाक्षिता ।
 १ प्रसीदमहात्माहोमाप्रतीच्छ्रवयाक्षम ।
 भूलाकगजपुत्राऽयोनास्तिसरयद्रवीम्यहम् ॥४९१

अभी हो दिन पूर्व जब गया ३ निवृत्तवतीं कुहर में स्नान करने गई
 तो एक बड़ा नाग मुझे भीषकर रसातल में म गया, जब मैं वहाँ पहुँची तो
 हजारों नाग, नाग रमणियों और वायव मेरे सामने इकट्ठे हो गये और मेरी
 पूजा, स्तुति करने करने लग कि आप हमारे ऊपर कृपा करें। जिन समय
 हम किसी क्षणिक के कारण आपसे पुत्र के सम्मुख दृष्टनीय हों तो आप
 उनको रोक कर हमारी रक्षा करना। यदि वायु मलय करने वाले नागए
 तुम्हारे पुत्र का वाट क्षणिक कर तो उस समय आप हमारी सहायिना दें,
 यही प्रायना हम करते हैं ॥२६-४३॥ जब मैं उनको बात स्वीकार करनी
 तब उपाय मानान तक व शिव्य धामभूयसा मनोहर गध, वस्त्र, पुष्प आदि
 में मुझे सजाया और क्षणिक मुझे पुत्रा पर पहुँचा गये और नाली के प्रभाव
 व पूर्ववत् स्वप्नो और शीघ्र सुत हो गई। बाद मुझे इस प्रकार सामुपार्थी
 से विभूविन और रूप मन्त्र देण कर वह दृढदण नामक दृढ दातव हूए
 कर व शिव जा रहा था कि बाद का गव और उसके पत्रे में मुझे छुड़ा दिया।
 बाद वायव तो नाहृषण ग यरी रक्षा का तनी है इस विषय धव आप ही मुक
 दृष्ट कर कृपा कर। महा मन्त्र विदवात है कि हम समय आपसे गहन
 गुणवान् गजपुत्रा दही भी कोई नहीं है ॥४४-४९॥

११४—मरुत जन्म वर्णन

इतितस्यावचः श्रुत्वास्मृत्वापितृवचःशुभम् ।
 किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तंतेनभूमृता ॥१
 भृत्युवाचसतांकन्यामविक्षिन्नुपतेःसुतः ।
 सानुरागमनाःकन्यात्यक्तभोगाञ्चतत्कृते ॥
 यदाहत्यक्तवांस्तन्वीत्वाभरातिपराजितः ।
 विजित्यशङ्कन्सप्राप्तात्वंसयात्रकरोमिकिम् ॥३
 भमपाणिगृहाणत्वंरमणीयेऽत्रकानने ।
 सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुंवांभवेत् ॥४
 एवभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रकारणम् ।
 अन्यथाकथमन्यत्रत्वामहञ्चसमागतः ॥५

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजकुमार अवीक्षित ने जगत् राजकन्या के मुख से यह सब वृत्तान्त सुना और किमिच्छक व्रत के अवसर पर पिता से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण किया और यह भी देखा कि विशाल राज-कन्या ने मेरे ही लिये सब भोग त्याग रखे हैं तब उसके चित्त में उस मीन्दर्यमयी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया उसने कहा—हे सुन्दरी ! जन्मों से हार जाने पर ही मैंने तुम्हारा त्याग किया था और आज फिर शत्रु को जीत कर ही तुमको प्राप्त किया है, अतः अब मैं क्या कहूँ ? राजकुमारी ने उत्तर दिया—इस रमणीय वनस्थली में ही आप मेरा पाणिग्रहण करें तो दो सकाम युवक युवती का यह सम्मिलन सुख शान्ति और सत्परिणाम से सिद्ध होगा । राजकुमार अवीक्षित ने कहा—ऐसा ही हो—तुम्हारा मंगल हो । इस घटना के पीछे स्पष्ट-रूप से देव का हाथ है, अन्यथा तुम और मैं पृथक्-पृथक् स्थान में रहते हुए भी आज इस अवसर पर कैसे इकट्ठे हो सकते थे ॥१-५॥

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वतनयोमुने ।

राप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैर्दृष्टः ॥६

राजपुत्रमुतेयस्मेभामिनीनाममानिनी ।
 अमिशापादगस्त्यस्यविशाततनयाऽभवत् ॥७
 बालभावेनयोगस्त्य कोपितःक्रीडमानया ।
 तनस्तेनतदाशानामानुषीत्वभविष्यसि ॥८
 प्रसादित मचास्माभिर्ब्रालियमविवेकिनी ।
 तवापराद्धविप्रर्षप्रसाद क्रियतामिति ॥९
 प्रसाद्यमान सोऽस्माभिरिदमाहमहामुनिः ।
 बालेतिमत्वाशापोऽत्रोदत्तोऽस्यानान्यर्यवनत ॥१०
 इतिशापा गस्त्यस्यविशातभवनेशुभा ।
 जातेषमत्सुतासुभ्रूर्भामिनीनामनामत ॥११॥
 तदस्याहृतेप्राप्तोगृहाणेमानृपात्मजाम् ।
 ममान्मजामुतस्तेऽप्रचक्रवर्तीभविष्यति ॥१२

मार्कण्डेयजी कहन लगे—जिन समय शवीक्षित और विशाल राज-
 कन्या का यह वाग्विवाह हो रहा था उसी समय तनय नामक गणवं अन्य
 अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ वहाँ आया। उसने कहा—यह कन्या
 वास्तव में मेरी ही है और इसका नाम मानिनी है। अगस्त्य ऋषि को इसने
 एक बार क्रोधित कर दिया था और सब उन्होंने क्षाप दिया कि तू मनुष्य
 योनि में जन्म ले। मैंने उनसे प्रार्थना कि यह एक प्रत्रोप—कन्या है इस के
 ऊपर क्रोडित होना उचित नहीं, क्षाप इस पर कृपा करें। महामुनि अगस्त्य
 जी ने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा कि—वातिका समझ कर ही मैंने इसे
 सामान्य शाप दिया है, पर अब वह सर्वथा मिट नहीं सक्ता मेरी प्रिय कन्या
 न उसी क्षाप के कारण विशाल राजा के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। अब
 मैं इसके निष ही यहाँ आया हूँ कि क्षाप भरो कन्या का पाणिग्रहण करें,
 इसके गर्भ से क्षाप को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा ॥६-१२॥

तथेत्युक्त्वेतिनस्याहमपाणिपायिवात्मज ।
 जथाहनिधिप्रदोममकृतमचतुम्पुत्र ॥१३

प्रजगुर्देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
 पुष्पाणिससृजुर्मैघादेवत्राद्यानिसस्वनुः ॥१४
 विवाहे राजपुत्रस्यतयातत्रसमेतृषः ।
 समस्तवसुधात्राणकर्तृ कारणभूतया ॥१५
 ततोगन्धर्वैर्लोकन्तेसहतेनमहात्मना ।
 निःशेषैराययुःसाक्षसचराजसुतोमुने ॥१६
 भामिन्यामुमुदेसाद्धंमविक्षिन्तृपनन्दनः ।
 साक्षतेनसमंतत्रभोगसम्पत्समन्विता ॥१७
 कदाचिदतिरम्येऽसौगगतोपवनेतया ।
 विक्रीडत्तिसमंतन्व्याकदाचिदुपपर्वते ॥१८
 कदाचित्पुलिनेनद्याहंससारसशोभिते ।
 कदाचिद्भ्रूवनस्यान्तेप्रासादेचातिशोभने ॥१९
 विहारदेशेष्वन्येषुरमणीयेष्वहर्निशम् ।
 सरेभेसहितस्तन्व्यासाक्षतेनमहात्मना ॥२०

राजकुमार अवीक्षित ने गन्धर्व का वना सुन कर तथास्तु कहा । तब गन्धर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने उन दोनों का पाणिग्रहण संस्कार यथाविधि होम करके सम्पादन कराया । उस अवसर पर देवता तथा गन्धर्व हर्ष से गाने बजाने लगे, अप्सरार्यों नाचने लगीं, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और देव-गरुड अपने वाद्य बजाने लगे । तत्पश्चात् सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के पालनकर्ता (चक्रवर्ती शासक) की जननी होने वाली कुमारी तथा राजकुमार अवीक्षित के विवाह में आये हुए समस्त गन्धर्व उस प्रमुख गन्धर्व तनय के साथ गन्धर्व लोक को चले गये । राजकन्या और राजकुमार अवीक्षित उन्हीं के साथ गये । वहाँ पर वे दोनों पति-पत्नी एक दूसरे के सहवास और प्रेमयुक्त व्यवहार से अत्यन्त संतोष को प्राप्त हुए । वे अपनी उस मनोहर भार्या सहित कभी नगर के उपवनों में, कभी उपपर्वतों में क्रीड़ा करने लगे । कभी हंस-सारस आदि से शोभायमान नदियों के तट पर कभी भवनों में, कभी ऊँचे महलों और कभी अन्य रमणीक स्थानों में वे दोनों विहार सुख प्राप्त करने लगे ॥१३-२०॥

भक्ष्यानुलेपनवस्त्रं स्रवपानादिकमुत्तमम् ।
उराजह्नूस्तयास्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१

तयाचरमतस्तस्यभामिन्यासहदुर्लभे ।
गन्धर्वलोकेवीरस्यपुत्र सामुपुवेगुमा ॥२२

तस्मिञ्जातेमहावीर्येगन्धर्वाणामहोत्सवः ।
बभूवमनुजव्याघ्रेतेनकार्य्यमवेक्षतम् ॥२३

जगु केचित्तर्षवान्येमृदङ्गपटहानकान् ।
प्रवादयन्तचैवान्येवेणुवीणादिकास्तया ॥२४

ननृतुश्चतयातत्रबहवोऽप्सरसांगणा ।
पुष्पवृष्टिमुचोभेघाजगजुंभृदुनिस्वना ॥२५

तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्तमानेऽप्यतुम्बुरु ।
प्रणयेनस्मृतोम्येत्यजातकर्माकिरोन्मुनि ॥२६

वहाँ रहने वाल मुनि, गन्धर्व और किन्नर उनके उत्तम भक्ष्य पदार्थ, पानीय, वस्त्र, माला और गव आदि भेंट स्वरूप देने लगे भोगो से भरपूर गन्धर्व लोच में राजकुमारी मानिनी के इन प्रकार विहार करते हुए राजग्न्या ने एक पुत्र को जन्म दिया । उस महावीर्य शाली पुत्र का जन्म होने पर भविष्य में उषह द्वारा महान् कार्यों क मिड होने की भाशा से गन्धर्वों ने महाव उत्सव का आयोजन किया । वहाँ पर कोई गान करने लगा, कोई मृदंग, पटह, बोन बैणु, धोणा, आदि बजाने लगे । अप्सरायें मनोहर नृत्य करने लगी और मेघ फूलों की वर्षा करत हुए मधुर मन्द शब्द करने लगे । इस प्रकार जब वहाँ सर्वत्र मंगल शब्द हो रहा था तब वे स्मरण करते ही पुरोहित तुम्बुरु ने वहाँ घाबर दिगु का जात वमें पूरा किया ॥२१-२६॥

देवा समाययु सर्वतयादेवर्षयोऽमला ।
पानालात्प्रगेन्द्राश्चमेपवामुक्रितक्षवा ॥२७

तथादेवानुराणाचयेप्रधानाद्विजोत्तम ।
यशाशागुह्यपानाचमायवश्चतयाऽग्निना ॥२८

तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः ।
 मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणामहत्पुरम् ॥२६
 ततःसतुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिकाःक्रियाः ।
 चक्रोस्वस्त्ययनंतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम् ॥३०
 चक्रवर्त्तीमहावीर्य्योमाहाबाहुमहाबलः ।
 महान्तंकालमीशित्वमशेषायाःक्षितेःकुरु ॥३१
 इमेशक्रादयःसर्वलोकपालास्तथर्षयः ।
 स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्य्यचारिविनाशनम् ॥३२
 मरुतवशिवायास्तुवात्तिपूर्वेणयोऽरजाः ।
 मरुतेविमलोऽक्षीणोऽबैषम्यायास्तुदक्षिणः ॥३३
 पश्चिमस्तेमरुद्धीर्य्यमुत्तमतेप्रयच्छतु ।
 बलयच्छतुचोत्कृष्णमरुतोचनथोत्तरः ॥३४

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस समय वहाँ पर सभी देवर्षि, पाताल
 निवासी शेष, वासुकि, सक्षक आदि नागगण, राजा, देव, असुर, यक्ष, गृह्णकों
 के प्रधान व्यक्ति और समस्त वायुकुल उपस्थित हुए । उस अवसर समस्त
 ज्ञाने वाले समस्त ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनिर्षों ने मन्वर्वों का सम्पूर्ण
 नगर भर गया । जातकर्म सम्पन्न हो जाने पर उन तुम्बुरु ने बालक का
 स्वस्त्ययन इस प्रकार किया—हे वीर तुम महाबली, महावीर्य और महाबाहु
 होकर पृथ्वी सार्वभौम आधिपत्य प्राप्त करके अब श्रेष्ठ शासक बनो । समस्त
 इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलमय और शत्रुधों को विजय
 करने वाला वीर्य विवान करें । पूर्व दिशा से चलने वाली स्वच्छ वायु तुम्हारा
 कल्याण करे । अक्षीण और विमल दक्षिण-पवन तुम्हारे अनुकूल रहे ।
 पश्चिम का मरुत तुमको महावीर्य और उत्तर का पवन उत्कृष्ट बल प्रदान
 करे ॥२७-३४॥

इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी ।
 मरुतवेतिवहुशोयदिदंगुरुरब्रवीत् ॥३५

मरुत्तइतितेनायभुविह्यातोभविष्यति ।
 भुविचाम्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥३६
 एषसर्वंशिक्षीशानावीर स्यास्यतिमूर्द्धंनि ।
 चक्रवर्त्तीमहावीर्य्य सप्तद्वीपवतीमहीम् ॥३७
 आक्रम्यपृथिवीपालानयभोदमत्यवारितः ।
 प्रधान पृथिवीशानाभविष्यत्यययाज्वनाम् ।
 प्राधिकयशोऽर्थंवीर्य्येणभविष्यत्यस्यराजसु ॥३८
 इत्याकर्ण्यं वच सर्वेकेनाप्युक्त दिवोकसाम् ।
 सतुतुपुविप्रगन्धर्वाश्चास्यमातातथापिता ॥३९

इस स्वर्णयज्ञ का पाठ समाप्त होने पर आकाशवाणी हुई कि गुरु ने बार-बार 'मरुत्' शब्द का उच्चारण किया है इसलिये इस बालक का नाम 'मरुत्' ही होगा और समस्त समार विह्वल होगा । सम्पूर्ण राजागण इसके आज्ञावर्ती होंगे इस प्रकार सब राजाओं में निरोमणि होगा । यह सब राजाओं को हरा कर चक्रवर्ती पदवी पायेगा मानो द्वीपों में विद्वृत पृथ्वी का भोग करेगा । यह सब नरेशों और यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ होगा और समस्त राजाओं की भयंशा बल-वीर्य में प्रधानता प्राप्त करेगा । देवगण की इस वाणी को सुनकर सब ब्राह्मण, गन्धर्व और बालक के माता पिता आनन्द प्रसन्न और सतुष्ट हुए ॥३५-३९॥

११५- मरुत्त चरित्र (१)

तत सराजपुत्रस्तमादायदयितसुतम् ।
 पत्नी-जानुगतोविप्रगन्धर्वेराययोपुरम् ॥१
 सपितुर्भवनप्राप्यवन्देपितुरादरात् ।
 धरणीसाचतन्वङ्गीह्रीमतीनृपते मुता ॥२
 तथाह गजपुत्रोऽमौगृहीत्वाबालकमुतम् ।
 घर्मानगतभूपराजामध्येकरन्धमम् ॥३
 युगपौत्रस्यपर्यंतदुस्तङ्गस्ययन्मया ।
 किमिच्छवेप्रतिज्ञातन्म्यमातु वृत्तेपुरा ॥४

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गं तं कृत्वा तनयं ततः ।
 यथावृत्तमशेषसकथयामास तस्य तत् ॥५
 सपरिष्वज्य तं पीत्रमानन्दात्स्नाविलेक्षणः ।
 सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशंसं सपुनः पुनः ॥६
 ततः सोऽर्घ्यादिना सम्यग्गन्धवन्समुपागतान् ।
 संमानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥७

मार्कण्डेयजी कहते लगे—तत्पश्चात् राजकुमार अवीक्षित अपने नवजात पुत्र तथा पत्नी के साथ अपने नगर में आये । उस समय अनेक गन्धर्व भी उनके पीछे-पीछे थे । उन्होंने राज भवन में जाकर पिता की बन्दना की, विशाल राज-कन्या ने भी सलज्जभाव से उनको प्रणाम किया । तदनन्तर अवीक्षित ने पुत्र को लेकर बड़े-बड़े सरदारों के साथ राजसिंहासन पर विराजमान अपने पिता महाराज करन्धम से कहा—“माताजी के किमिच्छक व्रत के अवसर पर मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार पीत्र को गोदी में लेकर इसका मुख देखिये ।” यह कहते हुए उन्होंने पुत्र को पिता की गोदी में दे दिया और विवाह तथा पुत्र-जन्म का पूरा वृत्तान्त उनको सुना दिया । पीत्र को देखकर राजा के नेत्रों में हर्ष से अश्रु आभये और अपने को परम सौभाग्यवान् मानकर स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने लगे । इसके पश्चात् उन्होंने साथ में आये गन्धर्वों का सब प्रकार से सम्मान किया ॥ १-७॥

ततः पुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु ।
 अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येति महामुने ॥८
 हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः ।
 विलासिन्योऽतिचार्वङ्गचो नृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥९
 राजा च द्विजमुख्येभ्योरत्नानि च वसूनि च ।
 गावो वस्त्राण्यलङ्कारानददाद्घृष्टमानसः ॥१०
 ततः स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथाशशी ।
 पितृणां प्रीतिजनको जनस्येष्टश्रसोऽभवत् ॥११
 आचार्याणां सकाशात्स प्राग्वेदाङ्गगृहे मुने ।
 ततः शस्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥१२

वृत्तोद्योगोयदासोऽभृत्वखड्गकामुं वकर्मणि ।
 अन्येषु चतथावीरः क्षस्त्रेण पुविजितश्रम ॥१३
 ततोऽस्त्राणिसजग्राहभागवाद्भृगुसभवात् ।
 विनयावनतोविप्रगुरो प्रीतिपरायण ॥१४

मार्कण्डेय कहने लगे—उस समय समयसम नगर में भी बहुत बड़े उन्मत्त होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि "हमारे रक्षक राजा के मन्तान हुई है ।" उस समय नगर के भीतर स्यात-स्यात पर नर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगीं । महागज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, धन्य, आभूषण और गोधो का दान देने लगे । इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वाता-वरण में वह बानक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता का प्रीतिपात्र और धन्य साधारण मनुष्यों का भी धारा बन गया । बड़ा होने पर उसने पाचार्य के समीप रहकर वेद, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की । जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो सडग, धनुष-बाण और अन्योन्य शास्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवशीय भागव के निकट जाकर उनका रहस्य सीखन लगा ॥८-१४॥

गृहीतास्त्र वृत्तीवेदेधनुर्वेदस्यपारग ।
 निष्णात सबविद्यामुनवभूवतत पर ॥१५
 विशालाऽपिसुतावार्तामुपलभ्याग्निलामिमाम् ।
 हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दोहितस्यचयाग्यताम् ॥१६
 अथराजानुत्सुतदृष्ट्वाप्राप्तमनोरथ ।
 यज्ञाननेवाग्निष्पाद्यदत्त्वादानानिचायिनाम् ॥१७
 वृत्तगोपत्रियोयुक्त मवर्णौघमतोमहीम् ।
 परिपारुयारिविजयोत्तवृद्धिसमन्वित ॥१८
 मयियामुर्वनपुत्रमविक्षितमभापत ।
 पुत्रवृद्धो-स्मिगच्छामिवनराज्यगृहाणामे ॥१९
 वृत्तवृत्त्योऽग्निनास्त्र्यन्यरिश्चिस्त्वदभिषेचनात् ।
 मुनिष्पन्नमतोराज्यत्वगृहाणमयापितम् ॥२०

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओं से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद में पारंगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओं में पूर्ण निष्णात होगया। उस समय इन विद्याओं में उसने बढ़कर कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता था। अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करन्धम ने पीत्र का प्राप्त करने की खुशी में अनेक यज्ञ करके अर्धियों बहुत-सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया। तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षित से कहा—‘पुत्र ! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन में रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो। मैं सभी दृष्टियों से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूँ, अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भाँति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ’ ॥१५-२०॥

इत्युक्तःपितरंप्राहसोऽविक्षिन्तृपनन्दनः ।
 प्रथयावनतोभूत्वाग्निग्रासुस्तपसेवनम् ॥२१
 नाहंतातकरिष्यामिपृथिव्याःपरिपालनम् ।
 नापैतिह्यीममनसि राज्येऽन्यत्वंनियोजय ॥२२
 तातेनमोक्षितोब्रह्मो नस्ववीथ्यदिहृयतः ।
 ततः कियत्पौरुषमेपुरुषैःपाल्यतेमहीम् ॥२३
 योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
 सकथंपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
 सस्त्रीसधर्मापुरुषोयश्चान्येनावद्रुह्यते ।
 आत्माऽमोहायभवताबन्धनाद्ये नमोक्षितः ॥२५
 रोऽहंकथमविष्यामिस्त्रीसधर्मा महीपतिः ।
 स्त्रियःपुमान्भवेद्भूतियःशूरःसमहीपतिः ॥२६

पर राजकुमार धवीक्षित स्वयं वन में जाकर तप करने के इच्छुक थे । उन्होंने कहा—' पिताजी ! मैं राज्य का भार ले सकने में असमर्थ हूँ, अभी तप में ही पहली लज्जा की भावना दूर नहीं हुई है, इसलिये आप इस उत्तरदायित्व को अन्य किसी को दे । जब मैं हार कर बन्धन प्रस्त हो गया और पिता के द्वारा छुड़ाया गया तो मेरे पुण्याय और वीरता का महत्व ही क्या रह गया ? जब मैं स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सका तो पृथ्वी का पालन किस तरह कर सकता हूँ ? बुद्धिमान् और धर्माचरण बान्ना होने पर भी जो मनुष्य मनुष्यों से पराजित हो गया, जो अपनी धात्मा का भी उद्धार न कर सका और पिता की सहायता से ही जा बन्धन मुक्त हो सका, वह पुरुष कहे जाने के योग्य नहीं, वह तो एक प्रकार से स्त्री ही है और कदापि राज्य करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥२१-२६॥

नभिध्रएवपुत्रस्यपितापुत्रस्तथापितुः ।

नान्येनमोक्षितोवीरमस्त्वपित्रामाक्षित ।

हृदयनान्यथानेतु मयाशक्यनरेश्वर ॥२७

हृदयेह्रीर्ममातीवयस्त्वहमाक्षितस्त्वया ॥२८

पित्रापात्ताश्रियभुङ्क्तेपित्राकृच्छ्रात्ममुद्धृतः ।

विज्ञायतेचयपित्रामानवःसोस्तुनोकुले ॥२९

स्वयमजितवित्तानाख्यातिस्त्रयमुपेयुषाम् ।

स्वयनिम्नीर्णकृच्छ्राणायागति साऽस्तुमेगतिः ॥३०

वरधम ने कहा—हे वीर श्रेष्ठ, पिता और पुत्र में कोई अन्तर नहीं होता, धनएव मेरे द्वारा छुड़ाये जाने में पराये का कोई प्रश्न नहीं और न लज्जा का कोई कारण ही मन्ता है । धवीक्षित ने उत्तर दिया—महाराज ! आपका कथन सच है, पर मेरे हृदय में यह हीन भावना सब दूर नहीं हो पाती और मैंने उक्त पराक्रम तथा धरमान का स्मरण ही धाता है । जो व्यक्ति पिता की पराजित मन्वति के भरोसे मुक्त प्राप्त करता है, धारति में पड जाने पर पिता द्वारा सुन्कारा जाना है और पिता की कीर्ति के आधार पर ही प्रसिद्ध होता है, उनका कुछ भी महत्त्व ममता व्यर्थ है । जो स्वयं अपने पुण्याय द्वारा

वैभव प्राप्त करता है, स्वयं नाम कमाता है और स्वयं ही आपत्तियों से छुटकारा पाने में समर्थ है वही सच्चा पुरुष है ॥२७-३८॥

इत्याहबहुशःपित्रायदाप्युक्त्वोऽप्यसौमुने ।

तदातस्यसुतंराज्येमरुतमकरोन्नुपः ॥३१

सपित्रासमनुज्ञांतराज्यंप्राप्यपितामहात् ।

चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३२

राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ।

वनंजगामतपसेयतवाक्कायमानसः ॥३३

तत्रवर्षसहस्रंसतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।

विहायदेहंनृपतिःशक्रस्यापसलोकताम् ॥३४

सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरंशत्म् ।

तपश्चचारविप्रर्षेजटिलामलर्षकिनी ॥३५

सालोक्यमिच्छतीभर्तुःस्वर्गतस्यमहात्मनः ।

फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसंश्रया ।

द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजशुश्रूषणादृता ॥३६

मार्करण्डेयजी ने कहा—जब अवीक्षित ने पिता के वारम्बार कहने पर भी राज्य भार ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो महाराज करन्धम ने उसके पुत्र मरुत को राज्य भार दे दिया । मरुत ने पिता की अनुमति पाकर पितामह द्वारा प्रदत्त राज्य भार को स्वीकार किया और ऐसे सुचारु रूप से संचालन करने लगे जिससे उनके समस्त निकटवर्तियों को परम संतोष और आनंद हुआ । तब महाराज करन्धम भी अपनी पत्नी बीरा को साथ लेकर मन, वचन, काया से तपस्या में निरत होने के लिये वन में चले गये वहाँ पर करन्धम के एक हजार वर्ष तक कठिन तप करके देह त्याग करने पर वह इंद्रलोक को प्राप्त हुए । उनकी पत्नी बीरा देवी इसके पश्चात् भी सौ वर्ष तक तपस्या में निरत रही । वह सदैव परलोक में भी पति का सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा करती रहती

धीर केवल पत्न, मूल का साधारण वरके प्राणों के आश्रय में द्विज पत्नि को
राज्य सेवा और सम्मान पत्नी हुई समय व्यतीत करती थी ॥२१-२६॥

११६—मरुत्त चरित्र (२)

भगवन्निवस्तरात्मर्षममंतत्कथित्विहया ।
वरन्धमस्यचरितमविशिञ्चरितवयत ॥१॥
आविक्षितस्यनृपनेर्मरुत्तस्यमहात्मन ।
श्रोतुमिच्छामिचरितश्रूयतेसोऽस्तेचेष्टित ॥२॥
अप्रवर्तीमहाभाग शूरवन्तोमहामति ।
धर्मविद्धमंकुञ्जवसन्म्यक्षपालपिताभुव ॥३॥
क्षपिनासमनुजात राज्यप्राप्यपितामहात् ।
धर्मत पालयामासपितापुत्रानिवीरसान् ॥४॥
इयाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तवक्षिणात् ।
श्रुत्विवपुरोहितादेनादनिविण्णोमहीपति ॥५॥
तस्याप्रविहत्तत्रमासौद्वीपेषुसप्तसु ।
गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्व पातालजलादिषु ॥६॥
तत्र प्राप्यधनविप्रयथावत्क्षत्रियापर ।
अपजतसमहायज्ञं देवानिन्द्रपुरागमान् ॥७॥

कौटुम्बिक होने—हे मरुत्त ! अब मैं सूर्यवंश के राजा मरुत्त के चरित्र
को सुनना चाहता हूँ, सुना जाय है कि वह अत्यन्त उदार, प्रतिष्ठामान् ॥१॥
अप्रवर्ती, महाभाग, शूर, शान्त, श्रेष्ठ बुद्धि, धर्मज्ञ, धर्मपारी तथा भले प्रकार
से पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पिता की
प्राणा में मरुत्त ने अपने पितामह से राज्य को प्राप्त किया धीर प्रजा का पालन
अपने पुत्र के समान करने लग ॥४॥ धार्मिकों और परोक्षियों को अन्धता सुवर्ण

उन महाराज ने अत्यन्त दक्षिणा वाले अनेकानेक यज्ञों का अनुष्ठान किया था ॥१॥ उनके रथ के पहिये सातों द्वीप में न रुकने वाले थे, आकाश, पाताल और जल में भी उनकी गति का अवरोध नहीं होता था ॥६॥ अपने कर्म में तत्पर हुए उन मरुत ने घन पाकर सब महायज्ञों के द्वारा इन्द्र आदि देवताओं का यजन किया था ॥७॥

इतरेचयथावर्णाःस्वेस्वेकर्मण्यतन्द्रिताः । -

तदुपात्तघनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाःक्रियाः ॥८

पाल्यमानामहीतेनमरुत्ते नमहात्मना ।

योस्पद्धं त्त्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम ॥९

तेनातिशयिताःसवकेवलंनमहीक्षितः ।

यज्विनादेवराजोऽपिशतयज्ञाभिसन्धिना ॥१०

ऋत्विक्तस्पतुसंवर्त्तोबभूवाङ्गिरसःसुतः ।

भ्रातावृहस्पतेविप्रमहात्मातपसानिधिः ॥११

सौवर्गोमुञ्जवाभ्रामपर्वतःसुरसेवितः ।

पातितंतेनतच्छृङ्गं कृतेतस्यमहीपतेः ॥१२

तेनयस्याखिलयंज्ञेभूमिभागादिकद्विज ।

प्रासादाश्चकृताःशुभ्रास्तपसासर्वकाञ्चनाः ॥१३

गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुत्तचरिताश्रयाः ।

सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽव्ययनयथा ॥१४

सभी वर्ण अपने-अपने कर्म में तत्पर रहकर उनसे प्राप्त घन के द्वारा दृष्टापूर्त्त इत्यादि कर्म को करते थे ॥८॥ महात्मा मरुत के द्वारा पालन की जाती हुई पृथिवी देवताओं से भी स्पद्धा करती थी ॥९॥ वह मरुत राजाओं में ही प्रमुख नहीं होगये थे, वरन् सैकड़ों यज्ञों को करने के कारण वह इन्द्र से भी श्रेष्ठ होगये थे ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! अंगिरा सुवन, वृहस्पतिजी के भाई तपोनिधि महात्मा संवर्त्त उनके ऋत्विक् हुए ॥११॥ देवताओं द्वारा सेवित स्वर्गमय एक पर्वत मुंजवान् नाम से प्रतिष्ठ है, ऋत्विक् अपने तपोबल से उसका शृंग उखाड़ कर राजा के निमित्त ले आये थे ॥१२॥ इसी शृंग के द्वारा राजा का

समस्त यज्ञ-स्थान और स्वर्णमय उज्ज्वल भवनो का निर्माण हुआ था ॥१३॥
इन मन्त्र के चरित्र को साधार बना कर श्रुतिगण सदा इनका वृत्तान्त कीर्तन
करते और इनके चरित्र का अध्ययन करते थे ॥१४॥

मरुत्तं नसमौनाभद्यजमानोमहीतले ।

सद समस्तययज्ञं प्राणःदाश्चैववाचना ॥१५

अमाद्यदिन्द्र सोमेनदक्षिणाभिद्विजातय ।

विप्राणापरिवेष्टार शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमा ॥१६

यथायज्ञं मरुत्तस्यतृप्ता सर्वेमहीपते ।

सुवर्णमल्लितस्यक्त रत्नपूर्णंगृहेद्विजं ॥१७

प्रासादादिममस्तचसोवर्णतस्ययत्क्री ।

अयोवर्णाह्वलम्यन्ततस्मात्केचित्तयाददु ॥१८

(तेनत्यक्तेनशिष्टायेजना पूर्णमनोरथा ।

तेपियज्ञान्यजतेस्मदेशेदेशेपृथक्पृथक् ।)

यस्यैवकुपतोरान्यस्यैवपालयतःप्रजा ।

तपस्वीर्वाश्चदम्येत्यतमाहमुनिस्ततम ॥१९

पितुर्मातातवाहेददृष्टानापसमण्डलम् ।

विपाभिभूतमुरगैर्मोन्मत्तंरेश्वर ॥२०

पितामहस्तेस्वर्षातःसम्यवमपाल्यमेदिनीम् ।

पितातवतयाशक्तोहित्वाप्राभवन्मत्त ।

(तपश्चरणाशक्ताह्मिहचोर्वाश्रमेस्थिता) ॥२१

जिनके यज्ञ में समस्त सभा भवन एवं प्रासाद स्वर्णमय बनाये गये थे,
इन्द्र सोमपान करके और ब्राह्मण दक्षिणा को प्राप्त करके मत्त हो उठे थे, सब
प्रधान देवताओं ने ब्राह्मणों को घेर रखा था, उन मरुत्त के समान यज्ञ करते
याना कोई पुरुष पृथिवी पर उत्पन्न नहीं हुआ ॥१५-१६॥ ब्राह्मणों ने जितनी
रत्नमय गृह और स्वर्ण राशि उन मरुत्त के यज्ञ में प्राप्त की थी उतनी अन्य
दिगुके यज्ञ में भी ? उन्ही के समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण स्वर्ण-
मय भवनदि को वा मन्त्रे थे, उन्ही अनिश्चित ऐसा दाज और जिस पुरुष ने

किया है ? ॥१८॥ उनके धन को प्राप्त कर जो मनुष्य पूर्ण काम हुए, उन्होंने भी अपने द्वारा समस्त धनों का सम्पादन किया था) हे मुनिवर ! उनके इस प्रकार के श्रेष्ठ राज्य शासन, एवं प्रजा पालन काल में एक दिन एक तपस्वी उनके पास आकर बोला ॥१९॥ हे राजन् ! तुम्हारी पितामही ने तापस मंडली को मदोन्मत्त सर्पों के विष से पीड़ित होता हुआ देखा और यह संदेश भेजा है ॥२०॥ तुम्हारे पितामह भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं और तुम्हारे पिता ने भी धन का आश्रय लिया है (मैं भी तप में आसक्त होकर और्वाश्रम में स्थित हूँ) ॥२१॥

साऽहंपश्यामिर्वैकल्यंतवराज्यंप्रशासतः ।

पितामहस्यतेनाभूच्चत्पूर्वेषांचतेनृप ॥२२

नूनंप्रमत्तोभोगेषुसक्तोवाऽतिजितेन्द्रियः ।

चारान्धतायतोस्तीर्यदुष्टादुष्टंनवेत्सियत् ॥२३

पातालादभ्युपेतेस्तुभुजगर्दशशालिभिः ।

दष्टामुनिसुताःसप्तदूषिताश्रजलाशयाः ॥२४

स्वेदमूत्रपुरीषेणदूषितंसुश्रुतंहविः ।

अपराधंसमुद्दिश्यदत्तोनागबलिश्चिरात् ॥२५

एतेसमर्थामुनयोभस्मीकर्तुंभुजंगमान् ।

किन्त्वेषानाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥२६

तावत्सुखंभूपतिर्जैर्भोगजंप्राप्यतेनृप ।

अभिषेकजलयवावन्नमूर्ध्निविनिपात्यते ॥२७

हे राजन् ! जो घटनाएँ तुम्हारे अन्धान्य पूर्व पुरुषों के शासन काल में घटीं, उन्हें तुम्हारे शासन काल में घटती हुई देख रहा हूँ ॥२२॥ तुम या तो प्रमत्त हो अथवा अजितेन्द्रिय रहकर भोगों के प्रति अनुरक्त हुए हो, तुम इतों को न रखने के कारण अञ्छी-सुरी घटनाओं को जानने में समर्थ नहीं हो ॥२३॥ दंशनशील नागों ने पाताल से आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है तथा स्वेद, मूत्र और पुरीष से सब जलाशय और यज्ञ-हवि को दूषित कर दिया है, इसलिये अपराध हुआ जानकर मुनिगण सर्पों को बलि दे रहे हैं ॥२४-२५॥

यद्यपि यह मृत्तिकाएँ सभी को स्वयं ही भस्म कर सकते हैं, परन्तु उस कार्य के लुप्ती अधिकारी हो ॥२६॥ हे राजन् ! राजपुत्रों को भोग जनित सुख के भोगने का अधिकार नहीं तक है, जब तक उनके शीश पर अक्षिपेक का जल नहीं सौंवा जाता ॥२७॥

वानिमित्राणिक शत्रुमंसशत्रोदलकियत् ।

.....

.....) ।

विरक्तोच्चापरभिन्न परेपामपिकीहृश ।

क सम्यगत्रनरेविपयेयाज्जोमम ॥२८

घमंकर्माश्रयोभूद्ध क सम्यगपिवर्त्तते ।

योदण्डघ परिपाल्य क केचोपेक्ष्यानराममा ॥२९०

सामभेदतयादम्यादेशकालमवेदाता ।

व्यागश्चचारयेदभ्यैरजातान्भूपतिश्चरं ॥३१

सर्विवादिपुमर्षपुचरान्दद्यान्महीपतिः ।

इत्यादीभूपतिं त्यक्तमंश्यासक्तमानसः ॥३२

नयेद्दिनतयाग्निनतुभोगपराधरु ।

राजाशरोरग्रहणनभोगायमहीपते ॥३३

विष कौन है ? शत्रु कौन है ? शत्रु के पास कितनी शक्ति है ? कौन सभी सौंवा है ? कौन राजा अपने पक्ष का है ? ॥२८॥ (मेरे पास कितना शक्ति है ? कितनी शक्ति है ? कौन मुझमें प्रीति करता है ?) शत्रु के द्वारा भेद को विगतने या लिया है ? कौन शत्रु विष प्रकार का है ? अपने नगर घबरा राज्य में धर्म-धर्म का धार्थ्य मेने वाला कौन है ? ॥२९॥ कौन सुखें रहता है ? कौन दहतीय है ? कौन पालनीय और कौन अपेक्षणीय है ? ॥३०॥ छिद्र भेद के मय मे श्रियके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इन सबका ज्ञान करने के लिये दून के अतिरिक्त गुणचर को नियुक्त करना उचित है ॥३१॥ सब मन्त्रिवादि पर दृष्टि रखने क लिये भी दून की नियुक्ति करे, इन प्रकार राज्य-काज के प्रति राजा को दक्षिण होना चाहिए ॥३२॥ इमी मे दिन-रात्रि ठाकीत करे और

भोग-परायण न हो, हे राजन् ! राजाओं का जन्म भोग के लिये नहीं होता है ३३

क्लेशायमहतेपृथ्वीस्वधर्मपरिपालने ।
 सम्यक्पालयतःपृथ्वीस्वधर्मचमहीपतेः ॥३४
 इहक्लेशोमहान्स्वर्गोपरमंसुखमक्षयम् ।
 तदेतदवबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥३५
 पालनायक्षितेःक्लेशमङ्गीकर्तुं मिहार्हसि ।
 इतिवृत्तमृषीणांयद्वधसनंत्वयिशासति ॥३६
 भुजङ्गहेतुकंभूपचारान्धोनापिवेत्सितत् ।
 बहुनात्रकिमुक्ते नदुष्टेदण्डोनिपात्यताम् ॥३७
 शिष्टान्पालय राजस्त्वंधर्मबड्भागमाप्स्यसि ।
 अरक्षन्पारमखिलदुष्टेरविनयात्कृतम् ॥३८
 समवाप्स्यस्यसन्दिग्धयदिच्छसिकुरुष्वतत् ।
 एतन्मयोक्तं सकलयत्तवाहंपितामही ।
 कुरुष्वेवंस्थितेयत्तरोचतेवसुधाधिप ॥३९

पृथिवी का पालन और अपने धर्म का पालन करने के लिये उन्हें तो महाकष्ट ही भोगने होते हैं, उन्हें अपने धर्म और पृथिवी के पालन से ॥३४॥ इस जन्म में अत्यन्त क्लेश भोग लेने पर परलोक में उन्हें अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, हे राजन् ! इस पर विचार करके और भोग का परित्याग करके ॥३५॥ तुम्हें पृथिवी का पालन करने के लिये क्लेश को अंगीकार करना चाहिये, तुम्हारे शासनकाल में ऋषियों को सर्पों से जो भय उपस्थित हुआ है ॥३६॥ उस भय को दूतों के न होने के कारण ही जानने में समर्थ नहीं हुए, हे राजन् ! तुम दुष्टों को दंडित करो ॥३७॥ और शिष्टजनों का पालन करो, इससे धर्म के प्रष्ट भाग की प्राप्ति होगी, दुष्टगण जिस उद्दण्डता को करते हैं, उससे सज्जनों की रक्षा न करोगे तो ॥३८॥ तुम अवश्य ही पाप के भागी होगे, अब जो कर्त्तव्य समझो, वह करो, हे राजन् ! मैं तुम्हारी पितामही हूँ, इसीलिये ऐसा कहा है, अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥३९॥

११७ — मरुत चरित्र (३)

इतितापसवाक्यसश्रुत्वालज्जापरोनृपः ।
 पिङ्माचारान्धमित्युक्तवानि श्वस्यजगृहेषुनु- ॥१॥
 तत सत्वरितगत्वाखल्वीर्वस्याश्रमप्रति ।
 ववन्देशिरसावीरामातरपितुरात्मन ॥२॥
 तापसाश्रययान्यायतश्चाशीभिरमिष्टुत ।
 दृष्ट्वाचतापसान्समनागैदष्टान्मृतान्भुवि ॥३॥
 निनिन्दात्मानमसवृत्पुरस्तेषामहीपतिः ।
 उवाचचैनदद्याहमद्वीप्यमवमन्यताम् ॥४॥
 यत्करोमिभुजङ्गानादुष्टानाब्राह्मणद्विषाम् ।
 तत्पश्यतुजगत्सर्वसदेवासुरमानुषम् ॥५॥
 इत्युक्त्वाजगृहेकोपादस्त्रसवर्तनृप ।
 नाशायामोपनामानापातालीर्बोविचारिणाम् ॥६॥
 ततो जज्वालसहस्रानागलोकःसमन्तत ।
 महास्त्रतेजसाविप्रदह्यमानोनिवारित ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तापस की बात सुनकर राजा सन्नित्त हुए और
 'मुझ भावारान्ध को विकार है' ऐसा कहते हुए हाथ में धनुष उलझा ॥१॥
 और धारणा शीघ्रतापूर्वक मोर्धाथम में जाकर नत मस्तक हा अपनी पितामही
 घीरा ॥२॥ और तपस्वियों को प्रणाम किया, उन्होंने भी राजा को धार्मिक
 दिग्, फिर राजा ने सर्पदण्ड से मरे हुए सात तपस्वियों को पृथिवी में पड़े देना
 ॥३॥ राजा ने मुनियों के समक्ष बारम्बार अपनी निन्दा की और बोले—यह
 दुष्ट नाग मेरे बल के निरस्कार पूर्वक ॥४॥ ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, इयत्तिये
 जब मैं उनकी जो दगा करता हूँ, उसका देवता, दैत्य और सम्पूर्ण विश्व धव-
 सोहन करे ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऐसा बहुर राजा ने पाताल और
 पृथिवी में रहने वाले सब नागों को नष्ट करने के उद्देश्य से सर्वसंघ धातु को

हाथ में उठाया ॥६॥ उस समय उस महा अस्त्र के तेज से समस्त नागलोक प्रकाशमान हो उठा और भस्म होने लगा ॥७॥

हाहातातेतिहामातहाहावत्सेतिसंभ्रमे ।
 तस्मिन्नस्त्रकृतेवाचपन्नगानामथाभवन् ॥८॥
 केचिज्ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्येभुजङ्गमाः ।
 गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणावाससः ॥९॥
 पातालमुत्सृज्यययुःशरणंभामिनीतदा ।
 मरुतमातरं पूर्वययादत्ततदाभयम् ॥१०॥
 तामुपेत्योरगा सर्वे संप्रमाणं भयातुराः ।
 सगद्गदमिदप्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम् ॥११॥
 प्रणम्याभ्यर्थात् पूर्वयदस्माभीरसातले ।
 तस्य काऽलोज्यमाया तस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥१२॥
 पुत्रो निवार्यतां राज्ञि प्राणैः संयोज्यमस्तु नः ।
 दह्यते सकल लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥१३॥
 एवं सदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते ।
 त्वामृते शरणं नान्यत्कृपां कुर्यशस्विनि ॥१४॥

इस अस्त्र के भय से भीत हुए नागगण माता, तात, वत्स आदि पुकारते हुए चीत्कार करने लगे ॥८॥ किसी की पूछ और किसी का फण दग्ध होने लगा, किसी ने बस्त्राभरणों को परित्याग कर स्त्री पुत्र सहित ॥९॥ पाताल-लोक को छोड़ राजा मरुत की माता भामिनी की शरण ग्रहण की, क्योंकि उसने इनको कभी अभय दान दिया था ॥१०॥ सभी नाग उसके समक्ष उपस्थित होकर गद्गद वचनों से कहने लगे—आप रसातल में हमारे द्वारा की हुई प्रार्थना का स्मरण करिये, उसके निर्वाह का यही समय है, आप हमारी रक्षा करिये ॥११-१२॥ हे राजमाता ! अपने पुत्र को रोक कर हमारे प्राणों की रक्षा करिये, समस्त नागलोक उनके अस्त्रों से उत्पन्न अग्नि से भस्म हुआ जाता है ॥१३॥ हे यशस्विनी ! आपका पुत्र इस विधि से हमें जलाता है, इस-

निए आपके अनि-रिक्त धन्य किमी की शरण हम नहीं ले सकते, आप हम पर दया करें ॥१४॥

इतिश्रुत्वावचस्तेपासत्सृत्वादीचभाषितम् ।
 भर्तारमाहमासाध्वीसमभ्रममिदवच ॥१५॥
 पूर्वमेवतवाख्यातपातालेयद्भुजङ्गमे ।
 प्रोक्तमभ्यर्चनापूर्वममासीत्तनयप्रति ॥१६॥
 तदमेऽभ्यागताभीतादह्यन्तेतस्यतेजसा ।
 सामेतेशरणपूर्वदत्तमेभ्योमयाभयम् ॥१७॥
 येमाशरणमापन्नास्तेत्वाशरणमागता ।
 अपृथग्धर्मचरणायाताहशशरणतव ॥१८॥
 तन्नियारयपुत्रत्वमरुत वचनात्तत्र ।
 मयाचाम्ययितोऽवश्यशममभ्युपयास्यति ॥१९॥
 महापराधेनियत्तमरुत क्रोधमागत ।
 दुर्निर्वर्त्यमहमन्येतस्यक्रोधसुतस्यते ॥२०॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—सर्पों के बरतणापूर्ण वचन सुन कर उत साध्वी स्त्री की सर्पों की दिशा घपना अभय वचन स्मरण हो घामा तो वह सभ्रम-सहित घपने स्वामी मे जाती ॥१५॥ मात्रिनी ने कहा—राजाल मियत सपगणो ने दिनप-पूर्वक जो कुछ मेरे पुत्र के सम्बन्ध मे कहा वह पूर्व ही मैंने आपसे वर्णन किया ॥१६॥ वही मर्षण इव काल मेरे पुत्र के तेज के कारण दग्ध हुए जाते हैं मैंने पहले ही इन्हें समय-वर दिवा या इतानिए भयभीत होकर मे मेरी शरण में घाये हैं ॥१७॥ जो मेरी शरण मे घाये हैं, वे आपके भी शरणगत हैं क्योंकि एव घर्माशरण के कारण मैं घपकी घ-शरणगत हुई हूँ ॥१८॥ इतानिए आप पुत्र मदन को रोक्लिये । आपके आदेश धोर मेरे घापह से वह निरिच्छत ही साग्न हो जायगा ॥१९॥ अधीशित बोले—इनकी सर्वेव घपराधी प्रकृति के कारणवश ही मरुत कीघिन हुआ है इस कारण तुम्हारे पुत्र का शोप सरचना से घात हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होगा ॥२०॥

शरणागतास्तववयंप्रसादक्रियतानृप ।
 क्षत्रत्यार्तपरित्राणनिमित्तंशस्त्रधारणम् ॥२१
 नागानांतद्वचःश्रुत्वाभूतानांशरणां विणाम् ।
 तयाचाभ्यथितःपत्न्याप्राहावीक्षिन्महायशाः ॥२२
 गत्वाब्रवीमितंभद्रेतमयंस्वरयातव ।
 परित्राणायनागानानत्याज्याःशरणागताः ॥२३
 नोपसंहरतेसोस्त्रंयदिमद्वचनानृपः ।
 तदास्त्रैर्वारयिष्यामितस्यास्त्रंतनयस्यते ॥२४
 ततो गृहीत्वासघनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः ।
 भार्यायासहितःप्रायात्स्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥२५

सर्प बोले—हे राजा ! हम आपके शरणागत है, आप हम पर कृपा करिये, क्षत्रिय मनुष्य सदैव वसित मनुष्यों की रक्षार्थ ही अस्त्र ग्रहण करते हैं ॥२१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यशस्वी अवीक्षित ने पत्नी का निवेदन और शरण में आये सर्पों के वचन सुनकर कहा—॥२२॥ हे भद्रे ! मैं तुरन्त ही तुम्हारे पुत्र मरुत के निकट जाकर नागों की रक्षा हेतु उससे कहता हूँ, शरण में आये को शरण न देना कभी उचित नहीं है ॥२३॥ यदि तुम्हारा पुत्र राजा मरुत मेरे कहने पर ही अस्त्र त्याग नहीं करेगा तो मैं उसके विरुद्ध अस्त्र का प्रयोग करूँगा ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् तत्रैष्ट अवीक्षित धनुष धारण करके भार्या को संग लेकर भार्गवाश्रम गये ॥२५॥

११८ — मरुत चरित्र (४)

सनुतत्रमुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकामुं कम् ।
 धनुःशस्त्रंचतस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१
 उद्गिरन्तं महावह्निदीपिताखिलभूतलम् ।
 पातालान्तर्गतं प्राप्तममह्यं घोरभीषणम् ॥२

सतदृष्टामहीपालभृकुटीकुटिलाननम् ।
 माक्रुधस्त्वमरुत्तास्त्रमुपसह्लियतामिति ॥३॥
 प्राहासदृचानुलुप्तवणकममुदाग्धी ।
 सनिशम्यगुरावाक्यदृष्टातवपुन पुन ॥४॥
 गृहीतकामुं क विप्रो प्रणिपत्यसगौरवम् ।
 प्रत्युवाचापराधामेमुभृशपन्नगा पिता ॥५॥
 पासतीमामयिमहीपरिभूयबलमम ।
 समाश्रममुपागम्यदष्टामुनिकुमारका ॥६॥
 श्रुपीणामाश्रमस्थानामभीषामवनीपते ।
 मयिशासतिदुर्वृत्तं दूषितानिहवीपिच ॥७॥

मानण्डय जी ने कहा—प्रवीक्षित ने वही माकर देखा कि मरुत धनुष पर गहन चडाप हुए हैं जिस की तीव्र ज्वाला स समस्त दिगामएकत्र प्रकाशित है ॥१॥ उस उप दान मे स तीव्र अग्नि उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रदीत कर रही है जो कि अत्यन्त भीषण व अपहनीय है एव पाताल तक पहुच रही है ॥२॥ यह देख कर कि महीप मरुत की मुखावृत्ति व भ्रुकुटि कुटिल हैं तो व बोले—हे मरुत ! अस्त्र त्याग दो और क्रोध समाप्त करो ॥३॥ बार बार इन प्रकार कह कर जब चुप हो गये ता उस बुद्धिमान् मरुत ने उनकी ओर दल कर ॥४॥ पिता व माता दोनों को प्रणाम सहित मादर पूजक बोला— हे पिता ! यह सपणण मरे पार अपराधी है ॥५॥ मरे पराक्रम की अवेहलना करके इहोंने मरे राज्य काल में आश्रम मे आकर रात मुनिकुमारो को काटा है ॥६॥ एव हे महाराज ! मेरे राज्य काल में इन दुर्वृत्ति नागों ने इन सम्पूर्ण आश्रम निवासियों के हृदि जन्म शर्मो को दूषित कर डाला है ॥७॥

जलाशयास्तयाप्यने सर्वेएवहिदूषिता ।

मदत्कारणाक्विचिन्नवत्तव्यत्वयापित ।

ननिवारयिनव्याऽहृब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नगान् ॥८॥

यद्ये भिनिह्नाविप्रापास्यन्तिनरकमृता ।

ममेतत्क्रियतावाक्यविरमास्त्रप्रयागत ॥९॥

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।

अहमेवगमिष्यामिनरकंयदिपापिनाम् ।

ननिग्रहेयताम्येषांमांनिवारयमापितः ॥१०

मामेतेशरणांप्राप्ताःपन्नगाममगीवात् ।

उपसंह्रियतामन्त्रमलंक्रोपेनतेनृप ॥११

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।

स्वधर्ममुल्लंघ्यकथंकरिष्यामिवचस्तव ॥१२

दण्डयेनिपातयन्दण्डंभूपःशिष्टांश्चपालयन् ।

पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकाश्चाप्युपेक्षणात् ॥१३

इसलिए आप इन सर्पगणों के विषय में कुछ भी न कहें और ब्रह्म-हत्यारे नगों के संहार-कार्य से मुझे न रोके ॥१०॥ अवीक्षित बोले—यदि उन्होंने ब्रह्म-हत्या की है तो मरने के पश्चात् नरक को जायेगे किन्तु तुम 'अस्त्र' का प्रयोग न करके मेरे वचन की रक्षा करो ॥११॥ मरुत बोले—यदि इन पापियों पर नियन्त्रण का यत्न छोड़ दूँ तो मुझे ही नरक की प्राप्ति होगी, इसलिए हे पिता जी आप मुझे उनके संहार से मत रोकिये, मैं इन दुःओं को क्षमा नहीं करना चाहता ॥१०॥ अवीक्षित बोले—यह नाम मेरी शरण को प्राप्त हुए हैं, इसलिए मेरे शौर्य की रक्षा के निमित्त क्रोध छोड़ कर अस्त्र त्याग दो ॥११॥ मरुत बोले—इन दुःओं को मैं क्षमा करके अपने धर्म का उल्लंघन कैसे करूँ और आपके वचन को कैसे निभाऊँ ॥१२॥ दंड योग्य जीवों क दंड देकर और शिष्ट पुरुषों का पालन करके ही राजा पुरुष लोक को प्राप्त होते हैं अन्यथा उन्हें नरक की प्राप्ति होती है ॥१३॥

एवंसबहुशःपित्रावाच्यंभार्याम्बयासह ।

नोपसंहरतेसोऽस्त्रंततोऽसौपुनरन्नवीत् ॥१४

हिससेपन्नगान्भीतान्ममैताञ्छरणागतान् ।

वार्यभार्याोऽपतस्मात्तेकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥१५

मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानिनत्वमेकऽस्त्रविद्भुवि ।

ममाग्रतःसुदुर्वृत्तपीरुपञ्चकियत्तव ॥१६

तत कामुं कमारोप्यकोपता भ्रविलोचनः ।
 श्रविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥१७
 ततो ज्वालापरीवारमनिसघघ्नमुत्तमम् ।
 कालास्त्रमुमहावीर्य्ययोजयामासकामुंके ॥१८
 ततश्चुक्षोभजगतीसवत्तस्त्रप्रतापिता ।
 साब्धिर्शलाज्जिलाविप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥१९
 कालास्त्रमुद्यतपिशामरुत्त सोऽपिवीक्ष्यतत् ।
 प्राहोर्षरस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्त्रिसमुद्यतम् ॥२०
 नत्वद्वधायकालास्त्रमपिमु चर्तिकमवान् ।
 स्वधर्मचारिणिसुतेसदेवाज्ञाकरेतय ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—पिता के द्वारा बारम्बार निषेध किये जाने पर भी मरुत ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब भ्रवीक्षित ने उनसे पुनः कहा ॥१४॥ ये नाग भयभीत होकर मेरी दारण को प्राप्त हुए मेरे द्वारा निवारण किये जाने पर भी तुम इनकी हिमा ने प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिहार करूँगा ॥१५॥ पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र विज्ञाता नहीं हो, मैंने भी पनेक अस्त्र प्राप्त किये हैं, मेरे सामने तुम्हारा पौरुष नगण्य है ॥१६॥ हे मुनिर्षेण ! भ्रवीक्षित ने ऐसा कह कर क्रोध से ताम्रवर्ण नेत्र कर धनुष उठा कर कालास्त्र ग्रहण किया ॥१७॥ ज्वाला से परिपूर्ण शत्रुओं के नाश करने वाला यह श्रेष्ठ कालास्त्र धनुष पर चढ़ाया ॥१८॥ हे ब्रह्मन् ! मरुत के सवर्त-बाह्य से तप्त हुए पर्वत एक समुद्र से युक्त सम्पूर्ण विश्व कालास्त्र के संपान से क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१९॥ मरुत भी धनुष पर चढ़ाये हुए उन कालास्त्र को देख कर उच्च स्वर में बोले—मेरा सवर्तकास्त्र दुष्टों का शमन करने के लिए तैयार हुआ है ॥२०॥ वह आपके हृत्त के लिए नहीं है, ती फिर सदा सारथ्य का आश्रय लेने वाले भीरु भरती आशा-यानन मे सत्पर रहते थाने पुत्र के प्रति आप इन कालास्त्र को क्यों छोड़ते हैं ॥२१॥

भयाकार्यमहाभागप्रजानापरिपालनम् ।

स्वधर्मक्रियनेष्टरमान्मद्वधायकालास्त्रमुद्यतम् ॥२२

शरणागतसंत्राणंकर्तुं व्यवसितावयम् ।
 तस्यव्याधातकर्त्तात्वं न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३॥
 मां वाहत्वास्त्रवीर्येण जहिदुष्टानि होरगान् ।
 त्वां वाहत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान् ॥२४॥
 धिक्तस्य जीवितं पुंसः शरणात्थिनमागतम् ।
 यो नार्तमनुगृह्णासि वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥२५॥
 क्षत्रियोऽहमिमेभीताः शरणं मामुपगताः ।
 अपकर्त्तव्यमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान् ॥२६॥
 मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वाय दिवा गुरुः ।
 प्रजापालनविघ्नार्थं यो हन्तव्यः स भूभृता ॥२७॥
 सोऽहन्ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः ।
 स्वधर्मः परिपाल्यो मेनास्ति क्रोधस्तवोपरि ॥२८॥

हे महाभाग ! प्रजा-पालन ही मेरा परम कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे संहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित बोले—मैंने शरणागतों की रक्षा का दृढ़-निश्चय किया है, तुम उस कार्य में विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र-बल से मार-कर दुष्ट नागों को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सर्पों की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु-पक्ष के मनुष्य भी आते होकर शरण ग्रहण करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हूँ, भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यों नहीं हो ॥२६॥ मरुत बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन में विघ्न उपस्थित करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता ! मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हों, मैं अपने धर्म के पालन के लिये ही ऐसा करने को तत्पर हुआ हूँ । यह मेरा क्रोध आपके प्रति नहीं है ॥२८॥

तनन्तो नश्चिन्तां दृष्ट्वा परस्परवधप्रति ।
 ममूत्तरव्यान्तरे तस्थुमुं नयो भार्गवादयः ॥२६॥
 ऊरुश्चैनतमोक्तव्यत्वयास्य पितरप्रति ।
 त्वयाचनायहन्तव्य पुत्र प्रख्यातचेष्टित ॥२७॥
 मयादुष्टानिहन्तव्या मन्तोरव्यामहीक्षिता ।
 इमेचदुष्टाभुजगा कोपराधोऽत्रमेद्विजा ॥२८॥
 शरणागतमन्त्राणमयाकार्यमयश्चमे ।
 अपराध्यः सुतो विप्रायो हन्ति शरणागतान् ॥२९॥
 इमेवदन्ति भुजगास्त्रामलोलविलोचनाः ।
 स जीव्यामस्तान्विप्रान्मेदुष्टादुष्टपन्नगं ॥३०॥
 तदलविग्रहेणो भौराजवयो प्रसीदताम् ।
 उभावपि निव्यूढप्रतिज्ञे धर्मकोविदो ॥३१॥
 मातुर्धीरानमयेत्यपुत्रमेतदभाषत ।
 मद्वाक्प्रादेपते पुत्रो हन्तु नागाभृतोद्यमः ॥३२॥
 तन्निष्पन्नयदा विप्रास्ते जीवन्ति तथामृता ।
 स जीवन्तश्चामुच्यन्ते यद्युष्मच्छरणं गताः ॥३३॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—उन दोनों को परस्पर सहार करने में प्रवृत्त देख कर भार्गवादि मुनि शीघ्र आकर दोनों के मध्य घटे हो गये ॥२६॥ घोर मरुत ने कहा—पिता व ऊपर मरुत चलाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है और ब्रह्मिणित से कहा कि आपको भी इस थोड़े कर्मा पुत्र को नष्ट करना अनुचित है ॥२७॥ मरुत बोले— हे द्विजो ! मैं राजा हूँ, दुष्टों का वध करना घोर शिष्ट जनों का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है । ये नाग भी दुष्ट हैं, इनलिये इनके विषय में मेरा क्या अपराध है ॥२८॥ ब्रह्मिणित बोले—हे विप्रो ! शरणागतों की रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ, जो पुत्र मेरे शरणागतों का वध करने को तरार है, वह मेरा अपराधी है ॥२९॥ श्रुति बोले—भय में खँबल नेत्र हुए भुजगों ने कहा कि जिन ब्राह्मणों को दुष्ट नागों ने हन लिया है, हम उनको जीवित कर रहे हैं ॥३०॥ इनलिये अब मुद्द की

आवश्यकता नहीं रह गई, आप दोनों ही राज-श्रेष्ठ, धर्मज्ञानी और प्रतिज्ञा-पालक हैं, आप प्रसन्न हों ॥३४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी वीरा ने आकर अपने पुत्र अवीक्षित से कहा कि मेरे कहने से ही तुम्हारा पुत्र सर्पों को नष्ट करने में तत्पर हुआ था ॥३५॥ और अब जब ये मृतक ब्राह्मण जीवित हो रहे हैं, तब उसका कार्य भी सम्पन्न हो गया और तुम्हारे ये शरणागत भी मुक्त हो गये ॥३५॥

सहमभ्यर्थितापूर्वमेभिःपातालसंश्रयैः ।
 तन्निमित्तमयंभर्तामियात्रविनियोजितः ॥३७
 तदेतदार्येनिवृत्तमुभयोरपिशोभनम् ।
 ममभर्तुश्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यात् जस्यच ॥३८
 ततःसंजीवयामासुस्तान्विप्रांस्तेभुजङ्गमाः ।
 दिव्यैरोषधिजातैश्चविषसंहरणेनच ॥३९
 पित्रोर्ननामचरणौसततोजगतीपतिः ।
 मरुतश्चसतंप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥४०
 मानहाभवशत्रूणांचिरंपालयमेदिनीम् ।
 पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विषः ॥४१
 ततोद्विजैरनुज्ञातौवीरयाचनरेश्वरी ।
 समारूढौरथंसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥४२

भामिनी बोली—पाताल में रहने वाले इन सभी सर्पों ने पहले मुझ से अभय-याचना की थी, इसीलिए मैंने अपने स्वामी से तद्-विषयक अनुरोध किया था ॥३७॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्र अथवा तुम्हारे पुत्र और पौत्र का यह श्रेष्ठ रीति से पूर्ण हुआ है ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर सर्पों ने उन मरे हुए ब्राह्मणों का विष दिव्य औषधियों के द्वारा दूर करके उन्हें जीवित कर दिया ॥३९॥ फिर राजा मरुत ने भी माता पिता के चरणों में प्रणाम किया और अवीक्षित ने भी मरुत को आलिंगन करके प्रीति-पूर्वक यह आशीर्वाद दिया ॥४०॥ शत्रुओं के मान-भंजक होओ, पृथ्वी का सदा

पानन करो, पुत्र-पौत्र सहित सुख-पूर्वक समय ध्यतीत करो, तुम्हारे मनु मष्ट हों ॥४१॥ फिर ब्राह्मणों घोर बीरा की प्राजा प्राप्त कर दोनो राजा और भायिनी ग्याहूद होकर अपने नगर को चले गये ॥४२॥

वीराऽपिकृत्वानुमहत्तपोधर्मश्रुतावरा ।

भर्तुं सलोकताप्राप्तमहाभागापतिव्रता ॥४३

मरुतोऽविचकारोव्याधर्मत.परिपालनम् ।

विनिजितारिपङ्क्तगोभोगाश्चबुभुजेनृप. ॥४४

तस्यपत्नीमहा.भागाविदभर्तनयातथा ।

प्रभावतीसुवीरस्यसोवीरीचामवत्सुता ॥४५

सुकेशीकेतुवीर्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ।

सुताचसिन्धुवीर्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥४६

केरयस्यचमैरन्धीसिन्धुभर्तुं वंपुष्मती ।

चेदिराजसुतानामद्भ्याप्यतिम्यमुशोभना ॥४७

तासापुत्रास्तस्यचामन्भूतोऽष्टादशद्विज ।

तेवाप्रधानोज्वेष्टश्चनरिष्यत सुतोऽभवत् ॥४८

एवदीर्योमरुतोऽभून्महाराजामहाबल ।

तस्याप्रतिहतचक्रमासोद्वीपेषुसमसु ॥४९

यस्यतुल्योऽपरोगजानभूतानभविष्मति ।

मत्यविक्रमयुक्तस्यराणैरमितीजसः ॥५०

तस्यैतच्चरितश्रुत्वामरुत्तस्यमहात्मनः ।

जन्मचाग्र्यद्विजश्रेष्ठमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥५१

फिर घामिच-श्रेष्ठ परम भाग्यवती पतिव्रता वीरा देवी घोर तपस्या का आधरण करके अपने स्वामी के गानोत्प को प्राप्त हुई ॥४३॥ राजा मरु ने भी छ हो मनुष्यो पर विजय प्राप्त करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पानन और विभिन्न प्रकार के सुख-भोग किये ॥४४॥ विदभर्तुता प्रभावती तथा सुवीर की पुत्री सोवीरी, मगधेश्वर केतु-वीर्य की पुत्री सुदेशा, मद्रराज सिन्धुवीर्य की पुत्री केकयी, सिन्धुनरेश की पुत्री सौधरी, चेदिराज की पुत्री वपुष्मती, के

सुन्दर स्वरूप वाली ललनाएँ उनकी पत्नियाँ थीं ॥४५-४६-४७॥ हे ब्रह्मन् ! इन सब पत्नियों के गर्भ से अठारह पुत्र जन्मे थे जिनमें नरिष्यन्त नामक पुत्र ही सबसे बड़ा था ॥४८॥ महा पराक्रमी राजा मरुत ऐसे वीर्यवान् थे, सप्त-द्वीपों में उनका रथ-चक्र कहीं नहीं रुकता था ॥४९॥ महाबली, विक्रम सम्पन्न एवं अमित तेज वाले इन राजर्षि के समान अन्य कोई राजा उत्पन्न नहीं हुआ और न कोई भविष्य में होगा ॥५०॥ हे द्विजवर ! उन महात्मा मरुत का यह चरित्र सुनने से सभी पापों से मुक्ति और मरणोपरान्त श्रेष्ठ जन्म की प्राप्ति होती है ॥५१॥

११६—नरिष्यन्त चरित्र

मरुतचरितं कृत्स्नं भगवान्कथितं त्वया ।
 तत्संततिमशेषेण श्रोतुमिच्छामि प्रवर्तते ॥१॥
 तत्संततीक्ष्णतीशाये राज्यार्हा वीर्यशालिनः ।
 तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया ख्यातान्महामुने ॥२॥
 नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्या भवत्सुतः ।
 अष्टादशानां पुत्राणां सज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥३॥
 वर्षाणां च सहस्राणि सप्ततिदशपञ्च च ।
 बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुतः क्षत्रियर्षभः ॥४॥
 कृत्वा राज्यं स्वधर्मैर्ण ईष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् ।
 नरिष्यन्तसुतं सज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम् ॥५॥
 एकामचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपोमहत् ।
 आरुरोह दिवं विप्रह्यासा बृहत्या चरोदसी ॥६॥

कौण्डिक बोले—हे भगवन् ! मरुत चरित्र का आपने विस्तार पूर्वक बखाना किया । अब मेरी आकांक्षा उनकी संतानों के विषय में समस्त वृत्तान्त श्रवण करने की है ॥१॥ हे महर्षि संततियों में जो महीपति शासन योग्य एवं

पराक्रमी वीर्यवान् भू उन्वा वृत्तान्त प्रापके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहता हू ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—मरुत के भठारह पुत्र हुए जिनमें नरिष्यन्त सबसे बड़ा और श्रेष्ठ पुत्र हुआ ॥३॥ शशिय श्रेष्ठ मरुत ने सत्तर सहस्र पद्म वष पर्यन्त समस्त भूतल पर राज्य किया ॥४॥ धर्म के अनुसार शासन कर और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ एवं अनुष्ठान करके वह भन्त में अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्त का राज्याभिषेक करके वनवास करने चले गये ॥५॥ हे द्विज ! तदुपरान्त दत्तचित्त स वन में तपस्या करत हुए पृथ्वी से यज्ञ प्राप्त करने राजा मरुत ने स्वर्ग प्राप्त किया ॥६॥

नरिष्यन्त मुत सोस्यचितयामामबुद्धिमान् ।

पितुर्ब्रूत्तसमालोकयतयान्येषाचभूभृताम् ॥७

अत्रवधेमहात्मानाराजानाममपूर्वजा ।

यज्जिनोधर्मन पृथ्वीपानयामागुम्जिता ॥८

दातारश्चापित्रित्तानासशामप्यनिवर्तिन ।

तेपावश्चरितशक्तस्त्वनुयानु महात्मनाम् ॥९

किन्तुतैयदृष्टवर्मधर्म्यमाह्वनादिभि ।

तदहनतुंमिच्छामितच्चनास्तिक गोमिकिम् ॥१०

धर्मात्पालयन पृथ्वीवोगुणोन्नमहीपते ।

असम्यक्पाननात्पापीनरन्द्रोनरवत्रजेत् ॥११

मतिचित्तेमहायज्ञा रत्तव्याणवभूभृता ।

दानव्यचाप्रकिचिन्नसीदतामोश्वगीगति ॥१२

प्राभिजात्यनवान्ज्जाकोपश्चारिजनाश्रय ।

वाग्यनिम्प्रधर्मश्चमग्रामादपत्तायनम् ॥१३

एतत्नवेयथामस्यङ्मत्पूर्णे पुन्ये वृत्तम् ।

पित्राचमेममन्ते नतयातत्के नशकयते ॥१४

परम विद्वान् पुत्र नरिष्यन्त ने अपने पिता व अन्य दूगरे शपिपनियो के आशय देगकर विचार किया ॥७॥ कि इस कुत्र मे मेरे ममन्त पूर्वज मद्राद् आमा श्रमण यज्ञ व अनुष्ठान करने वाले, महा पराक्रमी, वीर्यवान्, धनदाता

संग्राम में कभी भी मुख न मोड़ने वाले थे एवं सभी ने धर्म के अनुसार भूतल का पोषण किया था, उन महान् आत्माओं के चरित्र का अनुकरण करने की सामर्थ्य किस में होगी ? ॥५-६॥ आह्वानादि से उन्होंने जो धार्मिक कृत्य पूर्ण किये उन्हें करने की भेरी भी आकांक्षा है, परन्तु वह भी तो अशक्त नहीं हैं, इसलिए मैं कैसे कहूँ ॥१०॥ यदि नृप धर्म व न्याय पूर्वक भूतल का पालन न करे तो फिर उसमें नृप के क्या गुण हैं ? उसके गुण में वह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि न्यायिक प्रकार से पृथिवी का पालन न करने वाला राजा पाप का भागी बनकर नरक प्राप्त करता है ॥११॥ धन युक्त होने पर नृप को दान और यज्ञ करने चाहिये, इसमें भी कोई अशुभ बात नहीं है, राजा के लिये तो ईश्वर ही एकमात्र गति है ॥१२॥ अपने धर्म में स्थित रहने से ही राजा अपनी जाति के श्रेष्ठ व श्रेय लज्जा के कारण शत्रु के कोप और संग्राम से पीछे नहीं मुड़ता है ॥१३॥ यह सब कार्य मेरे पूर्व पुरुषों और मेरे पिता मरुत ने जिस प्रकार किये हैं, वैसे कार्य अन्य कौन कर सकता है ? ॥१४॥

तदर्हकिकरिष्यामियत्तुतै.पूर्वजै.कृतम् ।

येयज्विनोवरादंताःसग्रामाच्चानिवर्तिनः ॥१५

महत्संग्रामसंमर्देध्वविसंधादिपीरुषाः ।

क्रमेणाहंयतिष्यामिकस्मैतानभिसंधितुम् ॥१६

अथवातेःस्वयंयज्ञाःकृताःपूर्वजनेश्वरैः ।

अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तुकारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७

इतिसंचित्ययज्ञसचकारैकंनरेश्वरः ।

यादृशंनचकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥१८

द्विजानांजीवनाशालंदत्त्वात्सुमहाधनम् ।

ततःशतगुणैर्तेषांयज्ञार्थमददान्नृपः ॥१९

शावोवस्त्राण्यलंकारंधान्यागारादिकंतथा ।

प्रत्येकमददात्तेषांसर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०

मेरे सभी पूर्व पुरुष श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले, दानशील, दम-गुण युक्त तथा युद्ध से विमुक्त होने वाले न थे ॥१५॥ तथा युद्ध उपस्थित होने

पर शत्रुघ्ना को अपना पराक्रम दिनात थे, मैं इन समय ऐसा चीन कार्य करूँ, जिसे उद्धाने नहीं किया ? मैं नर्म द्वारा ही निष्काम काम को करूँगा ॥१६॥ मथया जा यज्ञ गर पूर्व पुरयो न स्वय क्रिय थे, किंगी म-य को नहीं कराये, उही यज्ञा को मैं करूँगा ॥१७॥ मानएडेभजी ने कहा—राजा न एगा विचार करके विपुन धन द्वारा एक एग यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिस पूर्व में कोई भी नहीं कर सका था ॥१८॥ उक्त यज्ञ में राजाने ग्राह्यागा का अत्यधिक धन प्रदान किया और उमम जी गी गुणा धन-दान किया ॥१९॥ पृथिवी पर जितने भी ग्राह्याग थे, उनमें मैं प्रत्येक का उद्धाने गी, यज्ञ धनराज, धर, धाय आदि प्रदान किया था ॥२०॥

ततस्तनयदायज्ञ प्रारब्धोभूभुजापत ।
 प्रारब्धेसमक्षेयष्टु ततानालभतद्विजान् ॥२१॥
 यान्यान्मृणोनिमनृपाविप्रानातिरज्यवमणि ।
 ततनमूचुयज्ञायवयमस्यवदीक्षिता ॥२२॥
 अल्पवरयवद्वित्त त्वयास्माकमिमजितम् ।
 तस्यानानान्नियत्तपुदद्य म्प्रनृपतयथम् ॥२३॥
 नचापस्तित्तिजाप्रिग्राम्नदाशोपक्षनीश्वर ।
 गतिवैशानदादाननदानुमुपपत्तम ॥२४॥
 तथापिजगृह्णौयधनमभूगमदिग ।
 द्विजायदानु भूयाज्जानिप्रिग्याइदमत्रवीत् ॥२५॥
 अहानिशाभनपृच्छपायद्विप्रानाधन वत्रचित् ।
 कदाभनचयत्वापोत्रिफनायमयजित्त ॥२६॥
 नातिरज्यमुस्ततश्चिप्रजमानोमिनाजन ।
 द्विजानानननादानददामप्रतीच्छत ॥२७॥

जब राजा न पुन यानुष्ठान किया तब उक्त कार्य को ग्राह्याग यज्ञ के लिए उपयुक्त नहीं हुआ ॥२१॥ उक्त यज्ञ-कर्म को भी श्रुतिविरुद्ध स्वयं मन्त्रों द्वारा ही उद्धाने की उमी उमी ग कहा कि मैं यज्ञ के लिए धन-दान करण किया जा रहा हूँ ॥२२॥ आप किंगी म-य का वरण कर लें हूँ राजन् । आप

आपने यज्ञ में हमें जितना धन दिया, वह अनेकानेक यज्ञों में भी समाप्त नहीं हो सका ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सम्पूर्ण पृथिवी के राजा-होकर भी जब उन्हें ऋत्विक् बनने के लिये कोई ब्राह्मण न मिला, तब वह बहिर्बंदी में दान करने को उद्यत हुए ॥२४॥ फिर भी धन से युक्त घर का दान ब्राह्मणों ने ग्रहण नहीं किया, जब राजा दान करने में सफल नहीं हुए और उनका श्रम व्यर्थ गया तब वे अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगे ॥२५॥ पृथिवी में कहीं कोई भी इस समय धनहीन ब्राह्मण नहीं है यह अत्यन्त संतोष की बात है, परन्तु यज्ञानुष्ठान के बिना मेरा मेरे पास राजकोप का होना सार्थक नहीं है, यही कष्ट का कारण है ॥२६॥ सभी ब्राह्मण इस समय स्वयं ही यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हैं, इसलिए ऋत्विक् होने में कोई ब्राह्मण सहमत नहीं है, इस समय वह स्वयं ही दान कर रहे हैं, इसलिये मेरा दान स्वीकार नहीं करते ॥२७॥

ततःकांश्चिद्विजान्भक्त्याप्रणिपत्यपुनःपुनः ।

स्वयज्ञेऋत्विजश्चक्रेतेप्रचक्रुर्महामखम् ॥२८

अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदातस्यमहीपतेः ।

सयज्ञोभूतदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥२९

द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्रकश्चन ।

यजमानाद्विजाःकेचित्केचित्तेषांतुयाजकाः ॥३०

नरिष्यंतोनरपतिरियाजसयदातदा ।

तत्प्रदातुर्धनैर्यगिकुर्युःपृथ्व्यामशेषतः ॥३१

प्राच्यांकोटचस्तुयज्ञानामसप्तष्टादशाधिकाः ।

प्रतीच्यांसप्तवैकोट्योदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥३२

उत्तरस्यांचपंचाशदेककालंतदाभवन् ।

मुनेब्राह्मणयज्ञानानरिष्यंतोयदाऽयजत् ॥३३

एवंसराजाधमतिमानरिष्यतोऽभत्पुरा ।

मरुत्ततनयोविप्रविल्यातबलपीरुपः ॥३४

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर बारम्बार परम भक्ति और प्रणाम पूर्वक उन्होंने कोई ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में ऋत्विक् होने को सहमत कर लिया और

तब उन ब्राह्मणों ने उस महायज्ञ का सम्पादन किया ॥२८॥ यह धर्म्यन्त विस्मय की बात थी कि राजा द्वारा सम्पादित उस महायज्ञ में सभी ब्राह्मण स्वयं ही यज्ञमान हुए ॥२९॥ उस यज्ञ में कोई सभासद नहीं हुआ था, ब्राह्मणों में से ही कोई स्वयं यज्ञमान और कोई याज्ञक हुआ ॥३०॥ जब राजा नरिष्यन्त ने यज्ञ किया तब उन्हीं के धन से ब्राह्मणगण अनेक यज्ञों के अनुष्ठान से प्रवृत्त हुए थे उस समय अट्टारह करोड़ से भी अधिक यज्ञ किये गये, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ ॥३१-३२॥ तथा उत्तर में पचास करोड़ यज्ञ हुए, ब्राह्मणों के सभी यज्ञ एवं ही घबसर में सम्पन्न हुए ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! पुरा-काल में दिव्यात बनी एवं पराक्रमी भरत पुत्र नरिष्यन्त ऐसे धर्मज्ञ थे ॥३४॥

१२०—दम चरित्र (१)

नरिष्यतस्यतनयोदुष्टारिदमनोदमः ।
 शक्रस्येवबलतस्यदयाशीलमुनेरिव ॥१
 वाभ्रवामिन्द्रसेनायासजज्ञोतस्यभूभृत ।
 नब्रवर्षाणिजठरेस्थित्वामानुमंहायशा ॥२
 यद्ब्राह्मणामासदममातरजठरेभ्यतः ।
 दमसो नश्चभवितायनत्रायनृपात्मज ॥३
 ततस्त्रिबालविज्ञानःगहितस्यपुरोहितः ।
 दमइत्यकरोष्णामनरिष्यतभुतस्यतु ॥४
 गहनोराजपुत्रस्तुघनुर्वेदमज्ञेयत ।
 जगृहेसुरराजस्यसवासादनृपपर्वण ॥५
 क्रुन्दुभेदेत्यवर्यस्यतपोवननिवागिनः ।
 सवासाज्जगृहेतुस्मनमम्प्रणामश्चनत्सवत ॥६
 गतौ मयासाष्टेदाश्चवेदाङ्गान्मपिनानिच ।
 तथाष्टिपेष्णाद्राजर्षेजंगृहेयोगमात्मयान् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा नरिष्यन्त के पुत्र दम हुए, वे इन्द्र के समान बली, मुनि के समान दयावान् और शीलवान् तथा शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे ॥१॥ बभ्रु की पुत्री इन्द्रसेना के जठर से बभ्रु नरिष्यन्त के वीर्य से उत्पन्न हुए, यह नौ वर्ष पर्यन्त माता के गर्भ में ही रहे ॥२॥ इसके गर्भ में स्थित रहने के समय माता को इन्द्रिय निग्रह पूर्वक रहना पड़ा था और यह राजकुमार भी दमशील हुए ॥३॥ यह देखकर तीनों काल के जानने वाले राज-पुरोहितों ने उनका नाम दम रखा, इस राजकुमार ने राजा वृषपर्वा से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की ॥४-५॥ तथा तपोवन में रहने वाले दैत्यवर दुर्दुभि से उन्होंने समस्त अन्न ग्राम के प्रयोगों को संहार सहित प्राप्त किया ॥६॥ शक्ति मुनि से सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग और आष्टिषेण से योग शिक्षा प्राप्त की ॥७॥

तंसुरूपमहात्मानंगृहीतास्त्रमहाबलम् ।
 स्वयंवरकृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥८
 सुतादशार्णाधिपतेर्वलिनश्चाह्वर्मणः ।
 पश्यतांसर्वभूतानांयेतदर्थमुपागताः ॥९
 तस्यांचसानुरागोऽभून्मद्राजस्यवैसुतः ।
 सुमनायामहानादोमहाबलपराक्रमः ॥१०
 तथाविदर्भाधिपतेःपुत्रःसंकन्दनस्यच ।
 वपुष्मात्राजपुत्रश्चमहाधनुर्दारधीः ॥११
 तेतदातंवृतं दृष्ट्वादुष्टारिदमनंदमम् ।
 मन्त्रयामासुरन्योऽन्यंतत्रानङ्गविमोहिताः ॥१२
 एतामस्यबलात्कन्यांगृहीत्वारूपशालिनीम् ।
 गृहंप्रयामस्तस्येयमस्माकंप्रगृहीष्यति ॥१३
 भर्तुंबुद्ध्यावरारोहास्वयंवरविधानतः ।
 तस्येच्छयानोभवित्रीभाय्यधिर्मोपपादिता ॥१४
 अथनेच्छतिसाकञ्चिदस्माकमदिरेक्षणा ।
 ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंवातयिष्यति ॥१५

दशाहोपपति चान्द्रमा की मन्था मुमना ने अपने पिता के द्वारा स्वयं-
 धर विधे जान पर, महाबली महात्मा दम की ही धपना पति बनाया ॥८-६॥
 यद्वराज के पुत्र महाभद्र, विदभे राज व पुत्र वपुष्मान् तथा महाधनु नामक
 राजपुत्र ने उम मुमना की कामना की थी ॥१०-११॥ परन्तु दाम्पुषी का दमन
 करने वाले 'दम' को राजसन्धा ने बरण किया, यह देगकर वह राजकुमार
 परस्पर विचार करने लगे ॥१२॥ हम इस रूपवती राजकुमारी को इससे
 बल पूर्वक छीन कर ले जायेंगे ॥१३॥ इसके पदनात् यह राजकुमारी स्वयंवर
 की विधि स हमम स जिग चाहें स्वेच्छापूर्वक करण करे, तब यह उसी की धर्म
 में उपलब्ध पनी मानी जायगी ॥१४॥ यदि यह हमम स किसी की भी दृष्टि
 नहीं करगी तो जो दम का बर कर देगा, यह उसकी पत्नी होगी ॥१५॥

इतितेतिश्रयदृत्वात्रय पार्थिवनन्दनाः ।

जगृह्मस्तामुचावञ्ज्जीदमपाशर्वानुर्त्तिनीम् ॥१६

तत केचिन्नुपास्तपायतत्पश्चाच्चिन्नुक्शु ।

नुक्शुश्चापरेभूया केचिन्मध्यस्थतागता ॥१७

ततादमस्तान्भूपालानवलोरयसमन्तत ।

अनाकुलमनात्राक्यमिदमाहमहामुने ॥१८

भोभूपाधर्मकृत्येपुयद्वदन्तिस्वयंवरम् ।

दशाहोपतिनाभूपाःतृत्तघर्म्येन्यवरे ।

घर्मोवाज्यवाधर्मोयदभिर्गृह्यतेवनात् ॥१९

यद्यधर्मो न मेनायमन्यभाष्यीभविष्यति ।

घर्मोवानदनप्राणैर्षयन्तरिलघने ॥२०

तनादनाहोपतिश्चारवर्मानराधिप ।

नि शय्यवारपित्वा तस्मै प्राहमहागुने ॥२१

माण्डेयजी ने कहा—उम तीना राजकुमारी न ऐसा विचार करे दम के
 पादों में बैठे हुई उम राजकुमारी का दृष्टि कर लिया ॥१६॥ उम नमम दम
 पत्नीय गत्राया ने उनको निराश छोड़ भर्त्सना की, बहुत में राजा प्रत्यक्ष शोधन
 हुए छोड़ दृष्ट न हटकर रहे ॥१७॥ फिर धर्मो चारों ओर राजाधो की स्थित

देखकर दम ने व्याकुलता पूर्वक कहा ॥१८॥ दम बोले—हे राजाओ ! जिस स्वयंवर को धर्म कार्य समझा जाता है, वह यथार्थ में धर्म है अथवा अधर्म है ! इन्होंने स्वयंवर द्वारा प्राप्त हुई कन्या का जो हरण बलपूर्वक किया है ॥१९॥ तो यदि स्वयंवर धर्म-कार्य नहीं है तो अवश्य ही यह अन्य की पत्नी बने, परन्तु यदि आप इसे धर्म कहते हों, तो शत्रु से तिरस्कृत हुए इस चरीर को प्राण रखने की क्या आवश्यकता है ? फिर दशारथाधिपति चारुवर्मा ने सभाभवन को शब्द रहित कराते हुए कहा ॥२१॥

दमेनयदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः ।
 तद्वदध्वं यथाधर्मो ममास्य च न लुप्यते ॥२२॥
 ततः केचिन्महीपालास्तसू बुद्धं सुधाधिपम् ।
 परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥२३॥
 क्षत्रियाणां परमयनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ।
 दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्यादुहितुस्तव ॥२४॥
 इति धर्माद्दमस्यैषादुहिता तव पाथिव ।
 योऽन्यथा वर्त्तते मोहात्कामात्मासम्प्रवर्त्तते ॥२५॥
 तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम् ।
 पक्षे ये भूभृतो विप्रदशारथाधिपतिवचः ॥२६॥
 मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वक्षत्रजन्मतः ।
 नये प्रशास्तानान्यो हिराक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥२७॥
 बलादिमां यो हरति हत्वा तु परिपन्थिनः ।
 तस्यैषास्याद्राक्षसे न विवाहेनावनीश्वराः ॥२८॥

हे राजाओ ! दम ने धर्म-अधर्म विषयक जो बात कही है, उस पर आप अपनी सम्मति दीजिये, जिससे आप धर्म से च्युत न हों ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अनेक राजा उनसे बोले कि परस्पर की प्रीति से गान्धर्व विवाह-का विधान है ॥२३॥ यह विवाह क्षत्रियों के लिये उत्तम है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र के लिये नहीं, आपकी इस कन्या का विवाह उक्त विधान से दम के साथ ही सम्पन्न होगया है ॥२४॥ इसलिये हे राजन् ! आपकी पुत्री दम की

ही पत्नी हुई, परन्तु वामासक्त मनुष्य ही मोह के बशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इस परचाण्ड विरोध पक्ष के राजासो ने दशाणीधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के बशीभूत हुए यह राजासो कौसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह गायक विवाह तो है ही नहीं, धन्य विवाह भी उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, अस्वजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करने इस कन्या को जो बलपूर्वक लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी ॥२८॥

प्रधानतरण्योऽप्रविवाहद्वितयेमत ।

क्षत्रियाणामतोवर्मोमहानन्दादिभि कृत ॥२९

अथप्रोचु पुनर्भूपायै पूवमुदितानृप ।

परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवचः ॥३०

सत्यशस्तराक्षसोऽपि क्षत्रियाणापरोर्विधि ।

किन्त्वसौजनकस्वाम्येकुमाड्यानुमतोवर ॥३१

हत्वातुपितृमन्त्रघबलेनहियतेहिया ।

सराक्षसोविधि प्रोक्तोनात्रभर्तृ करेस्थिता ॥३२

पश्यतासर्वभूपानामनयायद्वृतोदम ।

गान्धर्वस्येहनिष्प्रत्तोविवाहोराक्षसोऽप्रक ॥३३

विवाहिताया कन्यायायान्यान्वनेवविद्यते ।

कन्यायाश्चविवाहेनसम्प्रत्य पृथिवीश्वरा ॥३४

तद्दमेयेयनादेनादमादादातुमुद्यता ।

यन्नितम्नेयदिनत कुर्वन्तुनतुमाद्युनत् ॥३५

क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की ही प्रमुखा है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही प्राथम्य किया है ॥२९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा— किन राजासों ने पहिले परम्परागत धर्म और जाति धर्म के विषय में कहा था, उन राजासों ने पुन कहा ॥३०॥ यह भी गत्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इन राजकुमारों ने तो अपने पिता की अधीनता

में 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमें कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर वा घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उसे राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालों के सामने ही सुमता ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गांधर्व विवाह ही है, इसमें राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद में ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽसौदमःकोपकषायीकृतलोचनः ।

आरोपयामासधनुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥३६

ममापिभार्याबलिभिःपश्यतोह्यितेयदि ।

तत्कुलेनभुजाभ्यांवाकोगुराःकलीबजन्मनः ॥३७

धिङ्ममास्त्राणिधिवक्ष्यैर्यधिवक्षरान्धिवक्षरासनम् ।

धिव्यर्थमेकुलेजन्ममरुत्स्यमहात्मनः ॥३८

यदिभार्यामिमेमूढाःसमादायबलान्विताः ।

प्रयान्तिजीवतोधिवतांममव्यर्थमनुष्यताम् ॥३९

इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दमुखान्बली ।

अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदमः ॥४०

एपातिशोभनावालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।

किन्तस्यजन्मनाभार्यानिस्स्येयंकुलोद्भवा ॥४१

इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्तथायत्तसंयुगे ।

यथानिर्जित्यमामेतांपत्नींकुरुत्मानिनः ॥४२

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढ़ाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी परती का बलपूर्वक हरण कहते हैं, इसलिए मैं कलीव ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वंश के गौरव और दोनों भुजाओं में कोई गुण ही नहीं है ॥३७॥ मेरे जीवित

रहते हुए यह पानी का हरण कर लेजाय तो मेरे शस्त्रों, वाली श्रीर मनुष्य को
 पितामह है तथा महात्मा मन्त क वश में उत्पन्न होने और मनुष्य बनन को
 भी पितामह है ॥३५-३६॥ मन्त्रों का श्रम करने वाले महावती वम ने ऐसा
 कहकर महानन्दादि क प्रति कहा ॥४०॥ ह सम्मानित राजागण । यह सत्कुल
 में उत्पन्न हुई सुन्दरी बालिका जिनसे पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म ही वृषा
 हुआ है ॥४१॥ यह सोचकर मुझे पगजित करके इस श्रमों पत्नी बना लो,
 बंसा ही प्रथम शशम भूमि म नरो ॥४२॥

इत्याभाष्यतवस्तशशरवपमगु चन ।

छादयन्पृथिवीपालास्तमसोत्रमहीरहान् ॥४३

तपिबीरामहीपाला दारवन्पट्टिमुद्गगन् ।

मुमुचुस्तत्प्रयुक्ताश्चदमश्चिच्छेदनी तथा ॥४४

तेऽपितत्प्रहितान्वाणास्तेपाचासीशरोरुहान् ।

चिच्छेदपृथिवीशानानरिप्यन्तात्मजोमुने ॥४५

वत्तंगानेतदायुद्धेदमस्मक्षितिपात्मजं ।

प्रविशेत्तमहानन्दस्य द्वापाणिर्यतोदम ॥४६

तमायान्तदमोहप्रासद्वापाणिमहामृधे ।

मुमोचशरवर्पाणिवर्पाणीवपुरन्दर ॥४७

तदस्त्राणिततस्तानिशरजालानितत्क्षणात् ।

महानन्दप्रचिच्छेदस्य नान्यानवचयत् ॥४८

ततोरोपात्ममारुह्यतदमग्यनदारयम् ।

महानन्दागहावीर्योदमेनयुयुधेयह ॥४९

ऐसा कहकर दम ने उन राजाओं के आच्छादन पूरेक वाण वृष्टि की
 ॥४३॥ उन राजाओं म भी वाण, शक्ति, शक्ति, मुगदर आदि इन पर चत्राये,
 परन्तु इन्होंने उन सब गन्त्राणा का तीलापूवक ही गष्ट कर दिया ॥४४॥ हे
 मुन ! उत समय सब राजा दम के श्रमों को और दम भी उनके श्रमों को
 काटन लय ॥४५॥ दम और उन राजपुत्रों के मध्य इन प्रकार मंग्राम ही ही
 रहा था, तभी हाथ म गन्त्र घटण त्रिय ह्य महानन्द उनके सामने हुआ ॥४६॥

उसे हाथ में खड्ग लिये आता देखकर, इन्द्र द्वारा जल वृष्टि करने के समान, दम ने बारों की वर्षा शारम्भ की ॥४७॥ महानन्द ने उनके सब अस्त्रों और बारों को अपने खड्ग से काट डाला, उसने यह कार्य इस चतुराई से किया कि अन्य राजागण उसे देख भी न सके ॥४८॥ फिर क्रोध में भरा हुआ वह महानन्द दम के रथ पर चढ़कर उसके साथ लड़ने लगा ॥४९॥

वहृथायुध्यमानस्यमहानन्दस्यलाघवात् ।

दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥५०॥

तलंगनमात्मनोत्कृष्यविभिन्नेनततोहृदा ।

दमप्रतिविचिक्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१॥

पतन्तंचैनमुल्काभंशवत्याचिक्षेपतंदमः ।

शिरोवेतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥५२॥

तस्मिन्हृतेमहानन्देप्राच्युर्येणपराङ्मुखाः ।

बभूवुःपार्थिवास्तथौवपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥५३॥

दमेनयुधेचासौवलगर्वमदान्वितः ।

दाक्षिणात्यमहीपालतनयोररणगोचरः ॥५४॥

युध्यमानस्यतस्योग्रंकरवालंसवैलघु ।

चिच्छेदसारथेश्चैत्रशिरःसंख्येतथाध्वजम् ॥५५॥

खिन्नखड्गो गदांसोऽथजग्राहवहुकण्टकाम् ।

तामप्यस्यसचिच्छेदकरस्थामेवसत्वरः ॥५६॥

बहुत समय तक इस प्रकार युद्ध करते हुए दम ने उसके हृदय में कालाग्नि के समान ज्वलंत बार छोड़ा ॥५०॥ महानन्द ने हृदय में लगे हुए उस बार को स्वयं ही निकाला और दम पर अपने उज्ज्वल खड्ग का चार किया ॥५१॥ दम ने विद्युत् के समान गिरते हुए उस खड्ग को शक्ति द्वारा काट कर तुरन्त ही वेतसपत्र बार के द्वारा उस महानन्द का जीष काट डाला ॥५२॥ महानन्द के समाप्त होते ही कुरिडनाधिपति वपुष्मान् के अतिरिक्त अधिकतर गुराण से विमुख हो गये ॥५३॥ वह राजमुद्र दाक्षिणात्य एवं अपने पराक्रम के प्रति अभिमानपूर्ण वपुष्मान् रस-क्षेत्र में दम से युद्ध करने लगा ॥५४॥ युद्ध

दोष में दम ने तुम्हें वपुष्मान् की तीव्र तलवार एव उसकी मारपी का सिर बरख की चरजा काट डाली ॥५५॥ तलवार के नष्ट होने पर वपुष्मान् ने अनेक काटो का युक्त गदा धारण की ओर उसकी वार करने से पूर्व ही दम ने यह गदा उसकी हाथों में सण्ड सण्ड कर डाली ॥५६॥

यावदभ्यस्तमादत्तं सवपुष्मान्ब्राम्हणयुधम् ।

तावच्छ्रेणतविद्धादमोभूमावपातयत् ॥५७

सपातितस्ततोभूमौविह्वलाङ्गमवेपथु ।

विनिवृत्तमतिगुह्याद्वभूवक्षितिपात्मज ॥५८

तमालोवयतयाभूतमयुयुद्धमतिमात्मवान् ।

उत्सृज्यादायसुमनासुमना प्रययौदम ॥५९

ततोदशार्णाधिपति प्रीतिमानकरोत्तयो ।

दमस्यसुमनायाश्चविवाहविधिपूर्वकम् ॥६०

कृतदारोदमस्तदशार्णाधिपतेःपुरे ।

स्थित्वाऽल्पकालप्रमथोसभार्योनिजमन्दिरम् ॥६१

दशार्णाधिपनिश्चासीदत्त्वानागास्तुरङ्गमान् ।

रथगोऽश्वत्ररोष्ट्राश्चदामीदामाम्स्तयावहून् ॥६२

वस्त्रालङ्कारचापादिवरापस्करमामनम् ।

अग्न्येस्तंश्चनथाभाण्डं परिपूर्णंव्यमजंयत् ॥६३

इसके पक्ष में वपुष्मान् द्वारा सर्वोत्तम अस्त्र ग्रहण करने पर भी दम ने उस अस्त्र की वार वर्षा द्वारा टुटते कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥५७॥ तब राजपुत्र वपुष्मान् ने व्याकुल व कम्पित शरीर का पृथ्वी पर गिरा दिया व युद्ध की तत्परता त्याग दी ॥५८॥ दम ने उसकी ऐसी स्थिति एव उसकी युद्ध के लिए तत्परता न दग दम छोड़ दिया एव धामन्दपूर्ण हृदय में सुमना को लेकर चले गये ॥५९॥ इसके पक्षान् दशार्णाधिपति ने भ्रानन्वित चित्त होकर सुमना व दम का विवाह विधिपूर्वक संपन्न किया ॥६०॥ भार्या प्राप्त करके दम कुछ समय तर दशार्णाधिपति के महल में रहे, तदनन्तर परती के साथ अपने गृह का पक्ष ले गये ॥६१॥ उनकी विदा करन समय दशार्णाधिपति ने उन्हें अनेकों हाथों,

घोड़े, रथ, गौ, क्षर, ऊँट, दास, दासी ॥६२॥ वस्त्र, आभूषण, धनुष आदि विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट स्वरूप एवं दानस्वरूप धन, रत्न आदि प्रदान किये ॥६३॥

१२१—दम चरित्र (२)

सतांलब्ध्वा तथापत्नीं सुमनां सुमहामुने ।
 प्रणम्य सपितुः पादौ मातुश्च क्षितिपात्मजः ॥१॥
 सा च तौ श्वशुरो सुभ्रू ननाम सुमना तदा ।
 ताम्यां तौ च तदा विप्रग्र. शोभिरभिनन्दितौ ॥२॥
 महोत्सवश्च संजज्ञं नरिष्यन्तस्य वेपुरे ।
 कृतदारे च सप्राप्तं दशारणाधिपतेपुरात् ॥३॥
 सम्बन्धिनं दशारणं शजितांश्च पृथिवीश्वरान् ।
 श्रुत्वा पुत्रेण मुमुदे नरिष्यंतो महीपतिः ॥४॥
 सोऽपि रे मे सुमनया महाराजसुतो दमः ।
 वरोद्धानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥५॥
 अथ कालेन महतारममाणादमेनसा ।
 अदापगर्भसुमना दशारणाधिपतेः सुता ॥६॥
 सोऽपि राजानरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः ।
 वयःपरिराति प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥७॥
 वनं जगामेंद्रसेनापत्नी चास्य तपस्विनी ।
 दानप्रस्थविधानेन सतत्रसमतिष्ठत ॥८॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे महर्षि ! दम ने अपनी भार्या सुमना महित आकर अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया ॥१॥ एवं इसी प्रकार सुमना ने भी उन्हें प्रणाम किया । हे द्विज ! उन दोनों माता पिता ने भी आशीर्वाद प्रदान करते हुए उनका अभिनन्दन किया ॥२॥ सुमना के भार्या के

रूप में प्रकृत करके दम दशास्यधिपति के महल में आये, तो नरिष्यन्त के महल में प्रानन्दात्मव प्रारम्भ हो गया ॥३॥ नराधिपति नरिष्यन्त को दशास्यराज के साथ वैशान्वि सम्बन्ध स्थापित होने एवं अपने पुत्र द्वारा अन्य राजाओं को डराने का वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त सन्तप्त हुआ ॥४॥ इसके पश्चात् राजकुमार दम अनुपम उद्यानो, वनो, महला एवं पयत आदि स्थानों पर भार्या सुमना के साथ विहार करने लगे ॥५॥ इस प्रकार विहार करते हुए कुछ समय पश्चात् दशास्य सुना न गर्भ धारण किया ॥६॥ उसी काल नृपन्द्र नरिष्यन्त ने वैभव का उपभोग कर अपनी वृद्धावस्था को देखकर दम को राज्याभिषेक कर दिया ॥७॥ अपनी भार्या रानी इन्द्रमना का साथ लेकर वन में प्रस्थान कर गये एवं यही विधिपूर्वक वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने लगे ॥८॥

दाक्षिणात्य सुदुर्गुत्त नमन्दनमुतावने ।

वपुष्मान्ममृगाम्हन्नुययावत्पपदानुग । ६

सतहृष्टानरिष्यन्तनापममलपाङ्किनम् ।

इन्द्रसेनाचतत्पनीतपमातिमुदुवलात् ॥१०

पप्रच्छवस्त्वभोविप्रःशत्रियावाननचरः ।

वानप्रस्थमनुप्राप्तोवैश्योवाममाथ्यताम् ॥११

ततामोनरनीभूपोनहिकम्प्रात्तरददी ।

इन्द्रसेनाचतत्मवेमाचक्षुःश्रमयथातयम् ॥१२

शात्वानश्चनरिष्यन्तवपुष्मान्पितररिषा ।

प्राप्तोऽमीनिचदःकोपाजगतामुपरिगृह्यत् ॥१३

हाहेनिचन्द्रमेनायाग्दयत्तत्रापगद्गदम् ।

चकाशोपान्तवृक्षवाक् च चेदमुवाचह ॥१४

एव वार दाक्षिणात्य नृप

मरुन्दन का दुराचारी पुत्र वपुष्माद् अपने पुत्र वपुष्माद् का माप उन वन में ले कर लिए आया ॥६॥ वहाँ वानप्रस्थो नरिष्यन्त की मतिन देह व निर्जना इन्द्रसेना को देखकर ॥१०॥ वपुष्मान् उनसे पूछा तुम ही हो ? प्राणायाम, शत्रिय अथवा वैश्य में से किस जाति के हो, यह मुझे बताओ ॥११॥ राजा मीन

व्रत में थे, इसलिए इसका उत्तर नहीं दे सके, परन्तु, इन्द्रसेना ने सब बात यथा-
वत् बता दी ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वपुष्मान् ने उन्हें शत्रु का पिता
नरिष्यन्त जान कर “घा गया” कहते हुए क्रोधपूर्वक खनकी जटा पकड़ ली ॥१३॥
उस समय इन्द्रसेना हाहा कर रोने लगी, तभी दुराचारी ने ध्यान से तलवार
निकाल कर कहा ॥१४॥

निर्जितःसमरेयेनयेनमेसुमनाहृता ।
दमस्यतस्यपितरंहनिष्येऽवतुतन्दमः ॥१५॥
येनाखिलमहीपालपुत्राःकन्यार्थमागताः ।
अवधूताहनिष्येऽहंपितरंतस्यदुर्मतेः ॥१६॥
यौवनास्त्रस्वरूपेषुमदोयस्यदुरात्मनः ।
सदमोवारयत्वेषहन्मितस्यरिपोगुंरुम् ॥१७॥
इत्युक्त्वासदुराचारोवपुष्मानवनीपतिः ।
क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायांशिरश्चिच्छेदतस्यच ॥१८॥
ततोधिगिषिङ्मुनिजनाग्रन्येचवनवासिनः ।
तमूचुःसचतंहत्वाजगामस्वपुरंवनात् ॥१९॥
गतेतस्मिन्विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ।
प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम् ॥२०॥

जिसने मुझे युद्ध में हरा दिया था और जो मेरी सुमना का हरण कर
ले गया है उस दम के पिता का मैं वध करता हूँ, वह दम यहाँ आकर इसकी
रक्षा करे ॥१५॥ कन्या की कामना से सब राजकुमारों को जिसने अपमानित
किया, उस दम के पिता को आज मैं मार रहा हूँ ॥१६॥ जो योद्धाओं के
दमनकारी स्वभाव वाला है, मैं आज उस दुरात्मा शत्रु के पिता को बिनष्ट
करता हूँ, दम आकर इसको बचावे ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इतना कह
कर दुरात्मा राजा वपुष्मान् ने रुदन करती हुई इन्द्रसेना के समक्ष नरिष्यन्त
का मस्तक छिन्न कर दिया ॥१८॥ यह देखकर मुनिगण और अन्य सब वन-
वासी उसे धिक्कार देने लगे और वह भी नरिष्यन्त को इस दशा में छोड़कर

अपने नगर को चला गया ॥१६॥ जब यपुष्मान् चला गया, तब इन्द्रसेना ने दीर्घ विश्वाम लेकर एक बूढ़ तपस्वी को अपने पुत्र के पास भेजा ॥२०॥

गच्छेथाग्रागुमेपुत्रदमन्नू हिवचोमम ।

अभिजोह्यसिमद्भृत् वृत्तान्तप्रोच्यतेऽप्रविम् ॥२१

तथापिवाच्य पुत्रोमेयद्भवीम्यतिदु खिता ।

लघनामीदृशीप्राप्ताविलोक्यतामहोपते ॥२२

मद्भृत्त्रिघिष्टतोराजाचतुर्णापरिपालकः ।

त्वमाथमाणाकियुक्त तापसान्यन्नरक्षसि ॥२३

भर्तानिमनरिष्यन्तस्तापसस्तपसिस्थित ।

विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासिनथात्वमि ॥२४

आकृष्यकेशेषुवलादपराधविनातत ।

हनोवपुष्मतारुष्यातिमितितेभूपतिर्गता ॥२५

एवम्यितेतत्क्रियतायथाधर्मो नलुप्यते ।

तथाचनैवयत्कथ्यमाताहतापमी५त ॥२६

पितावृद्धस्तपस्वीचनापराधनेदूषित ।

निहतोपेनयत्तस्यवर्तंभ्यतद्विचिन्त्यताम् ॥२७

मन्तितेमन्त्रिणोवीरा सर्वशास्त्रार्थवेदिन ।

तं सहालोच्ययन्कापंभेवभूतेकुरत्प्रतत् ॥२८

इन्द्रसेना ने उसमें कहा कि तुम शीघ्र ही हमारे पुत्र दम के पास जाकर

इधर का समाचार कहो, तुम सब वृत्तान्त को भले प्रकार जानते हो, इसलिए

तुम्हें यताने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥२१॥ फिर भी राजा का ऐसा अप-

मान उपस्थित देखकर घोर अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कह रही हूँ, वह सब

मेरे पुत्र ने कहना ॥२२॥ तुम राजा हो, नारो आश्रम के पालन कर्ता एव

स्वामी नियुक्त हुए हो, फिर भी तुम तपस्वियों की रक्षा करते, क्या यह उचित

है ? ॥२३॥ मेरे पति नरिष्यन्त यहाँ तप करते थे, परन्तु, तुम रक्षा करने वाले

के होने हुए भी मेरे द्वारा विनाश करते करते यपुष्मान् ने उनका निरपराध

ही बध कर दिया है । तुमने राजा होकर पण्डित उपलब्ध की हैं ॥२४॥२५॥

इस दशा में जिससे धर्म लुप्त न हो वैसे ही कार्य करो, इससे अधिक कहना उचित नहीं समझती ॥२६॥ तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और सर्वथा निरपराधी थे, ऐसी अवस्था में उनकी हत्या की गई है। इस विषय में अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति निश्चय करो ॥२७॥ तुम्हारे वीर मन्त्री शास्त्र ज्ञाता हैं उनसे परामर्शपूर्वक जो कर्त्तव्य हो वही करना चाहिए ॥२८॥

नास्माकमधित्रकारोऽस्तापसानांनराधिप ।

कुरुध्वैतद्वितीत्येवंभूपतिभाषितम् ॥२९॥

विदूरथस्यजनकोयवनेनयथाहृतः ।

तथायंतवपुत्रस्यकुलंतेनविनाशितम् ॥३०॥

जम्भस्यासुरराज्यस्यपितादष्टोभुजङ्गमैः ।

तेनाप्यखिलपातालवासिनःपन्नगाहताः ॥३१॥

पराशरेणपितरंशक्तितंरक्षसात्सहृतम् ।

श्रुत्वाऽग्नौपातितंकृत्स्नंरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२॥

अन्यस्यापिस्ववंशस्यलंघनाकियतेहिया ।

तांनलक्षत्रियःसोढुंकिपुनःपितृमारणम् ॥३३॥

नायंपितातेनिहतोनास्मिच्छस्त्रंनिपातितम् ।

त्वामत्रनिहतंमन्येत्वयिश्स्त्रंनिपातितम् ॥३४॥

हे राजन् ! तुम्हारे पिता ने मरते समय कहा है कि मैं तपस्वी हूँ, इस विषय में अनधिकारी हूँ, इसलिए तुम्हें ही इसका प्रतिकार करना है ॥२९॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने बध किया था, वैसे ही वपुष्मानन्द ने तुम्हारे पिता का बध करके कुल को नष्ट किया है ॥३०॥ जब दैत्यराज जंभ के पिता को सर्पों ने काट लिया था, तब जंभ ने पातालवासी सभी नागों को विहृत किया था ॥३१॥ और उस असुर के द्वारा पिता शक्ति की मृत्यु हुई सुनकर पराशर जी ने सम्पूर्ण असुर-वंश को अग्नि में दग्ध कर दिया था ॥३२॥ जब क्षत्रियगण अपने कुल के किसी भी व्यक्ति का अपमान सहन नहीं कर पाते तो पिता के बध की बात का तो कहना ही क्या है ॥३३॥

में सपत्नी है कि तुम्हारे पिता का बध नहीं हुआ है उन पर सख्त नहीं बनगया गया मरिचु इस प्रकार तुम्हारा ही बध हुआ है ॥३५॥

विभेत्यम्यहिन अस्त्रन्यन्तयेनवनौकसाम् ।
 तत्रभूपस्यपुत्रस्यमाविभेतुविभेतुवा ॥३५॥
 तवेयताघनायुक्तायदस्मिस्तत्समाचर ।
 चपुमतिमहाराजसभृत्यजातिवाघवे ॥३६॥
 इतिसक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेनाविसृज्यतम् ।
 पतिदेहमुपाश्लिष्यविवेशाग्निमनस्विनी ॥३७॥

वन वामिणी के ऊपर जो हथियार नहीं उठाता है उसका भय कौन करेगा ? अथवा उसका पीछा ही क्या होगा ? तुम उनके पुत्र तथा पृथ्वी के पात्रक हो, यदि शत्रु को नष्ट करोगे तो तुम्हारा भय सभी मानेंगे अन्यथा तुम्हारे सामन में भी विघ्न उपस्थित हो जायगा ॥३५॥ हे राजन् ! ये तिरस्कार हुआ है, इसलिए भृत्या व वपुष्मान् के प्रति तुम्हें जो करना चाहिये, वही करो ॥३६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना ने उस तापम से यह संदेश पहुँच कर उस विदा किया और पति के शरीर का आलिंगन करके अग्नि में प्रवेश किया ॥३७॥

१६२—दम चारित्र (३)

इन्द्रगेनासमाहृतःमगतवाशूद्रतापम ।
 ममानष्टमयापूर्वेदमायनिघनपितु ॥१॥
 तापमेनममान्यातेदमस्तेनपितृबंधे ।
 क्रोधेनातीवज्ज्वालहृविषेथाग्निन्द्रन ॥२॥
 गतुक्रोधाग्निनाधीरोदक्षमानोमहामुने ।
 परकरेणनिर्घिष्टप्यवाक्यमेतदुवाचह ॥३॥

अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे नु जीवति ।
घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलमम ॥४
तापं करोम्यहं किवाप्येष क्लेश्यां त्क्षमाम्यहम् ।
दुर्वृत्तशांतौ शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ॥५
पितरं चापि निहतं दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः ।
तत्किमेतेन बहुना हाता तेति च किंपुनः ॥६
विलापेनात्र यत्कृत्यंत देवोऽत्र करोम्यहम् ।
यद्यहंतस्य रक्ते न देहोत्थेन वपुष्मतः ।
न करोमि गुरोस्तृप्ति तत्प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥७
तच्छोणितेनोदककर्म तस्यामांसेन सम्यग्द्विजभोजनं च ।
कुर्यात्पितुस्तस्य च पिंडदानं चेत्प्रवेक्ष्यामि हुताशनं तत ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना की आज्ञा से शूद्र तापम ने दम के निकट जाकर उनके पिता की मृत्यु का समाचार और रानी इन्द्रसेना ने जो कहा था, वह सब कह सुनाया ॥१॥ पिता की मृत्यु का पूर्ण सम्वाद सुन कर घृताहुति से तीक्ष्ण हुई अग्नि के समान राजा दम क्रोध से लाल हो गये ॥२॥ यद्यपि वह स्वभाव से धीर थे, परन्तु उस समय क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर हाथ मलते हुए बोले ॥३॥ मुझ पुत्र के जीवित रहने हुए उस नृशंस ने मेरे कुन के अपमान पूर्वक पिता की अनाथ के समान हत्या की है ॥४॥ मैं क्रोध कहे या क्लीवता से क्षमा कर दूँ, परन्तु, मैं दुष्टों का दमन करने और शिष्ट-जनों का पालन करने के लिये नियुक्त हुआ हूँ ॥५॥ पिता का वध करने पर भी मेरे शत्रु अभी तक जीवित हैं, परन्तु इस प्रकार अधिक वार्ता से क्या लाभ है ॥६॥ अब मुझे जो कर्त्तव्य है। वही करता हूँ। यदि वपुष्मान् के देह से निकले हुए रविर से आने पिता का तर्पण न कहे तो पत्थन में ब्रजेन कर जाऊँगा ॥७॥ यदि उसे मारकर उसके रक्त से मृत-पिता का तर्पण न कहे और पितरों को पिंड-दान न कहे तो मैं अग्नि में प्रविष्ट होऊँगा ॥८॥

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।

कुर्वन्ति चेत्तानपि चास्त्रपूरैर्भस्मीकरोम्येषरपासमेतः ॥९

नीदूरमाधार्मिकमप्रशस्तदाक्षिणात्यसमरेनिहत्य ।
 भोक्ष्येत्तामृष्टृचकृत्स्नावह्निप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतवा ॥१०॥
 मुदुर्मतितापसवृद्धघातिनवनम्यगसाधुविधिबिदग्धगम् ।
 ह्नाहमद्याखिलनवधुमिन्नपदातिहस्त्यश्ववर्ल समेतम् ॥११॥
 एपोऽहमादायघनुसगङ्गोरयीतथेवारिखलसमेत्य ।
 कर्णेमिवैयत्कदनममस्ता पश्यन्तुमेदेवगणा समेता ॥१२॥
 याय महायोभविताद्यतस्यमयासमेतस्परणायभूय ।
 तस्वैरनि शैपकुलक्षयायसमुद्यतोऽहनिजवाहुसैन्यः ॥१३॥
 यदिकुनशिखरोऽस्मिन्सयुगेदेवराजः,
 पितृपतिरथचोग्रदण्डमुद्यम्यकोपात् ।
 धनपतिवरणाकीरक्षितुन्त यतन्ते,
 निशितशरवरीवैर्घानिधिष्येतयापि ॥१४॥
 निघतमनिन्दोपकाननाम्ण्डलोका,
 निपतितफनभक्षमर्वभूतेषुमेत्र ।
 प्रभवतिमयिपुत्रेहिंसिततोयेनत त,
 पिशिनरुधिर्तृप्तास्नम्यमन्त्वद्यगृध्रा ॥१५॥

अगु देव दक्ष, गन्धर्व, विशाखर भयवा शिष्ट गण जो भी उमकी
 सहायता करेगा, उसे भी मैं अपने सम्राज्य में भक्षण कर डालूँगा ॥१॥ उम
 प्रसीवं अधार्मिक, निर्दित, दाक्षिणात्य को वृद्ध मे मरकर ही मरपूरां पृथ्वी
 को भोषूँगा अथवा उमके वध मे अममर्ष होने पर अग्नि मे प्रविष्ट हो जाऊँगा
 ॥१०॥ त्रिव द्रुमनि मे मेरे तपोविरत वनवासी मौनव्रती वृद्ध पिता के शान्त
 वचनों के उपरान्त भी उनकी हत्या की है, उसे मैं अभी उमके मर व-धुओं
 मित्रों तथा वंशज घोर गवार के सहित मार डालूँगा ॥११॥ मैं अब अग्नि
 घोर धनुष को ग्रहण करता हुआ ख्याल्ट हॉजर शत्रु-सेना के मध्य उपस्थित
 हो कर उमके महान्-कार्य में लगता हूँ । मेरा यह वृत्त्य सब देवगण देवों ॥१२॥
 वृद्ध मे मेरे साथ भिन्न पर उमका जो जो भी सहायक होगा उम उमको अपनी
 बाहु घोर सेना द्वारा कुछ सहित नाश करने के लिये मैं आज तत्पर हूँ ॥

॥१३॥ इस संग्राम में वज्रधारी इन्द्र, उग्र दंड देने वाले यम, अथवा कुबेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा का प्रयत्न करेंगे तो मैं अपने श्रेष्ठ वार्यों से उनको भी नष्ट कर डालूँगा ॥१४॥ मुझ प्रभावशाली पुत्र के रहते हुए भी जिसने मेरे संयमचेता दोष रहित बनवासी केवल गिरे हुए फल से जीवन-निर्वाह करने वाले एवं सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखने वाले पिता की हत्या की है। आज उसके रक्त और मांस से गृह्य-गण वृत्ति को प्राप्त होंगे ॥१५॥

१२३—वपुष्मान् वध

इतीप्रतिज्ञायतदानरिष्यंतसुतोदमः ।
 कोपामर्षविवृत्ताक्षःश्मश्रु मावृत्यपाणिना ॥१॥
 हाहतोऽस्मीतिपितरंध्यात्वादैवंविनिद्यच्च ।
 प्रोवाचमंत्रिणःसर्वानानिनायपुरोहितम् ॥२॥
 यदत्रकृत्यंतदब्रू ततातिप्राप्तसुरालयम् ।
 श्रुतंभवद्वियंतप्रोक्ततेनशूद्रतपस्विना ॥३॥
 वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः ।
 मौनव्रतधरोऽशस्त्रोमन्मात्राचेन्द्रसेनया ॥४॥
 प्रोक्तंसृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यंवपुष्मते ।
 तेनापिखड्गमाकृष्यजटांसव्येनपाणिना ॥५॥
 घृत्वाजघानदुष्टात्मालोकनाथमनाथवत् ।
 माताचसदिश्यमांधिकच्छब्दंब्रुवतीसती ॥६॥
 गंदभाग्यंचनिःश्रीकप्रविष्टाहृद्व्यवाहनम् ।
 तमालिग्यनरिष्यंतंप्रयातात्रिदशालयम् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार प्रण करके क्रोध में भरे हुए दम ने घूर्णित नेत्रों से मूर्खों पर हाथ फेर कर उन्हें ऊँची किया ॥१॥ और अपने पिता का चिन्तन तथा देव की निन्दा करने लगे, फिर पुरोहितों को बुलाया

घोर अमात्यो के समझ उनसे बोले ॥२॥ दम ने कहा—पिता जो स्वर्गवासी होगये, शूद्र तापम के द्वारा यह बात प्राप सब को ज्ञात ही चुकी है, अब क्या बर्त्सव्य, वह मुझे बताइये ॥३॥ सब पर शासन करने वाले वह महाराज गृद्धावस्था में शानप्रस्थो होकर गीत श्रत वा धवलम्बन कर रहे थे, वपुष्मान् दाग परिचय पूछते पर मेरी माना इन्द्रमना ने ॥४॥ उसे अपना मभूर्ण परिचय यथार्थ हर से दिया, तभी उस दुष्ट ने तत्वार निकाल कर अपने वामहस्त से ॥५॥ मेरे पिता का अनाय के समान पकड़ लिया घोर उनकी हत्या कर दी, तब मेरी सती माता ने मुझ मदभाग्य घोर नि श्रेष्ठ को विकारा घोर मेरे पिता का शान्निगत करके अग्नि में प्रविष्ट होगई ॥६-७॥

सोऽहमद्यकरिष्यामिबन्धमातुर्द्वीरितम् ।
 हन्त्यश्वरथपादातसेवचपरिकल्प्यताम् ॥८
 अनिर्याप्यपितुर्वैरमहन्वापितृघातकम् ।
 अष्टन्वाचवचोमातुर्जीवितु किमिहोत्तमहे ॥९
 ममिणुस्तद्वच श्रुत्वाहाहेत्युपत्वानथाचतन् ।
 श्रुतवन्तोविमनसं सभृत्यञ्जलवाहना ॥१०
 निर्यंयु मपरीवारा पुरस्कृत्यदमनृपम् ।
 गृहीत्वाचाशिपोविप्रास्त्रिकालज्ञात्पुरोधम- ॥११
 अहिराडिवनि श्वम्यदम प्रायाद्वपुष्मतम् ।
 गीमापालादिसामताग्निघ्नन्याम्यादिशत्वर ॥१२
 निरीश्यत समायातवपुष्मान्मपंपूरितः ।
 तत्र दनमुतेनापिदमाज्ञातोवपुष्मता ।
 प्रायात सपरीवार गामात्य मपरिच्छद- ॥१३
 शक पितेनमनसागसंन्यानिदिदेशह ।
 दूतचप्रेपयामासनिगंम्यनगराद्वहि ॥१४

माना ने जो घाता मुझे भेजी है धम मुझे तदनुसार वाचं करना है, रथ, घट्ट, पदक प्रादि से युक्त यह चतुरगिणी सेना मुण्डित की जाय ॥८॥

पितृ-द्वेषी और पितृ घातक को मारे बिना और माता की आज्ञा का पालन किये बिना जीवित रहने पर मुझमें उत्साह नहीं रह सकता ॥६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—उनके वचन सुन कर मन्त्रिगण ने शोक व्यक्त कर राजाज्ञा का पालन किया और वे भृत्य, सेना, बाहनादि के सहित ॥१०॥ सपरिवार चल पड़े और त्रिकालज पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर दम भी ॥११॥ नागराज के समान श्वासोच्छ्वास छोड़ते हुए नीमापालक सामन्तों को मारते हुए दक्षिण दिशा में गये ॥१२॥ सपरिवार और मन्त्रिगण के साथ वीर वेश में दम का आगमन सुन कर संक्रन्दन-पुत्र वपुष्मान् ने भी क्रोध पूर्वक ॥१३॥ हृक्चित्त से अपनी सेना को युद्ध करने का आदेश दिया और नगर से बाहर निकल कर दूत के द्वारा यह सन्देश भेजा ॥१४॥

त्वंशीघ्रतरमागच्छन्परिष्यंतःप्रतीक्षते ।

सभार्यक्षत्रबंधोत्वंसमायाहिममांतिकम् ॥१५

इमेमद्वाहुनिमुक्ताःशिताबाणाः पिपासिताः ।

भित्वाशरीरसंग्रामेपास्यतिरुधिरंतव ॥१६

श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वदूतप्रोक्तंययौत्वरन् ।

स्मृत्वाप्रतिज्ञापूवोक्तांनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥१७

आहूतसमरेचैवपुमान्मेनाविकत्थनः ।

ततोयुद्धमतीवासीद्मस्यचवपुष्मतः ॥१८

रथोचरथिनानागीनागिनाहयिनाहयो ।

अयुध्वनचविप्रर्षेतद्दुष्टं तुमुलह्यभूत् ॥१९

पश्यतांसर्वदेवानांसिद्धगंधर्वरक्षसाम् ।

चकपेवसुधाब्रह्मन्युध्यमानेदमेयुधि ॥२०

नगजोनरथीनाश्चस्तस्यबाणसहस्तुयः ।

ततोदमेनयुयुधेसेनाध्यःक्षावमुष्मतः ॥२१

अरे क्षत्रियाधम ! तू शीघ्र ही सामने आ, अरिष्यन्त भी पत्नी के महित तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये तुरन्त ही मेरे पास आ ॥१५॥ यह रक्त-पिपासु बाण शिता पर पँनाये गये हैं और अब मेरी भुजाओं द्वारा चलाये

जाकर तेरे देह को विदीर्ण कर रक्तपान करेंगे ॥१६॥ दूत की बात सुन कर
 और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण कर सर्व के समान आस स्थापन करके हुए द्रुतपति
 से दम वही पहुँचे ॥१७॥ तथा युद्ध के लिये लज्जित होते हुए कहा—प्रकृत पुरुष
 आत्मस्त्वापा नमो नहीं करते, इसके पदचातु बपुष्मान् के साथ दम का अत्यन्त
 घोर मराम हुआ ॥१८॥ रथी से रथी, हामी सवार से हाथी सवार और
 धश्वारोही से अश्वारोही भिड़ गये और घोर युद्ध होने लगा ॥१९॥ हे प्रह्वर्य !
 उस युद्ध को घपने सामने ही सब देवता, मित्र, गंधर्वादि देख रहे थे, जब
 अत्यन्त क्रोध सहित दम युद्ध में प्रवृत्त हुए, तब पृथिवी कम्पायमान हो उठी
 ॥२०॥ उनके धाणो को मभी हाथी, अश्व या रथारोही सहन करते थे, दम
 के साथ बपुष्मान् का मेनावृत्ति भिड़ रहा था ॥२१॥

दृदिविव्याधचदमद्गुणागाद्यमातिकम् ।
 तस्मिन्निपतितेसैन्यपलायनपरह्यभूत् ॥२२॥
 मस्वामिनतत प्राहदमःशत्रु दमस्तथा ।
 कथमासिदुष्टपितरघातपित्वातपस्विनम् ॥२३॥
 अशस्त्र चतपस्यतदाश्रियासिनिवर्तताम् ।
 ततोनिवृत्यसदमगंधयामामसानुज ॥२४॥
 सपुत्र सहस्रवधिर्वाधर्षुषुधेरथी ।
 तत शरासनांमुक्तवाणैर्ध्यासास्ततादिश ॥२५॥
 दमचमरगचाद्रुधरजालंरपूरयत् ।
 तत पितृवधोत्थेनवाधेनसदमस्तथा ॥२६॥
 चिच्छेदताञ्छरास्तेपाविव्याधान्यंश्रतानपि ।
 गृकेनैवेनवाणेनसप्तपुत्रास्त्वथाद्विज ॥२७॥
 सत्रधिवाधवान्मिथ्रास्त्रिनाययमसादनम् ।
 वपुष्मान्सरथोक्रोधाग्निहृतात्मजवाधव ॥२८॥
 मुपुधेचमनानेजीशंरानोरिपोवर्मः ।
 चिच्छेदतम्यनावाणान्मद्भ्रमहामुने ॥२९॥

उसके हृदय को दम ने बीध दिया, उसके गिरते वपुष्मान् के सहित समस्त सेना भाग ने लगी ॥२२॥ तब शत्रुनाशक दम बोले—अरे दुष्ट मेरे पिता की हत्या करके तू किबर जा रहा है ॥२३॥ तूने शस्त्र रहित तपस्वी पिता का बध किया है, भाग मत, यह सुन कर वपुष्मान् अपने अनुज, पुत्र एवं बांधवादि के सहित डट कर रथ पर चढ़ा हुआ युद्ध करने लगा और उसने अपने धनुष के द्वारा बाण वर्षा करके सभी दिशाओं को डंक दिया ॥२४-२५॥ उसने अपने बाणों के जाल से रथ अश्व सहित दम को आवृत्त कर और दम ने भी अपने पिता की हत्या से उत्पन्न हुए क्रोध में उत्तेजित होकर ॥२६॥ उसके सब बाणों को काट कर, शत्रुओं के देह बाणों से बीध कर, एक-एक बाण से उसके सात पुत्र ॥२७॥ अनुज, सम्बन्धी आदि का बध कर दिया, जब वपुष्मान् ने अपने आत्मज तथा बन्धु आदि का मरण देखा, तब वह भी अत्यन्त क्रोध में भर कर ॥२८॥ नागों के समान बाणों के द्वारा दम से युद्ध करने लगा, परन्तु दम ने वे सभी बाण काट दिये ॥२९॥

युयुधातेचसंरब्धोपरस्पररजयैषिणौ ।

परस्परशराघातविच्छिन्नघनुषीत्तरा ॥३०

गृहीतखङ्गाबुतीर्यचिक्रीडातेमहाबली ।

दम क्षणानृपध्यात्वापितरंनिहतंवने ॥३१

केशोष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले ।

शिरोधारायांपादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥३२

पश्यंतुदेवताःसर्वामानुषाःपन्नगाःस्रगाः ।

पाट्यमानंचतृदयंक्षत्रवधोर्वपुष्मतः ॥३३

एवमुक्त्वाचसदमोत्तृदयंचव्यदारयत् ।

पातुकामश्चसुरैःक्षतजेननिवारतः ॥३४

तत्रश्चकारतातस्यारक्तैर्नवोदकक्रियाम् ।

आनृष्यंप्राप्यसपितुःपुनःप्रायात्स्वमन्दिरम् ॥३५

वपुष्मतश्चमांसेनपिडदानंचकारह ।

ब्राह्मणाणाम्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान् ॥३६

एवविधाहिराजानोवभृवु सूर्यवशजा ।
 ग्रन्थोपिमुधिय शूरायज्विनोधर्मकोविदा ॥३७
 वेदातपारगास्ताश्चनसरयानुमिहोत्सहे ।
 एतेपाचरित श्रुत्वानर पार्ष प्रमुच्यते ॥३८

इस प्रकार क्रोध पूर्वक एक दूसरे को मारने की दृष्टि से घोर संघाम करने लग, दानो ही महाबली थे दोनों के ही धनुष टूट गये थे, तब दोनों ही तलवार स मुड़ करने लग, वन म मारे गये पिता की धण भर याद करके दम ने वपुष्मान् के ॥३०-३१॥ केस खीच कर पृथिवी में डाल दिया और उसकी घोषा का पाँव स दाव कर भुजा उठा कर दम ने इस प्रकार कहा ॥३२॥ मैं इस क्षत्रियाघम वपुष्मान् के हृदय को विदाग्य करता हूँ, इमे सभी देवता, मनुष्य, सिद्ध और नागगण देखें ॥३३॥ ऐसा कह कर दम ने तलवार से उन का हृदय चीर डाला और उसका रक्त पीने को उद्यत हुए, तब देवताओं ने उन्हें राता ॥३४॥ उसके रक्त स दम ने घणन पिता की उदक दान और माय से विर-वाल किया इस प्रकार विरु श्रेण म मुक्त हुए दम अपनी राजधानी म सौट प्राय ॥३५ ३६॥ सूर्यवश म ऐस पराक्रमी राजा हुए तथा अन्य घनक राजा घनवाद् घर्मात्मा, शानी एव वीर हुए हैं ॥३७॥ ऐसे-ऐसे वेदान्त पारणत हुए, जिनका वणन नहीं हो सका और न उनकी गणना की जा सकी है, इनक चरित्र को सुनने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥३८

११३—पुगाण श्रवण पठन फल

एवमुपत्यार्जमिनेयमाकण्डेयामहामुनिः ।
 विमृज्यत्रोत्तुकिमुनिचक्रे माध्याह्निकीक्रियाम् ॥१
 प्रस्माभिश्चश्रुतनस्माद्यत्तप्रोक्तमहामुने ।
 घनादिसिद्धमेतद्विपुराप्रोक्तं स्वयमुवा ॥२

मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदात्तहृतम् ।
 पुण्यंपवित्रमायुष्यंघर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥३॥
 पठतांश्रृण्वतांसद्यःसर्वपापप्रमोचनम् ।
 आदावेवकृतायेचप्रक्ष्नाश्रत्वारएवहि ॥४॥
 पितुःपुत्रस्यसंवादस्तथासृष्टिःस्वयंभुवः ।
 तथामनुनांस्थितयो राज्ञांचचरितंमुने ॥५॥
 अस्मिभिरेतत्प्रोक्तं किमद्यश्रोतुमिच्छसि ।
 एतान्सर्वान्नरःश्रुत्वापठतेवासभासुच ॥६॥
 विद्वयसर्वपापानिब्रह्मणोह्यालयं ब्रजेत् ।
 अष्टादशपुराणानियानिप्राहपितामहः ॥७॥

पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! महामुनि मार्करण्यजी ने इस प्रकार कह कर कौटुकि मुनि को विदा किया और मध्याह्न क्रिया सम्पन्न की ॥१॥ हे महामुने ! जो हमने आपसे कहा है वह सब स्वयं भगवान् मार्कण्डेय जी ने कहा था, हमने भी उन्हीं से सुना है ॥२॥ आपसे कहा गया यह मनीहर पुराण मार्कण्डेय जी के द्वारा कहा गया एवं अत्यन्त पवित्र है, इसके पढ़ने या सुनने से आयु की वृद्धि और सभी कामनाओं की सिद्धि होती है ॥३॥ और इसके पाठ करने से सभी पापों से मुक्ति होती है पहिले आपने जो चार प्रश्न किये थे, उन सब का उत्तर ॥४॥ पिता-पुत्र सम्वाद स्वायंभुव की सृष्टि, मनुष्यों की उत्पत्ति और राजाभरण का चरित्र भी ॥५॥ आपके प्रति कहे गये हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? इस सब को सुनने और सभा स्थल में वाचन कराने वाला मनुष्य ॥६॥ सभी पापों से छूट कर ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥७॥

तेषांतुसप्तमज्ञेयंमार्कण्डेयंसुविश्रुतम् ।
 ब्राह्मपाद्वैष्णवंचशैवंभागवतंतथा ॥८॥
 तथान्यन्नारदीयंचमार्कण्डेयचसप्तमम् ।
 आग्नेयमष्टमंप्रोक्तं भविष्यंनवमंतथा ॥९॥

दशमब्रह्मवेवर्तं लिंगमेवादशस्मृतम् ।
 वाराहद्वादशप्रोक्तं स्वादमन्नत्रयोदशम् ॥१०॥
 चतुर्दशवामनचर्कोर्मपञ्चदशतथा ।
 मात्स्यचगारडर्चैवब्रह्माड चतत परम् ॥११॥
 अष्टादशपुराणानानामधेयानियःपठेत् ।
 त्रिमध्यजपतेनित्यमोऽश्रमेघफलभेत् ॥१२॥
 सर्गश्चप्रतिमर्गश्चवशोमन्वतराणिच ।
 वशानुचरितर्चैवपुराणपचलक्षणम् ॥१३॥

तानिमर्वाणिनश्य तितृणवातहतं यथा ॥१५॥

पितामह ब्रह्मा जी ने अठारह पुराण बहे थे उनमें यह मार्कण्डेय पुराण मानवी है, प्रथम पुराण ब्राह्मण, द्वितीय वाथ, फिर वैष्णव, शैव, भागवत ॥१०॥ नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय भविष्य ॥११॥ ब्रह्मवेवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द ॥१०॥ वामन, कीर्ति, मत्स्य, गरुड और फिर अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है ॥११॥ इन अठारह पुराणों के नाम का ही पाठ करने वाला तथा हीनी सत्त्व में जप करने वाला मनुष्य अश्रमेघ यज्ञ के समान फल प्राप्त करता है ॥१२॥ सर्ग, प्रतिमर्ग, वश, मन्वन्तर, वशानुचरित यह पाँच लक्षण पुराणों के होने हैं ॥१३॥ चार प्रश्न वाला इस मार्कण्डेय पुराण के मुनने से करोड़ बल के भी पापों का शय होना है ॥१४॥ तथा ब्रह्महत्या आदि सब महापाप प्रचण्ड वायु से दूटे हुए तृण के समान ही इसके पाठ करने से नष्ट ही जाते हैं ॥१५॥

पुण्डरेदानजपुरण्यश्रवणादस्यजायते ।

गर्ववेदाधिबलममाप्त्याचाधिगच्छति ॥१६॥

यश्चात्रयेत्पूजयेत्त यथादेवपितामहम् ।

गणपुष्पंस्तथावम्भ्रं श्रद्धागानाद्यतपंस्तं ॥१७॥

यथाशक्त्याचदातव्यं नृपंप्रीमादिवाहनम् ।
 एतत्पुराणमखिलवेदार्थरूपवृंहितम् ।
 धर्मशास्त्रं कनिलयंश्च त्वासर्वार्थमाप्नुयात् ॥१८
 श्च त्वापुराणमखिलव्याससंपूजयेद्बुधः ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे ॥१९
 दद्याद्गांगुरवेस्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् ।
 श्रवणस्यफलावाप्त्यैदानैःसंतोषयेद्गुरुम् ॥२०
 श्रुपूज्यपाठकर्तारंश्लोकमेकंश्रुणोतियः :
 नासौपुरयमवाप्नोतिशास्त्रचोरःस्मृतोहिसः ॥२१

इसके श्रवण करने से वैसा ही पुण्य मिलता है, जैसा पुष्कर में दान करने से मिलता है, इसकी सम्पूर्णता में वेदपाठ की सम्पूर्णता के समान फल की उपलब्धि होती है ॥१९॥ इस पुराण को सुनाने वाले पंडित का ब्रह्मा के समान पूजन करे, गंध, पुष्प, वस्त्रादि से पुराण का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन कराये ॥१७॥ राजा यथाशक्ति धाम तथा वाहनादि प्रदान करे, यह पुराण सम्पूर्ण वेदार्थ से युक्त तथा धर्म का स्थान रूप है, इसके श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है ॥१८॥ इस सम्पूर्ण पुराण को सुन कर व्यास पूजन करे तो धर्म, श्रथं, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है ॥१९॥ स्वर्ण, वस्त्र, तथा अलंकारादि से युक्त गौ गुरु को दे, क्योंकि सुनने का फल प्राप्त करने के लिये दान द्वारा गुरु को संतुष्ट करे ॥२०॥ वाचक की पूजा किये बिना जो पुष्प इसको सुनते हैं, उन्हें कुछ भी पुरणलाभ नहीं होता, जानीजन उन्हें शास्त्र चोर कहते हैं ॥२१॥

नतस्यदेवाःप्रीणंतिपितरौनैवपुत्रकान् ।
 दत्तंश्राद्धं तथेच्छंतितीर्थस्नानफलंनच ॥२२
 लभतेशास्त्रचोरश्चनिदांसज्जनसंस दे ।
 अवज्ञयानश्रोतव्यंशास्त्रमेतद्विचक्षणैः ॥२३
 पठ्यमानैस्त्ववज्ञातेसाधुभिःशास्त्रउत्तमे ।
 सूकोभवतिजन्मानिसप्तमूर्खःप्रजायते ॥२४

श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणसप्तमधुन ।

मर्षपापविनिर्मुक्तं गुनात्येव निजकुलम् ॥२५॥

पूजापातिनमदहो विष्णुलोकसनातनम् ।

अधुनस्तत पुनर्नैव स भविष्यति मानव ॥२६॥

पुराणश्रवणादेव ररयोगमवाप्नुयान् ।

नास्ति कायनदा तव्यवृषले वेदनिदके ॥२७॥

गुरुद्विजातिनिदायतथा भग्नव्रताय च ।

मातापित्रोर्निदकाय वेदशास्त्रादिनिदिने ॥२८॥

दयता उनसे रच ही जाते हैं, पितरगण भी भ्रष्टसभ्र होकर उनके द्वारा दिया गया थाद्व इहण नहीं करते और उन्हें तीर्थ स्नान के फल से भी वंचित होना पटना है ॥२२॥ सज्जनों के समाज में उनकी निन्दा होती है, इसलिए विद्वानों का भवजापूर्वक श्रवण नहीं करना चाहिये ॥२३॥ जो मनुष्य माधुसो द्वारा ज्ञान पढ़ने समय अवज्ञा करते हैं वह कई जन्म तक गूने और सात जन्म तक बकिर होते हैं ॥२४॥ इस मत्स्य पुराण का पूजन करने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त हान और अपने पुत्र को परित्र करते हैं ॥२५॥ यह पवित्र होकर भवश्य ही विष्णुलोक को प्राप्त होने हैं, वहाँ से पुन सत्तार में नहीं लौटते ॥२६॥ केवल इस पुराण के ही मुनने मात्र से उत्कृष्ट योग की प्राप्ति होनी है परन्तु यह पुराण नास्तिक, दूध, वेदनिन्दक, गुरुद्वेषी, व्रतत्यागी, माता पिता के निन्दक और शास्त्रादि के निन्दक को प्रदान न करे ॥२७ २८॥

भिन्नभर्मादिने चैव तया वैश्रातिकोपिने ।

एतेपानैवदातव्यप्राणं वरगतैरपि ॥२९॥

लोभाद्वापदिवाभाहाद्भ्रमाद्वापिविशेषत ।

पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेत्तरकं ध्रुवम् ॥३०॥

एतन्मवंमुपास्यानवर्म्म्यस्वर्गापवर्गादम् ।

य श्रुतिपठेद्वापिमिद्ध तस्यसमीहितम् ॥३१॥

प्रायिव्याधिजद्गुमेनकदाचिन्नाभियुज्यते ।

श्रद्दाहृत्वादिपापेभ्योमुच्यते नाशस शय ॥३२॥

संतःस्वजनमित्राणि भवन्ति हितबुद्धयः ।
 नारयःसंभविष्यन्तिदस्यवोवाकदाचन ॥३३
 सदर्थोमिष्टभोगीचतुर्भिक्षेनवसीदति ।
 परदारपरद्रव्यहिंसादिकिल्बिषैः ॥३४
 मुच्यतेनेकदुःखेभ्योनित्यंचैवद्विजोत्तम ।
 ऋद्धिवृद्धिःस्मृतिशांतिःश्रीःपुष्टिस्तुष्टिरेवच ।
 नित्यंतस्यभवेद्विप्रयःशृणोतिकथामिमाम् ॥३५

मर्यादा के तोड़ने वाले और जाति को दूषित करने वाले मनुष्य को भी न दे तथा प्राण कंठगत होने पर भी इस पुराण को प्रदान न करे ॥२६॥ यदि लोभ, मोह या भय के कारण इनमें से जो कोई पुराण का पाठ करता है या पाठ करा कर श्रवण करता है, तो वह अवश्य ही नरकगामी होता है ॥३०॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—यह समस्त उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और मोक्ष का दाता है, इसे जो पढ़ता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध होती हैं ॥३१॥ उसे कभी रोगादि से कष्ट नहीं होता और वह ब्रह्महत्या आदि के पापों से मुक्त हो जाता है ॥३२॥ उसके स्वजन और मित्र उसका हित करने वाले हो जाते हैं, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता और न चोरों की ही बाधा उपस्थित होती है ॥३३॥ उसके यहाँ श्रेष्ठ धन विद्यमान रहता है, वह मिष्टान्न का भोजन करता और दुर्भिक्ष से कभी भी पीड़ित नहीं होता. पर नारी, पर धन, और पर हिंसा के पापों से ॥३४॥ अथवा अन्य अनेक प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है, इस कथा को जो सुनता है, ऋद्धि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, श्री, पुष्टि, तुष्टि उसके साथ रहती हैं ॥३५॥

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलंशृण्वन्नशो—

च्यःपुमान्योवासम्यगुदीरयेद्रसमर्थंशोच्योनसोपिद्विज ।

योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितःस्वर्गादिलोकेष्यसी—

शक्रार्थंश्वसुरादिभिःपरिवृतःस्वर्गंसदापूज्यते ॥३६

पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसमुत्तमम् ।
 विमानधरमारुह्य स्वर्गलोके महीपते ॥३७
 पुराणाक्षरसख्या च प्रख्याता तत्त्वबुद्धिना ।
 श्लोकानापटुसहस्राणि तथा चाष्टशतानि च ॥३८
 श्लोकास्तत्र नवाशीतिरेकादशसमाहिता ।
 कथिता मुनिना पूर्वमाकर्ण्येन धीमता ॥३९
 भारतेनाभवद्यन्ने सशयस्फोटनद्विजा ।
 तद्भवद्भिः वृतयन्नकश्चिदद्य करिष्यति ॥४०
 यूयदीर्घायुषः स्यात्प्रज्ञाबुद्धिविदारदा ।
 सास्वयोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी ॥४१
 पितृशापकृताद्दृष्ट्वा द्वादीर्घमनस्य व्यपेतुव ।
 एतावदुवत्त्वावचनजगाम स्वाश्रममुनि ।
 चित्तपन्परमोदारपक्षिणा वाक्यमीरितम् ॥४२

इस सम्पूर्णं मार्कण्डेय पुराण का श्रवण करने वाला कभी शोचनीय नहीं रहता, इसके कहने वाले विप्रगण भी शोचनीय नहीं रहते, वे योग, ज्ञान और श्रद्धा के सहित स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होते हैं तथा इन्द्रादि देवताओं के साथ रह कर सदा पूजे जाते हैं ॥३६॥ इस ज्ञान विज्ञान से युक्त पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ विमान में चढ़ कर स्वर्ग को गमन करते हैं ॥३७॥ पहिले सूत्रमदर्शा श्री मार्कण्डेय जो ने इस पुराण में छ हजार नौ सौ श्लोक बड़े थे ॥३८-३९॥ जैमिनि ने कहा—हे सगण ! महाभारत में जो सन्देश था, वह सब तुमने निश्चय से धूल कर दिया, इस प्रकार अन्य कौन कर सक्ता था ? ॥४०॥ तुम अत्यन्त दीर्घायुष्य, नीरोग और बुद्धि विगारद हू, तुम्हारी बुद्धि सांख्य योग में चेट गति वाली हो ॥४१॥ तुम गिता के बचन से ही दुर्गा प्राप्त नहीं हुए हो, ऐसा कह कर और उन सगणों के बचनों का स्मरण करते हुए मुनि अपने प्राथम से लौटे ॥४२॥

मार्कण्डेय पुराण का नैतिक व सांस्कृतिक अध्ययन

पुराण रचना की पात्रता और मार्कण्डेय की दूरदर्शिता

इस पुराण के प्रणेता अथवा वक्ता महर्षि मार्कण्डेय हैं। उन्हीं के नाम से यह पुराण अभिहित हुआ है। मार्कण्डेय उच्चकोटि के साधक और आत्मानुसंधान के प्रवीण पात्र थे। वे आत्मसाक्षात्कार की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच चुके थे। नारायण उनके इष्ट देव थे। उनके साक्षात् दर्शन होने के सम्बन्ध में स्वयं नारायण ने प्रकट होकर महाभारत में मार्कण्डेय को सम्बोधित करते हुए कहा 'हे मार्कण्डेय ! तुम्हारे ब्रह्मचर्य की महानता अवर्णनीय है। मेरे जिस रूप को देवता भी तत्त्व रूप से नहीं समझ सकते, उसे तुम अपने प्रत्यक्ष नेत्रों से देख रहे हो। मैं नारायण हूँ, विश्व का शाश्वत और अभय प्रसव स्थान हूँ। इन्द्र, प्रजापति, कुबेर, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, सोम सब मैं ही हूँ। चारों वेद मुझ से ही प्रविर्भूत होते हैं और मुझ में ही समा जाते हैं। जो कुछ भी स्थावर और जंगम वस्तुओं को तुमने देखा है, उन्हें मेरी ही आत्मा समझो, "मैं नारायण हूँ।"

मार्कण्डेय ने महाभारत में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में कहा है "एकाग्रवीभूत स्थिति में एक वटवृक्ष की शाखा पर मैं ने एक बालक के दर्शन किए जो स्वयं नारायण थे। उन्होंने स्वयं कहा—मार्कण्डेय ! मैं तुम से सन्तुष्ट हूँ, तुम थक गये होगे, तुम मेरे शरीर में विश्राम लो।" कथा के अनुसार मार्कण्डेय उस नारायण रूपी बालक के मुख में चले गये, वहाँ उन्होंने भारत वर्ष के दिग्घ दर्शन किये—उसके जनपद, नगर, नदियाँ और पर्वत।" जिस तरह से भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को पात्र समझ कर विराट् रूप के

दर्शन दिये थे, उसी तरह से नारायण ने मार्कण्डेय को उत्तम पात्र जानकर उ हें अपना साक्षात् दर्शन दिया और भारत वर्ष का विराट् रूप दिखाया। दूसरे शब्दों में उन्होंने मार्कण्डेय को भारत वर्ष की भौगोलिक समीक्षा और उसके निवासियों का नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विघ्नेषण करके मार्ग दर्शन करने का अधिकार दे दिया हो। नारायण को मार्कण्डेय उत्तम पात्र दिखाई दिये। एसा लगता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना का भार स्वयं नारायण ने मार्कण्डेय को सौंपा ही। इसमें स्पष्ट है कि मार्कण्डेय पुराण के प्रलयन की वृष्टभूमि में स्वयं नारायण उपस्थित हैं। प्रस्तुत पुराण में जो भी शिक्षाएँ और प्रेरणाएँ दी गई हैं, वे मार्कण्डेय के मस्तिष्क में नारायण के प्रकाश से ही आई हैं। पुराणों की जैसे भी वेशे की सरल व्याख्या मानी जाती है। वेदों में जो मिथ्यात महन रूप में प्रतिपादित किये गए हैं, उन्हें ब्याथों, बहानियों और रूपकों के माध्यम से पुराणों में खलित किया गया है ताकि वे सर्व साधारण की समझ में आ सकें। वेदों को ईश्वरीय रचना मानने में किसी को सन्देह ही नहीं हो सकता। अतः यदि मार्कण्डेय पुराण की रचना के लिये नारायण ने मार्कण्डेय को पात्र समझ कर आदेश दिया हो तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं है।

पुराण की रचना में मार्कण्डेय ने अपनी पात्रता सिद्ध कर ली। उन्होंने युगात्पुरुष सामग्री का चयन किया, पुराणों को सस्वारित किया, जो दोष कुछ अन्य पुराणों में थे, उन्हें दूर किया, साम्प्रदायिक विद्वेष से दूर रहे, किसी भी साम्प्रदायिक देवी देवता का उन्होंने खण्डन नहीं किया, उनके लिए सभी देवता समान हैं, वे तो सभी को नारायण रूप देखते थे। जिसे नारायण का स्वयं साक्षात्कार हो गया हो, उसके मन में भेदभाव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वे तो सभी प्राणियों में अपने ही रूप के दर्शन करके उनका बह्याण की योजना में मग्न रहते होंगे और अतएव मार्कण्डेय ने किया भी ऐसे ही।

मार्कण्डेय दूरदर्शी थे, उन्होंने मानव मन का महन अध्ययन किया था, वे स्वयं पापक से और त्रियारामन रूप से देखा था कि किस तरह से दुष्ट से

महान अथवा नीचे से ऊपर बढ़ने की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। वे ऋषि थे, आत्मसाक्षात्कार किए हुए थे, उन्हें स्वयं आत्मा के अतिरिक्त संसार में कुछ सूझना ही न होगा। वे इस जगत की अनित्यता को भली भांति अपने खुले नेत्रों से देखते होंगे परन्तु जगत से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा। वे जानते थे कि स्थूल शरीर की सुरक्षा के लिए हर प्रकार की भौतिक सामग्री की अपेक्षा रहती है। उनसे घृणा करना अपने मार्ग को अवरुद्ध करना होगा। आत्मोत्थान के लिए दोनों का समन्वय अभीष्ट है। मार्कण्डेय ने अपने पुराण में यही किया है। भौतिक, नैतिक, सामाजिक और आत्मिक सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

भौतिक विद्याओं के विकास का समर्थन—

महर्षि ने भारत वर्ष के भूगोल का विस्तृत विवेचन किया है। जिससे भारत की प्राचीन सीमाओं का दिग्दर्शन होता है। पर्वतों और नदियों का भी विस्तार से वर्णन है। सम्पूर्ण जनपद सूची भी दे दी गई है। मार्कण्डेय राष्ट्रवादी संत थे। आज तो पढ़े-लिखे लोग अपने देश की उपेक्षा करते हैं और इङ्ग्लैंड, अमेरिका की प्रशंसा के पुल बांधते नहीं थकते परन्तु मार्कण्डेय ने भारत को कर्म-भूमि और शेष भू-भाग को भोग-भूमि घोषित किया है। प्रह्लापुराण २७।७२-७८ में भी कहा है कि भारत में जन्म लेने वाले धन्य हैं। यहाँ सब पुरयों के फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। स्वर्ग के देवता यहाँ जन्म लेने में गौरव का अनुभव करते हैं। जो कार्य यहाँ के लोग कर सकते हैं, वे देवताओं और असुरों किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। वास्तव में प्राचीन भारत का गौरव ऐसे ही था जिसकी समृद्धि, विकास और उत्थान की स्थापति चांगों और फँली हुई थी। आज भी यदि ऋषियों के पदचिह्नों पर चलने लगे तो उस खोए गौरव को पुन प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि ने भौतिक विद्याओं की उपेक्षा नहीं की। जीवन के पूर्ण विकास को भी आवश्यक मानते हैं। तभी उन्होंने धन संग्रह करने के सभी उपायों का वर्णन किया है जिसे पश्चिमी विद्या का नाम दिया गया है। व्यापार द्वारा

धन कमाने के जितने भी साधन हो सकते हैं, उन सब का धोरा पुराण में दिया गया है। आशय यह है कि व्यक्ति को घोर परिश्रम करके भौतिक जीवन को सुखी बनाने के लिए धन का साधन करना चाहिए परन्तु अनैतिक उपायों में नहीं। ये धन को व्यक्तिगत सम्पत्ति भी नहीं मानते। जब राष्ट्र को उसकी प्रावश्यकता पड़े तो उससे मोह न करके राष्ट्रहित में सारी सम्पत्ति का दान कर देना चाहिए। हरिश्चन्द्र का लम्बा शासन इसी उद्देश्य से निरूपा गया है कि धनवानों को धन से मोह नहीं करना चाहिए। यह ईश्वर द्वारा सत्तियों के लिए उन्हें दिया गया है। यदि वह इसका दुरुपयोग करेंगे तो उन से छीन लिया जायेगा। मार्कण्डेय धन कमाने के पक्ष में तो हैं पर हरिश्चन्द्र को आदर्श मान कर समय आने पर सर्वस्व तुटाने के लिए तैयार रहने को प्रेरणा भी देते हैं।

महर्षि जगत की अनिष्ट, राणभङ्गुर घोर अभ्यापी मानते हैं परन्तु भारत के इस मन्दिर की रक्षणा पर भी पूरा ध्यान देते हैं। पुराण में शरीर विज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, जो आधुनिक विज्ञान में मिलना है। इस सम्बन्ध में लिखा है कि रज और शीत के मिलने से विष तरह नये शरीर की रचना प्रारम्भ होती है और शिम तरह उसका कमिष्ठ विकास होता है। गर्भ में शरीर का पोषण शिम प्रकार से होता है, माता और गर्भस्थ शिशु के शारीरिक सम्बन्ध की अद्भुत व्यवस्था का वर्णन है। आयु-वैद चिकित्सा का भी वर्णन है जिससे शरीर का अनाच्छय रोग हाने पर भी स्वास्थ बनाया जा सके। आयुवृद्धि के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस व पुन राज्य वर्धन की रानी ने उसने घर पर सफेद बाल देखा तो दुखी हुई। राजा ने समझा कि अब मृत्यु निकट है और बानप्रस्थ में प्रवेश कर इन में तप करने चलना चाहिए। प्रजा चाहती थी कि वही राजा राज्य शासन की बागदोर समाप्त रहे। प्रजा ने राजा की आयुवृद्धि के लिये सूर्य-देव की सामूहिक प्रार्थना का निश्चय किया और कामरूप पर्वत पर अनुष्ठान में लग गई। तीन मास की उपासना के बाद सूर्यदेव प्रसन्न हुए और राजा की आयु दस हजार वर्ष करने का वरदान दिया। अनिष्टपौत्रिणी में वर्णित

यह कथा आयुवृद्धि के लिए सूर्य की शरण में जाने को इच्छित करती है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि सूर्य ही समस्त भौतिक शक्तियों का स्रोत है और शरीर के विकास, सुरक्षा, सुदृढ़ता और चिकित्सा के लिए सभी आवश्यक तत्व इसमें विद्यमान हैं। सूर्य किरणों शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती हैं। जो लोग सूर्यदेव से विमुख रहते हैं, उन पर ही रोग आक्रमण करने का साहस करते हैं। सूर्य किरणों से रोग मुक्ति को एक नवीन चिकित्सा पद्धति का भी आविष्कार हो चुका है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर मानव का जीवन असम्भव है। सूर्य के अभाव में जीवधारी अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते। जहाँ सूर्य के यदाकदा दर्शन होते हैं, वहाँ पर जब सूर्य निकलता है तो उत्सव मनाए जाते हैं। तभी भारत में सूर्य की देवता की संज्ञा दी गई है और मार्कण्डेय पुराण में भी उसका भव्य स्तवन किया गया है।

पुराणकार मनोरंजन के साधनों को आवश्यक मानते हैं और कला की प्रशंसा करते हैं। जिसमें गुण रूप नहीं होता, उसे नाटक में सफलता प्राप्त नहीं होती। नृत्य का सुन्दर अधिष्ठान आवश्यक है। उसके बिना नृत्य एक विडम्बना ही रह जाती है।”

ऐसा लगता है कि प्राचीनकाल में सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या का विकास हो चुका था तभी विभावरि ने जब स्वरोधिष को आत्म-समर्पण किया तो विभावरि ने सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या को शुल्क रूप में प्रदान किया।

जिस समय पुराण की रचना हुई, उस समय मंत्र विज्ञान की प्रक्रिया उच्चशिखर पर थी। मंत्र-विज्ञान की एक शाखा-इष्टि क्रिया का उल्लेख किया गया है। एक राजा की पत्नी किसी कारण से राजा को छोड़ कर चली गई। एक ब्राह्मण व राजा से मित्रविन्दा नाम की इष्टि करादी और जब वह माघना पूरी हो गई तो ब्राह्मण ने राजा से कहा “अब आपकी पत्नी आप में पूर्ण अनुलप रहेगी, अतः आप उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए” यह मंत्रविज्ञान का ही चमत्कार है।

कर्तव्य परायणता का निर्देश—

पुराणों में क्षत्रिय राजाओं के दौरे, साहस और जीवन क्षत्रियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उनमें क्षत्रियों के क्षत्रिय का पूर्ण परिचय मिलता है। वे मरन क्षीर की प्राप्ति देखने भी कर्तव्य पावन करते हैं और प्रजा की सुरक्षा को अपना आवरण धर्म मानते हैं। तभी कहा है "द्वय धनवान क्षत्रियों के सामने यदि इन वन्या का आवरण हो जाये तो हमारे जीवन की घिनाहट है। जो दुष्ट लोगों से दुःखी शक्ति की सुरक्षा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है।

मनु के पुरुषों पर मदानमा ने ब्राह्मण के धर्म का विवेचन करते हुए कहा "दान, अध्ययन और यज्ञ मह ब्राह्मण के निरपेक्ष धर्म हैं" चारों वर्णों और प्राणियों के कर्तव्यों का उल्लेख है।

राजा के कर्तव्य तो विस्तार से वर्णित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राजरत्न की तरह उस समय भी शासन वर्ग में स्वायत्तता का प्रबल भाव हुआ था तभी वह कड़े शब्दों में शासकों की चेतावनी देते हैं कि "वैश्य धरणी प्राप्ता १२ को माग राजा को इतलिये देना है कि उनके जान-मान की सुरक्षा हो सके। चाण, धी, तल प्रादि का तथा विमान मनाज का छटा भाग इनीलिये देते हैं। जो राजा व्यापारियों से उनकी आय का अधिनाश माग लने हैं वह खोर हैं। यदि यह लेकर भी उका प्रजा की सुरक्षा में असमय रहता है और प्रजा की पश्य उपायों वा महारा लेता पठता है तो राजा निश्चय ही नरक जाता है। यदि जोरी से रक्षा नहीं कर सकता तो वह पापी कहलाता है।"

इस तरह से मार्कण्डेय एक स्वतन्त्र और निर्भय विचारक की तरह अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनका उद्देश्य प्रजा की भलाई है। उनमें उन्हें कष्ट भी महता पडे तो उनके लिए वे तैयार हैं। शासक वर्ग का कडा विरोध करने पर क्या परिणाम निकलने हे, इसमें यभी परिचित है। फिर भी मनी मरणा की प्रावण को बन्द नहीं करते वरन् निर्भय रूप से उनका प्रसार करते हैं। शासन में ऐसे विचारक ही जनहित में सफल होते हैं।

मार्कण्डेय आध्यात्मवादी है, आत्म-साक्षात्कार कर चुके हैं, परन्तु भौतिक वाद की ओर आँख मूँदना उन्हें अभीष्ट नहीं है। इसीलिए अनेकों प्रकार की भौतिक विद्याओं की ओर उन्होंने अपने पाठकों की आकृष्ट किया है। वे चेतावनी भी देते हैं कि इन में लिप्त रहना निरी मूर्खता होगी, केवल भौतिक विकास पर ही सन्तुष्ट न हो जाना, मानव का चहुँमुखी विकास होना आवश्यक है। पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और आत्मिक सभी धाराओं में उसका प्रवेश होना चाहिये और बिना विश्राम के प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। केवल भौतिक या आध्यात्मिक—दोनों एकांगी हैं। दोनों का विकास ही पूर्ण विकास माना जाता है।

पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान—

मार्कण्डेय योग्य चिकित्सक थे। वे उलझी गुत्थियों को सुलभाना जानते थे और हवा का स्वाद देख कर उसी के अनुसार अपनी नीति का निर्धारण करते थे। उनके सामने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था। जनता का भुक्ताव प्रवृत्ति मार्ग की अपेक्षा निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक होने लगा था। परिणामतः गृहस्थ में प्रवेश की अपेक्षा लोग सन्वास ग्रहण करना अधिक पसन्द करते थे। गृहस्थ में प्रत्यक्ष रूप से लौकिक सुख की उपलब्धि थी परन्तु सन्यास में पारलौकिक कल्याण का लोभ निहित था। इससे अनीश्वरवादी धारा का प्रवाह बह चला। समाज में एक अजीब पागड़पन आगया। भारतीय ऋषियों ने चार आश्रम बड़ी सूझ बूझ से बनाये थे। उसमें भी सन्यास का विधान है परन्तु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के बाद जब साधक उसकी पात्रता प्राप्त कर लेता है। जब तक मनःस्थिति में सन्यास का रंग न आए, तब तक उससे अपेक्षित लाभ की आशा करना व्यर्थ है भले ही घर बार छोड़ने और त्यागमय जीवन व्यतीत करने का ढोंग रचा जाये। मार्कण्डेय ने इस व्यवहारिक प्रवृत्ति का विरोध किया, अपने पक्ष में व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत किया, गृहस्थ के आदर्श कर्तव्यों का निरूपण किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार से गृहस्थ आश्रम में रहकर ही

लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की विद्वियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इनके सभी पक्षों का प्रतिपादन किया। मदालसा के माध्यम से उन्होंने अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए कहा है कि जिसने गृहस्थ माध्यम ग्रहण किया, यह समझना चाहिए कि उसने विश्व के पालन का भार अपने कर्णों पर ले लिया है। देव, पितर, मृत्ति, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी सभी गृहस्थ माध्यम से ही जीवित रहते हैं और उन्हीं से तृप्त होते हैं। तेरहवें मनु रोष्य की जन्म जया में प्रजापति रुचि और पितरो के सम्वाद में भी यह धर्मा भाई है। पितरो ने रुचि को सम्बोधित करते हुए कहा 'वरस। तुमने गृहस्थ को छोड़ कर अच्छा काम नहीं किया। गृहस्थाश्रम स्वयं और मोक्ष दोनों का मापन है। उनी माध्यम में रहकर ही शक्ति देवता, ऋषि, पितर और मतिधियों के प्रति अपने कर्तव्य की निभाते हुए उत्तम लोको की प्राप्ति कर सकता है।'

सन्यास मार्गियों की दृष्टि तो एक ओर भी परन्तु मार्कण्डेय ने चारों ओर घूम कर देखा तभी एक सुनिश्चित नीति को अपनाया। यदि युवक सन्यासी हो जाएँ तो लोक की युवतियों का क्या होगा। जीवन के प्रवेश पर काम भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, यदि उनकी पूर्ति की सामाजिक व्यवस्था न हो पाये तो अर्न्तगत उपायों की ओर मन का दौटना कौन रोक सकता है? हर एक में समय की साधना कहाँ से आए? इसका कुप्रभाव धरित्र पर पड़ेगा और स्वच्छ जल में कीचड़ के छींटे पड़ जायेंगे। इस कुप्रवृत्ति का विरोध करते हुए मार्कण्डेय ने व्यवस्था दी कि सन्यास श्रेष्ठ है परन्तु गृहस्थ उससे भी श्रेष्ठ है क्योंकि सन्यासी गृहस्थ पर निर्भर करते अपनी साधना का संचालन करता है। पादरी और रयाग समय पर ही शोभा देते हैं। मन की इस के अनुकूल परिपक्व करने पर ही यह अच्छे लगते हैं। त्रिवेकहीन रयाग का कोई मूल्य नहीं होता। जब मन से प्रेरणा उत्पन्न होती है और वह उसे निभा सकते की सामर्थ्य रखना हो तो सभी रयाग की वास्तविक रूप देना चाहिये।

दूसरा मार्ग यह है कि जब युवक सन्यासी हो रहे हैं तो युवतियाँ भी उसी मार्ग पर चलने लगे। सन्यास ग्रहण करने पर भी जब युवक और युवतियाँ साथ रहेंगे तो वहाँ पर भी वही प्राकृतिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होंगी, जिन्हें दोष, व्यभिचार और चरित्रहीनता की संज्ञा दी जाती है। मठों में जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों निवास करते हैं, वहाँ ऐसी घटनाओं की चर्चा प्रायः सुनी जाती है। युवक सन्यासियों के पास जहाँ स्त्रियों का आना जाना बना रहता है, वहाँ भी दबा हुआ काम उभर पड़ता है और अपने बाह्य वेष को लज्जित करने में संकोच नहीं करता। सम्भव है उस समय भी ऐसी घटनाएँ घटी हों और दूरदर्शी ऋषि ने समाज को नया मोड़ देना चाहा हो। कुछ भी हो, वे विवाह के पक्ष में थे। तभी उन्होंने कहा कि स्त्रियों को बहुत दिन तक पिता के घर बन्धु बान्धवों के बीच रहना यशस्कर नहीं होता। उनका अपने पति के घर रहना ही बन्धु बान्धवों को अभीष्ट होता है। विवाह होने पर भी स्त्री का अधिक दिन तक बन्धु बान्धवों के बीच रहना ठीक नहीं माना गया है। सातवें मनु की कथा में इसका विवेचन है। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा का पाणिग्रहण-संस्कार सूर्य से हुआ था। एक बार संज्ञा को पिता के घर अधिक दिन हो गये तो पिता ने पुत्री से कहा—“इस तरह से तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु बान्धवों के बीच स्त्री का अधिक दिन तक रहना ठीक नहीं है। तुम मेरे लिए पूज्य हो और मैं तुम से प्रसन्न भी हूँ पर तुम्हारा पतिग्रह मैं जाना ही ठीक है।”

विवाह के नियमों का विस्तृत विवेचन है। पिता के अभाव में स्त्रियों को अपने पति के चुनाव की स्वतंत्रता दी गई है। कौसी कन्या से विवाह करना चाहिए, उसके लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। पुत्र प्राप्ति के वैज्ञानिक नियम का भी उल्लेख है कि “जो पुरुष कन्या जन्म नहीं चाहता। वह पाँचवीं रात छोड़ कर छठवीं रात में स्त्री संग करे क्योंकि इसके लिए युग रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गई है।” ऋतुकात्र के दिन, चौदश, अमावस्या, अष्टमी अथवा संक्रान्ति काल में नारी समापन का निषेध किया गया है।

विवाह एक पवित्र आयोजन है, सामाजिक सुव्यवस्था का साधन है, कृत्रिम सच मन की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है, श्रुतिमें ने इसे पूरुता प्राप्ति का साधन बनाया है भाग का नहीं। भोग को सोना स्त्री के श्रुतुमती होने पर ही है अन्यथा नहीं। नारी को केवल भोग की सामग्री मान मान लेना उचित था अपमान है। जो नारी को केवल अपनी दासता की तृप्ति का साधन मानते हैं, वे अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं होते और निरन्तर नया स्थान देखने की टोह में रहते हैं। इसी दूषित विचारधारा ने बहुपत्नी प्रथा को जन्म दिया। राजाओं में इसका अधिक प्रचलन था। इस से पारिवारिक बन्धन भी वृद्धि होती है। दोनों पत्नियों द्वेष की अग्नि में जलती रहती हैं। उगकी सन्तान भी इसी महारोग का शिकार होती है। यह छूत का रोग पीड़ियों तक चलता है। राम दत्तवाम की पृथ्वूमि में इसी कुप्रथा का दीप भनकता है। कौन्धी के द्वेष ने ही राम की राष्ट्रतिलक की वज्र से वन जाने की बाध्य किया। श्रुति न स्वरोचित के सम्बन्ध में कहा है कि यह पुरुष धन्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि "एक स्त्री के समक्ष दूसरी स्त्री के सम्पर्क करने में इसे लज्जा नहीं आती। यह अन्व स्त्री से भी सम्पर्क रखता है। इसका बिन किसी में अनुरक्त नहीं है। किसी एक आलम्बन में प्रभुराग हीना चित्त का स्वभाव है, अन्व अनेक भाषाओं में इसकी प्रीति बँधे हो सकती है। यह निश्चय जानो कि न इन स्थितियों में इसका प्रेम है और न इसमें इन स्थितियों का प्रेम है। इनका परस्पर प्रेम व्यवहार एक विनोद मात्र है।" स्वरोचित ने अपनी पत्नी मनोरमा के परिचित विभावरी और कन्यावती से भी विवाह कर लिया था। पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम न होने पर पारिवारिक सुख शान्ति की उपलब्धि सम्भव नहीं।

पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए दोनों को अपने वर्तमानों पर ध्यान देना चाहिए। पुराणकार ने दोनों का ध्यान इन और आहूत किया है। बहुत है 'वेद की भासा है कि पति की अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि पत्नी की रक्षा में सन्तान की रक्षा होती है। पत्नी में अन्व सन्तान के रूप में स्वयं जन्म लेता है। अन्व पत्नी की रक्षा में स्वयं अपनी

रक्षा होती है।" एक और स्थान पर कहा है। "पति को सदैव अपनी पत्नी का भरण और रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में पत्नी पति की सहायिका होती है। जब पत्नी और पति प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, तभी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। पत्नी को त्यागने से धर्म का त्याग हो जाता है। व्यक्ति किसी भी वर्ण का क्यों न हो, वह पत्नी के अभाव में किसी भी कर्म के योग्य नहीं रह जाता।

आदर्श पत्नी के कर्तव्य का बोध कराते हुए ऋषि ने अनसूया जी से कहलवाया है "पुरुष महान कष्ट उठाकर जो पुण्य प्राप्त करते हैं, स्त्रियाँ केवल पति सेवा से ही उसका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियों के लिए यज्ञ, श्राद्ध और उपवास के लिए प्रबन्ध विधान नहीं है, वे पति की सेवा से ही इहलोकों को प्राप्त कर लेती हैं। पति नारी की श्रेष्ठ भति है।" एक कौशिक नाम के कोढ़ी ब्राह्मण की कथा दी गई है जिसकी पतिव्रता पत्नी ने सूर्य का उदय रोक दिया था क्योंकि सूली पर चढ़े एक अन्य ब्राह्मण ने उसके पति को शाप दिया था कि सूर्य उदय होते ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। ऐसी पतिव्रता नारियों की कथाएँ अन्य पुराणों में भी वर्णित हैं। पत्नी पति की सच्ची मित्र और सलाहकार होती है। हरिश्चन्द्र के आश्रयान में जब विश्वामित्र को दक्षिणा देने का कोई साधन दिखाई नहीं देता और वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है, तो पत्नी उनसे कहती है—महाराज ! चिन्ता छोड़ दो, सत्य का पालन करो, सत्य से च्युत मनुष्य श्मशान के समान त्याज्य होता है। पुरुष के लिए सत्यता से बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि समस्त पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। धर्म शास्त्रों में सत्य से उत्थान और असत्य से पतन होना बताया है।" आदर्श पत्नी के यह विविध रूप दिखाए गए हैं।

पत्नी का एक और महत्वपूर्ण रूप माता का है। मदालसा की प्रसिद्ध कथा इसका माध्यम चुना गया है। मदालसा अपनी संतान को इच्छानुसार बनाती है। मृत्यु की प्रविष्ट धारा के साथ अपने उद्देश्य के अनुरूप बच्चे

को सोरियो देनी है । परिणाम स्वरूप बच्चे में जैसे ही संस्कार उत्पन्न होते हैं । मनोविज्ञान के पाठ्यालय पशिडनी ने तो आज इस तथ्य की खोज की है परन्तु हमारे ऋषियों ने हजारों वर्षों पूर्व इसे प्रकट कर दिया था । मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को सोरियो और उपदेशों से आध्यात्मवादी बनाया तो राजा को चिन्ता होने लगी कि हमारे सभी पुत्र विरक्त होने गए तो हमारे बाद राज्य का संचालन कौन करेगा ? राजा के अनुरोध पर मदालसा ने चौथे पुत्र को धर्म की शिक्षा दी । वह पुत्र आदर्श शासक निकला ।

परिवार में माता-पिता के साथ पुत्र का भी प्रपन्ना स्थान है । सभी को मिलाकर एक परिवार बनता है । अतः सभी को अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए । ऋषि ने कहा है 'पिता द्वारा प्रजित यश, धन और धैर्य जो जो कम नहीं होना देता, वह मध्यम कोटि का पुत्र है । जो अपनी शक्ति से पिता के धैर्य आदि से अधिक धैर्य आदि का सम्पादन कर लेता है, वह उत्तम कोटि का पुत्र है और जो अपनी प्रकृतियत्ता से पिता के यश, धन को कम कर देता है, वह अधम कोटि का पुत्र है ।' कुपुत्र की धर्म स्वार्थों पर अन्याय की गई है । "मनुष्य का पुत्रहीन होना अच्छा पर कुपुत्रवान् होना अच्छा नहीं क्योंकि कुपुत्र माता पिता के हृदय को सदा सन्तप्त करता रहता है और स्वर्गस्थ पितरों को भीचे गिरा देता है । उस कुकर्मी का जन्म माता-पिता के लिए दुःखदायक होता है । वह माता-पिता की चिन्ता से असमय में ही वृद्ध बना देता है ।" सुदृप नाम के ब्राह्मण ने पाण्डवों के चार इन्द्र पत्नी के रूप में आए और अपने प्रतिपक्ष के लिये मनुष्य का मांस पचवा रक्त माँगा । ब्राह्मण ने अपने पुत्रों से पत्नी का पानिष्य कराना चाहा परन्तु शरीर के मोह में पड़कर उन्होंने अपनी धर्ममर्यादा प्रकट की । इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्रों की पत्नी होने का दाव दिया ।

परिवार को स्वर्गीय बनाने के लिए जहाँ देवि पत्नी का प्रेममय व्यवहार आवश्यक है, वहाँ सतान की भी धातकरी होना चाहिए । शरीर के सभी अंग पुत्र होने पर ही शरीर स्वस्थ रह सकता है । एक छोटा सा थोड़ा भी शरीर के लिए दुःखदायी हो जाता है । परिवार में जब एक

भी सदस्य अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है तो स्वर्ग को नरक बनने में देर नहीं लगती ।

उत्थान के व्यक्तिगत व सामाजिक नियमों का विवेचन—

परिवार की शान्ति सदस्यों के आपसी नम्र व्यवहार पर निर्भर करती है परन्तु यही पर्याप्त नहीं है । सुख वृद्धि के लिए उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होने चाहिये । स्वस्थता के नियमों की जानकारी होनी चाहिए । सभी को सदाचारी, चरित्रवान और शिष्ट होना चाहिए तभी समाज में उनका सम्मान स्थिर रह सकता है । चरित्र को सम्पत्ति माना गया है । परिवार की यह शोभा है । जहाँ इसका प्रभाव रहता है, वह निर्धन परिवार कहलाता है । आस्तिकता का सदाचार से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानने वाला दुराचारों से भय खाकर दूर रहता है ।

स्वस्थ और सभ्य नागरिक बनने के लिए महर्षि मार्कण्डेय ने विस्तृत नियमों का प्रतिपादन किया है जो विज्ञान और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं । प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र त्याग, दंत धावन, तेल मर्दन और स्नान के नियम बताये गये हैं । स्नान करने पर विशेष बल दिया गया है । स्वच्छता को स्वास्थ्य का एक आवश्यक नियम बताया गया है । यहाँ तक कि दूसरे के पहने हुए जेठे विभूषण और कमंडलु को भी ग्रहण करने की मनाही की गई है ।

ब्रह्ममुहूर्त में उठने का आदेश देकर स्नान आदि निरत्य कर्मों से निवृत्त होकर पूर्वभिमुख बैठकर नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही सन्ध्या करने का उपदेश दिया गया है । सायंकालीन सन्ध्या भी सूर्य के स्थित रहते बताई गई है । प्रातः सायं हवन करने को भी कहा गया है । पाँच महायज्ञों और पितृ तपण करने की भी शिक्षा दी गई है । आत्मतत्त्व का चिन्तन भी आवश्यक बताया गया है । पूजा उपासना करने के बाद ही भोजन की आज्ञा दी गई है । अधिक नमक, अत्यन्त गरम अन्न का व बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा वासी भोजन का निषेध किया गया है ।

सद्बिचारों का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। घुरे विचारों वाला व्यक्ति कभी पूर्ण स्वस्थ नहीं रह सकता। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि गृहस्थ को सदाचर परायण होना चाहिए, पर नारी को घुरी दृष्टि से न देखे जब में शिष्ट व्यवहार करे, अहंकार, उद्वेगता की गन्ध न हो, बाणी से प्रेम भक्तवत्ता हो। ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है "भाचार का पालन, गृहस्थ का नियम कर्तव्य है। जिसमें भाचार नहीं उसे न यहाँ सुख मिलता है न वहाँ। सदाचार से बिना यज्ञ, दान, तप कोई करे भी तो क्या लाभ ? बिना पुण्य में भाचार का नियम नहीं बंधा, उसे दीर्घ आयु नहीं मिलती।"

अतिसि सत्कार को भी भाचार का एक अंग माना गया है, अतिस्य का अभिमान केवल मोक्ष पुराना ही नहीं है बल्कि अभावग्रस्त के अभाव को दूर करना, सवटग्रस्त से सवट को दूर करना और दुखी प्रणी को हर प्रकार से सहायता करना है। जो सामर्थ्य रखते हुए ऐसा नहीं करता, वह निन्दा का पात्र माना गया है। ऋषि के अनिष्टकार में समाजवाद के दर्शन होते हैं। वह अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं "समाज में धनवान व्यक्तियों के रहने धन्य लोगों को धनभाव के कारण जो कुर्म करने पड़ते हैं उनका वेत्तदायित्व धनी व्यक्तियों पर ही होता है।" परिश्रम-पूर्वक धन कमाने की सलाह भी दी गई है परन्तु उसका कुप्रभाव किसी अन्य पर न पड़े, इसकी चेतावनी भी दे दी गई है अन्यथा समाज में परस्पर अज्ञतोप और हृष की भावनाओं को जन्म मिलेगा।

महर्षि मार्कण्डेय अपने पाठक को आध्यात्म की साधना धारम्भ करने के पूर्व उत्तम नागरिक बनाना चाहते हैं। उनके मतानुसार नागरिकता के नियमों की अपेक्षा कर के अध्यात्म पथ पर बंधना असम्भव है क्योंकि यह तो उसकी पहली सीढ़ी है। उत्तम स्वास्थ्य तो उसकी नींव है ही।

अरगुणों के प्रति चेतावनी--

अनुप्य क्षेत्रज्ञ समाधिदिष्ट प्राणी है क्योंकि उसे बुद्धि बंधी महानतम सम्पत्ति से विभूषित किया गया है। अपने इस गौरव की स्थिरता के लिये

आवश्यक है कि वह बुद्धिमानों जैसे कार्य करे। बुद्धिमान वही है जो अपने विचारों को स्वस्थ और पवित्र रखता है क्योंकि मानव-जीवन की समस्त सुख-शान्ति उसके विचारों पर ही निर्भर करती है, इन्हीं से वह अपने भविष्य की, अपने भाग्य की रेखाओं का निर्माण करता है। विचारों को जो तत्व बदला बनाते हैं, उन्हें दूर करना आवश्यक है। बुरे विचारों को आसुरी शक्तियों की संज्ञा दी जाती है। इनसे सुरक्षा के लिये हमारे शास्त्रकारों ने बारबार चेतावनी दी है। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनने के लिये भी यही करना पड़ा था।

आव्यात्म पथ के पथिकों को आत्म-निरीक्षण की शिक्षा दी जाती है ताकि मन के एक करने में धुसे हुए दुर्गुणों को छोट-छोट कर बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इनसे बढ़कर अपना और कोई शत्रु नहीं है। यह ऐसे शत्रु हैं जो निरन्तर अपने साथ रहते हैं और पग-पग पर चोट पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अपनी आत्मिक शान्ति खो बैठता है क्योंकि उसे बाह्य जीवन में सब ओर लांछना, असफलता और तिरस्कार ही मिलता है। जिस प्रकार गन्ने, गलीज, छिनीने और झूत के रोगी से बचने का हर कोई प्रयत्न करता है, इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति जिघर जाता है, उधर से दुत्कारा जाता है। शरीर में धुसे हुए रोगों को दूर करने की हम चेष्टा करते हैं परन्तु अन्तः क्षेत्र को अस्त-व्यस्त कर डालने वाले दुर्गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। वास्तविकता यह है कि शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक दोष दुर्गुणों से अधिक हानि की सम्भावना होती है। दुर्गुण मानव के लिये एक अभिशाप हैं, एक कलङ्क हैं।

समाज में सर ऊँचा उठाकर चलने के लिये दुर्गुणों से रक्षा आवश्यक है। मार्कण्डेय ने बार-बार चेतावनी दी है, दुर्गुणों के दुष्परिणामों के भयङ्कर चित्र खींचे हैं सम्भव है उन्हें असम्भव की संज्ञा दी जाने लगे। परन्तु ऋषि का उद्देश्य केवल उन दुर्गुणों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा मात्र है कि इनसे यह परिणाम भी निकल सकते हैं। उदाहरण के लिये मद्यपान से बचने के लिये वलराम की कथा दी गई है कि जब महाभारत युद्ध में उन्होंने पाण्डवों और कौरवों में से किसी का भी पक्ष लेना उचित नहीं समझा तो वह तीर्थ

यात्रा को बल पड़े । एक दिन उन्होंने अधिक मद्यपान कर लिया और रेवत यम में प्रवेश किया जहाँ पर प्राणियों के समक्ष मृतजीवी बसा ही रही थी । ऋषि बलराम जी के सम्मान में उठ गड़े हुए परन्तु मृतजी ने व्यास जी की मर्यादा का पालन किया और शासन पर बँठे रहे । इससे बलराम जी को क्रोध आ गया और उन्होंने मृतजी का वध कर दिया । थोड़ी देर के बाद उन्हें होश आया तो इन कुट्टय पर लज्जित हुए और शमश्रित के रूप में नये तिर्रे से तीर्थाटन का आरम्भ किया ।

शराय को भी लोग पीते हैं । वह गाली, गलीच और लड़ाई-भगडा तो बरते देते जाते हैं परन्तु ऐसा कभी नहीं मुना कि किसी क्षराबी ने नशे में खूर होकर किसी का वध कर दिया हो । यदि दो-चार हृत्षामें इस तरह की हो जायें तो इसे कानून से ही बन्द करना पड़े क्योंकि इससे लोगों के जानमान को सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो जायगा । परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है । महर्षि मार्कण्डेय भी इस तथ्य से अवश्य परिचित होंगे परन्तु उन्होंने अनिन्दोक्ति सीधी में अपरोक्ष में मद्यपान के दोष का ही वर्णन किया है कि नशे में जब शान तनु सना मृग्य हो जाते हैं तो उस शणिक पागलपन का प्रवाह किसी भी और वह सक्ता है और वह व्यक्ति मारपीट से लेकर हरया तक कर सकता है ।

काम भी एक नशा है जो मनुष्य को मृग्य बना देता है । मन में इसकी उत्तजना इतनी तीव्र होती है कि कामी व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन कर बड़े दुःसाहस कर बँठता है । प्रायःकल युवतियों से छेड़-छाड़ तो साधारण बात हो गई है । सबक पर जाती हुई युवती का अपहरण कर लिपा जाता है और उसके मनमाने कुट्टय किये जाते हैं । वह युवती अपने बुभर्ग्य और फिर भगवान को कीमती होनी कि भसने यह पशुरूप में कैसे मानव बना दिये जो मानव शरीर की भी लज्जित करते हैं । वह इस समाज से भी मृग्य करने लगती है जो पतन की पराकाशा में पहुँच गया हो, फिर शासन की दीप देती है जहाँ किसी की लाज सुरक्षित नहीं है । इन घटनाओं पर सभी विचारक रोद प्रबट करते हैं परन्तु यह वातावरण उत्पन्न करने वाले जो माध्यम हैं,

उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता । अश्लील फिल्में और उपन्यास, पत्रिकाएँ जिनसे इस विषय की उत्पत्ति होती है, उनमें सुधार की आवश्यकता है ताकि युवकों में यह सद्बिचार उत्पन्न हों कि समाज की हर युवती उनकी बहिन है । यही सभ्य समाज की निशानी है अथवा तथाकथित विकसित युग की दुहाई देने से कोई लाभ नहीं है ।

इतिहास साक्षी है कि काम भावना से प्रेरित होकर रावण ने सीता का हरण किया और एक महान् युद्ध को निमन्त्रण दिया । अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये भीषण नर संहार कराया । काम के कारण हत्याओं के समाचार आज भी प्राप्त होते रहते हैं । इसी ओर महर्षि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है । एक कथा इस प्रकार से दी गई है कि नरिष्यन्त के पुत्र दम को दशरथ के राजा चारुवर्मा की पुत्री राजकुमारी सुमना के स्वयंवर में अपना पति चुना परन्तु भद्रप्रवेश के राजकुमार महानन्द, विदर्भ के राजकुमार वपुमान व महाधनु को यह सहन नहीं हुआ । उन्होंने एक पद्यन्त्र रचा जिसके अनुसार सुमना को बलपूर्वक छीन लेना था और यह निश्चित किया गया कि वह हम तीनों में से जिसको भी चुन लेगी, उसकी पत्नी हो जायेगी । यदि वह हममें से किसी को चुनेगी तो उसका वध करने वाला ही उसका पति माना जायगा । एक सुन्दर स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के लिये वह घोर अन्धाय और अधर्म पर उतारू हो गये । जब सुमना ने स्वयंवर में अपना पति चुन लिया तो इस दिशा में कोई भी पग जिसकी लाठी उसकी भैंस की संज्ञा में आ जाता है । दम और उसके शत्रुओं में घोर युद्ध हुआ । दम ने महानन्द का मस्तक काट दिया और वपुमान को वाणों से बंध दिया और सुमना को अपने घर ले गया । यदि कथा का मोड़ इस प्रकार से होता कि वह तीनों दम को कैदी बना लेते, या उसका वध कर देते और सुमना को भगा कर ले जाते और तीनों में कोई समझौता न हो पाता तो वह भी परस्पर युद्ध की लपेट में आकर नष्ट हो जाते तो और भी सुन्दर होता क्योंकि काम वासना के अन्तिम परिणामों तक कथा पहुँच जाती ।

पर स्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाले को पारलौकिक भय भी दिखाया गया है। कहा है कि ऐसे वामी व्यक्ति को नरक में तो जाना पड़ता है परन्तु वहाँ पर व्यक्तियों को खींचे जाने की वशी उन ही धार्मिकों में होती है। यह यातना बार-बार दी जाती है और सम्बन्धित समय तक चलती है। जिसने क्षणों तक यह पाप किया जाय, उतने वर्षों तक इसका फल भुगतना पड़ता है। नेत्रों से दूध निकालने वाले को नेत्रों की ही यातना दी जाती है। नियम यही है जिस भङ्ग से दोष किया जाता है, उसके सुधार के लिये उस भङ्ग को ही प्रताड़ना दी जाती है ताकि उसे अपने किये पर पछतावा हो और फिर उसकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प ले।

महर्षि ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि भले व्यक्तियों की कभी परीक्षा की घड़ी भी आती है जब जनको काम वासना की ओर घसीटा जाता है परन्तु इस समय विवेक से काम लेना चाहिए। महर्षि दुर्वासो को पतित करने के लिये वधु नाम की भस्तरा ने सब तरह की काम चलायें कीं तो ऋषि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु जब वह फिर भी अपने हाव भाव प्रदर्शित करने में लगी रही तो दुर्वासो ने उसे शाप दिया कि तुम सुपर्ण गीर्वाण में परिणीत बनो। मार्कण्डेय ने काम वासना से सुरक्षा के लिये सजग रहने की प्रेरणा दी है क्योंकि किसी समय भी आक्रमण होने का भयमर भा सकता है।

क्रोध मानव का दुर्जय शत्रु है। सब जानते हैं कि इससे मस्तिष्क की नसों में उरोजना उत्पन्न होती है, वह चलती है अतिका कुप्रभाव सारे शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है, मन व इन्द्रियाँ भी इस अग्नि की लपेट में आती हैं, बुद्धि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। गांधीजी ने इसे धारक और अफीम के नशे की संज्ञा दी है क्योंकि इनके सक्षण मिलते-जुलते हैं। कवियों ने भी कहा है कि पाप का मूल क्रोध है और क्रोध के मिटे बिना जीव का सन्तान नहीं मिट सकता। गीता में क्रोध से अविवेक की उत्पत्ति कही है क्योंकि क्रोधी को उस क्षण के बाद ही वास्तविकता से परिचय होता है। इसे नरक द्वार भी बताया गया है। यह अघ्यःश्म साधना को तो नष्ट ही करने वाला है। इन

दुष्परिणामों के कारण ही महर्षि मार्कण्डेय ने इस महारोग के प्रति सावधान किया है। इसके लिये उन्हें अनेकों कथाओं का सहारा लेना पड़ा।

वैवस्वत मनु के पुत्र पृथ्वी एक बार मृगया के लिये वन में गये, तो एक ब्राह्मण की गौ को गलती से मार दिया। तब ब्राह्मण ने पृथ्वी को शूद्र हो जाने का शाप दिया। क्रोध से क्रोध की वृद्धि होती है। राजा को भी क्रोध आ गया। राजा भी ब्राह्मण को शाप देने लगा। इस पर ब्राह्मण राजा को नष्ट करने के लिए दूसरा शाप देने को प्रस्तुत हुआ। उसी समय उसका पिता वहां पहुंच गया और उसे समझाया कि ब्राह्मण का भूषण क्रोध नहीं क्षमा है। क्रोध से तो धर्म, अर्थ और काम तीनों का नाश होता है। यदि ब्राह्मण का पिता बीच में न आ जाता तो दोनों की उत्तेजना बढ़ती ही जाती और दोनों एक दूसरे को शाप देते ही जाते, जब तक कि उन दोनों में से कोई एक नष्ट न हो जाता।

विश्वामित्र और वशिष्ठ का द्वेष और संघर्ष पुराण प्रसिद्ध है। इस पुराण में भी उसे दिया गया है परन्तु बदले हुए रूप में। वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जब विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से राज्य लिया तो वह जल में तपस्या कर रहे थे। जब वह बारह वर्षों के बाद तप करके आए तो उन्हें हरिश्चन्द्र के भूषण कष्टों से परिचय कराया गया। उन्हें क्रोध का आवेश था और विश्वामित्र को बक पक्षी होने का शाप दिया। विश्वामित्र तो क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उन्होंने वशिष्ठ को सारस हो जाने का शाप दे डाला। मनुष्य से पक्षियों की योनि प्राप्त होने पर भी दोनों को शान्ति न मिली और युद्ध पर उतारू हो गये। इससे सारे विश्व में हाहाकार मच गया और देवताओं की प्रेरणा से ब्रह्मा को बीच-बचाव के लिए आना पड़ा, तब कहीं वह शान्त हो पाए। इसमें क्रोध की पक्षियों के अज्ञान से तुलना की गई है और बताया है कि क्रोध से मानव कितना गिर जाता है। वह इसके आवेश में आकर घोर से घोर अपराध कर सकता है।

एक अन्य कथा में विश्वामित्र के क्रोध से विद्याओं का नाश बताया गया है। विद्या का अभिप्राय ज्ञान और विवेक है। क्रोध की उत्पत्ति ही अज्ञान और

प्रविवेक की नींव पर होती है। मन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वास्थ्य के इच्छुक व्यक्ति की इससे बचना चाहिए, तभी आध्यात्म साधना में कुछ प्रगति की प्राप्ति की जा सकती है।

क्रोध का आधार घट्टकार होता है। जब घट्टकार को डंस पहुँचती है तो क्रोध से उसकी क्षान्ति करने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु उसका परिणाम यथान्ति ही होता है। जो व्यक्ति इन दोनों के पजे में फँस जाता है, उसमें बड़े बड़े अपराध हो जाते हैं। बलराम जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति भी उससे नहीं बच पाए, जिनको भगवान् का अवतार भी माना जाता है। उनकी शक्ति, सामर्थ्य व अन्य बातों का दृष्टि में रखते हुए ही यह उच्च सम्मान दिया गया होगा परन्तु सूनजी जैसे बयाबाचक उनके भागमन पर सम्मान के प्रदर्शन व लिए सड़े नहीं होने तो उनके घट्टकार को ठोकर लगती है। जैसे दुखी और विविक्षित व्यक्ति अपने दुःख को दुख सखों के लिए भुलाने के लिए शराब पीता है, उसी तरह तो घट्टकार को पुष्टि न शान का जो दुःख होता है, उसकी निवृत्ति के लिए क्रोध के नसे की आवश्यकता आ पड़ती है। क्रोध का परिणाम घृच्छ भी हो, उससे थहकार का रोष तो दूर हो ही जाता है। एनांवेधिक दवाओं का भी वही प्रभाव पड़ता है। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रोग को वह शीघ्र ही दवा देती है परन्तु निश्चित रूप से अन्य भयकर रोगों की उत्पत्ति होती है। उसका परिणाम कुछ भी हां परन्तु रोगी व अभिभावक को यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि रागी जिस रोग से पीडित हो रहा था, वह ठीक हो गया। घट्टकार को शोषधि क्रोध है परन्तु क्रोध तो मार-पीट, गाली गलौच, युद्ध, सधर्प और हत्या आदि में ही शान्त होता है, उसका आहार बहुत ही भयकर राक्षसों का पा है। इसका कारण तो घट्टकार ही है। यदि घट्टकार को नश्वति न हो तो क्रोध का जगम तेना भी सम्भव नहीं है। परत घट्टकार रफी जड को ठी काट देना चाहिए जिसमें अन्य दोषों की वृद्धि न होने पाए।

पुराणकार ने शीम के शोषण रूप को भी प्रस्तुत किया है। एक राजा बिना कारण दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उस पर शाश्वतलु करता है, शीर वृद्ध और नर-गह्वार होने हैं शीर शक्तिशाली

राजा कमजोर को दवा देता है। अनेकों बार राजाओं के मन में सारी पृथ्वी का सम्राट बनने की लालसाएँ उत्पन्न की गई हैं। लोभ के भयङ्कर परिणामों को भी प्रस्तुत किया गया है।

भोग से पुण्य का क्षय बताया गया है। एक कथा में इससे शक्ति का नाश होना भी व्यक्त किया गया है। सुप्रत तपस्वी ने राजा विदूरथ को कुजृम्भ नाम के एक राक्षस के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि जिस दिन उसे कोई स्त्री छू देती है, उसकी शक्ति कम हो जाती है, दूसरे दिन पुनः बढ़ जाती है। इससे स्पष्ट है कि स्त्री के संसर्ग से शक्ति का व्यय होता है। भोग मानव पर अपना चहुँमुखी प्रभाव डालते हैं। इसीलिए प्राचीन काल में वानप्रस्थ और सन्यास की व्यवस्था बनाई गई थी ताकि भोगों से निवृत्त होकर आत्मकल्याण की साधना में अपना पूरा समय लगाया जा सके। यह तभी सम्भव है जब शक्ति के व्यय को रोका जाए। राजा राज्य वर्धन का जब एक बाल पक गया तो उसने समझा कि यह यमराज का दूत है और मृत्यु का सन्देश लेकर आया है। अतः मुझे अपने राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंपकर विषय-भोगों से निवृत्त होकर वन में जाकर तप करना चाहिए।" गृहस्थ में रहकर इस साधना को किया जा सके तो अत्यन्त उत्तम है।

इस तरह से पतन के जितने भी मार्ग हो सकते हैं, उनका ऋषि ने दिग्दर्शन कराया है और दुष्ट भावों से बचने की प्रेरणा दी है क्योंकि दुर्गुणों के रहते हुए इस लोक और परलोक दोनों में शान्ति की सम्भावना नहीं हो सकती, चाहे सैकड़ों प्रकार के भौतिक साधन उपलब्ध हों। दुराचारी सदैव अधान्त रहता है। शान्ति के लिए सदाचारी बनना आवश्यक है। उस मार्ग पर चलने के लिए मार्कण्डेय प्रेरित करते हैं।

मानव दोषों का पुतला है। अपने प्रबल संस्कारों व बुरे सङ्ग के कारण वह बुरे काम करता है परन्तु जब रोग उत्पन्न होते हैं, तो उनको दूर करने के लिए दवाओं की भी खोज कर ली गई है। शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोगों के भी उपचार हैं। भारतीय मनीषियों ने मानसिक विकारों की निवृत्ति का अमोघ उपाय यह बताया है कि पापी अपने पाप की घोषणा सार्वजनिक

रूप से कर दे। यदि वह अपने मन में उसे दबाए रखता है तो उसकी ग्रन्थि बन जाती है जो जन्म-जन्मान्तरो तक कष्ट का कारण बनती है। तभी विद्यान बनाया गया है कि जब किसी से गो हत्या हो जाय तो ग्राम में घूमकर घोर उस गाय की पूछ पकड़ कर चित्ता २ कर कहे कि मैंने इस गाय का वध किया है। यह उस पाप का प्रायश्चित्त मान लिया जाता है। दण्ड से पाप नहीं धुंलता है और न ही पापी को फिर पाप करने में बचाया जा सकता है। पाप एक मानसिक राग है, उसी का उपचार भी इसके प्रनुरूप ही होना चाहिए। मार्कण्डेय ने भी यही दवा बताई है। जब बलराम जी से मद्यपान के नशे में मूडगी का वध हो गया तो नशा उतरने पर वह अपने कूकर्म पर लज्जित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि इस पाप का क्षय करने के लिए अपने गुणों का बलान कर्ता हुआ बारह वष का व्रत करूँगा। वही मेरे पाप का सर्वोत्तम प्रायश्चित्त होगा। धार्मुनिक मनोविज्ञान ने भी द्य सिद्धान्त को अपनी स्वीकृति प्रदान की है।

मद्गुणों के विकास पर बल

मद्गुणों के प्रति सावधान रहने के साथ साथ मद्गुणों का विकास भी आवश्यक है। मद्गुणों को बहुमूल्य सम्पत्ति, मानव-जीवन की सबसे बड़ी विभूति मानी जाती है। मद्गुणों को मध्वी सम्पत्ति इसलिये कहा जा सकता है कि उन्हीं के आधार पर समस्त प्रकार की प्रगति कर सकना सम्भव होता है। दूसरों की सहायभूति, श्रद्धा एवं सद्भावना केवल उन्हें मिल सकती है जो मद्गुणी हैं। स्वास्थ्य, निशा, कौशल आदि के आधार पर धामतौर पर कुछ कहाया जाता है पर मधी निशा और निरस्थापी समृद्धि केवल मद्गुणों के आधार पर ही सम्भव होती है। ऐसी ही समृद्धि से मनुष्य का लौकिक और पारलौकिक जीवन सुख शान्तिमय बनता है।

पुराणकार ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। वह अपने पाठक को गरववादी, मदाचारी, शरित्वात्, श्रेष्ठ, परिधमी और स्वावलम्बी देखना चाहते हैं। मार्कण्डेय का भिन्न-भिन्न स्थानों पर आदेश है कि—“गृह्य की सदाचार

परायण होकर हृष्य, कव्य और आन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बांधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए । इनके प्रतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, मिशुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैसे प्रार्थना करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करे तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है । ...गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं । ...दुराचार में प्रवृत्त मनुष्य दोषजीवी कदापि नहीं हो सकता, इसलिये सदाचार में ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से दुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं । ...गृहस्थ को उपाजित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये संचित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग की मूलधन के रूप में वृद्धि करे... गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन है और प्रणाम करके अनुकूल वार्त्तालाप करे । उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न बहे । ...द्विजाति की निन्दा न करे । ...गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे । ...किसी के भर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दंभ, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड़ दे । मूर्ख, उन्मत्त, दुःखी आनन्दप्रस्त, विरूप, मायावी, अज्ञहीन अथवा अधिकज्ञ की हंसी उड़ा कर न छेड़े । ...परनारीगमन न करे क्योंकि परनारीगमन से दृष्टापूर्त्त नष्ट होता है और दीर्घयुि का ह्रास होता है । इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है । ...पूर्वाह्न में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यों एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे । ...देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे । यदि कोई ध्विनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे । सावधान चित्त सेवेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न

मनुष्य को शम्पा बधवा शासन पर न बैठे । शमगत वेद न धारे, शमगत वचन न बहे ।" गुरु या देवता क सामने वर फैलाना भी निषिद्ध है ।

दुर्वासा की तरह अपने चरित्र की सुरक्षा के लिये क्रिस्त प्रकार सत्रग रहना चाहिए, श्रुति एक ब्राह्मण की कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं । लाग यह समझ सकते हैं कि दुर्वासा तो श्रुति थे, वह तो हर प्रकार की सामर्थ्य रखते हैं परन्तु एक साधारण गृहस्थ कैसे पतन के मार्ग पर चलने से बच सकता है । एक ब्राह्मण के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर बन्धुनी नाम की कन्या प्रणम—प्रार्थना करती है । निर्जन पवतीय स्थान और युवती का प्रणय प्रस्ताव, स्वीकृति के लिये बाई बाधा नहीं, समाज का कोई बन्धन नहीं, धार-मान का कोई शकसर नहीं, फिर भी जिनका विवेक जाग्रत रहता है और उच्च भावनाओं से प्रीत-प्रोत रहते हैं, वह कोई देवता ही या नहीं, कदापि दुष्कर्म नहीं कर सकते क्योंकि वह ईश्वर को सर्वथापक मानते हैं और उसके सह्य नशे का अनुभव करते हैं । ब्राह्मण कुमार ने बाह्य रूप का मूल्यांकन न किया और प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा दिया । ब्राह्मण के दाम्प ध्यान देने योग्य है —

“ब्राह्मण के लिये भोग चेष्टा, प्रशस्त नहीं मानी गई है अपितु धर्मशुभान और बतम्भपरायणता का प्रयत्न ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह इस लोक में कलश देने वाली होने पर भी परलोक में उत्तम फल देती है । मेरे मुदजनो की यह शिक्षा है कि परायी स्त्री की धमिलाया कभी नहीं करनी चाहिए । अतः मैं तुम्हें किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकता भले ही तुम रोती विल्लाती रहो और निराशा के शोक से मूढ जाओ ।”

ब्राह्मण की प्रार्थना पर ही उसके चरित्र का परिचय मिलता है । “यदि मैंने कभी भी ठीक समय पर वैदिक कर्म का स्वागत न किया हो और कभी भी मेरे मन में पराये धन और परायी स्त्री की इच्छा न हुई हो तो मेरा मनोऽप पूर्ण हो, चरित्रवान् स्त्री का मन सबल और आत्मा शक्तिशाली होती है, उगका कोई भी बटिन ने बटिन वार्य कना नहीं रहना । जीवन के हर पग पर सफलता उगका स्वागत करती है ।

सद्गुरुओं के विकास और चरित्र के उत्थान व स्थिरता के लिए अच्छे सङ्ग की अपेक्षा रहती है। सङ्ग का प्रभाव अपरिहार्य है। अच्छा सङ्ग भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। ऋषि ने भी शिक्षा दी है कि "सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे। वेदज्ञान से युक्त, विद्वान्, व्रत पगयण और स्नातक का सङ्ग करे," बुद्धिमान् मदालसा ने भी कष्ट आने पर सत्पुरुषों का सङ्ग करने की शिक्षा दी है। मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक अँगूठी दी थी कि जब सङ्कट आए तो इसमें लिपटे कागज पर लिखी शिक्षा का सहारा लेना। एक बार अलर्क के बड़े भाई सुवाहु ने काशीश्वर की सहायता से अलर्क के राज्य पर आक्रमण करके उसे राज्य-च्युत कर दिया तो उसने माता की अँगूठी में लिपटी शिक्षा खोली। उसमें लिखा था "प्रत्येक को सङ्ग का त्याग करना चाहिए। ऐसा सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ ही सङ्ग करना चाहिए। सज्जन पुरुषों का सङ्ग औषधि है।" माँ की इस शिक्षा को शिरोधार्य कर अलर्क योगीराज दत्तात्रेय के पास गए। वहाँ से उसके दुःख का समाधान हुआ।

सत्सङ्ग का प्रभाव यदि मनुष्य के व्यवहार पर अनुकूल नहीं पड़ता तो उस सङ्ग से क्या लाभ? मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में उच्च सम्मान का इच्छुक रहता है परन्तु भूठ, छल, कपट से वह मान मिट्टी में मिल जाता है, और सरल सत्य-व्यवहार से सम्मान की वृद्धि होती है। लोग उस पर विश्वास करते हैं। कपटी और छली व्यक्ति पर अपने बन्धु-बान्धव भी विश्वास नहीं करते और उसके हर व्यवहार को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए पुराणकार ने घोर से घोर सङ्कट में भी सत्य का परित्याग न करने की शिक्षा दी है। इसके लिए राजा हरिश्चन्द्र का लम्बा आस्थान देना पड़ा है। रानी के मुख से ही सत्य पालन के प्रति दृढ़ निष्ठा की प्रेरणा दिलाई गई है। "राजन्! चिन्ता का त्याग करो, सत्य का पालन करो। सत्य से च्युत व्यक्ति शमशान की तरह त्याग योग्य होता है। व्यक्ति के लिए सत्य पालन से बड़ा कोई धर्म नहीं है। सत्य पालन न करने वाले के अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान और समस्त पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म शास्त्र कहते हैं कि सत्य से

उत्पान और अत्यन्त से पतन होता है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सर्व श्रेष्ठ धर्म है। स्वर्ग का अधिष्ठान भी सत्य ही है। एक पलड़े पर सत्य को और दूसरे पर एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल रखा गया था। सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।" ब्राह्मण का तो यह विशेष गुण घोषित किया गया है। वही है, "ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व इसी में है कि वह पक्षों के सामने भी सत्य का पालन करे। ब्राह्मण को जो पुण्य सत्य व्यवहार से होता है वह अक्षय्य दक्षिणा यान्ते यज्ञों से भयवा किसी उत्तम काम से नहीं प्राप्त हो सकता।"

सत्यवादी ही सच्चा मित्र समझा जा सकता है, उस पर कोई भी विश्वास कर सकता है। उसका सामाजिक सम्बन्ध विस्तृत हो जाते हैं। जन नेतृत्व के योग्य भी वही होता है। मित्रता का कसौटी उपकार बताई गई है। ऋषि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है 'मित्रता का स्थायं जिससे अपूर्ण नहीं रहना, वह मनुष्य धन्य है, उसका जन्म और जीवन धन्य है। मित्रों के उपकार का बदला चुकाए बिना जो अपन को अविश्वसनीय समझता है, उसके जीवन को चिन्कार है।' इसकी पुष्टि के लिए एक रोचक कथा का भी सहारा लिया गया है। मदानमा न जब अपने पति राजा ऋतध्वज की मृत्यु का समाचार सुना तो वह उसी क्षण मूर्छित होकर यमपुर पहुंच गई। यह समाचार मलतया। जब ऋतध्वज आए तो उन्हें बहुत दुःख हुआ और जीवन भर विवाह न करने का निश्चय किया। नागराज अश्वतर के पुत्र इनके मित्र थे। उन्होंने यह पटना अपने पिता की मुनाई। पिता अपने पुत्रों को अपने मित्र का स्वागत सरकार के उपकार करने को शिक्षा देते थे परन्तु पुत्रों की दलील थी कि सरकार की हर वस्तु उसकी उपलब्ध है, केवल पत्नी का उसे अभाव है जो सर्वथा सम्भव है। पिता न सीखे कि पुरुषार्थ करने पर हर असम्भव वस्तु भी सम्भव हो जाती है। पिता के प्रयत्न से यह भी सम्भव हो गया। मित्रता मानवता का एक आवश्यक अंग है।

पुरुषार्थ की महिमा का गान भी स्थान २ पर किया गया है। लक्ष्मी की प्रति का अधिकारी भी उल्लेख हो बताया गया है।

पराजित होने पर लज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्बर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्य राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध संघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा बन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि "मैं इस योग्य नहीं हूँ, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूँ। मुझ बन्दी का आपने मुक्त कराया था, मैं स्वयं मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सङ्कट से उबारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सङ्कटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ", ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सत्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्व का निरूपण

दान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन में कितनी ठोकरें खानी पड़ेगी? निर्धन व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस-नस में ऐश-आराम ओत-प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड़

हट पड़े, तो उनका मात्म-हत्या जैसी निराशात्रय वार्ता के सोचने के प्रति-रिक्त घोर कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। किसी बरोडपति को एक दिन में कङ्कात कर दिया जाय तो उससे हृदय की गति बन्द हो जायगी परन्तु हरि-श्वन्द ने सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक भेला। कारण स्पष्ट है, जेके मन मे दिव्यता छाई हुई थी, उसकी प्रवृत्ति देने की थी। यदि वह स्वार्थी स्वभाव का होता, सब तो वह अवश्य जीवन से निराश हो जाता। श्रुति प्रेरित करते हैं कि यदि समाज हित के लिये घोर कष्टों का सामना करना पड़े तो भी उनका स्वागत करना चाहिए।

ज्ञान से परमार्थ की सद्प्रवृत्ति या उदय होता है। मन स्थिति में उदारता प्राप्ती है, स्वार्थपरता का नाश होता चलता है और मनुष्य अपने प्रतिरिक्त दूसरों के बारे में भी सोचता है। उनसे दिन की अपना दित्त मानने लगता है। पुराणकार ने लिखा है कि जो दूसरों के अहित की योजना बनाता है उसका स्वयं ही अहित होता है। एक कथा में राजा खनित्र के मन्त्री विश्ववेदी ने समक विरुद्ध पद्मन्त्र रचकर चार पुरोहितों से अभिचारक प्रयोग करवाये जिससे चार कृत्यायें उत्पन्न हुई परन्तु वह खनित्र का कुछ भी न बिगाड सकी। परिणाम स्वरूप उन्होंने लौटकर चार पुरोहितों और विश्ववेदी पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला।

पुराणकार ने इस दुरी भावना से बचने घोर परमार्थ भावना को मन में स्थिर रखने पर बल दिया है। हरिश्वन्द के कष्टों के नाटक का जब अन्त हुआ तो देवता उन्हें स्वर्ग लेने के लिये धाये परन्तु राजा ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं अयोध्या की प्यारी प्रजा को व्यथित छोड कर अवेला नहीं जा सकता। वह अपनी पुण्य राशि का उपयोग अपनी प्रजा के साप बनना चाहते हैं। यदि वह सब के सब मेरे साप स्वर्ग जा सकें तभी मैं वहाँ जा पाऊँगा अन्यथा उनके साप मुझे नरक जाना ही पसन्द होगा।”

एक बार किमी कारण से विदेहराज की छोडे समय के लिये नरक जाना पडा। उससे पट्टवते ही नरकवासियों को बहुत खुसद प्रतीत हुआ। राजा ने उसका कारण पूछा तो समझत ने कहा—“आपके पुण्य धनमित्त है,

आपने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये हैं। समुद्र में जल की लूँदों, आकाश में तारों, मेघ में से जल की बरसती हुई जलधाराओं और गंगा में बालू के कणों की तरह आपके असंख्य पुत्र्य हैं। उसके कारण आपको स्पर्श करके जो वायु चल रही है, उससे नरकवासियों को अपने कष्टों में कमी अनुभव हो रही है।” यह सुनकर विदेहराज ने नरक से जाने को मना कर दिया और स्पष्ट कहा कि जब तक यह लोग नरक में पड़े हैं, मैं भी यहीं रहूँगा।” यह कहना सरल है करना कठिन है। जिसने जीवन भर सुख ही देखे हों उसके लिये दुःख की एक धड़ी भी युग के बराबर होती है परन्तु जिसके मन में ऐसी उच्च भावनाएँ उठती हैं, वह मानव नहीं महामानव है। मार्कण्डेय ऐसा ही महामानव अपने पाठकों को देखना चाहते हैं तभी भिन्न-भिन्न कथाओं द्वारा इस प्रकरण को दुहराया गया है।

राजा राज्यवर्धन की आयु बढ़ाने के लिये प्रजा ने सूर्यदेव की सामूहिक प्रार्थना की। इससे राजा की आयु दस हजार वर्ष बढ़ गई। राजा इससे चिन्तित हुए कि “मैं तो दस हजार वर्ष तक जीवित रहूँगा, मेरे प्रजाजन यमराज के शिकार होते रहेंगे। मुझे यह आयु तभी ग्राह्य है जब मेरी प्रजा की भी यही आयु हो।” इस परमार्थ भावना से ओत-प्रोत हो राजा ने सूर्यदेव की एक वर्ष तक आराधना की और सारी प्रजा की आयु भी दस हजार वर्ष की हो गई तभी वे सन्तुष्ट हुए।

ऋषि ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि स्वार्थ आसुरी वृत्ति है, परमार्थ दैवी गुण है। इस गुण के विकास के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे जो मानसिक शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस शान्ति को हीरे-पत्थों से नहीं खरीदा जा सकता, इसे तो अपनी भावनाओं को उदार बनाकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखेर देने से आकर्षित किया जा सकता है। इस भावना की पुष्टि व संवर्धन के लिये विश्व कल्याण की प्रार्थना को बड़े ढङ्ग से संजोया गया है “सब प्राणी सुखी हों, अन्धों में स्नेह रखें, समस्त प्राणियों का कल्याण हो और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

जीवों को किसी प्रकार का तारीरिक व मानसिक रोग न हो, सब लोग सबके मित्र हो... तुम्हारी बुद्धि में सब प्राणियों के कल्याण की भावना हो। जिस प्रकार अपना और अपने सन्तान का हित चाहते हो, उसी तरह सब प्राणियों के कल्याण की बात सोचो।..... जो मुझसे प्रेम करता है, उसका सर्व हित साधन हो। मुझसे द्वेष करने वाले का भी सर्व कल्याण हो।”

इन पवित्र भावनाओं को अपने जीवन का अङ्ग बनाने वाले ही विश्व हितधी महामानव बन पाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

इस भावना के विकास के लिये ऋषि ने एक अनुभव सिद्ध साधना का भी निर्देश किया है। वह है यज्ञ। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परमार्थ, निस्वार्थता। यज्ञ का लाभ शत्रु और मित्र सभी को एक समान पहुँचता है। यह हम तभी तभी प्राप्त कर सकते हैं जो हित साधन को राधना है। यज्ञ करने वाले का कोई धनु नहीं रह जाता, उसे सब ओर अपना ही रूप दिखाई देता है। सभी को वह अपने गाढ़े पसीने की कमाई को वायु में बिखरने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। यह जानना है कि अपने द्वेषियों को भी लाभ पहुँचाने से यह रोक नहीं सकता। यज्ञ वह धनु को शत्रु मानना ही छोड़ देता है। यज्ञ से वह सारे ब्रह्माण्ड से अपना नाता जोड़ता है। पहले वह केवल अपने परिवार तक ही सीमित था परन्तु यज्ञ का प्रभाव तो ईश्वर तत्त्व के माध्यम से सारे विश्व में फैल जाता है, यज्ञ वह अपने शरीर को ही ब्रह्माण्ड शरीर मानने लगता है।

जाति-पात, रंगभेद और सम्प्रदाय के सङ्घीण विचारों से ऊपर उठकर विश्व मंत्री की उच्च भावना को जागृत करने के लिये यज्ञ सरल व श्रेष्ठ साधन है। प्राचीन काल में इसी माध्यम से जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जाता था। पुराणकार का कहना है कि नरिष्यन्त ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जनता ने अस्त्रों को यज्ञ किये। पूर्व में अठारह करोड़, प्रथम में सात करोड़, दशिए में चौदह करोड़ और उत्तर में पन्द्रह करोड़ यज्ञ सम्पन्न हुए। इन महान् योजनाओं के फलस्वरूप ही जन-साधारण की सङ्घीण भावनाओं का परिष्कार हो पाया और राम राज्य का साकार रूप देने की मिला जहाँ पाप, हाय, चोरी, डकैती, छल कपट, भ्रादि का नाम

निश्चान न था । लोग इस लोक की अपेक्षा परलोक का अधिक ध्यान रखते थे । आज उसके विपरीत है । वह युग पुनः आ सकता है यदि हम ऋषियों की योजनाओं के अनुसार अपने जीवन को मोड़ दें तो ।

जीवन निर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन—

मार्कण्डेय पुराण में विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों का उल्लेख है जिनका प्रगति पथ पर आरूढ़ होने वाले हर मानव के लिए समझना आवश्यक है ।

भौतिकवादी स्थूल नेत्रों से दिखाई देने वाले इस पञ्चभौतिक शरीर को ही सर्वस्व मानते हैं, उससे आगे की वे कल्पना भी नहीं कर सकते । वे उस सूक्ष्म, चेतन तत्व से अपरिचित हैं जिसके आधार पर समस्त क्रियाओं का सञ्चालन होता है । भारतीयों ने उस जीवनतत्व का नाम आत्मा रखा । जो इसे समझता नहीं, वह दुःखी रहता है क्योंकि शरीर अनित्य व नष्ट होने वाला है, उस पर अपने भविष्य को निर्भर करने वाला कभी शाश्वत सुख की आशा नहीं रख सकता । शान्ति के लिए मूल तत्व को जानना होगा । उसके लिए प्रयत्न करने होंगे । आत्मा को जान कर उस के उद्धान की योजनाओं को क्रियान्वित करना होगा । जो विघ्न बाधाएँ इसके मार्ग में आती हैं, उन्हें हटाना होगा, अपनों विचारबारा और जीवन पद्धति को परिष्कृत करना होगा ।

पुराणकार ने दुःख की निवृत्ति के लिए शरीर भावना के त्याग का परामर्श दिया है । जब मदालसा पुत्र अलर्क के राज्य पर सुबाहु और काशिराज ने आक्रमण करके उसके राज्य को छीन लिया तो उसे अपनी माँ की उस शिक्षा का स्मरण हो आया कि संकट के समय इस अगूँठी में लिपटी शिक्षा के मार्गदर्शन में चलना । उसमें सत्पुरुषों के संग की प्रेरणा दी गई थी । अलर्क योगी दत्तात्रेय के पास गया । दत्तात्रेय ने कहा कि तुम अपने दुःख का कारण बताओ, मैं आज ही उसे नष्ट कर दूँगा । जब अलर्क ने उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया तो लगा कि उसने भारी भूल की, दुःख तो शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है और वास्तव में

में इन म भिन्न हैं । दुःख तो मेरे बाह्य उपकरणों को घा, मुझे नहीं, मैं तो इनसे सर्वथा भिन्न हूँ । मुझे तो दुःख छू भी नहीं सकता । मेरे अज्ञान के कारण उस ने मुझे दबाये रखा । अब मैं शरीर से सम्बन्धित नहीं हूँ । इसलिये दुःख स परे हूँ ।

जब तक मनुष्य शरीर भावना से निरत रहता है, तब तक वह पारोक्षिक परिवर्तनों से प्रभावित होता रहता है । इस से ऊपर उठकर जब आत्म भावना में स्थित होता है तभी उसे आनन्द का मार्ग मिलता है । इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा श्रद्धा देते हैं ।

इस सम्बन्ध में सायना का भी पद्य प्रदर्शन किया है । आत्मा को जीतने के लिए लिखा है "प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे । जैसे अग्नि में पड़कर सब धातु दोष-रहित होती हैं, वैसे ही प्राण धामु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट होते हैं ।" यह आत्मदर्शन में बाधक तत्व हैं, इन्हें दूर करना आवश्यक है ।

जिसे आत्मदर्शन हो जाते हैं, वह सामाजिक दुखों से अलिप्त रहता है । मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती । वे मृत्यु का प्रसन्नता पूर्वक, भातिगन करते हैं, अपने सम्बन्धियों की मृत्यु पर शोक नहीं मनाते । मृत्यु को तो वे केवल बन्धों का बदलना मात्र मानते हैं । जीवन तो एक अलसत्त्व तत्व है । शरीर नाम से उसका नाम समझव है । एक शरीर के नाश के बाद आत्मा दूसरा शरीर धारण करेगी, उस के भी नष्ट होने पर तीसरा धारण करेगी, जब तक जीवन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता, यह यात्रा चलती ही रहेगी । यह तो यात्रा के भिन्न-भिन्न पड़ाव हैं, इनकी वास्तविकता से आँसू मूँदकर रोना पीटना अज्ञानता है । मदासना ने अपने पति को मृत्यु के समाचार सुन कर शरीर त्याग दिया तो राजा ने कहा कि "सब प्रकार के सम्बन्धों की धनित्यता पर विचार करने पर ऐसा भगता है कि क्या पुन के लिये रोऊँ और क्या पुन बंधु के लिये रोऊँ ? अर्थात् दोनों में किसी के लिये रोने का कोई कारण नहीं है ।"

इन विचारों की पुष्टि के लिये पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उभारा गया है। सुमति नाम के एक ब्राह्मण कुमार की कथा दी गई है कि जब उसका उपनयन संस्कार किया गया तो उसे उपदेश दिया गया कि उसे क्रमशः ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रमों में प्रवेश करना होगा। इनके कर्तव्यों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने पर ही उसे ब्रह्म प्राप्ति होगी। इन पर सुमति ने अपने अनेकों जन्मों का वृत्तान्त सुनाया। उन जन्मों में वेदाध्ययन और आश्रम धर्मों के पालन की बात कही, कैसे एक बार नरक की यातना भोगनी पड़ी, उसका भी वृत्तान्त है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त बताता है कि शरीर के नाश से हमारी प्रगति अवरुद्ध नहीं हो जाती। जितना विकास हम ने इस शरीर के माध्यम से कर लिया है, वह भी नष्ट नहीं होता, उसके संस्कार हम सूक्ष्म शरीर के साथ ले जाते हैं और आगामी जीवन में हम इस विकास का उपयोग करते हैं। कई व्यक्तियों में जन्मजात विलक्षण प्रतिभा बाल्यकाल से ही प्रस्फुटित होने लगती है, वह उनके इस जन्म के कारण नहीं बरन् पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण होता है।

इसीलिए मार्कण्डेय ने जीवन निर्माण के प्रमुख सूत्र कर्म को प्रमुखता दी है। कर्म को ही समस्त सफलताओं का श्रेय दिया है। कहा है “कर्म का बल पृथ्वी के मानव की श्रेष्ठतम शक्ति है। यही उसकी विजय का रहस्य है। यही कारण है कि स्वर्ग के देवता भी पृथ्वी पर जन्म लेने को उत्सुक रहते हैं। जिनके पास कर्म का हथियार होता है, वह उसको सहायता से देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व सभी को प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं। जिन व्यक्तियों का चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वश में हैं और जो कर्म करने के लिये उद्यत हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं होता। चलती हुई चींटी हजारों योजन चल जाती है, बिना चले गरुड़ भी एक पग नहीं जा पाता।”

इन सशक्त शब्दों से ऋषि आशा की जीवन ज्योति जलाते हैं और आश्वासन देते हैं कि जैसी भी परिस्थितियाँ इस जीवन में उपलब्ध हुई हैं,

उन्से निराश न होता चाहिये, उनके लिये भाग्य और भगवान को कोसना कायरता और निवृत्तता की निशानी है, कर्म का विस्तृत क्षेत्र मानव के लिये खुला पड़ा है, वह स्वतन्त्रता पूरक अपने कर्मों का जाल बिछा सकता है, उन्हें नष्ट करने का अधिकार किसी भी मानव को नहीं दिया गया। यह अलग बात है कि उनमें विघ्न बाधाएँ उपस्थित हों, जिन्हें दूर करने के लिये कृष्ण प्रतिरिक्त पुरुषाय करना पड़े परन्तु उम दयालु परमात्मा ने उन्नति का मार्ग हमारे चिय खुला छोड़ दिया है। हम अपने कर्मों के द्वारा अच्चतम भासन पर स्थित हो सकते हैं। यदि हम भागे नहीं बढ रहे तो इसका कारण हम स्वयं हैं न कि भाग्य और भगवान। किसी को हमारे लिये कुछ नहीं करना है। करन वाले हम स्वयं हैं। अपने भाग्य को हम स्वयं लिखना है, बनाना है। इसी पर ऋषि ने विदोष बल दिया है।

जब राजा शमश्रुति के पुत्र अपने मित्र ऋतष्वज के दुःख निवारण के लिए कुछ नहीं कर सके तो पिता ने कहा 'पुत्रो ! तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं है। बुद्धिमानों के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं होता, पुरुषार्थ से सब कुछ उपलब्ध किया जा सकता है — उद्योगी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान अगम्य और कोई स्थान अगम्य नहीं होता। कहाँ भूतल और कहाँ ध्रुव का पद ? फिर भी इस भूतल पर निवास करने वाले ध्रुव ने उद्योग द्वारा ध्रुव का पद पा ही लिया।

एक राजकुमार ने कामना की है कि "जो अपने शल पीरप से सम्पत्ति और स्वाति प्रवित्र करते हैं और अपने पीरप से ही सबदों को पार करते हैं मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ।" पुरुषार्थ ऐसा शस्त्र है जिससे सासारिक विघ्न बाधाओं, कठिनाइयों व रुकावटों को दूर करके मानव लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। उसी की ओर ऋषि ने हमें आशुष्ट किया है।

मानव को कुभाग से बचाने और सद्भाग्य की ओर प्रेरित करने के लिये अनेकों प्रकार के उपाय अपनाये जाते हैं। उनमें एक नरकों के भय

दिखाना भी है। कर्मफल के सिद्धान्त को तो हर भारतीय स्वीकार करता ही है। वर्तमान घुरी या अच्युती परिस्थितियों का श्रेय भी पिछले जन्मों के घुरे या अच्युते कर्मों को ही होता है। नरक अथवा स्वर्ग का सम्भोग तो वह यहाँ भी कर लेता है। यदि इन्हीं तथ्यों को भीषण रूप से वर्णित करके नरक और स्वर्ग पृथ्वी से दूर किसी दूरस्थ लोक में बताया जाते हैं तो उन पर साधारणजन विश्वास कर लेते हैं और उनमें दी जाने वाली यातनाओं की भयङ्करता को सुनकर वह भयभीत हो जाते हैं और घुरे कर्मों से बचते हैं। इसी उद्देश्य से मार्कण्डेयपुराण में नरकों का विस्तृत वर्णन है जिनमें लाखों करोड़ों जीव अपने दुष्कर्मों के भोग भोगते दिखाये गये हैं। वहाँ की लोमहर्षक यातनाओं को सुनकर हृदय बाँप उठना है। उदाहरण के लिए 'जिन नराधम मनुष्यों ने पर नारी को दूषित नेत्रों से देखा है अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रों से देखा है, उनके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते हैं, इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये हैं, उतने ही सहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु की भी शान दृष्टि का हरण करने के लिये अन्याय पूर्वक विपरीत वा.स्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है।'

'जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है, यह वज्र-तुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी बार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रों में या पिता-पुत्र से भेद डलवाया है अथवा याज्ञिक-यजमान में, माता-पुत्र में या पति-पत्नी में मन-मुटाव करा दिया है, वे इस कर पत्र से ब्राह्मण होते हैं अथवा जो किसी को क्रोध दिलाते या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते हैं, जो ताड़ का पंखा या खस या चन्दन का हरण करते अथवा साधुओं को प्रारणान्तक पीड़ा देते हैं, वे पापी तम रेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथवा जो एक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते हैं।'

पुनर्जन्म का सिद्धान्त सर्वमान्य है। यह निश्चित है कि हजारों प्रकार

की पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि की नीच योनियों से होकर मानव की यह योनि प्राप्त होती है। इस योनि में आकर भी यदि वह पतित कर्म करता है तो पुनः उस योनियों में उसे जाना पड़ता है। कर्म से किंग योनि में जाना पड़ता है, इसकी विस्तृत सूची पुराणकार ने ही है। उदाहरण के लिए "पतित मनुष्य से घन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित मनुष्य को पन्न कराने पर नरक से मुक्त होकर इमि योनि पाता है। उपाध्याय के प्रति धन करने उसकी स्त्री या भ्रष्ट वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है। माता पिता का भ्रमण करने वाला गया और उन्हें माली देने वाला मीना होता है। भाई की पत्नी का भ्रमण करने वाला कबूतर होता है उसे पीड़ित करने से कछुआ होता है। स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उमरा अभिनिषिप्त नहीं करता, वह मोह में भरकर मरणान्तर बन्दर बनता है। किसी की धरोहर हठ करने वाला नरक से मुक्त होने पर इमि होता है, धमूथा करने वाला नरकान्त में राक्षस होता है।'

नरको, उसमें ही जाने वाली मातनाओं और विभिन्न प्रकार की योनियों के वर्णन का उद्देश्य यह है कि मानव दुन्दुभों से बचे और सत्कर्मों का सम्पादन करे ताकि उसे श्रेष्ठतम योनि में पाकर पुनः पुनः योनियों में न जाना पड़े। यह मानव की योनि संवर्धन का ही परिणाम ही सकता है। पतन से बचने के लिए ही मार्कण्डेय ने यह उत्प्रेषण किया है।

साधनात्मक प्रक्रियाएँ

इस सिद्धान्त से हर व्यक्ति परिचित है कि इस जीवन की सुख-सुविधाएँ पिछले उदार कार्यों के कारण प्राप्त हुई हैं और कठिन परिस्थितियों का कारण सच्चीरुण और धुद्र भावनाएँ रही हैं। स्वर्गीय सुखों का भोग करना तो हर कोई चाहता है परन्तु उसके अनुरूप सद्कार्यों का करना हर किसी के बस की बात नहीं है। मनुष्य न चाहते हुए भी पाप करता है। बुरे कार्यों को बुरा समझते हुए भी उनमें फँसता है। इसका कारण उसका अपवित्र और निर्बल मन है। पवित्र और सबल मन में ही सद्विचार उठते हैं। परन्तु मन को अपनी इच्छा-नुसार चलाना सरल नहीं है। उसकी गति वायु से भी तीव्र है। इसकी चञ्चलता तो प्रसिद्ध है ही। इसे पवित्र, शक्तिशाली और अपने नियन्त्रण में रखने के लिए अनेकों प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं का आविष्कार किया गया है जिन्हें अपना कर हितसाधन किया जा सकता है। जप, तप, योग और विचार-साधना के अनेकों मार्ग हैं जिनमें से कुछ का मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने प्रणव की साधना की ओर साधकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह मन्त्रों का सेतु व क्षिरोमणि है। योगियों ने समाधि अवस्था में देखा कि सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो ध्वनि निरन्तर हो रही है, वह प्रणव की ध्वनि से मिलती-जुलती है। अतः उस ध्वनि को अपने दिव्य कर्णों द्वारा श्रवण करके उन्होंने मानव के हितार्थ साधना का रूप दे दिया ताकि मानव उसके अनुरूप अपने को बना सके। अनुकूलता में शक्ति का विकास और प्रतिकूलता में उसका हास होता है। इसलिए प्रणव को श्रेष्ठतम साधना माना गया है जिसकी महिमा का गान स्वयं पुराणकार ने किया है—“जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन हैं तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं, उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी उनको पाने के लिये ‘ॐ’ इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे। यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार का श्रवण करना चाहिये..... योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है, प्राण को ध्रुप रूप, आत्मा को वाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने..... ओंकार ही त्रिवेद,

मैलोव्य घोर तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋक्, यजु, साम स्वरूप है.....नेचन '३३' का उच्चारण करके ही सदैव सन् अमृत का ग्रहण ही जाता है.....जो योगी शीतल स्वरूप या ब्रह्म को जानकर उनका 'ध्यान' करते हैं वह समार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़ कर उस पर-ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। यदि उनके कम बन्धन लीन न हो तो वह अग्रिष्ठ द्वारा मृत्यु जानकर उन समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुन प्राप्त होते हैं।" यह शास्त्रा में वर्णित ऋषियों के अनुभवों से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

योग साधना की भी विस्तृत शिक्षा पुराणकार ने दी है। अस्तेय, ब्रह्म-चर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा के पाँच यमों और अक्रोध, गुह्यसेवा, शौच, लघु आहार और नित्य स्वाध्याय के पाँच नियमों के पालन को आवश्यक माना गया है। इसी स्थिति पर आणामी क्रियाओं का सफल सम्बालन सम्भव है। योग की नींव को दृढ़ करने के लिए इन नैतिक नियमों का पालन आवश्यक है। प्राणायाम में शोषा को धारण। स पात्रों को, पत्य हार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करने की प्रेरणा दी गई है। प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के समस्त दोषों का नष्ट होना बताया गया है। आत्मा पर विजय प्राप्त करने का साधन योग की इन साधनाओं को माना गया है। इन सभी क्रियाओं को खोलकर समझाया गया है। इनमें प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी वर्णन है। अष्ट सिद्धि की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है और इन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली कहा गया है। ध्यान के सम्बन्ध में कहा है— 'निश्चल चेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से अप श्रेष्ठ है, अप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से नि मङ्ग और रागहीन 'ध्यान' श्रेष्ठ है क्योंकि इस ध्यान के द्वारा ही साश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो साधकानों से ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, एकाग्रवाणी और त्रिनेन्द्रिय होकर योग साधन करते हैं वे आत्मा में आत्मा के सयोग का पाकर मोक्ष लाभ करते हैं।" इन साधनाओं की क्रिया रूप देकर निश्चिन्त रूप से आत्मा और परमात्मा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

तप की प्रेरणा तो पग-पग पर दी गई है। जितने भी राजाओं के जीवन-चरित्रों अथवा कथाओं का पुराण में वर्णन है, लगभग सभी ने वृद्धावस्था आने पर राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर तपश्चर्या के लिए वन के लिए प्रस्थान किया। तपस्वी का वेप धारण करके वे क्रोध, हिंसा, बदले की भावना से बचते रहे हैं। कई बार जब वन में मुनियों को नागों, राक्षसों व अन्य-आसुरी शक्तियों ने परेशान किया तो उन्हें शाप द्वारा स्वयं भस्म करने की शक्ति-सामर्थ्य रखते हुए भी वे राजा के पास रक्षा की प्रार्थना के लिये जाते हैं क्योंकि क्रोध से उनकी आध्यात्मिक शक्ति के क्षय होने की सम्भावना थी। तप द्वारा शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है।

आत्मोत्थान के लिये चिन्तन-मनन एक उच्चकोटि की साधना है। इसमें दोनों पक्षों की ओर ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो अपनी भावनाओं में सात्त्विकता लानी चाहिये। नागराज ने जब ऋतुध्वज से वर माँगने के लिये कहा तो उसने उत्तर दिया—“यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मेरे हृदय से धर्म की भावना कभी दूर न हो।” वास्तविकता के धारण करने को धर्म कहते हैं। कर्तव्य पालन ही सच्चा धर्म है। धर्म-भावना तो आत्म-विकास की नींव है। इसका पुष्पित-पल्लवित होना आवश्यक है।

आत्म-दर्शन के लिए शरीर-भावना से ऊपर उठकर आत्म-भावना के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है तभी मोक्ष का—स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। जब साधक आत्मभावना में दक्ष हो जाता है तो उसका कोई शत्रु मित्र नहीं रह जाता, सबको वह समान दृष्टि से देखता है, किसी से घृण-द्वेष नहीं करता। वह जगत् के कल्याण के लिए अपनी समस्त शक्तियों के व्यय के लिए उत्पर रहता है। जब मदालसा-पुत्र अलर्क को दत्तात्रेय के सत्संग से आत्मज्ञान हुआ तो उसकी भी यही स्थिति हो गई। वह चारों ओर अपनी आत्मा के ही दर्शन करने लगा। यह आत्म-साधना की उच्च स्थिति है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए आत्म-संयम की साधना एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसकी प्रेरणा पुराणकार ने दी है। इसे मोक्ष का साधन माना गया है। संयम से शक्तियों की सुरक्षा होती है। शक्ति ही साधना का मूल है।

उसकी सुरक्षा के लिये विरोधी सामाजिक भावनाओं के प्रति सावधान रहना पड़ता है। इनमें अनित्यता, असंग और ममता के त्याग पर श्रद्धा ने विशेष बल दिया है। अनित्यता की भावना में सामाजिक वस्तुओं के क्षय होने पर दुःख नहीं होता। उनकी स्वाभाविक गतियों को वह भली प्रकार जानता है, उनमें निष्ठ नहीं रहता, अनिष्टता की भावना से भ्रोत प्रीन रहता है। ममता के प्रति विशेष रूप से मजबूत रहने की फ़र्ज़ा गया है क्योंकि "ममता मनुष्य के हृदय में एक महान् वृक्ष के रूप में स्थित है। अज्ञान को इसका बीज, महङ्कार को प्रकुर और ममकार को तना कहा गया है। घर द्वार, खेती-वाड़ी को धाखाएँ, धन सम्पत्ति की पत्ते, स्त्री पुत्र को पत्तव, पाप पुण्य को पुष्प, सुख-दुःख को फल, इच्छाओं को भ्रमर की सज़ा दी गई है। यह आदि काल से सदा है और निरन्तर बढ रहा है। यह साधक को आत्म विस्मृति करता है। सत्सङ्ग और विद्या के अस्त्रों से इसकी काटा जाना सम्भव है तभी मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा।"

प्रलय के विस्तृत वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि हम नित्य के मनन चिन्तन और ध्यान में यह अनुभव करें कि इस विश्व की जितनी वस्तुओं से हमारा सम्बन्ध है, वह धरे धीरे नष्ट होती जा रही हैं। वायु-वायुध्व साध होरते जा रहे हैं, पृथ्वीभौतिक शरीरों का निरन्तर क्षय होता जा रहा है, वे विनाश की धार तीव्र गति से बढ़ रहे हैं, बड़े-बड़े भवन और प्रामाद छस्त होने जा रहे हैं, अस्त्रों जीव-जन्तु अपने प्राण छोड़ रहे हैं, बड़े बड़े राजा-महाराजा और 'धन' कुंवर भी इस प्रवाह में बहे जा रहे हैं। किसी में रुकने की साम्ना नहीं है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि सारा विश्व जल कर भस्म हो गया है और चारों ओर जल ही जल दिखाई दे रहा है।

यह भावना दृढ होने पर साधक झूठ, छत्र, पपट, फरेब, धोमेबाजी, घूम, मिलावट आदि धन एकनिष्ठ करने के अनुचित उपायों से विरत हो जाना है और सद्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना है। उसका किसी से लगाव नहीं रहता, अनिष्ट भावना से वह जगत् में विचरता है।

देवी उपासना का निर्देशन इस पुराण की एक प्रमुख विशेषता है। देवी के सावित्री, उद्देश्य, आमुरी शक्तियों से सङ्घर्ष आदि का विस्तृत वर्णन

है। देवता देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं। “इस प्राणी जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणित हुई हैं एवम् जो समस्त सुदृगणों एवम् महामुनियों की पूज्या हैं, अनन्त भगवान्, ब्रह्मा, एवम् महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिये और उसके अहित व भय के नाश के लिये आकांक्षित हों। समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं। आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव सागर से निस्तार करने वाली अनुपम गौरी स्वरूप हैं, कंटभ शत्रु के वध कर्ता भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और महादेव के वाँए अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं। आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओं की भयदाता एवम् अत्यन्त अनुपम है।”

देवी का आविर्भाव देव शक्तियों के संग्रह से हुआ है। जब-जब राष्ट्र पर घोर सङ्कटों के बादल छाए हैं, तब-तब दिव्य पुरुष एकत्रित होकर अपने समस्त सामर्थ्यों को राष्ट्र हित के लिये समर्पित कर देते हैं। परन्तु पृथक् प्रयत्नों का कोई आशा-जनक फल नहीं प्रतीत होता। सङ्गठन से ही शक्ति का विकास होता है। जब महिषासुर, मधु, कंटभ, शुंभ, निशुंभ आदि शक्तिशाली विरोधियों ने सर उठाया तो देव शक्तियों ने उनसे अलग-अलग जूझने में अपने को असमर्थ पाया। वह सब मिलकर एक हो गए तब असुरों को पराजित होना पड़ा। भगवान् कृष्ण ने भी ग्वालों को कहा था, तुम अपनी-अपनी अंगुली लगा दो, यह गोवर्धन सहज में ही उठ जायगा। यह सङ्गठन शक्ति की ओर ही संकेत था। भगवान् राम ने बानरों की निम्न स्तर की जाति का संगठन करके ही लङ्का पर आक्रमण किया और सिद्धहस्त सेना को परास्त कर दिया। आज हमारा सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो रहा है। चारों ओर से आसुरी शक्तियाँ हमें और ध्वस्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। अब यह लड़खड़ाती स्थिति में है। इसे स्थिर रखने के लिये आवश्यक है देवी की उपासना की जाए, देव शक्तियों को एकत्रित किया जाए और असुरों के नगरों

व गद्दी को नष्ट भइ किया जाए ताकि देवता सुख की साँस ले सकें । अर्थात् राष्ट्र का नैतिक व साँस्कृतिक विकास हो । ऐसे सगठन बनाये जायें या बने हूँयो का सहयोग किया जाए तो सामाजिक रोगों और कुरीतियों के विचट अभिमान खलायें, उन से घोर सभय करें, उन्हें नष्ट करके ही दम लें, ताकि सारे राष्ट्र में नैतिकता की अजय धारा प्रवाहित हो ।

देवी उपासना का एक उद्देश्य यह भी है कि जब हम देवी को जग-जननी मानते हैं तो भ्रमस्त स्त्री जाति को ईश्वर रूप मानना होगा । भ्रात दूषित दृष्टि की कपी नहीं है । वही भी इसका अनुभव किया जा सकता है । नारी जाति के प्रति आदर व सम्मान की भावनायें रखना घोर उन्हें पुत्री, भगिनी और भानृत्व की पवित्र भावना से देवता ही सच्ची देवी उपासना है । दसी की ओर पुराणकार न इ गिन किया है । अरनीलता, मुखतियों का अपहरण, बलात्कार, कामवासना के ताण्डव नृत्य चारों ओर होने दिखाई दे रहे हैं । इनका समन दम देवी उपासना से ही सम्भव है ।

ममन्व्यात्मक दृष्टिकोण

मार्कण्डेय पुराण के रचयिता एक साँसारिक बन्धनो से मुक्त भर्षि हैं जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हैं । वह चाहते तो इनमें अपने पक्ष का प्रतिपादन करते घोर बुद्ध व नारद की तरह सब को ही गृह-स्थाय को निष्ठा देकर सन्यासी बना देते । गीता का प्रतिपाद्य विषय तो कर्म-योग है परन्तु हर टीकाकार आचार्य ने अपने-आपके भावनाओं के अनुसार उसे अपने अनुकूल मोड़ दे दिया । मार्कण्डेय चाहते तो वे भी भुविषापूर्वक कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । उन्होंने तो जगत् के बन्धन की पवित्र भावना से इसका निर्माण किया था । जन-साधारण का हित इसी में है कि उनके बौद्धिक-स्तर और वाचता के अनुसार ही उन्हें निष्ठा व प्रेरणा दी जाय ताकि वह उसे भुविषापूर्वक अपना सकें । निष्ठायें ऐसी ब्यवहारिक होती चाहिये जिन्हें जन-साधारण के लिए समभव न करवा जा सके । मार्कण्डेय दूरदर्शी थे । उन्होंने जगत् के प्रवाह का गीतापूर्वक अध्ययन किया और अपने अनुशासनों की इस धारा के अनुस्य ही

हर व्यक्ति को उपदेश दिया । धारा के विरुद्ध चलने में कड़ा सङ्घर्ष करना पड़ता है जो सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है । इसलिये उन्होंने ऐसे मार्ग का निर्देशन किया जिसे अपनाकर हर कोई क्रमिक विकास करता हुआ उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है ।

मार्कण्डेय स्वयं विरक्त थे परन्तु उन्हें गृहस्थ से विद्वेष नहीं था । उन्होंने भौतिक जीवन को हर प्रकार से समुन्नत करने की प्रेरणा दी, सभी साधनों को पूर्णरूप से विकसित करने पर बल दिया परन्तु इन समस्त प्रक्रियाओं का आधार धर्म और कर्तव्य ही माना है । गृहस्थ की उन्होंने प्रशंसा की है क्योंकि इसमें संघर्षमय जीवन की क्रियात्मक शिक्षा मिलती है । सङ्घर्ष से ही सब प्रकार की शक्तियों का विकास होता है जिन्हें आध्यात्मिक भाषा में सिद्धियाँ कहा जाता है । यही जीवन-निर्माण की आधार शिला बनती हैं । प्रगति पथ पर आरूढ़ होने के लिये आवश्यक नियमों का विवेचन किया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है । साथ ही साथ अबगुणों के प्रति चेतावनी भी दी गई है, ताकि अपाजित शक्तियाँ सुरक्षित रह सकें, उनका व्यय होकर वह मानव को दोन-हीन न बना दें ।

ऋषि व्यक्तिगत उत्थान के समस्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु इस उत्थान को वे अछूरा मानते हैं जब तक कि परहित की उदार भावनायें मनः क्षेत्र में जाग्रत न हो जायें । पूर्णता की प्राप्ति के लिये वह सारे विश्व को अपना परिवार मानने पर बल देते हैं । इस स्थिति तक पहुँचने के लिये महत्वपूर्ण साधनाओं का भी मार्ग दर्शन किया गया है ।

मार्कण्डेय ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन का उचित मूल्याङ्कन किया है । वे भौतिकवाद की उपेक्षा नहीं करते, उसे भी आवश्यक समझते हैं परन्तु केवल उन्हीं के लिये जीवन नष्ट करने को अज्ञानता मानते हैं । उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक है । यही जन-साधारण के अनुकूल है । इसीलिये इसे एक उच्चकोटि का पुराण माना जाता है ।

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली धर्म

हिन्दी अनुवाद सहित

१. चारों वेद = जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	...२७
अथर्व वेद २ खण्ड	...१३
यजुर्वेद १ खण्ड	... ६
सामवेद १ खण्ड	... ६

२. १०८ उपनिषदें (३ खण्डों में)

ज्ञान खण्ड	... ७
ब्रह्म-विद्या खण्ड	... ७
साधना खण्ड	... ७

३. षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	... ४
सांख्य दर्शन	...
योग दर्शन	...
चैतेनिक दर्शन	... ४
न्याय दर्शन	... ४
मीमांसा दर्शन	... ५

४. २० स्मृतियाँ २ खण्ड

.. ११

५. शिव पुराण

...१२

वायु पुराण २ खण्ड

...१४

विष्णु पुराण २ खण्ड

...१४

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ.)

देव वाद

का

वैज्ञानिक स्वरूप

भाग-१ विष्णु रहस्य

**

पूर्व हिन्दुसंस्कृति के जितने भी विवादस्पद विषय हैं, उनमें देव आश्रममुख स्थान रखता है। देव वाद ठोस मनोवैज्ञानिक विचार-इस पर आधारित है। देव देवियों का स्वरूप निर्धारित करते समय की के व्यावहारिक व क्रमिक विकास पर ध्यान दिया गया है, परन्तु है का शिक्षित वर्ग इनके बाह्य रूप को देखकर आलोचना करने होना है। देव देवियों सम्बन्धी समस्त शंकाओं का समाधान करने के विकल्प वाद का वैज्ञानिक स्वरूप चार खण्डों (१. विष्णु रहस्य, गई वि रहस्य, ३. ब्रह्मा रहस्य, ४. देव रहस्य) में प्रकाशित किया को है।

प्रथम खण्ड विष्णु रहस्य छपकर तैयार हो चुका है। इसमें परन्तु के स्वरूप, क्षीर सागर में निवास, शेष शय्या, समुद्र मंथन, भागी रूप, शालग्राम, चक्र, पद्म, गदा, शंख, वैजयन्ती माला, विष्णु, वाण, धनुष, लक्ष्मी से सम्बन्ध, वेद, उपनिषदों, रामायण, इतिहास, पुराणों आदि शास्त्रों में प्रतिपादन, उनके विभिन्न अवतारों । रहस्य आदि समस्त विषयों का प्रमाणित व शास्त्रीय विवेचन या गया है जिससे विष्णु साधना एक उच्चकोटि की जीवन निर्माण प्रक्रिया सिद्ध होती है।

पुस्तक अत्यन्त खोज पूर्ण है। इस विषय पर यह सर्व प्रथम तक है। मूल्य केवल छः रु० मात्र है।

प्रकाशक :

ऋति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली (उ.प्र.)

सांस्कृतिक विचारधारा के प्रकार का प्रतिनिधि मासिक पत्र

“युग-संस्कृति”

“युग-संस्कृति” युग की वाणी व पुकार है। इसका उद्देश्य नवीन, आधुनिक, वैज्ञानिक ढंग से भारतीय संस्कृति की विशेषताओं, महत्ताओं, विचारधाराओं व परम्पराओं का बौद्धिक आधार पर प्रतिपादन करना है। भारतीय तत्त्वज्ञान के मूलाधार तत्वों का स्पष्टीकरण करके संस्कृति के विशुद्ध व परिष्कृत रूप को जनता के सम्मुख रखना है। व्रत, त्यौहार, रीतिरिवाजों, आचार-विचार, पूजा-उपासना पद्धति को मनोवैज्ञानिक उपयोगिता को प्रस्तुत करना है। वेद-विज्ञान, सत्कार-विज्ञान, योग-विज्ञान, परलोक-विज्ञान, तुलसी-विज्ञान, पुराण-विज्ञान, पर प्रकाश डालना है। श्रृष्टि चरित्रों, व्रत कथाओं व पुराणों में असम्भव दिखाई देने वाली कथाओं में निहित वास्तविक तथ्यों का अनुसन्धान करना है। उपनिषदों की ज्ञान-गंगा का प्रवाह, स्मृतियों की नीति, रामायण की पारिवारिक शिक्षा व गीता का तात्त्विक विवेचन इसकी विशेषता है। धर्म व संस्कृति की भावना का व्यापक विस्तार, समाज, का नव-निर्माण, व नैतिक पुनरुत्थान इसका लक्ष्य है।

यदि आप अपने धर्म के प्रत्येक अङ्ग को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर नवरा उतरता देखना चाहते हैं तो युग-संस्कृति को पढ़ें।

पत्रिका साइज के ३४ पृष्ठों व दृष्टिया ग्लेज कागज के दो-रंगे टाइप से मुद्रित होने पर भी मूल्य केवल ४) वार्षिक है। वर्ष में एक विशेषांक भी छपता है।

नमूने की प्रति मुफ्त मंगाइये
प्रकाशक-संस्कृति-संस्थान, ग्वाजाकुतुब, बरेली (उ. प्र.)